सयुक्त राज्य अमेरिका

की

शासन प्रणाली

लेखक की अन्य रचनाएँ

सोवियत संघ तथा स्विट्ज़रलैंड की शासन प्रणाली
ग्रेट ब्रिटेन की शासन प्रणाली (प्रेस में)

संयुक्त राज्य अमेरिका
की
शासन प्रणाली

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)

लेखक
हरिमोहन जैन, एम० ए०,
राजनीति विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

१९५९
चैतन्य पब्लिशिंग हाउस
५-ए, यूनीवर्सिटी रोड, इलाहाबाद—२

द्वितीय संस्करण, अगस्त १९५६

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक : चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
मुद्रक : हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

दूसरे संस्करण की भूमिका

इस संस्करण में पुस्तक को पूर्णतया संशोधित कर दिया गया है और इस बात का प्रयास किया गया है कि पुस्तक की भाषा अधिकतम सरल एवम् सुगम हो। इसके अतिरिक्त उन सब परिवर्तनों को भी पुस्तक में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है जो प्रथम संस्करण के उपरान्त अब तक संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली में हुये हैं। आशा है यह नवीन संस्करण प्रथम संस्करण की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

२० जौलाई, १९५९ हरिमोहन जैन

प्रथम संस्करण की भूमिका

यह पुस्तक भारतीय विश्वविद्यालयों के राजनीति शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है। संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली का महत्व केवल इसलिए नहीं है कि अमेरिका वर्तमान काल में आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि-कोण से विश्व में सर्व-शक्तिशाली देश बन गया है बल्कि इसलिए है क्योंकि यह प्रणाली शासन कला के इतिहास में एक विलक्षण स्थान रखती है। व्यापक रूप से देखने पर आज प्रजातंत्रात्मक सरकार के तीन स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें से एक का अगुआ संयुक्त राज्य अमेरिका है और अन्य दो के क्रमशः ग्रेट ब्रिटेन तथा सोवियट रूस। ब्रिटिश शासन प्रणाली का संसार के महान् राष्ट्रों जैसे फ्रांस, इटली, जापान, भारतवर्ष इत्यादि ने अनुसरण किया है। रूसी शासन प्रणाली को १९५४ से पूर्व केवल कुछ पूर्वी युरोपीय देशों में ही अपनाया गया था परन्तु २० सितम्बर, १९५४ को साम्यवादी चीन ने जो नया संविधान स्वीकार किया है उससे इस प्रणाली में एक महत्वपूर्ण योगदान हुआ और इस प्रकार संसार का एक महान देश रूसी राजनैतिक प्रणाली का अनुयायी बन गया। परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली का अभी तक अन्य किसी महान देश ने प्रयोग नहीं किया है। केवल कुछ दक्षिणी अमेरिका के राज्यों में इसका अनुसरण करने का प्रयत्न किया गया है और वह भी अशुद्ध रूप में। इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका में जिस ढंग से जनता की सार्वभौमिकता का संगठन किया गया है उसका कोई अन्य महत्वपूर्ण सादृश्य नहीं मिलता।

इसमें सन्देह नहीं कि अमेरिका में जो संविधान १७८९ में लागू किया गया था वह समुचित रूप से कुशलता पूर्वक देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं का हल करने में समर्थ रहा। उसकी इस सफलता का मुख्य कारण यह रहा है कि यह संविधान देश की परिवर्तनशील परिस्थितियों के साथ स्वयं भी परिवर्तनशील रहा। परन्तु स्वर्गीय प्रोफेसर लास्की ने इस बात पर सन्देह प्रकट किया है कि यह संविधान आधुनिक काल की प्रगतिशील प्रवृत्तियों के अनुकूल भी अपने को परिवर्तित कर सकेगा या नहीं। निस्सन्देह १९२९ से संयुक्त राज्य के परम्परागत एवम् आधारभूत विश्वासों पर आक्रमण होने लगा है और विशेषकर दूसरे महायुद्ध के पश्चात जो व्यक्ति-वाद की विचारधारा, जिस पर अमेरिकी संविधान आधारित है, वर्तमान परिस्थितियों के बिल्कुल ही प्रतिकूल हो गई है। इस दृष्टि से प्रोफेसर लास्की का विश्लेषण निश्चय ही सत्य और अकाट्य प्रतीत होता है, परन्तु उसके निष्कर्ष से सहमत होना कठिन है। जैसा

कि इस पुस्तक के पढने से ज्ञात होगा, सयुक्त राज्य के सविधान का विकास वास्तव मे बड़ा आश्चर्यजनक रहा है और यद्यपि इसकी अनेक विशेषताओं, विशेषकर शक्ति प्रथक्करण, की विदेशी आलोचक सदा टीका करते आये हैं, और कुछ अमेरिकी भी अब इसको सन्देह की दृष्टि से देखने लगे हैं, परन्तु फिर भी सयुक्त राज्य की शासन प्रणाली अमेरिकी समाज की आवश्यकताओं की पूर्ण रूप से पूर्ति करती रही है। यह समाज की प्रगति के साथ साथ प्रगतिशील रही और यह तथ्य इसके भविष्य को आशाजनक बनाता है।

इस पुस्तक में इन्हीं कुछ विचारों को समक्ष रखकर सयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली का विश्लेषण किया गया है। विशेषकर प्रोफेसर लास्की के विचारों ने मुझे बड़ा प्रभावित किया है। इसकी सामग्री सचय करने में मैं ने अनेकों अंग्रेज तथा अमेरिकी विद्वानों की रचनाओं की शरण ली है। मैं उन सब का विशेषकर प्रो० लास्की, ऑग तथा रे, जिंक, ब्राइस, बियर्ड, ब्रागन, विल्सन, ग्रिफिथ, फाइनर, मैरियम, जॉनसन तथा मनरो का अत्यन्त आभारी हूँ।

अन्त म मैं अपने पूज्य शिक्षक श्री मदनगोपाल गुप्त, अध्यापक, राजनीति विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय का भी बड़ा कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को लिखने के लिए मुझे प्रेरित किया। वास्तव में उनके निरन्तर प्रोत्साहन तथा सहायता के बिना यह रचना सभव ही नहीं हो सकती थी।

राजनीति विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय
६ मई, १९५५

हरिमोहन जैन

विषय सूची



अध्याय १ | अमेरिकी संविधान की पृष्ठभूमि

प्रत्येक देश का संविधान एक विशेष बाह्य वातावरण में विकसित होता है, और इस वातावरण में ही उसके आन्तरिक विकास के सिद्धान्त का स्रोत मिल सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि संविधान एक राज्य के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विकास का प्रतिबिम्ब होता है और यह कथन न केवल विकसित संविधानों पर वरन् उन संविधानों पर भी लागू होता है जिनका निर्माण निश्चित रूप से किसी संविधान सभा द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि संविधान समाज पर लादा नहीं जा सकता, वह तो समाज की प्रगति के साथ ही क्रमशः विकसित होता है। अतः संविधान बनाते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है कि वह उस देश तथा जाति की प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल हो, क्योंकि किसी देश की राजकीय संस्थायें अपने निर्माण तथा कार्य प्रणाली में उस देश की भौगोलिक स्थिति, भौतिक तथ्यों, देशवासियों के चरित्र, समाज की उत्पादन प्रणाली, कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन, शक्ति तथा उत्पादन के वास्तविक तथा सम्भावित स्रोत और रीति रिवाजों के रूप में चली आती हुई ऐतिहासिक परम्पराओं से विशेष रूप से प्रभावित होती हैं।

अमेरिकी संविधान का उसके भूगोल से संबंध

किसी देश का संविधान बनाते समय उस देश की भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखना परमावश्यक है क्योंकि संविधान उस देश की भूमि तथा उसके निवासियों की परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं को सफलता पूर्वक सुलझाने के लिए ही बनाया जाता है। अमेरिका एक महान देश है जिसका क्षेत्रफल १९५८ में अलास्का तथा मार्च १९५९ में हवाई के संघ में सम्मिलित हो जाने के उपरान्त ३,६१५,२१० वर्ग मील तथा जनसंख्या (१६ अक्टूबर १९५८ तक) जनगणना ब्यूरो (Census Bureaus) की घोषणा अनुसार १७५,०००,००० है, जिसमें भिन्न भिन्न गोरी जातियों के अतिरिक्त काली जातियों का भी समावेश है, जो यूरोप तथा एशिया से एक वृहत सागर द्वारा पृथक होता है, जो लोहा, कोयला, तेल, ताँबा, सीसा, टीन, चाँदी, सोना, पारा आदि धातुओं के रूप में महान् साधनों का स्वामी है, जो संसार भर में पैदा की जाने वाली विद्युत शक्ति का ५० प्रतिशत भाग तैयार करता है और जिसके साथ इसकी महान् संस्कृति, अद्भुत् परम्परा तथा उदार

धार्मिक स्वतन्त्रता की पृष्ठ भूमि है। इस देश को भी अपनी भूमि तथा निवासियों की विभिन्न परिस्थितियों से उत्पन्न हुई समस्याओं को सुलझाना तथा अपने प्राकृतिक साधनों का पूरा लाभ उठाना था और विविध राज्यों का एक संयुक्त राष्ट्र के रूप में संगठित करना था। इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति के हेतु ही अमेरिकी संविधान की स्थापना हुई।

अमेरिकी व्यक्तिवादी परम्परा

आरम्भ से ही अमेरिकी इतिहास में व्यक्तिवाद की भावना का आभास मिलता है। व्यक्ति शक्तिशाली राज्य को सन्देह की दृष्टि से देखता था और निर्वाह के लिए राज्य पर निर्भर न होकर वह स्वयं अपने आत्मबल पर विश्वास करता था। इसका अर्थ यह नहीं कि वे लोग राज्य के विरोधी थे। वास्तव में राज्य को वह आवश्यक संस्था समझते थे परन्तु उनका विश्वास था कि राज्य का कार्यक्षेत्र सीमित है। उनका विचार था कि राज्य के कार्य देश की रक्षा करना तथा शांति व्यवस्था स्थापित करना है। इस भावना के ४ कारण थे। (१) सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में पाश्चात्य यूरोपीय देशों में एक विशाल धार्मिक आन्दोलन हुआ और धार्मिक आधार पर एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म वालों पर नाना प्रकार के अत्याचार करने लगे। इन अत्याचारों से बचने के लिये बहुत से लोग इंगलैंड छोड़कर अमेरिका आकर बस गये, स्वभावतः इन लोगों में राज्य की शक्ति के प्रति सन्देह की भावना थी। (२) एक दूसरा कारण जिसने इस भावना का पोषण किया उन लोगों का उपनिवेशी अनुभव था। अंग्रेजी सरकार ने अमेरिकी उपनिवेशी राज्यों पर बहुत कठोर आर्थिक बन्धन लगाये थे और अन्य अत्याचार किये थे जिसके फलस्वरूप अमेरिकावासी राज्य को एक विरोधी पक्ष मानने लगे। उनका विश्वास हो गया कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के लिये यह आवश्यक है कि राज्य के अधिकारों को अधिकतम सीमित किया जाये। (३) नया उपनिवेश होने के कारण अमेरिका में कृषि उन्नति की पर्याप्त सम्भावना थी। जिस समय अंग्रेज अमेरिका में आये वहाँ की जनसंख्या बहुत कम थी और भूमि विशाल थी, बड़े बड़े नगर अभी स्थापित हुये थे, सभ्यता कृषि युग की थी। फलस्वरूप थोड़ा भी श्रम करने से प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त हो सकती थी। अतः आरम्भ से ही अमेरिका में नई और उपजाऊ भूमि का उपयोग कर लोग मालामाल हो गये। इस कारण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक साधारण अमेरिकी अपने परिश्रम और भाग्य में विश्वास करने लगा। उन्नति का मार्ग सब के लिए एक समान खुला था। इस प्रकार सम्पत्ति के साथ-साथ अमेरिकी प्रजातंत्र का आधार सामाजिक तथा आर्थिक समानता भी बन गया। ऐसी पृष्ठ भूमि में एक उदार राजनैतिक प्रजातन्त्र का जन्म हुआ और एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ जो व्यक्तिगत-सम्पत्ति को मनुष्य का

एक प्राकृतिक अधिकार समझा था। धारणा देश में हो गई कि राज्य को चाहे प्रजातांत्रिक क्यों न हो, मनुष्य के सम्पत्ति के अधिकार पर प्रहार करने का कोई अधिकार नहीं। वास्तव में यह धारणा उत्पन्न हुई कि राज्य का परम कर्तव्य व्यक्ति की सम्पत्ति की रक्षा करना है। अमेरिकी राजनैतिक इतिहास के अध्ययन से पता लगता है कि अमेरिकी राजनैतिक संस्थाओं के निर्माण तथा कार्यों में सम्पत्ति एवं सम्पत्ति-स्वामी वर्ग का बहुत महत्वपूर्ण हाथ रहा है। सच तो यह है कि यहाँ व्यवस्थापिका सभा में जाने के लिये किसी मनुष्य को राष्ट्र के प्रति विशेष रूप से क्रियाशील या चतुर होने की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि वह व्यक्ति धन और सम्पत्ति तथा प्रभुता द्वारा मतदाताओं को प्रसन्न कर सके।

(४) प्यूरिटन (Puritan) धर्म ने अमेरिकनों को ईमानदारी और स्वच्छ जीवन व्यतीत करने का पाठ पढ़ाकर एक ऐसे समाज की स्थापना करने में सहायता की जिसमें प्रत्येक व्यक्ति नियमानुसार जीवन की कठिनाइयों का सामना कर सके। इस धर्म के अनुसार आत्मा तथा परमात्मा के संगम के हेतु किसी अन्य बाह्य साधन की आवश्यकता नहीं। राजनैतिक क्षेत्र में इस तर्क का अर्थ व्यक्तिवाद और आर्थिक क्षेत्र में इसका स्वरूप यदभावयम् नीति (laissez-faire) होता है।

परन्तु जहाँ धर्म द्वारा पूँजीपति वर्ग के हितों की रक्षा हुई वहाँ धर्म ने समानता तथा स्वतन्त्रता की भावना को भी सहायता दी। धर्म की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति समान है अतः प्रत्येक के समान अधिकार होने चाहिये। परन्तु समानता और स्वतन्त्रता का यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जा सकता था कि व्यक्ति अनेक मार्ग में आने वाली बाधाओं को हटाये जाने की मांग राज्य से कर सके। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि किसी एक व्यक्ति का सम्पत्ति-अधिकार दूसरों के शोषण के लिये प्रयुक्त किया जाता है तो राज्य शोषितों की सहायता करने के लिये निःसहाय होगा क्योंकि उसका मूल उद्देश्य ही सम्पत्ति-अधिकार की रक्षा करना था। इस प्रकार व्यक्तिवादी परम्परा का प्रजातंत्र तथा मनुष्य के मौलिक अधिकारों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

विधि का शासन (Rule of Law)

इसी व्यक्तिवादी भावना का कानूनी स्वरूप था विधि का शासन (rule of law)। जार्ज तृतीय और टोरी गवर्नर हचिन्सन के अत्याचारों का यह परिणाम हुआ कि अमेरिका वासियों में शासकों के प्रति अविश्वास तथा घृणा हो गई। उनका यह विश्वास हो गया कि शासकों को विधिबद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है, अर्थात विधि का शासन ही एक मात्र ऐसा प्रतीत हुआ जिसके द्वारा शासकों की निरंकुशता को रोका जा सके। विधि शासन के दो अर्थ हैं। (१) किसी व्यक्ति को उस समय तक कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता जब तक

प्रमाणित न कर दिया जाय कि उसने कानून का उल्लघन किया है और यह प्रमाणित करना न्यायालयों का काम है। (२) कानून व न्यायालयों के समक्ष सब समान हैं। अत व्यक्तिगत अधिकारों (जिनमें सम्पत्ति-अधिकार प्रधान था) के न्यायालय सरक्षक बन गये। यही कारण है कि सत्रहवीं शताब्दी ही से अमेरिका में वकीलों का बहुत आदर होता है। जैसा कि लास्की ने लिखा है वकील लोग ही कोक, लाक तथा ब्लैकस्टन के सिद्धान्त द्वारा यह सिद्ध कर सकते थे कि अमेरिकी नागरिक को स्वशासन का अधिकार प्राप्त है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भी शासन प्रणाली में वकीलों का महत्व बना रहा और न्यायालय राज्य के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आवश्यक साधन बन गये। अमेरिकी न्यायालयों के निर्णयों से ज्ञात होता है कि कानून की व्याख्या करने में पूँजीपतियों के हित की यथासम्भव रक्षा करने का उन्होंने सदैव प्रयत्न किया। अतः विधि का शासन भी व्यक्तिगत सम्पत्ति अधिकार द्वारा सीमित है।

अमेरिकी संविधान की विशेषतायें

ऊपर लिखित सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक परम्पराओं की पृष्ठ भूमि में ही हम संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की विशेषताओं को समझ सकते हैं। अमेरिकी संविधान के उत्कट आलोचक भी इस बात को मानते हैं कि जब ३० अप्रैल १७८९ को यह संविधान कार्यान्वित किया गया तो उस समय शासन काल में यह एक नवीन प्रयोग था और प्रजातन्त्रवाद के इतिहास में एक नया अध्याय। १७८९ ई० में यूरोप के किसी भी महान् राज्य में लिखित संविधान न था और इंगलैंड के सिवाय किसी देश में भी लोक प्रतिनिधिक संस्थायें न थीं। वास्तव में अमेरिकी संविधान द्वारा एक ऐसी शासन प्रणाली का जन्म हुआ जो समकालीन अंग्रेजी शासन प्रणाली से भी अधिक प्रजातान्त्रिक थी। अमेरिकी संविधान में केन्द्रीय अधिकार तथा स्थानीय स्वशासन के सतुलन की झलक मिलती है। यह सतुलन बड़ी सफलतापूर्वक किया गया है। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक लोगों को विश्वास था कि जीवन स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति की सुरक्षा के हेतु एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार आवश्यक है। परन्तु अमेरिकी संविधान के इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया कि यह धारणा मिथ्या मात्र है। वह बताता है कि संघात्मक आधार पर निर्मित गणतन्त्रीय प्रशासन के अन्तर्गत भी एक शक्तिशाली राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो सकती है और वह एक विस्तृत जनसंख्या को जो कि एक विशाल क्षेत्रफल में फैली हुई है राजनैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भलीभाँति करने में पूर्णतया समर्थ है।

फ्रांसीसी विचारक टॉक्वेल (Tocqueville) अमेरिका को एक आदर्श

प्रजातन्त्र मानता था। अंग्रेजी विद्वान लार्ड ब्राईस इस संविधान के गुणों का वर्णन करते हुये लिखते हैं कि यह संविधान विश्व के अन्य लिखित संविधानों से उत्तम है क्योंकि यह देश की परिस्थितियों के अनुसार बदलता जाता है। इसकी भाषा सरल और संक्षिप्त है। सिद्धांत में यह निश्चित है और भाषा में लचीला।

निर्माताओं के उद्देश्य—अमेरिकी संविधान के निर्माताओं ने संविधान की रचना करते समय चार उद्देश्यों को अपनी दृष्टि में रखा। सर्वप्रथम तो यह कि संविधान द्वारा एक कुशल शासन यन्त्र की स्थापना हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने एक शक्तिशाली कार्यकारिणी का प्रयोजन किया।

निर्माताओं का दूसरा उद्देश्य यह था कि शासन का प्रत्येक अंग परस्पर स्वतन्त्र हो। इस उद्देश्य की पूर्ति शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त (separation of powers) द्वारा की गई जिसके अन्तर्गत व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्याय पालिका परस्पर पृथक कर दिये गये परन्तु इसके साथ साथ यह भी व्यवस्था की गई कि तीनों एक दूसरे पर संतुलन तथा नियन्त्रण (checks and balances) रखें।

तीसरा उद्देश्य यह था कि सरकार जनता पर निर्भर रहे। इस सिद्धान्त को कार्यान्वित करने के हेतु संविधान में यह व्यवस्था की गई कि प्रशासन के सब महत्वपूर्ण पदाधिकारी जनता द्वारा निर्वाचित हों और चुनाव थोड़े थोड़े समय के पश्चात पुनः होते रहें।

चौथा—और सब से महत्वपूर्ण—उद्देश्य था व्यक्ति की स्वतन्त्रता की सुरक्षा का प्रश्न। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी एवं न्यायपालिका को पृथक पृथक कर दिया गया जिससे कोई एक विभाग दूसरे विभाग से मिलकर व्यक्तिक स्वतन्त्रता को आघात न पहुँचा सके। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के कुछ अधिकारों को संविधान द्वारा सुरक्षित कर दिया गया जिनके उल्लङ्घन किये जाने पर व्यक्ति न्यायालय की शरण ले सकता है।

इन उद्देश्यों की पृष्ठ भूमि में ही अमेरिकी संविधान की विशेषतायें स्पष्ट होती हैं।

सर्वप्रथम, अमेरिकी संविधान लोक प्रभुता (popular sovereignty) के सिद्धांत पर आधारित है। संविधान जनकृत्य का ही एक परिणाम है। उसका श्रोत सार्वजनिक इच्छा है अतः इसकी प्रस्तावना में यह घोषित

(१) लोक प्रभुता किया गया है कि "हम संयुक्त राज्य अमेरिका के नागरिक इस शासन विधान की रचना एवं स्थापना करते हैं"। इस संविधान द्वारा एक प्रतिनिधि मूलक प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली स्थापित होती है। इतना

अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रजातन्त्र की कुछ सीमायें हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, यह सीमायें अमेरिकी आर्थिक प्रणाली से निर्धारित होती हैं, क्योंकि राज्य उस आर्थिक प्रणाली का संरक्षक है।

(२) गणतन्त्रक राष्ट्रपति प्रणाली

दूसरी विशेषता अमेरिकी संविधान की यह है कि इसके द्वारा एक गणतन्त्र की स्थापना की गई है। और इस गणतन्त्र के आधार भूत सिद्धांत हैं निर्वाचित कार्यकारिणी और निर्वाचित व्यवस्थापिका। अमेरिकी गणतन्त्र संसदीय (parliamentary) न होकर अध्यक्षात्मक (presidential) है। अत इसमें वह गुण पाये जाते हैं जो कि एक अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में होते हैं। यह गुण निम्नलिखित हैं —सरकार के विभिन्न अंगों में अधिकार विभाजन की व्यवस्था होना, कार्यकारिणी-अध्यक्ष का कार्यकाल निश्चित होना, कार्यकारिणी का विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी न होना, और वास्तविक तथा नाममात्र की कार्यकारिणी में कोई भेद न होना। जैसा कि लीकाक (Leacock) ने कहा है संसदीय शासन प्रणाली में वास्तविक कार्यकारिणी के सदस्यों की पदावधि (tenure of office) व्यवस्थापिका सभा की इच्छा पर निभर रहती है परन्तु अध्यक्षात्मक सरकार में ऐसा नहीं होता। अत अमेरिका में राष्ट्रपति कार्यकारिणी का वास्तविक अध्यक्ष होता है। उसका कार्य-काल चार वर्ष के लिये निश्चित रहता है। अपनी पदावधि के लिये वह कांग्रेस (विधान मण्डल) पर निर्भर नहीं रहता और न अपने कार्यों के लिए ही वह उसके प्रति उत्तरदायी होता है। इस प्रकार राष्ट्रपति और कांग्रेस दो पृथक व स्वाधीन संस्थायें होती हैं। शासन संचालन में सहायतार्थ राष्ट्रपति कुछ सचिव नियुक्त कर सकता है और उनसे परामर्श ले सकता है परन्तु यह सचिव किसी प्रकार से भी अमेरिकी व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होते, उनका उत्तरदायित्व राष्ट्रपति तक ही सीमित है। परन्तु संसदीय शासन प्रणाली इसके बिलकुल विपरीत है। उसमें एक तो नाममात्र की कार्यकारिणी होती है जिसको नामधारी प्रभु (titular sovereign) कहा जाता है, जबकि वास्तविक कार्यकारिणी शक्ति एक मंत्रिमण्डल में निहित रहती है जिसके सदस्य व्यवस्थापिका सभा के सदस्य अथवा नेता होते हैं। यह मन्त्रि मण्डल व्यवस्थापिका सभा के प्रति व्यक्तिक और सामूहिक रूप से उत्तरदायी होता है और अपने कार्य काल के लिये उस पर निर्भर होता है। अमेरिकी संविधान अध्यक्षात्मक सरकार की स्थापना करता है, संसदीय शासन प्रणाली की नहीं। और यही इसकी मौलिकता है।

अमेरिकी संविधान की एक मुख्य विशेषता यह है कि यह एक संघात्मक (federal) शासन प्रणाली की स्थापना करता है। इस शासन प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न प्रभुतासम्पन्न राज्य कुछ सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के

हेतु[1] इस प्रकार अपने को एक संघ में संगठित करते हैं कि अपने कार्यक्षेत्र में स्वतन्त्र तथा सर्वोच्च रहते हुये भी राष्ट्रीय एकता एवं सुदृढ़ता प्राप्त की जा सके।

(३) संघात्मक शासन प्रणाली

संयुक्त राज्य अमेरिका (लार्ड ब्राइस के शब्दों में) एक ऐसा राज्यमण्डल (commonwealth) है जिसमें अनेकों राज्य हैं और एक ऐसा गणतन्त्र (republic) है जिसमें विविध गणतन्त्र सम्मिलित हैं। वह एक ऐसा राज्य है जो इकाई होते हुए भी विभिन्न संघान्तरित राज्यों का समूह है।

संघात्मक राज्य में सार्वभौमिकता केन्द्रीय सरकार तथा स्थानीय सरकारों में इस प्रकार विभक्त रहती है कि दोनों अपने अपने अधिकार-क्षेत्र में सम्प्रभु और परस्पर स्वतन्त्र रहते हैं। दोनों के मध्य अधिकारों का सीमा-विभाजन एक संविधान द्वारा होता है। यह संविधान दोनों के ऊपर सर्वोपरि होता है और इसकी सुरक्षा के लिये एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की जाती है। केन्द्रीय तथा संघान्तरित राज्य दोनों की अपनी अपनी पृथक सरकारें होती हैं अर्थात् एक संघीय विधान मंडल, संघीय कार्यकारिणी और एक संघीय न्यायपालिका के साथ साथ प्रत्येक राज्य में भी यह तीनों राजनैतिक संस्थायें होती हैं। इस दृष्टिकोण से संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान संघात्मक है और उसकी निम्नलिखित विशेषतायें विलक्षणीय है।

(क) केन्द्रीय सरकार तथा संघान्तरित राज्यों के मध्य अधिकार विभाजन, (ख) संविधान का लिखित होना और उसकी दुष्परिवर्तनशीलता (rigidity), (ग) संविधान की सर्वोपरिता (supremacy), (घ) न्यायपालिका का विधान अभिभावक (guardian of the constitution) होना, (ङ) संघीय विधान मण्डल में दो भवनों का होना जिनमें से एक में संघान्तरित राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

(क) अधिकार विभाजन (Distribution of Powers)—संघात्मक होने के नाते अमेरिकी संविधान केन्द्रीय सरकार तथा राज्यों के मध्य अधिकारों का विभाजन करता है। यह केन्द्रीय सरकार को कुछ अधिकार प्रदान करता है और उनका स्पष्ट उल्लेख करता है और अवशिष्ट अधिकार राज्यों को प्रदान करता है। दोनों एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे कार्य हैं जो संघ और राज्य दोनों के लिए वर्जित हैं। आदि

---

1 As stated in the Preamble, these objectives are " to form a most perfect union establish justice, insure domestic tranquility, provide for the common defence promote the general welfare, and secure the blessings of liberty to ourselves and our posterity "

संस्थापकों की इच्छा यह थी कि केन्द्रीय सरकार तथा राज्यों की सरकार दोनों ही अपने अपने क्षेत्र में शक्तिशाली हों। संविधान बनने से पूर्व अमेरिका में जो राज्य संघ (confederation) था वह इतना दुर्बल था कि उसके कार्य से कोई भी सन्तुष्ट न था। यह विभिन्न राज्यों को संयुक्त कर एक राष्ट्र की स्थापना करने में असमर्थ था। उसके द्वारा न तो देश की सुरक्षा ही हो सकती थी और न आन्तरिक क्षेत्र में शांति व्यवस्था। अतः एक स्थायी शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार बनाने की इच्छा स्वाभाविक थी। परन्तु इस इच्छा की पूर्ति के मार्ग में बहुत सी कठिनाइयाँ थीं। जैसा कि वुड्रो विलसन (Woodrow Wilson) ने लिखा है उन राज्यों के लिए जिन्होंने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध रक्त बहाकर स्वतन्त्रता प्राप्त की थी यह कठिन था कि वे अपनी शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण भाग एक नई केन्द्रीय सरकार को सौंप दें। वह अपनी स्वतन्त्रता किसी बाह्य शक्ति को समर्पित करने के लिए तैयार नहीं थे। अतः एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना के वे विरोधी थे और उसे अविश्वास की दृष्टि से देखते थे। फिलेडल्फिया सम्मेलन में राज्यों की विजय हुई। केन्द्रीय सरकार को बहुत सीमित अधिकार दिए गए और अवशिष्ट अधिकार (residuary powers) राज्यों में सुरक्षित रहे। इस प्रकार जहाँ केन्द्रीय सरकार के अधिकार निश्चित कर दिए गये वहाँ राज्यों की शक्तियाँ अनिश्चित, मूल तथा अन्तर्निहित रहीं (undefined, original and inherent)। इस दृष्टि से अमेरिकी संघ कनाडा तथा भारत के नये संविधान से भिन्न है क्योंकि इन संविधानों में अवशिष्ट अधिकार केन्द्र को सौंपे गए हैं। अमेरिकी संविधान के निर्माताओं को यह प्रयोजन केवल राज्यों को सन्तुष्ट करने के लिए करना पड़ा क्योंकि अगर ऐसा न किया जाता तो सम्भवतः अमेरिका के राज्य जो अपने अधिकारों की हर मूल्य पर रक्षा करने के लिए तैयार थे समस्त संविधान को अस्वीकृत कर देते।

किन्तु जैसे जैसे अमेरिकी संविधान का विकास होता गया केन्द्र की शक्ति बढ़ती गई। इस विस्तार में न्यायाधीशों के निर्णयों, परम्पराओं, प्रथाओं तथा गर्भित शक्ति सिद्धान्त (doctrine of implied powers) का बहुत बड़ा हाथ रहा है। कालचक्र के साथ साथ नवीन सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ पैदा होती गईं। विदेशी नीति की समस्यायें सामने आईं, देश की रक्षा का प्रश्न उठा। इन समस्याओं तथा प्रश्नों का समाधान एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार द्वारा ही किया जा सकता था। फलस्वरूप संघ सरकार के अधिकारों की वृद्धि हुई। परन्तु राज्यों के अधिकारों में कोई विकास नहीं हुआ। वास्तव में उनके अधिकार घटते गए और आज तो संघ सरकार सर्वशक्तिशाली हो गई है, राज्यों के अधिकार उस के सामने नगण्य लगते हैं।

गर्भित शक्ति सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers)—संघ सरकार की इस विजय में, जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, गर्भित शक्ति सिद्धान्त का महत्वपूर्ण हाथ रहा। इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने का श्रेय हैमिल्टन को है। १७९० ई० म राष्ट्रीय बैंक की स्थापना पर हैमिल्टन ने अपने प्रसिद्ध प्रतिवेदन (Report) में यह विचार प्रकट किया कि जो अधिकार संविधान द्वारा केन्द्रीय सरकार को दिये गए हैं उनमें वह सब अधिकार भी सम्मिलित हैं जो उन मूल अधिकारों के कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हैं अथवा जो संविधान की धाराओं की उदार व्याख्या करने पर मूलाधिकारों में निहित प्रतीत होते हैं। क्रमश यह सिद्धान्त अमेरिकी संविधान की व्याख्या करने में महत्वपूर्ण हो गया। इसका महत्व बताते हुए लाज (Lodge) लिखते हैं कि केन्द्रीय सरकार के लिये यह सिद्धान्त एक भीषण शस्त्र था। सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से विवश होकर राज्यों ने भी इसको चुपचाप स्वीकार कर लिया। हैमिल्टन के इस सिद्धान्त को न्यायाधीश मार्शल (Marshall) ने अपने अनेकों निर्णयों के द्वारा वैधानिक मान्यता देकर और भी पुष्ट तथा दृढ़ कर दिया। मार्शल ने अपने एक निर्णय में बताया कि यद्यपि सरकार के अधिकार सीमित हैं और उस सीमा का उल्लंघन नहीं होना चाहिये, परन्तु संविधान की स्वस्थ व्याख्या द्वारा केन्द्रीय विधान मंडल को यह अधिकार देना अनुचित न होगा कि वह अपने प्रदत्त अधिकारों को कार्यान्वित करने के लिय आवश्यक 'समुचित उपायों का प्रयोग कर सके' और इस प्रकार लोक कल्याण के अपने महान उत्तरदायित्व को पूरा कर सके। हाँ, उद्देश्य अवश्य ही वैधानिक होना चाहिये और उद्देश्य की पूर्ति के लिये जिन साधनों का प्रयोग किया जाये वह भी संविधान द्वारा वर्जित न हो अर्थात् वे विधान की दृष्टि में उचित और इसके अनुरूप हों।

संविधान की इस उदार व्याख्या का यह परिणाम हुआ कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति का क्षेत्र विस्तृत होता गया और आरम्भ में संविधान में जो सन्तुलन केन्द्र तथा राज्यों के मध्य स्थापित किया गया था वह भंग हो गया। राज्यों के अधिकार संकुचित होते गये। समय के परिवर्तन के साथ साथ जो विविध जटिल सामाजिक व आर्थिक समस्यायें उपस्थित होती गयीं उन्होंने भी केन्द्रीकरण की इस प्रगति को सहायता दी।

संघ तथा राज्य सरकारों की सीमायें—इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि संयुक्त राज्य म संघ सरकार को निर्धारित तथा निहित अधिकार प्राप्त हैं और अवशिष्ट अधिकार संघान्तरित राज्यों को। संक्षिप्त में अमेरिका में शक्ति विभाजन इस प्रकार किया गया है —

१ कुछ अधिकार ऐसे हैं जो केवल केन्द्रीय सरकार को दिये गये हैं जैसे

परराष्ट्र सम्बन्ध संचालन, राष्ट्रीय सुरक्षा, वैदेशिक तथा अन्तराज्य व्यापार का नियन्त्रण, नये राज्यों को संघ में प्रविष्ट करना, डाक, मुद्रा इत्यादि।

२ संघ सरकार के अधिकारों के अतिरिक्त अवशिष्ट सब अधिकार जिनसे राज्य स्पष्ट रूप से वर्जित नहीं किये गये राज्यों के हैं।

३ कुछ अधिकार ऐसे हैं जो दोनों के अधिकार क्षेत्र कहे जा सकते हैं जैसे नागरिकता, निर्वाचनाधिकार, सार्वजनिक ऋण इत्यादि। इन अधिकारों को समवर्ती अधिकार कहते हैं।

४ वे अधिकार जो केन्द्रीय सरकार को वर्जित हैं जिनका उल्लेख मूल संविधान और विशेषकर १७८९-९१ में हुये संवैधानिक संशोधनों में किया गया है।

५ वे अधिकार जो संघान्तरित राज्यों को वर्जित हैं जैसे युद्ध की घोषणा करना, संधि करना, मुद्रा चलाना इत्यादि।

६ वे अधिकार जो संघ और संघान्तरित राज्य दोनों को वर्जित हैं। संविधान की कुछ धाराओं और पन्द्रहवें तथा उन्नीसवें संशोधन में कुछ ऐसे अधिकारों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार अमेरिकी शासन की प्रत्येक शाखा सीमित है और यह सीमायें अमेरिकी संविधान की एक मुख्य विशेषता हैं।

(ख) लिखित संविधान—ऊपर बताया जा चुका है कि अमेरिकी संविधान संघात्मक है। प्रत्येक संघ एक केन्द्रीय सरकार तथा विभिन्न राज्यों के मध्य एक प्रकार का अनुबन्ध होता है और अनुबन्ध स्वभावतः लिखित होता है। फलस्वरूप अमेरिकी संविधान भी लिखित है। इसके अतिरिक्त अमेरिकी संविधान बड़ा संक्षिप्त है। इसमें केवल ७ धारायें (Articles) हैं और आज तक कुल मिलाकर २२ संशोधन किये गये हैं जो मूल संविधान के अतिरिक्त पृथक धाराओं के रूप में हैं। जब हम इसके आकार की तुलना भारत, इटली तथा चीन जैसे देशों के संविधानों से करते हैं तो उसकी यह विशेषता स्पष्ट हो जाती है। भारतीय संविधान में ३९५ धारायें हैं, इटली के संविधान में १५७ और साम्यवादी चीन के नये संविधान में १०६। यद्यपि अमेरिकी संविधान लिखित है तथापि उसके विकास में, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, प्रथाओं, परम्पराओं तथा रीति रिवाजों का एक विशेष भाग रहा है। यह परम्परायें तथा प्रथायें, जो स्वभावतः अलिखित हैं, उतनी ही मान्य हैं जितना कि संविधान का लिखित भाग। ब्रोगन के शब्दों में अमेरिका का लिखित संविधान एक ढाँचे के समान है जिसमें रीति रिवाजों, राजनैतिक दलों, राष्ट्रीय विपत्तियों तथा आर्थिक उन्नति ने रक्त और मांस प्रदान किया है, और देश प्रेम ने जीवनदान।

(ग) दुष्परिवर्तनशीलता (Rigidity)—लिखित होने के साथ-साथ

अमेरिकी संविधान दुष्परिवर्तनशील है क्योंकि इसकी संशोधन विधि[1] अपेक्षात्मक कुछ कठिन है। इसके अन्तर्गत साधारण तथा संवैधानिक कानूनों में भेद किया गया है और संवैधानिक कानूनों के संशोधन की जो व्यवस्था की गई है वह बहुत जटिल है। यही कारण है कि आरम्भ से आज तक अमेरिकी संविधान में केवल २२ संशोधन हो पाये और इनमें प्रथम बारह तो लगभग एक साथ प्रारम्भ में ही हो गये थे। इससे यह सिद्ध होता है कि संविधान में संशोधन विशेष आवश्यकता पड़ने पर ही किये जा सके।

(घ) संविधान की सर्वश्रेष्ठता—एक संघात्मक संविधान केन्द्रीय सरकार तथा संघातरित राज्यों के मध्य एक प्रकार का अनुबन्ध होता है इसलिये यह आवश्यक है कि इस अनुबन्ध की धारायें दोनों के लिये माननीय होनी चाहियें। संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान भी संघात्मक होने के नाते राज्यों तथा संघ दोनों के ऊपर सर्वोपरि है। इसके अतिरिक्त 'विधि का शासन' कार्यान्वित करने के लिये भी अनिवार्य था कि संविधान को ही सर्वश्रेष्ठ माना जाये। तदानुसार छठे अनुच्छेद में यह घोषित किया गया है कि यह संविधान इस देश का सर्वोच्च कानून होगा और प्रत्येक राज्य के न्यायाधीश इससे बाध्य होंगे। अत संघीय संविधान केन्द्रीय सरकार, राज्यों के संविधान तथा उनकी सरकार और स्थानीय सरकार, अर्थात् अमेरिकी शासन प्रणाली की प्रत्येक संस्था पर सर्वोपरि है। इस सिद्धान्त के अनुसार जो कानून काग्रेस द्वारा संविधान के अन्तर्गत बनाये जाते हैं वे भी सर्वोपरि होते हैं क्योंकि संविधान की समस्त शक्ति इन ही कानूनों द्वारा कार्यान्वित होती है। परन्तु केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया हुआ यदि कोई कानून संविधान की किसी धारा का उल्लंघन करता है तो ऐसा कानून सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवैध घोषित किया जा सकता है। इस सिद्धान्त को "न्यायपालिका की सर्वोपरिता" (judicial supremacy) का सिद्धान्त कहते हैं और यह अमेरिकी संविधान का एक अन्य विशेषता है।

(ङ) न्यायपालिका की प्रधानता—वास्तव में संघात्मक शासन प्रणाली में यह सिद्धान्त नितांत आवश्यक है। इसका कारण यह है कि संविधान की धाराओं के विषय में राज्यों तथा केन्द्रीय सरकार के मध्य समय समय पर मतभेद उत्पन्न हो सकता है, जिसका निर्णय करने के लिये एक निष्पक्ष तथा सर्वोच्च संस्था की आवश्यकता पड़ती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में संविधान द्वारा किसी ऐसी संस्था की स्पष्ट व्यवस्था नहीं की गई थी परन्तु क्रमश सर्वोच्च न्यायालय ने यह शक्ति ग्रहण कर ली और गर्भित शक्ति सिद्धान्त द्वारा यह न्यायालय धीरे धीरे संविधान

---

1 संशोधन प्रक्रिया के लिये पृष्ठ २१ देखिये।

या संरक्षक (guardian) बन गया। इस नाते संविधान की व्याख्या करने में यह अन्तिम निर्णायक बन गया है और यदि संघीय सरकार तथा राज्यों की सरकार का कोई कानून या कार्य संविधान का उल्लंघन करता है तो यह उसको अवैध घोषित कर सकता है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय अमेरिकी शासन प्रणाली का सन्तुलन चक्र (balance wheel) बन गया है। उसने संविधान की व्याख्या कर के संविधान में निहित आदि-संस्थापकों (founding fathers) के उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायता की। यह बताया जा चुका है कि संविधान निर्माताओं का मूल लक्ष्य व्यक्ति के अधिकारों, उसकी स्वतन्त्रता तथा विशेषकर उसकी सम्पत्ति की सुरक्षा करना था। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु उन्होंने संविधान में अनेक राजनैतिक संस्थाओं की व्यवस्था की थी। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने न केवल संविधान को कार्यान्वित करने में ही सहायता दी बल्कि इसकी व्याख्या करके उसकी मुख्य धारणा—व्यक्तिवाद—को भी लागू करने का यह मुख्य साधन बन गया। इसलिये प्रो० लास्की के मतानुसार न्यायपालिका की प्रधानता का सिद्धान्त अमेरिकी समाज की प्रगति में सदैव बाधक रहा है।

अमेरिकी संविधान के निर्माता लॉक तथा मान्टैस्क्यू के राजनैतिक सिद्धान्तों से अत्यधिक प्रभावित हुये थे और वह इस विचार से सहमत थे कि व्यक्ति स्वातन्त्र्य के लिए यह आवश्यक है कि व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी तथा

(४) शक्ति-प्रथक्करण न्यायपालिका इन तीनों शासन शक्तियों का प्रथक्करण किया जावे। अर्थात् सरकार के ये तीनों विभाग परस्पर पृथक और स्वतन्त्र हों ताकि एक दूसरे की निरंकुशता को रोक सकें अथवा उस पर नियन्त्रण कर सरकार में सन्तुलन स्थापित कर सकें। अत: शक्ति प्रथक्करण और परस्पर नियन्त्रण व सन्तुलन (checks and balances) अमेरिकी शासन प्रणाली की मुख्य विशेषता बन गये। परिणाम स्वरूप संयुक्त राज्य में कांग्रेस, राष्ट्रपति और सर्वोच्च न्यायालय तीनों के अधिकार-क्षेत्र विभिन्न और पृथक हैं। कांग्रेस विधि निर्माण के क्षेत्र में सर्वोपरि है, राष्ट्रपति कार्यकारिणी का सर्वोच्च अध्यक्ष है और सुप्रीम कोर्ट तथा उसके आधीन संघीय न्यायालयों में सर्वोच्च न्यायशक्ति निहित है। यह तीनों विभाग अपने अपने क्षेत्र में सम्प्रभु तथा परस्पर स्वतन्त्र हैं, कोई एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी नहीं है। इस प्रकार राष्ट्रपति कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं है और न ही अपनी पदावधि के लिये वह कांग्रेस पर निर्भर है। इसी प्रकार कांग्रेस विधि निर्माण तथा वित्त सम्बन्धी क्षेत्रों में सर्वोपरि है। न्यायपालिका द्वारा व्यक्ति के अधिकारों तथा स्वतन्त्रता की रक्षा होती है। वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय संविधान का संतरी है, वह कांग्रेस तथा कार्यकारिणी दोनों के आक्रमणों से उसकी रक्षा करता है। शासन के तीनों विभागों को पृथक अवश्य कर दिया गया, परन्तु

साथ ही यह भी विदित था कि तीनों के मध्य परस्पर सम्बन्ध तथा सम्पर्क स्थापित करना भी सफल शासन के लिए परमावश्यक है क्योंकि इसके बिना सरकार में एकता व समरूपता की भावना नहीं आ सकती। अत यह व्यवस्था की गई कि सरकार के तीनों अग परस्पर एक दूसरे को नियत्रित करें और इस प्रकार शासन में सन्तुलन की स्थापना करें। इस प्रकार नियत्रण तथा सन्तुलन का सिद्धान्त शक्ति प्रथक्करण सिद्धान्त का पूरक बन गया है। सन् १८१४ में जान एडम्स (John Adams) ने अपने एक पत्र में जान टेलर (John Taylor) को लिखा कि आरम्भ से अन्त तक अमेरिकी सविधान में एक अग दूसरे अग पर प्रतिबन्ध रूप है। सर्वप्रथम, राष्ट्रीय सरकार के विपक्षी १८ राज्य हैं, द्वितीय, प्रतिनिधि सभा और सिनेट दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, तृतीय, कार्यकारिणी और व्यवस्थापिका कुछ सीमा तक एक दूसरे के प्रतिद्विन्दी हैं; चतुर्थ, न्यायपालिका प्रतिनिधि सभा, सिनेट, कार्यकारिणी और राज्यों की सरकार सभी को वैधानिक बन्धन में रखती है, पाँचवें, राष्ट्रपति पर सिनेट द्वारा प्रतिब ध लगाये गये हैं, छठवें, हर दूसरे वर्ष चुनाव करके जनता अपने प्रतिनिधियों को भी नियन्त्रित करती है, सातवें, राष्ट्रपति के चुनाव में राष्ट्रपति निर्वाचक जनता के अधिकार को सीमित करते हैं। इस प्रकार जहाँ सरकार के तीनों अगों में शक्ति प्रथक्करण किया गया है वहाँ तीनों में पारस्परिक सम्बन्ध भी स्थापित किया गया है।

(५) कुछ महत्वपूर्ण न्यूनतायें

अमेरिकी सविधान में जिन बातों का वर्णन मिलता है वह उतनी ही उल्लेखनीय हैं जितनी वह बातें जिनका इसमें अभाव है। कहीं कहीं तो सविधान में अनावश्यक बातों पर भी व्यापक व्यवस्था की गई है जैसे जूरी की व्यवस्था अथवा देश-द्रोह (treason) की परिभाषा अथवा राज्यसघ (confederation) द्वारा की गई सधियों अथवा उसके द्वारा लिये गये ऋणों (debts) के नवीन सघ सरकार द्वारा आदर किये जाने का वचन आदि—और कहीं कहीं मौलिक बातें भी छोड़ दी गई हैं। उदाहरणार्थ, प्रतिनिधि सभा के स्पीकर के अधिकारों का वर्णन इसमें नहीं मिलता और इसी प्रकार दोनों सदनों के मतभेद को सुलझाने की कोई व्यवस्था नहीं की गई है इत्यादि, परन्तु जो अधिकार काग्रेस को दिये गये हैं उनका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उनके अन्तर्गत सब छुटे हुये प्रश्नों पर नियम बनाये जा सकते हैं और इस प्रकार इन न्यूनताओं को पूरा किया जा सकता है। सम्भवत निर्माता सविधान की बारीकियों म जाकर आगामी पीढ़ियों को अपने विचारों से जकड़ना नहीं चाहते थे और न उनका आने वाली आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का सही अनुमान हो सकता था। इसलिये उन्होंने विरोधग्रस्त प्रश्नों पर चुप रहना ही उचित समझा यह सोच कर कि कांग्रेस समय समय पर स्वय परिस्थिति के

अनुकूल उचित व्यवस्था कर लेगी, और संविधान को संशोधित करने के भी चार तरीके उन्होने निर्धारित कर दिये। फलस्वरूप अमेरिकी संविधान संपूर्ण नहीं है। यह केवल कुछ नियमों तथा सिद्धान्तों का समूह है। यह राजनैतिक भवन की नींव है स्वय राजनैतिक भवन नहीं। यह जड़ है स्वय वृक्ष नहीं। १७८७ ई० के राजनीतिज्ञों ने केवल नींव खोदी, आगामी पीढ़ियों ने समय चक्र के साथ साथ उस पर दीवारें खड़ी कीं, स्तम्भ लगाये, खिड़की और दरवाजों की योजनायें बनाईं और भवन सम्भवत अभी तक पूरा नहीं है। लोवेल (Lowell) के शब्दों में अमेरिकी संविधान उस वस्त्र के समान है जो समय रूपी करघे के द्वारा बराबर बुनता चला आ रहा है।

(६) समझौते का परिणाम

अमेरिकी संविधान के संक्षिप्त होने का एक मुख्य कारण कदाचित यह भी है कि *फिलेडेलफिया सम्मेलन में विभिन्न दृष्टिकोणों तथा परस्पर विरोधी मतों* के प्रतिनिधि उपस्थित थे। छोटे और बड़े राज्यों में मतभेद था। केन्द्रपसारी तथा केन्द्रोपसारी (centrifugal & centripetal) प्रवृत्तियों में संघर्ष था। पूँजीहीन तथा पूँजीपति और कृषि तथा उद्योग यह दोनों विपक्षी थे। अत आरम्भ से ही यह विदित था कि सम्मेलन के कार्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न करने के लिये यह अनिवार्य है कि विभिन्न मत और विरोधी हित आपस में समझौते के लिये तैयार रहें। वास्तव में सम्मेलन में लगभग हर प्रश्न पर समझौता करना पड़ा। और आज भी इन समझौतों की छाप अमेरिकी संविधान पर पूर्ण रूप से स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

(७) एक अनुदार संविधान

लास्की तथा ब्रोगन (Brogan) का मत है कि अमेरिकी संविधान एक प्रतिक्रान्ती-वादी (counter revolutionary) प्रलेख्य है। इस कथन में बहुत कुछ सत्य का अंश है क्योंकि जिन क्रान्तिकारियों ने अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व किया था वह स्वय पूँजीपति थे और इस नये संविधान द्वारा वह अपनी विजय तथा पूँजी को सुरक्षित करना चाहते थे। अत व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा संविधान का आधार भूत सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त समय समय पर अमेरिकी *सामाजिक प्रगति में बाधक* रहा है अत कुछ आलोचकों ने संविधान को एक अनुदार प्रलेख्य बताया है।

अमेरिकी संविधान का भविष्य

१७८७ में फिलेडेलफिया सम्मेलन द्वारा रचा हुआ शासन पत्र विश्व के महत्वपूर्ण प्रयोगों में गिना जाता है। इसके प्रशंसकों का कहना है कि यह शासन कला का एक अद्भुत नमूना है। आलोचनात्मक दृष्टि से देखने पर यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस संविधान द्वारा प्रगतिशील अमेरिकी समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति भली भाँति होती रही है परन्तु भविष्य में आने वाली नई समस्याओं को

हल कर सकने में कुछ आलोचकों ने इस संविधान की क्षमता पर सन्देह प्रकट किया है। उदाहरणार्थ, प्रोफेसर लास्की ने अमेरिकी संविधान के भविष्य पर प्रकाश डालते हुये लिखा है कि आज अमेरिकी समाज के सामने यह एक गम्भीर प्रश्न है कि क्या उनका यह संविधान उन नई सामाजिक तथा आर्थिक क्रान्तियों का सामना कर सकेगा जो आज के समाजवादी युग में प्रत्येक देश की परम्परागत संस्थाओं को चुनौती दे रही हैं। उनका कहना है कि कोई परम्परा केवल तब तक चल सकती है जब तक कि समाज का उसमें विश्वास हो और समाज का विश्वास उसमें तभी तक रह सकता है जब तक कि उसके मानने से जनता की आशाओं की पूर्ति की सम्भावना हो। जब तक परम्परा में विश्वास रहता है तब तक संविधान जो उस परम्परा की अभिव्यञ्जना है और जिस पर वह आधारित है समय के प्रहारों का सामना करता रहेगा। अब तक तो अमेरिका के साधन असीमित थे। सम्पन्नता फलस्वरूप बढ़ती रही। जनता का विश्वास प्राचीन अमेरिकी परम्परा में बना रहा और संविधान पर कोई आघात न हो सका। इस विश्वास का एक कारण यह भी था कि आरम्भ से लगभग एक शताब्दी तक संयुक्त राज्य बाह्य आक्रमणों के भय से मुक्त रहने के कारण अपनी समस्त शक्ति और साधनों का उपयोग अपने विकास तथा निर्माण के लिये कर सका। अतः अमेरिकी समाज के प्रत्येक व्यक्ति का विश्वास प्रगति तथा उन्नति में रहा। वह यह विश्वास करता था कि अपने कर्म तथा परिश्रम से अपने लिए पृथ्वी पर स्वर्ग भी उतार सकता है। इन ही आशाओं तथा प्रवृतियों ने अमेरिका में व्यक्तिवाद की भावना को जन्म दिया और अमेरिकी समाज के क्रमशः विकास ने सदैव उसको जीवित रखा। यही संविधान की सफलता का भी कारण रहा।

संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि १९२९ के आर्थिक संकट (Economic Depression) तक एक साधारण अमेरिकी का यह दृढ़ विश्वास था कि उनका संविधान दोष रहित है और वह इतना लचीला है कि समय की प्रत्येक चुनौती को स्वीकार करता रहेगा। परन्तु १९२९ के आर्थिक-संकट से इस विश्वास पर एक गहरा आघात लगा। पुरानी परम्पराओं तथा प्रथाओं के विषय में अनेक प्रकार के नए-नए प्रश्न उठने लगे। पुराने प्रश्नों के उत्तर नए ढंग से दिए जाने की माँग होने लगी। ४ मार्च १९३३ ई० को रूजवेल्ट (Roosevelt) ने राष्ट्रपति पद ग्रहण किया। इस तिथि से द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति तक के काल में अमेरिकी समाज में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। आर्थिक-संकट के फलस्वरूप नयी आर्थिक समस्यायें खड़ी हो गईं। युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए अनेक साधनों एवं समाज की सामूहिक शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। विजय के उपरान्त अपनी तथा अपने मित्रों की सुरक्षा के प्रश्न उठे। साम्यवाद से रक्षा

करने के लिए यह आवश्यक हो गया कि पिछड़े हुए राज्यों के आर्थिक विकास में अमेरिका सहयोग दे। इस प्रकार युद्ध काल में तथा उसके उपरान्त संयुक्त राज्य का उत्तरदायित्व बढ़ कर विश्व व्यापी हो गया। इसके साथ साथ अमेरिकी जनता के सामने यह प्रश्न आया कि जिस विजय के लिए उनको इतना त्याग तथा बलिदान करना पड़ा उस विजय का क्या परिणाम निकला, वास्तव में उस का उद्देश्य क्या था? इससे पूर्व इस प्रकार के मौलिक प्रश्न अमेरिकी जनता के मस्तिष्क में कभी नहीं आए थे। द्वितीय विश्व युद्ध ने अमेरिका को विश्व की सब से महान शक्ति बना दिया। परिणाम स्वरूप एक गम्भीर प्रश्न यह उठता है कि उस महान शक्ति का संयुक्त राज्य किस प्रकार उपयोग करेगा। क्या यह शक्ति साधारण व्यक्ति के लाभ व उत्थान के लिए प्रयुक्त की जायेगी? क्या अमेरिका अपने परम्परागत व्यक्तिवाद का त्याग कर सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों की चुनौती का सामना कर सकेगा? इस प्रकार के अनेक प्रश्न आज अमेरिकी संविधान की परीक्षा कर रहे हैं। क्या संविधान इस परीक्षा में सफल हो सकेगा यह विवाद ग्रस्त प्रश्न है। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह इस महान परीक्षा में विजयी होगा। एक लेखक का तो यहाँ तक कहना है कि मार्क्सवाद और अमेरिकी परम्परा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों का लक्ष्य एक न्यायशील, वर्गहीन तथा समृद्ध समाज की स्थापना करना है। अमेरिका में भी आर्थिक सम्पन्नता तथा सामाजिक समानता पाई जाती है और प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त है। यूरोपीय समाज की वर्ग-वैमनस्यता यहाँ दिखाई नहीं पड़ती। पूँजीहीन तथा पूँजीपति, श्रमिकों तथा मालिकों में घृणास्पद संघर्ष यहाँ नहीं है। अत अमेरिकी राजनैतिक प्रणाली समानता व स्वतन्त्रता के आधार पर सामाजिक शान्ति और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने में सफल रही है। इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह प्रणाली आज की परीक्षा में भी सफल होगी और अमेरिकी संविधान नयी आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं का सफलता पूर्वक सामना करता रहेगा। परन्तु यह परिस्थिति का केवल एक पहलू है। दूसरी ओर संदेह जनक दशा है। औपनिवेशवाद का अन्त हो रहा है। एशिया और यूरोप की पिछड़ी हुई जातियाँ स्वतन्त्रता प्राप्त करती जा रही हैं। साम्यवाद प्रत्येक देश में उन्नत शील है। यह सब तथ्य अमेरिकी आर्थिक प्रणाली व राजनैतिक संस्था को चुनौती दे रहे हैं। यह बताना कठिन है कि अमेरिकी संविधान इस चुनौती का सामना करने में कहाँ तक सफल होगा। यह भविष्य की बात है।

अमेरिकी संविधान के स्रोत

किसी भी संविधान का स्रोत उसकी समकालीन राजनैतिक विचार

धाराओं, उसके पूर्व इतिहास, उस देश का भौगोलिक परिस्थिति तथा आर्थिक दशा, उस देश के निवासियों के चरित्र इत्यादि में पाया जाता है। अमेरिकी संविधान का स्रोत भी कुछ ऐसे ही तथ्यों में मिलता है। सर्वप्रथम, फिलाडेलफिया सम्मेलन के सदस्यों ने संविधान की रचना में अपने लगभग १५० वर्ष के औपनिवेशिक अनुभव का लाभ उठाया। दूसरे, उन्होंने अंग्रेजी राजनैतिक संस्थाओं को अपने समक्ष रखा और उनसे बहुत कुछ ग्रहण किया। और तीसरे, मान्टैस्क्यू (Montesquieu) तथा लॉक (Locke) के राजनैतिक सिद्धान्तों का उन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। इन तीनों ही प्रभावों की स्पष्ट छाप अमेरिकी संविधान पर दिखाई देती है।

आदि संस्थापकों ने संविधान के निर्माण में अपने औपनिवेशिक अनुभव का पूरा लाभ उठाया। जॉर्ज तृतीय और उपनिवेशी गवरनरों के अत्याचारों से उनके हृदय में सरकार के प्रति सन्देह तथा अविश्वास की भावना उत्पन्न हो गई थी और उनका यह विश्वास हो गया था कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उसके अधिकारों की रक्षा के हेतु यह परम आवश्यक है कि सरकार की शक्ति को यथासम्भव सीमित किया जाय। यही कारण है कि उन्होंने शक्ति पृथक्करण और "नियन्त्रण तथा सन्तुलन" जैसे सिद्धान्तों को अपनाया और राज्यों के गवरनरों और राष्ट्रपति के अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाए। स्वतन्त्रता उपरान्त जो राज्यसंघ (confederation) स्थापित किया गया था उसके दोष भी उनसे छिपे नहीं थे। संविधान के बनाने में इन दोषों को दूर करने का उन्होंने पूरा प्रयत्न किया। यह उनके अतीत का नकारात्मक प्रभाव था। परन्तु सकारात्मक दृष्टिकोण से भी यह कहा जा सकता है कि अमेरिकी संविधान अपने अतीत की उपज है क्योंकि उपनिवेशों तथा स्वतन्त्रता के उपरान्त राज्यों की राजनैतिक संस्थाओं को ही आधारभूत मानकर नये संविधान का निर्माण किया गया। इसलिए औपनिवेशिक काल की राजनैतिक संस्थाओं और इस काल के अनुभव में नये संविधान का प्रथम स्रोत पाया जाता है।

(१) औपनिवेशिक काल का अनुभव

अमेरिकी संविधान का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत है अंग्रेजी राजनैतिक संस्थायें। संयुक्त राज्य के आरम्भिक निवासी अंग्रेज ही थे जो धार्मिक स्वतन्त्रता, आर्थिक लाभ इत्यादि की खोज में इंगलैंड छोड़कर अमेरिका में आकर बस गये थे। ये अंग्रेज अपने साथ अंग्रेजी राजनैतिक विचारधाराओं तथा अंग्रेजी संस्थाओं का अनुभव लाये थे। यह कहना अधिक उचित होगा कि वे अपने साथ अंग्रेजी संस्थाओं को भी ले आये थे जिनका उन्होंने अमेरिकी भूमि में प्रयोग किया। जैसा कि जॉन्सन (Johnson) ने लिखा है वास्तव में अमेरिकी संस्थाओं का

(२) ब्रिटेन की राजनैतिक संस्थायें

स्रोत इंगलैंड की सैक्सन, डेन तथा नार्मन जातियों की राजनैतिक परम्पराओं में मिलता है। सीमित शासन तन्त्र, व्यक्ति स्वातन्त्र्य, सार्वजनिक चुनाव, प्रतिनिधि मूलक संसद, सीमित कार्यकारिणी, कॉमन लॉ, जूरी-व्यवस्था, बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार (habeas corpus) इत्यादि यह सब अंग्रेजी राज्य दर्शन के मूल तत्व थे जो यह लोग अमेरिका ले आये थे। इन सब के स्रोत अंग्रेजी बिल आफ राइट्स तथा मैगना कार्टा में पाये जाते हैं। इस प्रकार अमेरिकी संविधान के निर्माण में अंग्रेजी राजनैतिक संस्थाओं एवम् प्रथाओं का व्यापक प्रभाव पड़ा।

(३) लॉक और मॉन्टेसक्यू के राज्यदर्शन

इनके अतिरिक्त अमेरिकी राजनीतिज्ञ और विशेषकर संविधान के निर्माता फ्रांसीसी दार्शनिक मोंटेसक्यू तथा अंग्रेज विचारक जॉन लॉक के राजनैतिक विचारों से विशेष रूप से प्रभावित हुए थे। मॉन्टेसक्यू के राज्यदर्शन में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त उन्हें बड़ा आकर्षक तथा उपयोगी प्रतीत हुआ अतः इसको संविधान में अपना लिया गया। इसी प्रकार लॉक के व्यक्ति स्वातन्त्र्य, प्राकृतिक अधिकार, तथा सीमित शासनतन्त्र सम्बन्धी विचार उन्हें प्रिय लगे, इसलिये संविधान निर्माण में उनका प्रयोग किया गया। लॉक का विचार था कि सरकार के अधिकारों का मूल स्रोत जनता ही है, अतः जनता की सहमति पर ही सरकार का अस्तित्व निर्भर है। सरकार का कर्तव्य है कि जनता के अधिकारों तथा उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा करे और यदि किसी समय जनता यह अनुभव करती है कि सरकार अपने नियमों का पालन कुशलता पूर्वक नहीं कर रही है या मर्यादा का उल्लंघन कर रही है तो जनता को यह भी अधिकार है कि ऐसी सरकार को बदल कर अपनी इच्छानुसार एक नई सरकार की स्थापना कर सके। इस प्रकार सरकार एक अनुबन्ध रूप है। लॉक के यह विचार अमेरिकी संविधान में व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों के घोषणापत्र में साकार दिखाई देते हैं। ऐसा लगता है मानो यह घोषणा पत्र स्वयं लॉक ने ही लिखा हो। वास्तव में लॉक और मॉन्टेसक्यू संविधान निर्माताओं की बाइबिल बन गये। यह इन्हीं दार्शनिकों का प्रभाव था कि अमेरिकी संविधान में शक्ति पृथक्करण, न्यायपालिका की सर्वोपरिता, सार्वजनिक सम्प्रभुता, प्रतिनिधि मूलक सरकार, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा व्यक्ति स्वातन्त्र्य, इत्यादि सिद्धान्तों को प्रधानता प्राप्त हुई।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि फिलाडेलफिया सम्मेलन ने अपना कार्य अंग्रेजी संविधान तथा उपनिवेशों व राज्यों की शासन प्रणालियों की पृष्ठभूमि में सम्पन्न किया। इस पृष्ठभूमि में लॉक तथा मॉन्टेसक्यू के विचारों ने एक दार्शनिक आधार प्रदान किया। प्रयत्न यह किया गया कि नये संविधान में अंग्रेजी तथा औपनिवेशिक और राज्य संघ की राजनैतिक संस्थाओं के दोषों को दूर कर

उनके गुणों का सम्मिश्रण किया जा सके। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अमेरिकी संविधान केवल प्राचीन परम्पराओं और संस्थाओं का समूह मात्र है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसमें अनेकों नये प्रयोग किये गये। उदाहरणार्थ शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त को सर्वप्रथम अमेरिकी संविधान में ही व्यवहारिक रूप दिया गया। इसी प्रकार शासन प्रणाली की संघात्मक आधार पर व्यवस्था करना शासन कला में एक नया प्रयोग था। व्यापक मताधिकार द्वारा एक गणतन्त्र की स्थापना, प्रजातांत्रिक सरकार की लिखित संविधान द्वारा व्यवस्था और स्वातन्त्र्य तथा व्यक्तिगत अधिकारों का न्यायालयों को संरक्षक बनाना, यह सब शासन तंत्र में नये प्रयोग थे।

अन्त में यह बात बता देना भी आवश्यक है कि किसी संविधान के स्रोत चाहे कुछ भी हों उसकी सफलता का मूल्यांकन तो उसके कुशल व्यवहार से ही किया जा सकता है। निस्सन्देह उसकी सफलता उन व्यक्तियों पर निर्भर करती है जो उसको कार्यान्वित करने के लिये चुने जाते हैं। उनकी बुद्धि, उनके लक्ष्य तथा उद्देश्य, उनकी शक्ति, उनकी दूरदर्शिता, उनका ज्ञान इत्यादि गुण इस सफलता में महत्त्वपूर्ण तथ्य होते हैं। इसके अतिरिक्त संविधान के कार्यान्वित होने में उन सब परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है जो समय समय पर उत्पन्न होती रहती हैं। इस प्रकार धीरे धीरे वैधानिक प्रथाओं के समूह, लिखित विधियाँ, न्यायालयों के निर्णय और संवैधानिक संशोधन निसर्जित होते रहते हैं जो कालान्तर में संविधान के ही भाग बन जाते हैं। अतः जब हम संविधानों के स्रोतों की खोज करते हैं तो हमें इन महत्त्वपूर्ण तथ्यों को नहीं भूल जाना चाहिये। अगले अध्याय में हम इनका वर्णन करेंगे।

अध्याय २ | अमेरिकी संविधान का निर्माण तथा विकास

संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान सरकार का उद्घाटन ३० अप्रैल, १७८९ को हुआ था। उस दिन फिलाडेल्फिया सम्मेलन द्वारा रचा हुआ संविधान लागू किया गया। यह संविधान १७८७ में बनाया गया था परन्तु संयुक्त राज्य की राजनैतिक प्रणाली का प्रारम्भ १३ उपनिवेशों की सरकारों से होता है। यद्यपि यह सरकारें एक दूसरे से भिन्न थीं तथापि उनके मौलिक आधारों में एकरूपता तथा समानता थी। सब के ऊपर ब्रिटेन का नियन्त्रण था किन्तु दूर होने के कारण और यातायात के उपयुक्त साधनों के अभाव से ब्रिटिश सरकार इन पर सक्रिय रूप से शासन नहीं कर सकती थी। अतः कुछ सीमा तक इन उपनिवेशों को राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त थी, इनमें स्वतन्त्रता की भावना आरम्भ से ही थी। इस भावना से उनमें आत्म निर्भरता (self reliance) उत्पन्न हुई। अमेरिका में फ्रांसीसी शक्ति के पतन ने इस भावना को और भी सजग कर दिया। परिणाम स्वरूप अंग्रेजी नियन्त्रण अब उन्हें खलने लगा। इधर उपनिवेशों तथा इङ्गलैन्ड के मध्य मतभेद बढ़ता गया और जब जार्ज तृतीय के मन्त्रियों ने उन पर विभिन्न कर लगाने आरम्भ कर दिये तो परिस्थिति और भी बिगड़ गई। अमेरिका में सुरक्षा के लिए अंग्रेजी सेना को रखने के निर्णय ने शत्रुता की आग और भड़का दी। इधर उपनिवेश अधिकाधिक स्वतन्त्रता की माँग कर रहे थे। उनका मत था कि जिस संसद् में उनका प्रतिनिधित्व नहीं है उसको उन पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है। ब्रिटेन की आर्थिक नीति से वह असन्तुष्ट थे क्योंकि इसके अन्तर्गत उनका व्यापार और वाणिज्य ब्रिटिश साम्राज्य तक ही सीमित कर दिया गया था अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर अन्य देशों से व्यापार करने की उन्हें स्वतन्त्रता न थी। वह इससे भी असहमत थे कि ब्रिटिश संसद को उनके लिए कानून बनाने का अधिकार है। इन सब बातों का यह फल हुआ कि दिन पर दिन इङ्गलैन्ड और अमेरिका के परस्पर सम्बन्ध बिगड़ते गये यहाँ तक कि दोनों के बीच युद्ध छिड़ गया। ४ जुलाई, १७७६ को अमेरिकी उपनिवेशों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। १७८३ में ब्रिटिश सरकार को उनसे संधि करनी पड़ी। उपनिवेश स्वतन्त्र हो गये। ब्रिटिश सम्प्रभुता के समाप्त हो जाने के पश्चात् उपनिवेशों का प्रशासन वहाँ की व्यवस्थापिका सभाओं के हाथ में आ गया था। उपनिवेश अब राज्य बन गये

और प्रत्येक ने अपनी शासन प्रणाली को पुन सङ्गठित करना आरम्भ कर दिया। १७८० के अन्त तक प्रत्येक राज्य में नये संविधान लागू हो गये। इन सभी संविधानों के आधार प्रजातन्त्रीय थे, सभी सरकारों की शक्तियों पर सीमायें लगी हुई थीं और सभी में व्यक्ति के अधिकार सुरक्षित करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया। इसलिए सरकार को तीन पृथक अङ्गों में विभाजित किया गया जो एक दूसरे पर नियन्त्रण रख सकें। इतना ही नहीं, संविधान म व्यक्ति के मूल अधिकारों का एक अध्याय में स्पष्ट वर्णन किया गया। समस्त अधिकारों में पूँजी अधिकार को सब से अधिक महत्व दिया गया यहाँ तक कि इसकी रक्षा में प्रजातन्त्रवाद को भी सीमित कर दिया गया अर्थात् मताधिकार पूँजी के आधार पर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग प्रत्येक राज्य में जनता का अधिकांश भाग मताधिकार से वंचित रहा।

महाद्वीपीय कॉंग्रेस

५ सितम्बर, १७७४ को जौर्जिया (Georgia) के सिवाय अन्य सब उपनिवेशों के प्रतिनिधि इङ्गलैन्ड के साथ पुन शांति व्यवस्था स्थापित करने के लिए फिलाडेलफिया में एकत्रित हुये। यह प्रथम अवसर था जबकि विभिन्न उपनिवेशों में परस्पर सहयोग और सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। उपनिवेशों का यह सम्मेलन कान्टिनेन्टल कांग्रेस (Continental Congress) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस सम्मेलन का लगभग ७ सप्ताह तक बैठकें हुई और भङ्ग होने से पूर्व इसने स्पष्ट शब्दों में उपनिवेशों के अधिकार घोषित कर दिये। मई १७७५ तक इंगलैंड के साथ युद्ध की घोषणा हो चुकी थी। १० मई को इसी नगर में दूसरी कांग्रेस की बैठक हुई। इस सभा ने तुरन्त समस्त महाद्वीप का कार्य-भार अपने ऊपर ले लिया और मार्च १७८१ ई० तक केवल यही सभा शासन कार्य करती रही। परन्तु सुसङ्गठित न होने के कारण कान्टिनेन्टल कांग्रेस शासन कार्य सुचारु रूप से चलाने में असमर्थ रही और समस्त देश में प्रभावशाली न हो सकी, इसकी स्थिति केवल एक विभिन्न उपनिवेशों द्वारा स्वेच्छाकृत सम्मेलन की थी। इसकी कार्यवाही में भाग लेने के लिए जो विभिन्न उपनिवेशों के प्रतिनिधि आते थे वे अपने को अपने उपनिवेश का राजदूत मानते थे जनता के प्रतिनिधि नहीं। मतदान व्यक्तिगत आधार पर न होकर राज्याधार पर होता था। वास्तव में अमेरिका के तेरह उपनिवेश अपने को तेरह स्वतन्त्र एव सार्वभौमिक राज्य समझते थे और कान्टिनेन्टल कांग्रेस के आधीन अपने को मानने के लिए तैयार न थे। उनके विचार में कांग्रेस का उद्देश्य केवल इंगलैंड से संग्राम कर स्वतन्त्रता प्राप्त करना ही था, इससे अधिक कुछ नहीं।

ऐसी परिस्थिति में अमेरिकी नेताओं को इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि एक राष्ट्रीय संविधान के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों को संयुक्त कर एक स्थायी

संघ का निर्माण किया जाये। अत जून १७७६ में काटिनेन्टल कांग्रेस में रिचार्ड हैनरी ली नामक सदस्य ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया जिसके आधार पर इस कांग्रेस ने स्वतन्त्रता घोषणा-पत्र प्रस्तुत करने के लिए एक समिति नियुक्त की। एक दूसरी समिति राज्यसंघ के विधान (Articles of Confederation) की रचना करने के लिए नियुक्त की गई। १५ नवम्बर, १७७७ ई० को यह विधान अन्तिम रूप से कांग्रेस के द्वारा पारित हो गया, परन्तु यह १७८१ से पूर्व कार्यान्वित न हो सका।

इस विधान के अन्तर्गत एक कांग्रेस की व्यवस्था की गई थी जिसमें राज्यों को दो से सात तक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया था। परन्तु प्रतिनिधि मन्डल में चाहे कितने सदस्य हों, प्रत्येक राज्य को कांग्रेस में केवल एक ही वोट प्राप्त था जिससे कि प्रत्येक राज्य का प्रभाव व स्थान, चाहे वह बड़ा हो या छोटा, समान रहे। प्रतिनिधि एक वर्ष के लिये निर्वाचित किये जाते थे। किसी भी महत्वपूर्ण कार्य के लिये दो तिहाई राज्यों की सम्मति आवश्यक थी। एक राज्य के प्रतिनिधि मन्डल के मत का निर्णय उसके सदस्यों के बहुमत के आधार पर होता था। विधान के संशोधन के लिये समस्त राज्यों का एकमत होना आवश्यक था। परन्तु राज्य संघ के विधान की सब से बड़ी कमी यह थी कि इस के अन्तर्गत न तो किसी शक्तिशाली कार्यकारिणी का प्रयोजन किया गया था और न किसी प्रभावशाली न्यायपालिका का। राष्ट्रीय सरकार के अधिकार बहुत कम और सीमित थे। किसी भी दृष्टि से उसका सप्रभु नहीं कहा जा सकता था क्योंकि विभिन्न राज्य अपनी स्वतन्त्रता और सप्रभुता त्याग करने के लिये तैयार नहीं थे यहाँ तक कि राज्य-संघ की सदस्यता भी छोड़ने के लिये वह स्वतन्त्र थे। राज्यसंघ की इस कांग्रेस को किसी भी अर्थ में महाद्वीपीय संसद नहीं कहा जा सकता क्योंकि विदेशी सम्बन्धों की देख भाल, युद्ध की घोषणा तथा युद्ध संचालन करना, नौसैना की व्यवस्था, ऋणदान इत्यादि सामान्य अधिकारों के अतिरिक्त इसे और कोई शक्ति नहीं दी गई थी। वास्तव में यह तो राज्यों की महान समिति मात्र थी न कि एक व्यवस्थापिका सभा।

राज्य संघ का विधान

अत राज्य संघ की सरकार आरम्भ से ही शक्तिहीन थी। इसमें अनेकों दोष थे। (१) राज्यों ने अपने अधिकतर अधिकारों का त्याग नहीं किया था। वह वस्तुत अब भी सप्रभुता सम्पन्न व स्वतन्त्र थे। कांग्रेस के पास कोई इस प्रकार का साधन न था जिससे वह अपने आदेशों को कार्यान्वित करा सकती। इसके लिये उसको राज्यों पर निर्भर रहना पड़ता था। फलस्वरूप विभिन्न राज्यों के नागरिकों पर इसका प्रत्यक्ष

राज्य संघ की असफलता

नियन्त्रण नहीं था। (२) कांग्रेस को कर लगाने का अधिकार न था। इसका कार्य राज्यों के अनुदान पर निर्भर रहता था। परन्तु राज्यों से केवल यह अनुरोध कर सकती थी, उनको बाध्य नहीं। (३) कांग्रेस को विभिन्न राज्यों के मध्य वाणिज्य तथा व्यापार को नियन्त्रित करने का कोई अधिकार न था। न तो यह आयात व निर्यात पर कर लगा सकती थी और न यह विभिन्न राज्यों की आयात-निर्यात कर संबंधी नीतियों पर कोई प्रतिबन्ध लगा सकती थी। आयात-निर्यात कर लगाने में राज्य पूर्णतया स्वतंत्र थे। जैसा कि ऑग तथा रे (Ogg and Ray) ने लिखा है, इसके परिणाम बहुत हानिकारक हुए। राष्ट्रीय कार्यों को सम्पन्न करने के लिये आय का कोई निश्चित साधन न था और न कोई सामान्य व्यापारिक नीति ही कार्यान्वित की जा सकती थी, प्रत्येक राज्य अपने अपने हितों की सुरक्षा में संलग्न था। किसी को भी समस्त राष्ट्रीय हित की परवाह न थी। (४) इसके अतिरिक्त कांग्रेस को यह अधिकार न था कि वह राज्यों को अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिये बाध्य कर सकती। कांग्रेस रुपया मांग सकती थी परन्तु इसके भुगतान के लिये किसी राज्य को बाध्य नहीं कर सकती थी। यह परराष्ट्रों से संधियां कर सकती थी परन्तु उनको लागू करने में असमर्थ थी। यह परामर्श दे सकती थी परन्तु आदेश नहीं। दूसरे शब्दों में राज्य संघ के संविधान द्वारा जिस शासन प्रणाली की स्थापना हुई उसको वास्तविक अर्थ में सरकार नहीं कहा जा सकता। परिणाम यह हुआ कि राज्यों ने इच्छा पूर्वक इसकी धाराओं का उल्लंघन किया और कांग्रेस के पास इसको रोकने के लिये न कोई वैधानिक साधन था न सैनिक शक्ति। (५) अन्त में, राज्य संघ के संविधान का सब से बड़ा दोष यह था कि इसमें किसी कार्यपालिका या न्यायपालिका की व्यवस्था नहीं की गई थी।

संशोधन आंदोलन

आरम्भ से ही यह विदित था कि इस प्रकार की दुर्बल तथा शक्तिहीन शासन व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल सकती। आन्तरिक अव्यवस्था व अशान्ति, राज्यों के बीच व्यापारिक प्रतिस्पर्धा तथा आयात निर्यात संबंधी नीति मतभेद के कारण संघर्ष व प्रतिद्वन्द तथा परराष्ट्र नीति, विदेशों से सम्बन्ध संचालन में असमर्थता, दुर्बलता इत्यादि दोष शीघ्र ही प्रकट हो गये और इनके कारण संविधान को संशोधित करने की मांग की जाने लगी। इसके लिये यह सुझाव दिये जाने लगे कि एक अन्तर-राज्यी सम्मेलन बुलाया जाय।

१७८५ में एक महत्वपूर्ण घटना हुई। वर्जीनिया तथा मेरीलैंड के बीच चेजापेक बे (Chesapeake Bay) और पोटामक नदी (Potomac river) में नौतरण (navigation) अधिकार संबन्धी जो झगड़ा चल रहा था उसको १७८५ में एलग्जेन्ड्रिया सम्मेलन हल करने में सफल हुआ। इस सफलता

ने व्यापार, वाणिज्य तथा आयात-निर्यात कर सबन्धी समस्याओं को एक सम्मेलन द्वारा सुलझाये जाने के विचार को बड़ा प्रोत्साहित किया। परिणाम यह हुआ कि अगले ही वर्ष अन्नापोलिस के स्थान पर एक अन्य सम्मेलन बुलाया गया जिसमें हैमिल्टन ने राज्यसंघ के संविधान की दुर्बलताओं और उसके दोषों से सबन्धित एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिस पर यह निश्चय किया गया कि मई १७८७ में फिलाडेल्फिया के स्थान पर एक और सम्मेलन बुलाया जाय जिसमें संयुक्त राज्य की दशा पर विचार किया जाय और संघीय सरकार को सुसगठित तथा सुदृढ़ बनाने के लिये कोई व्यवस्था की जाये ताकि यह सम्पूर्ण संयुक्त राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये अधिक उपयुक्त हो सके।

कांग्रेस ने भी अन्नापोलिस सम्मेलन के प्रस्ताव का अनुमोदन किया और २१ फरवरी, १७८७ को इसने एक प्रस्ताव द्वारा यह निश्चय किया कि प्रस्तावित सम्मेलन का एकमात्र उद्देश्य राज्यसंघ के संविधान में संशोधन प्रस्तुत करना होगा, परन्तु इन पर अन्तिम निर्णय कांग्रेस तथा विभिन्न राज्यों के विधान मन्डलों का होगा। अतः सम्मेलन का मूल उद्देश्य राज्य संघ के संविधान में संशोधन प्रस्तुत करना था न कि एक नये संविधान की रचना करना।

फिलाडेलफिया सम्मेलन

इस सम्मेलन का उद्घाटन २५ मई १७८७ को हुआ। रोडेआयलैंड को छोड़कर अन्य सभी राज्यों ने इसमें भाग लिया। कुल मिलाकर १२ राज्यों के ५५ प्रतिनिधि इस सम्मेलन में उपस्थित थे। प्रतिनिधियों कि प्रकृति तथा उनके हित और दृष्टिकोण परस्पर विभिन्न थे, उनकी योग्यता में अन्तर था और विचारों में मतभेद। कुछ बहुत ही योग्य थे और उच्चकोटि के विद्वान व कुशल राजनीतिज्ञ और कुछ इतने निष्क्रिय कि आने वाली पीढ़ियां आज केवल उनका नाम ही जानती हैं, अधिकतर प्रतिनिधि ऐसे थे जो अपने राज्यों की राजनीति में सक्रीय नेता था। जार्ज वाशिंग्टन, बैंजामिन फ्रेंकलिन, एलेग्जेंडर हेमिल्टन, मेडिसन, विलसन एवम गोवरनियर मोरिस जैसी महान् विभूतियाँ सम्मेलन में उपस्थित थीं, जैफरसन का तो यहाँ तक कथन था कि यह सम्मेलन देवताओं का समूह है। सम्मेलन के सदस्यों में लगभग आधे ग्रेजुएट थे, और अनेक विधान तथा राजनीति में पंडित। वकीलों का बहुमत था और अधिकांश नगर निवासी थे। प्रतिनिधियों की अवस्थाओं में भी महान अन्तर था। एक ओर तो फ्रैंकलिन (Franklin) जैसे ८२ वर्ष के वृद्ध जिनके लिये बोलना भी कठिन था और दूसरी ओर हैमिल्टन (आयु ३२ वर्ष) जैसे नवयुवक थे, परन्तु अधिकतर नवयुवक ही थे। जहाँ तक उनके राजनैतिक तथा आर्थिक सिद्धान्त का सम्बन्ध है साधारणतया

वह अनुदार और फूँक फूँक कर चलने वाले लोग थे। प्रत्येक सदस्य व्यावसायिक या पूँजीपति वर्ग से सम्बन्धित था। ५५ में से ४० प्रतिनिधि सरकारी सिक्योरिटीज (Public securities) के स्वामी थे और २४ महाजन व साहूकार, १५ दास स्वामी थे और १४ भूमिधर थे, उनमें ११ का सबन्ध व्यापार वाणिज्य नौचालन इत्यादि हितों से था। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस सम्मेलन में श्रम वर्ग तथा छोटे छोटे कृषकों का या निर्धनों का कोई प्रतिनिधि न था। सी० ए० बियर्ड (C A Beard) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है कि फिलाडेल्फिया सम्मेलन के सदस्यों का एक स्पष्ट तथा निश्चित लक्ष्य था और एक विशेष आर्थिक उद्देश्य। वह था शासनतन्त्र में भूमिपतियों की अपेक्षा पूँजीपतियों को प्रधान बनाना। वास्तव में राज्यसघ के विधान के सशोधन आन्दोलन में पूँजीपति वर्ग का ही विशेष हाथ था क्योंकि इस सविधान के अन्तर्गत उनका अहित हो रहा था। अत यह लोग चाहते थे कि सविधान को इस प्रकार सशोधित कर दिया जाये जिससे भविष्य में उनके अधिकार सुरक्षित रहें।

इस आर्थिक पृष्ठभूमि में ही हम अमेरिकी सविधान को भली भाँति समझ सकते हैं। यह सत्य है कि यह सभी व्यक्ति प्रजातन्त्रवाद का नारा लगाने वाले थे, परन्तु वे एक ऐसा प्रजातन्त्र चाहते थे जिसमें विधान द्वारा सम्पत्ति की रक्षा हो सके। सम्पत्ति अधिकार उनके मतानुसार राज्य का आधारभूत था, अत वह एक ऐसी शासन प्रणाली की व्यवस्था करना चाहते थे जिससे सामाजिक व्यवस्था, शान्ति, न्याय इत्यादि की स्थापना हो सके, प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्रता तथा सुरक्षा के फल भोग सके, अपनी इच्छानुसार धन सम्पत्ति का सचय तथा व्यय विनिमय कर सके और राज्य तथा अन्य किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह द्वारा इस स्वतन्त्रता या अधिकार उपभोग मे कोई हस्तक्षेप न हो। इसी को यह लोग सामाजिक न्याय (social justice) समझते थे। सक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि यह सभी सदस्य इस मौलिक सिद्धान्त पर सहमत थे कि राज्य का परम कर्तव्य व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करना है। यही कारण है कि जिस सविधान की रचना इस सम्मेलन द्वारा हुई उसकी अनेक धाराओं—जैसे राष्ट्रपति का निषेधाधिकार, न्यायपालिका की प्रधानता, सिनेट का अप्रत्यक्ष रीति से चुनाव इत्यादि—का एकमात्र उद्देश्य सम्पत्ति की प्रजातन्त्र के प्रहारों से रक्षा करना था। अत सविधान इन हितों और वर्गों की स्वार्थपूर्ति का एक साधन था।

परन्तु आधारभूत उद्देश्य पर सहमत होते हुए भी उनमें अनेकों विषयों पर मतभेद थे, कुछ पर तो इतने विकट कि सम्मेलन का कार्य ही सङ्कट में पड़ जाता यदि उनपर समझौता न हो पाता। सब से घोर विभेद छोटे बड़े राज्यों के मध्य था। एक ओर तो वर्जीनिया, पैन्सिल्वैन्या, न्यूयार्क तथा मैसाचुसैट (Massac-

husetts) जैसे विशाल राज्य थे और दूसरी ओर डिलावेयर, न्यू जर्सी जैसे छोटे राज्य। बड़े राज्यों के नेता थे मेडिसन तथा रैंडाल्फ। उन्होंने सम्मेलन के

(१) छोटे और बड़े राज्यों में प्रतिद्वन्द्विता

विचारार्थ एक योजना प्रस्तुत की जिसको वर्जीनिया योजना कहा जाता है। इस योजना के अन्तर्गत एक द्विसदनीय विधान-मण्डल की व्यवस्था की गई थी जिसके निचले सदन में राज्यों का प्रतिनिधित्व उनकी जन संख्या के आधार पर होगा। इसका अर्थ होता था कि वर्जीनिया और मैसाचुसेट्स जैसे राज्यों को १६ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा और डिलावेयर (Delaware) या रोड आइलैंड जैसे राज्य को केवल एक। दूसरे सदन के सम्बन्ध में भी बड़े राज्यों को ही प्रधानता दी गई थी क्योंकि यह व्यवस्था की गई थी कि उसके सदस्यों का निर्वाचन पहिले सदन द्वारा होगा। इसके अतिरिक्त एक राष्ट्रीय कार्यकारिणी और न्यायपालिका की भी व्यवस्था की गई थी। इस योजना की मूल विशेषता यह थी कि इसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को बहुत व्यापक और विस्तृत अधिकार दिये गये थे, यहाँ तक कि राज्यों के विधानमण्डल द्वारा पारित विधेयकों का निषेध करने का अधिकार भी इसको दिया गया था यदि वह किसी संघीय संविधान की धारा का उल्लंघन करते हों। इतना ही नहीं, केन्द्रीय सरकार किसी राज्य का कर्तव्य पालन को बाध्य करने के लिये सैनिक शक्ति का भी प्रयोग कर सकती थी।

न्यू जर्सी योजना—छोटे राज्यों के लिये यह स्वाभाविक ही था कि वह वर्जीनिया योजना का उत्कट विरोध करते अतः पैटरसन नामक उनके एक प्रतिनिधि ने जो कि न्यू जर्सी का निवासी था १५ जून को एक नयी योजना उपस्थित की जिसको न्यू जर्सी योजना कहा जाता है। इसमें अधिकतर छोटे राज्यों के मत व्यक्त थे और उन्हीं के हितों की रक्षा करने का प्रयास किया गया था। इसके अन्तर्गत एक व्यवस्थापिका सभा की व्यवस्था की गई जिसमें प्रत्येक राज्य को चाहे वह छोटा हो या बड़ा समान अधिकार दिये गए थे। संसद को आयात पर कर लगाने, वाणिज्य तथा व्यापार को नियमित करने तथा राज्यों से कर वसूल करने का अधिकार दिया गया था। इसके अनुसार राष्ट्रीय कार्यकारिणी शक्ति विधान सभा द्वारा निर्वाचित एक परिषद (Council) को दी गई थी और एक राष्ट्रीय न्यायपालिका की भी व्यवस्था की गई थी। न्यू जर्सी योजना की सब से महत्वपूर्ण धारा यह थी कि विधान सभा द्वारा बनाये गये सब क़ानून एवम् राष्ट्रीय सरकार द्वारा की गई सब सन्धियाँ समस्त देश पर लागू होंगी। इस प्रकार इस योजना में राज्यों के अधिकार तथा राष्ट्रीय एकता के मध्य सन्तुलन स्थापित करने का प्रयोजन किया गया था।

कनैक्टीकट समझौता—सदन में बड़े तथा छोटे राज्यों के मध्य, व्यापारिक

तथा कृषिक राज्यों के मध्य, दास रखने वाले राज्यों तथा उन राज्यों के मध्य जिनमें दास न थे भारी मतभेद उत्पन्न हो गये थे। कभी कभी तो ऐसा प्रतीत होता था कि इन मतभेदों में समन्वय करना असम्भव है, और यह सम्मेलन संविधान रचना के कार्य में असफल रहेगा। परन्तु वाशिंगटन के सुयोग्य सभापतित्व और अन्य प्रतिनिधियों के व्यवहारिक दृष्टिकोण ने इस सम्मेलन में गतिरोध पैदा होने से बचा लिया और बहुत गरमागर्मी व वादविवाद के पश्चात् प्रसिद्ध कनैक्टीकट समझौता (Connecticut compromise) सम्भव हो पाया। इसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि ऊपरी सदन (Upper House) में प्रत्येक राज्य का समान प्रतिनिधित्व होगा और निचले भवन में राज्यों का प्रतिनिधित्व उनकी जनसंख्या के आधार पर होगा। प्रत्येक राज्य के हित की सुरक्षा के लिये यह व्यवस्था की गई कि ऊपरी भवन के सदस्य राज्यों की विधान सभाओं द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे। यह धारा इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई कि राज्यों ने भी दो भवनात्मक व्यवस्थापिका प्रणाली को अपने संविधानों में ग्रहण किया।

(२) दासों का प्रतिनिधित्व

एक और टेढ़ा प्रश्न जिसके ऊपर सम्मेलन में बहुत वादविवाद हुआ यह था कि राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या को निश्चित करने में दासों की गणना कैसे की जाये अर्थात् दासों का क्या स्थान हो। दक्षिणी राज्यों ने, जहाँ दासों की संख्या अधिक थी, कांग्रेस में अपने प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाने के लिये यह सुझाव रखा कि दासों को भी समान मताधिकार प्रदान किया जाये। इसके विपरीत उत्तरी तथा मध्यस्त राज्य जहाँ दासों की संख्या बहुत कम थी यह चाहते थे कि दासों को मताधिकार बिल्कुल न दिया जाये। अन्त में जो समझौता हुआ उसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि मतदान के सम्बन्ध म एक दास का मूल्य एक व्यक्ति के ३।५ के बराबर लगाया जाये अर्थात पाँच दस तीन नागरिकों के बराबर समझे जायेंगे। इसक साथ साथ यह भी निश्चित हुआ कि इसी आधार पर विधान सभा द्वारा लगाये हुये कर भी विभाजित किये जायें।

(३) व्यापार वाणिज्य नियमन

इसी प्रकार व्यापारिक उत्तरी राज्यों तथा कृषिक दक्षिणी राज्यों के बीच इस सम्बन्ध में भारी मतभेद था कि केन्द्रीय सरकार को वाणिज्य तथा व्यापार नियमित करने के सम्बन्ध में क्या अधिकार दिये जायें। स्वभावतः उत्तरी राज्य चाहते थे कि इस क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार के अधिकार व्यापक और विस्तृत हों। दक्षिणी राज्यों को यह भय था कि कहीं कांग्रेस उनके निर्यात पर कर लगा कर और अन्य प्रकार से उनके विरुद्ध पक्षपात करके उनके हितों को क्षति न पहुँचाने लगे, अत व्यापार नियम क सम्बध में वह कांग्रेस के अधिकार को सीमित करना चाहते थे। इस झगड़े

को निपटाने के लिये यह तय पाया कि अन्तर-राज्य तथा विदेशी व्यापार पर कांग्रेस का पूर्ण नियंत्रण हो परन्तु राज्यों के आन्तरिक व्यापार पर स्वयं राज्यों का ही अधिपत्य हो। इसके साथ साथ दक्षिणी राज्यों को सन्तुष्ट करने के लिये यह भी निश्चित हुआ कि कांग्रेस को निर्यात कर लगाने का अधिकार न होगा अर्थात वह केवल आयात कर लगा सकेगी।

(४) दास व्यापार

दास व्यापार के प्रश्न पर भी राज्यों के मध्य मतभेद था। उत्तरी राज्य इस व्यापार को तुरन्त बन्द कर देना चाहते थे किन्तु जार्जिया, कैरोलाइन तथा वर्जीनिया ने इसका विरोध किया क्योंकि उनका आर्थिक विकास दासों के आयात पर निर्भर करता था। अन्त में यह निश्चित हुआ कि राष्ट्रीय सरकार १८०८ ई० के पूर्व इस विषय में कोई हस्तक्षेप न करेगी।

(५) कार्यकारिणी

इसी प्रकार कार्यकारिणी के स्वरूप, उसकी निर्वाचन पद्धति, उसके अधिकार इत्यादि के सम्बन्ध में भी घोर मतभेद था। अन्त में सदस्यों ने यह तय किया कि कार्यकारिणी के प्रधान पदाधिकारी का नाम राष्ट्रपति रखा जाए, उसका निर्वाचन जनता द्वारा निर्वाचित निर्वाचक मंडल की अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली द्वारा हो, उसकी पदावधि चार वर्ष हो और उसके पुनः निर्वाचन पर कोई प्रतिबन्ध न हो। औपनिवेशिक गवर्नरों के निरंकुश शासन की बुराइयों से बचने के लिए सम्मेलन में यह भी निश्चित हुआ कि राष्ट्रपति के अधिकारों पर उचित प्रतिबन्ध लगाए जायें।

(६) राष्ट्रीय न्यायपालिका

न्यायपालिका के सम्बन्ध में भी अनेक प्रकार के तर्क वितर्क हुए। कुछ प्रतिनिधियों का तो यहाँ तक विचार था कि केन्द्रीय न्यायालयों की कोई आवश्यकता नहीं परन्तु अधिकतर सदस्य एक संघात्मक उच्चतम न्यायालय के पक्ष में थे यद्यपि वह यह अवश्य चाहते थे कि उसका अधिकार क्षेत्र सीमित हो। अतः एक सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई और उसका कार्यक्षेत्र संघीय मामलों, विभिन्न राज्यों के पारस्परिक झगड़ों तथा नागरिकता सम्बन्धी मुकदमों को तय करने तक सीमित कर दिया गया। इसके साथ साथ यह भी निश्चित हुआ कि संघीय कांग्रेस को कुछ अन्य निम्न श्रेणी के न्यायालयों को स्थापित करने का भी अधिकार दिया जाय।

(७) कुछ अन्य विवादग्रस्त प्रश्न

इसी प्रकार अनेक विवादग्रस्त प्रश्न उठे परन्तु सब पर समझौता हो गया। उदाहरणार्थ सिनेट के सदस्यों की निर्वाचन पद्धति, कांग्रेस के अधिकारों का प्रश्न, नए राज्यों के अंगीकार (admission) करने की रीति, राज्यों की सेनाओं पर राष्ट्रीय सरकार के नियंत्रण का प्रश्न, संविधान के संशोधन की पद्धति आदि विषयों पर मतभेदों को समझौते

द्वारा ही दूर किया जा सका। जिस भावना से सम्मेलन के सदस्यों ने प्रत्येक जटिल एवम विवादग्रस्त प्रश्न पर समझौता कर संविधान निर्माण का कार्य सम्पन्न किया वह वास्तव में सराहनीय है।

सम्मेलन का कार्य १७ सितम्बर को समाप्त हुआ। इस प्रकार पूरे ११६ दिन तक निरन्तर तर्क वितर्क और वाद विवाद के पश्चात संविधान का प्रारुप तैयार हो गया और १७ सितम्बर, १७८७ को १२ राज्यों के ३६ प्रतिनिधियों ने इस पर अपने अपने हस्ताक्षर कर इसको अन्तिम रूप प्रदान किया।

संविधान का पारित और लागू होना

परन्तु प्रस्तावित संविधान की वास्तविक परीक्षा का समय तो अब आया जबकि २८ सितम्बर को विभिन्न राज्यों को उनकी विधानसभाओं की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए भेजा गया। वास्तव में सम्मेलन अपने आदेश की परिधि से आगे बढ़ गया था और राज्यसंघ के संविधान में संशोधन न करके उसने एक बिल्कुल ही नयी शासन प्रणाली की रचना कर दी थी। न्यू इंगलैंड से लेकर जार्जिया तक समस्त देश में एक हलचल मच गई और संविधान पर नाना प्रकार के तर्क-वितर्क तथा टीका टिप्पणी होने लगी। बहुत से लोगों ने इसकी भरपूर प्रशंसा की और बहुतों ने कटु आलोचना, कुछ ने इसकी केन्द्रकारी प्रवृत्ति पर प्रहार किया तो कुछ ने इसमें आवश्यक केन्द्रीकरण का अभाव बताया, कुछ को इसमें व्यक्ति के मूल अधिकार पत्र (Bill of Rights) का अभाव खटका और कुछ ने कांग्रेस के व्यापार सम्बन्धी अधिकारों की आलोचना की। ऐसे वातावरण म हैमिल्टन, मैडिसन तथा जे (Jay) ने अपनी प्रभावशाली लेखनी द्वारा बड़े बड़े प्रसिद्ध समाचार पत्रों में संविधान के समर्थन में लेख लिखने प्रारम्भ किए ताकि जनसाधारण प्रस्तावित्त संविधान के गुणों को समझ सके और इसको जनता का अनुमोदन प्राप्त हो सके। इस प्रकार एक साहित्यिक संघर्ष आरम्भ हो गया। संविधान के समर्थन में जो लेख लिखे गए थे उनका संग्रहण फैडरलिस्ट के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी अमेरिकी वैधानिक साहित्य में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

यह प्रयास निष्फल न रहे। इनका यह प्रभाव हुआ कि एक के पश्चात् दूसरे राज्य ने संविधान को स्वीकार करना आरम्भ कर दिया। डिलावेयर ने ७ दिसम्बर १७८७ को, कनैक्टीकट ने १२ दिसम्बर को, न्यू जर्सी ने १८ दिसम्बर को तथा जार्जिया ने २ जनवरी १७८८ ई० को इस संविधान को स्वीकृति प्रदान की। अन्य राज्यों म भी इसके लिए संघर्ष होता रहा और जून १७८८ में जब न्यू हैम्शायर ने इसे स्वीकार कर लिया तो संविधान लागू होने के योग्य हो गया क्योंकि इसे आवश्यक ६ राज्यों की स्वीकृति प्राप्त हो गई, परन्तु वर्जीनिया तथा न्यू यार्क

ने अब भी इसे स्वीकार नहीं किया था और उनके बिना संघ की स्थापना हास्य-जनक सी होती। अन्त में काफी संघर्ष के उपरान्त वर्जीनिया ने २५ जून को और एक मास के पश्चात न्यू यार्क ने भी संविधान को पारित कर दिया। अब केवल नार्थ कैरोलिना और रोडदीप ही रह गए किन्तु संविधान को कार्यान्वित होने से नहीं रोका गया। १३ सितम्बर १७८८ ई० को अमेरिकी राज्य संघ की कांग्रेस ने राज्यों को राष्ट्रपति के निर्वाचकों, सिनेट के सदस्यों तथा हाउस के प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने का आदेश दिया। न्यू यार्क अस्थायी रूप से राष्ट्रीय सरकार की राजधानी चुन लिया गया। २ अप्रैल १७८९ ई० को नए संविधान के अन्तर्गत पहिले प्रतिनिधि सभा का संगठन किया गया। तीन दिन पश्चात् सिनेट का जन्म हुआ और ३० अप्रैल १७८९ को जनरल वाशिंगटन ने राष्ट्रपति पद की शपथ ली। इस प्रकार ३० अप्रैल १७८९ को नए संविधान के अन्तर्गत संयुक्त राज्य की राष्ट्रीय सरकार का उद्घाटन हुआ।

संविधान का विकास

१७८९ में अमेरिकी संविधान की जो रूप रेखा तैयार की गई थी उसको लागू हुये आज १७० वर्ष हो गये हैं। इस काल में जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे नयी परिस्थितियों तथा आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के अनुसार संविधान में भी निरन्तर परिवर्तन होते गये। इसकी अनेकों धाराओं की व्याख्या तथा विवेचना की गई और अनेकों का संशोधन तथा स्पष्टीकरण किया गया। आज जब हम अमेरिकी संविधान की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य केवल उस संविधान पत्र से ही नहीं होता जिसकी रचना १७८७ में फिलाडेल्फिया सम्मेलन ने की थी वरन् हमारा तात्पर्य (१) उन २२ संशोधनों से भी होता है जो कि समय समय पर मूल संविधान में किये गये, (२) उन निर्णयों से भी होता है जिनके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय ने इसकी विभिन्न धाराओं की व्याख्या की, (३) उन कानूनों से भी होता है जो कि संविधान की धाराओं तथा इसके संशोधनों को कार्यान्वित करने के लिये कांग्रेस द्वारा पारित किये गये, (४) उन परम्पराओं तथा प्रथाओं से भी होता है जो इन इन संयुक्त राज्य की संवैधानिक संस्थाओं के इर्द गिर्द विकसित होती रहीं और (५) अन्त में रेडियो, टेलीविजन, इत्यादि उन वैज्ञानिक आविष्कारों एवं औद्योगिक परिवर्तनों से भी होता है जिन्होंने अनेक राजनैतिक संस्थाओं को एक नया रूप प्रदान किया, उनके कार्यों में परिवर्तन किये और उनके प्रभाव को बढ़ाया। मूल संविधान इन सब के द्वारा विकसित हुआ है। वास्तव में यदि आज हम उस संविधान को पढ़ें जिसका निर्माण १७८७ में हुआ था और जिसमें केवल ७ धारायें हैं तो सम्भवतः हम अमेरिकी शासन प्रणाली का

पूर्ण और सही ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ रहेंगे। अत अब हम उन सब पद्धतियों का अध्ययन करेंगे जिनके द्वारा अमेरिकी संविधान आजतक विकसित हुआ है।

संविधान के निमाता यह बात समझते थे कि एक प्रगतिशील समाज की आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिये संविधान में समय समय पर परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन करने आवश्यक होंगे। अर्थात उन्होंने संविधान में संशोधन होने की भी कल्पना की थी और उसके लिये पाचवें अनुच्छेद में उपयुक्त व्यवस्था भी कर दी थी। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि "कांग्रेस, जब कभी इसने दोनों सदन दो तिहाई बहुमत से आवश्यक समझें, संविधान म संशोधन प्रस्तुत कर सकेगी या दो तिहाई राज्यों के विधान मण्डलों की प्रार्थना पर संशोधन करने के लिये एक कन्वेन्शन आमन्त्रित करेगी। उक्त दोनों अवस्थाओं में प्रस्तुत संशोधन यदि तीन चौथाई राज्यों के विधान मण्डलों या तीन चौथाई राज्यों के कन्वेन्शनों द्वारा, दोनों में से जिस किसी ढग को कांग्रेस स्वीकार करे, सपुष्ट कर दिये जायेंगे तो वह इस संविधान के वैध अग बन जायेंगे। परन्तु किसी राज्य को उसकी सहमति के बिना सिनेट में मताधिकार की समानता से वञ्चित न किया जा सकेगा"।

संवैधानिक संशोधन

इस प्रकार संविधान संशोधन की कार्यवाही दो भागों में विभक्त की जा सकती है (१) संशोधन की प्रस्तावना, (२) संशोधन की सपुष्टि। दोनों भागों की दो दो पद्धतियां हैं, परन्तु यह उल्लेखनीय है कि अब तक संविधान में जितने संशोधन किये गये हैं वे एक ही पद्धति से अर्थात् कांग्रेस के दोनों सदनों के संयुक्त प्रस्ताव द्वारा प्रस्तावित किये गये हैं। २१ वें संशोधन के अतिरिक्त वे सब एक ही पद्धति अर्थात तीन चौथाई राज्यों की धारा सभाओं द्वारा पारित हुए हैं, केवल २१ वें संशोधन की सपुष्टि के लिये राज्यों में कन्वेन्शन बुलाये जाने का आदेश दिया गया था। पिछले अनेक वर्षों में संविधान की संशोधन पद्धति के विषय पर बहुत से विवाद ग्रस्त प्रश्न पैदा हुये परन्तु सौभाग्यवश उनका न्यायालयों द्वारा सन्तोषजनक उत्तर मिल गया। उदाहरणार्थ १९२० में यह निर्णय किया गया कि सदन के दो तिहाई बहुमत का अर्थ समस्त सदस्यों के दो तिहाई मत से है। इससे पूर्व न्यायालयों द्वारा यह निश्चित हो चुका था कि यदि कोई संशोधन विधेयक कांग्रेस और राज्यों द्वारा पारित हो जाये तो राष्ट्रपति उसे निषेध नहीं कर सकता। एक अन्य प्रश्न जिसका स्पष्टीकरण किया गया वह यह था कि एक संशोधन प्रस्ताव को राज्य संपुष्टि करने के लिये कब तक अधिकृत हैं। संविधान की धारा में तो केवल इतना ही कहा गया था कि जब तक तीन चौथाई राज्य उस प्रस्ताव को पारित न कर दें वह संविधान का अग नहीं हो सकता। किसी इस प्रकार के संशोधन प्रस्ताव के कालातीत (lapse) होने के सबध में कुछ

नहीं कहा गया था। १८६६ म ओहियो (Ohio) राज्य की व्यवस्थापिका सभा ने एक ८० वर्ष पुराने संशोधन को संपुष्ट कर एक विचित्र समस्या खड़ी कर दी परन्तु १८ वें संशोधन के समय से कांग्रेस ने संशोधन प्रस्ताव की संपुष्टि के सम्बन्ध में निश्चित अवधि निर्धारित करनी आरम्भ कर दी और १८ वें, २० वें, २१ वें और २२ वें संशोधनों में कांग्रेस ने एक धारा के अन्तर्गत यह निश्चित किया कि यदि ये ७ वर्ष के भीतर पारित न हुये तो कालातीत हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त कोलमैन बनाम मिलर में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय किया कि यदि संशोधन करने के समय कांग्रेस कोई अवधि निर्धारित न करे तो ऐसे संशोधन का कांग्रेस राज्यों द्वारा पारित होने से पूर्व किसी भी समय कालातीत घोषित कर सकती है। परन्तु कोई राज्य किसी संशोधन प्रस्ताव को एक बार संपुष्ट कर देने के पश्चात् किसी दशा में भी अपने निर्णय का अपलन्डन नहीं कर सकेगा। इसके विपरीत किसी राज्य द्वारा एक संशोधन विधेयक एक बार अस्वीकृत होने पर भी उसपर पुनर्विचार किया जा सकता है और उसके इस प्रकार पारित होने पर कोई रोक टोक नहीं है।

अन्त में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी निर्णय किया कि संविधान द्वारा निर्धारित संशोधन पद्धति में कोई परिवर्तन संवैधानिक रीति के बाहर नहीं किया जा सकता। १९१८ में ओहियो राज्य ने अपने संविधान में संशोधन कर निश्चित किया कि विधान सभा द्वारा पारित होने के उपरान्त संशोधन विधेयक पर जनमत संग्रह (referendum) द्वारा मान्यता प्राप्त करना भी आवश्यक है परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने इस व्यवस्था को अवैध घोषित कर दिया और बताया कि संशोधन प्रस्ताव की संपुष्टि केवल उन पद्धतियों द्वारा ही हो सकती है जिनकी संविधान में व्यवस्था की गई है, किसी अन्य तीसरी पद्धति द्वारा नहीं जैसा कि ओहियो राज्य ने करने का प्रयत्न किया था।

बहुधा यह आरोप लगाया जाता है कि अमेरिकी संविधान की संशोधन पद्धति अप्रजातांत्रिक, विलम्बकारी, कठिन एवं जटिल है। ऐसे आलोचकों का यह तर्क है कि (१) अमेरिका में यदि ३७ राज्य अथवा ९० प्रतिशत जनसंख्या किसी संशोधन विधेयक को पारित करना चाहें तो १३ राज्य जिनकी कुल जनसंख्या केवल १० प्रतिशत हो ऐसी योजना को असफल कर सकते हैं। (२) संशोधन की समस्त कार्यवाही में समय बहुत लगता है और अन्त में बहुत कम संशोधन पारित हो पाते हैं।

(क) २२ संशोधन

१७८९ से आजतक कांग्रेस में लगभग ३००० संशोधन प्रस्ताव उपस्थित किये गये जिसमें से केवल २७ पारित हुए और उनमें से भी केवल २२ राज्यों द्वारा स्वीकार हो सके।

प्रथम १० संशोधन—२२ संशोधनों में से प्राथमिक १० तो संविधान निर्माण के केवल २ वर्ष उपरान्त ही अपना लिये गये थे। इसका कारण यह था कि संविधान में कोई मूलाधिकार पत्र न था अतः जून १७८९ ई० में मैडिसन ने इस कमी की पूर्ति के लिये बहुत से प्रस्ताव प्रस्तुत किये जिनमें से केवल १७ प्रतिनिधि सभा द्वारा पास हो सके और उनमें से केवल १२ को सिनेट ने स्वीकार किया। इन बारह में से भी केवल १० को राज्यों ने स्वीकृति प्रदान की। प्रायः इन १० संशोधनों को केवल एक संशोधन माना जाता है क्योंकि इन सभी का सबंध नागरिकों के मूल अधिकार से है। आठ संशोधनों में कुछ व्यक्तिगत एवम् साम्पत्तिक अधिकारों को सुरक्षित किया गया है और इनको सामूहिक रूप से मूलाधिकार पत्र (Bill of Rights) भी कहा जा सकता है। नवें संशोधन द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि आठ संशोधनों में मौलिक अधिकारों की गणना करने का यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि जनता ने शेष अधिकारों का परित्याग कर दिया है। वास्तव में शेष अधिकार जनता में निहित हैं और उनकी किसी प्रकार भी अप्रतिष्ठा नहीं की जा सकती। दसवें संशोधन का उद्देश्य राज्यों के अधिकारों की रक्षा करना था और उसके अन्तर्गत यह घोषित किया गया कि वे अधिकार जो संविधान द्वारा केन्द्र को नहीं दिये गये हैं और न ही राज्यों के लिये वर्जित किये गये हैं वे राज्यों के अथवा जनता के अधिकार माने जायेंगे।

११ वां और १२ वां संशोधन—संविधान को लागू करने में आरम्भ में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनको दूर करने के उद्देश्य से ११ वां और १२ वां संशोधन किया गया था। चिशम (Chisholm) और जार्जिया के मामले में १७९३ में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय किया कि एक राज्य पर दूसरे राज्य का नागरिक मुकदमा चला सकता है। राज्यों को यह व्यवस्था असहनीय लगी। अतः इस स्थिति में सुधार करने के निमित्त ११ वां संशोधन प्रस्तुत किया गया जो १७९८ में संविधान का अंग बन गया। इस संशोधन में कहा गया है कि "संयुक्त राज्य अमेरिका का न्यायाधिकार विधि और न्याय-सिद्धान्त (equity) के उन मुकदमों पर लागू नहीं होगा जो एक राज्य के नागरिकों द्वारा दूसरे राज्य के विरुद्ध या किसी विदेशी राज्य के नागरिकों या प्रजा द्वारा संयुक्त राज्य के किसी सदस्य राज्य के विरुद्ध चलाए गए हों"।

१२ वां संशोधन—सन् १८०० में जेफरसन और बर्र (Burr) को राष्ट्रपति पद के लिये समान मत प्राप्त होने से बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई और आवश्यकता अनुभव हुई कि राष्ट्रपति की चुनाव प्रणाली में संशोधन किया जाय। बारहवें संशोधन का जिसकी १८०४ में पुष्टि की गई यही उद्देश्य था। इस संशो-

धन द्वारा यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति पद के लिये पृथक मतदान द्वारा निर्वाचन हुआ करेगा।

१३ वां, १४ वां और १५ वां संशोधन—तीन और संशोधन स्वीकार किये गये। इन्हें बहुधा गृह युद्ध जनित संशोधन (civil war amendments) कहा जाता है क्योंकि इनको गृह युद्ध—नीग्रो दासों की मुक्ति—के परिणामस्वरूप ही अपनाया गया था। यह १८६५ और १८७० के बीच स्वीकार किये गये थे। इनका उद्देश्य हाल ही स्वतंत्र हुए नीग्रो दासों के अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या करना और उनकी रक्षा करना था। इस प्रकार १३ वें संशोधन द्वारा दासता और बलात्-बन्धन को निषेध कर दिया गया। १४वें संशोधन (१८६८) द्वारा (१) नीग्रो जाति का नागरिकता की सब उन्मुक्तियाँ तथा विशेषाधिकार प्रदान किये गये, (२) नागरिक अधिकारों की सुरक्षा के निमित्त राज्यों पर कुछ नये महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध लगाये गये, और (३) २१ वर्षीय संयुक्त राज्य के पुरुष नागरिकों को, केवल विद्रोही या अन्य अपराधों में दण्डित व्यक्तियों को छोड़कर, मतदान से वंचित करने वाले राज्य को दण्डित करने की व्यवस्था की गई। इस संशोधन में पूरे विधान की सबसे अधिक विवादग्रस्त दो उपधाराएँ हैं (अ) कोई राज्य किसी व्यक्ति को बिना विधानानुकूल कार्यवाही के जीवन, सम्पत्ति या स्वतंत्रता से वंचित न कर सकेगा और (ब) अपने क्षेत्राधिकार में रहने वाले व्यक्ति को विधि के समान संरक्षण से वंचित न कर सकेगा। इनमें से पहली उपधारा को कार्पोरेशनों ने राज्य के नियमन प्रयासों (regulations) के विरुद्ध प्रयुक्त किया और इसने उत्कट आलोचना तथा विवाद को जन्म दिया।

१८७० में १५ वां संशोधन स्वीकार किया गया परन्तु इसकी व्यवहार में सदा उपेक्षा की गई। इस संशोधन में कहा गया है कि संघीय सरकार या कोई राज्य नागरिकों के मतदान के अधिकार को जाति, रंग या पूर्ववर्ती दासत्व के आधार पर अपहृत या न्यून नहीं कर सकेगा।

१६ वां संशोधन—शासन प्रणाली में अगले ४३ वर्ष तक किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया परन्तु इस बीच राष्ट्र का व्यापक विकास हो जाने से राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति में और साथ ही दृष्टिकोणों में महान परिवर्तन हो गये थे। अतः अगली दो दशाब्दियों (१९१३-३३) में नयी परिस्थितियों के उपयुक्त बनाने के लिए संविधान में ६ संशोधन करने पड़े। इस प्रकार १६ वें संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई कि कांग्रेस को बिना विभिन्न राज्यों में विभाजित किये या बिना किसी जन गणना पर ध्यान दिये किसी भी स्रोत से प्राप्त आय पर कर लगाने तथा उसको वसूल करने का अधिकार होगा।

इस संशोधन की आवश्यकता इसलिये पड़ी क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने

अपने एक निर्णय द्वारा आय-कर कानून को रद्द कर दिया था और तर्क यह दिया था कि चूँकि आय कर प्रत्यक्ष कर है इसलिए इसका विभिन्न राज्यों में जनसंख्या के आधार पर वितरण होना चाहिये। १६ वाँ संशोधन १९१३ में इस स्थिति का प्रतिशोधन करने के उद्देश्य से स्वीकार किया गया।

१७ वाँ संशोधन—लोकतन्त्र की भावना की उत्तरोत्तर प्रगति के कारण सिनेटरों का अप्रत्यक्ष चुनाव असहनीय होने लगा इसलिये १९१३ में १७ वा संशोधन स्वीकार किया गया। इसके द्वारा सिनेटरों के प्रत्यक्ष सार्वजनिक चुनाव की व्यवस्था की गई और इस प्रकार काँग्रेस के द्वितीय सदन को भी पूर्णतया लोकतन्त्री आधार प्रदान किया गया।

१८ वाँ संशोधन—१८ वाँ संशोधन १९१९ में लागू किया गया। इसके द्वारा संयुक्त राज्य या उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत समस्त देश में मादक पदार्थों के निर्माण, विक्रय और स्थानान्तरण (आयात अथवा निर्यात) को निषिद्ध घोषित कर मानव स्वभाव को नियन्त्रित करने का अद्भुत प्रयोग किया गया। परन्तु यह प्रयोग सफल न हो सका क्योंकि संविधान द्वारा राष्ट्रव्यापी आधार पर मादक पदार्थों का निषेध राष्ट्र को स्वीकार न हो सका और १९३३ में एक और संशोधन (२१ वाँ संशोधन) करना पड़ा जिसके द्वारा स्पष्ट शब्दों में १८ वाँ संशोधन रद्द कर दिया गया।

१९ वाँ संशोधन—यह संशोधन १९२० में स्वीकार किया [illegible] द्वारा महिलाओं के साथ मताधिकार के सम्बन्ध में जो भेदभाव [illegible] वह निषेध कर दिया गया। इसमें कहा गया कि संयुक्त राज्य [illegible] राज्य संयुक्त राज्य के नागरिकों के मतदान के अधिकार को [illegible] अपहृत या न्यून नहीं कर सकेगा। इस प्रकार एक ही [illegible] मतदाताओं की संख्या दो गुनी हो गई।

२० वाँ संशोधन—यह संशोधन १९३३ में [illegible] असुविधाजनक व्यवस्थाओं को दूर करने के [illegible] था। [illegible] यह थी कि नवम्बर में निर्वाचित राष्ट्रपति [illegible] था, उसी समय निर्वाचित कांग्रेस भी [illegible] कार्य आरंभ नहीं कर पाती थी और [illegible] तो इसकी बैठक हो ही नहीं [illegible] निर्वाचन के बाद भी, पुरानी [illegible] सदस्य होते थे जो नयी [illegible] काँग्रेस का दिसम्बर से [illegible] जो अधिवेशन [illegible]

लेम-डक अधिवेशन पड़ गया था। इन सब दोषों को दूर करने के उद्देश्य से ही २० वाँ संशोधन प्रस्तुत किया गया। इस संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति के कार्य-काल की समाप्ति की तिथि ४ मार्च से घटाकर २० जनवरी कर दी गई। २० जनवरी से ही अब नये राष्ट्रपति का कार्यकाल आरंभ होता है। इसके साथ ही सिनेटरों तथा प्रतिनिधियों के चुनाव और नयी कांग्रेस के कार्य आरम्भ करने के बीच की लम्बी अवधि भी १३ महीने से घटाकर २ महीने कर दी गई। अब नयी कांग्रेस नवम्बर में चुनाव के पश्चात् जनवरी में ही अपना अधिवेशन आरम्भ कर देती है।

२१ वाँ संशोधन—जैसा पहिले कहा जा चुका है २१ वाँ संशोधन १८ वाँ संशोधन रद्द करने के उद्देश्य से स्वीकार किया गया। परन्तु "संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्गत किसी राज्य में या अधीनस्थ किसी प्रदेश में सम्बन्धित कानूनों के विरुद्ध मादक पदार्थों का हस्तान्तरित करने या प्रयोग के लिये यातायात या बाहर से आयात" निषेध किया गया। इस संशोधन का राज्यों द्वारा संपुष्टि के लिये सम्मेलनों (Conventions) की व्यवस्था की गई थी।

२२ वाँ संशोधन—आरम्भ से अमेरिका में यह परम्परा स्थापित हो गई थी कि कोई भी व्यक्ति दो से अधिक बार राष्ट्रपति नहीं बन सकता, परन्तु राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के चौथी बार भी राष्ट्रपति चुने जाने से यह परम्परा टूट गई। इससे भविष्य के प्रति आशंका पैदा हो गइ और मार्च १९४७ में एक संशोधन प्रस्तुत किया गया जिसके द्वारा पुरानी परम्परा को कानूनी रूप देने की व्यवस्था की गई। इस प्रकार फरवरी १९५१ में २२ वाँ संशोधन संविधान में सम्मिलित कर लिया गया। इस संशोधन में यह व्यवस्था की गइ कि कोइ भी व्यक्ति दो से अधिक बार राष्ट्रपति पद पर नहीं चुना जा सकेगा। जिस किसी व्यक्ति ने किसी अन्य निर्वाचित राष्ट्रपति के स्थान पर दो वर्ष से अधिक समय तक राष्ट्रपति के रूप में काम किया है वह एक से अधिक बार राष्ट्रपति पद पर नहीं चुना जा सकेगा।

संशोधनों के लाभ—यह सत्य है कि इन बाईस संशोधनों से संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ, परन्तु निःसन्देह इससे राष्ट्रीय सरिचालन का व्यापार में जिन अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता उनको दूर किया जा सका। इसके अतिरिक्त राज्यों पर प्रतिबन्ध लगाकर इन संशोधनों ने संयुक्त राज्य को एक राष्ट्रीय एकरूपता प्रदान करने में, उसकी एकता को दृढ़ करने में और उसको प्रधानता देने में विशेष योगदान दिया और इस अर्थ में इनकी राष्ट्रीकरण की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है।

परन्तु साथ ही साथ यह भी स्मरणीय है कि अमेरिका की शासन प्रणाली

में जो महान् और महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं, जैसे राष्ट्रपति रूजवेल्ट के राष्ट्रीय पुन निर्माण के कार्यक्रम को लागू करने से सम्बन्धित संघीय सरकार के अधिकारों का जो उल्लेखनीय प्रसार हुआ और विशेषकर युद्धोत्तर काल की दशाब्दियों में राष्ट्रीय अधिकारों और कार्यों का जो असाधारण विकास हुआ है वह राष्ट्र के लिखित संविधान में किसी प्रकार का परिवर्तन किए बिना ही हो गया। इसके स्पष्टीकरण के लिए हमें उन अन्य अनेक साधनों की ओर ध्यान देना होगा जिनके द्वारा नयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अमेरिकी संविधान का विस्तार एवम् प्रसार हुआ। इनमें से एक साधन न्यायालयों के निर्णय हैं। अन्य साधनों में कानून, रीति रिवाज, प्रथाएँ और परम्पराएँ हैं।

अमेरिकी संविधान के विकास का बहुत कुछ श्रेय न्यायालयों को है जिन्होंने इसकी समय समय पर व्याख्या की है। कानूनी तौर पर संविधान देश का सर्वोच्च कानून है और प्रत्येक राज्य के न्यायाधीश उससे बाध्य हैं। १८०३ में मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने मारबरी बनाम मैडिसन के मामले में अपना ऐतिहासिक निर्णय दिया जिसमें उन्होंने एक सिद्धांत स्थापित किया जिसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय संविधान का अभिभावक बन गया और उसे कांग्रेस द्वारा बनाए कानूनों की वैध्यता के प्रश्न पर निर्णय देने का और मूल संविधान की व्यवस्थाओं की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त हो गया। मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने सर्वोच्च न्यायालय की इस स्थिति का लाभ उठा कर निहित अधिकारों के प्रसिद्ध सिद्धांत (Doctrine of implied powers) को जन्म दिया। यह सिद्धांत संविधान के विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रभावशाली साधन सिद्ध हुआ। कालान्तर में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मूल संविधान क प्राय सभी भागों से सम्बन्धित प्रश्न प्रस्तुत हुए जिन पर अपना निर्णय देकर उसे प्रति वर्ष सैकड़ों ऐसे अवसर मिलते रहे हैं जिनमें अपने अनुभवों, चिन्तन एवम् वातावरण के आधार पर उसने यह निर्धारित किया कि संविधान की अमुक विवादग्रस्त धारा का क्या अर्थ है। ऑग और रे ने लिखा है कि इस प्रकार से संविधान के प्रसार की कोई सीमा निर्धारित कर सकना कठिन है। संविधान के किसी भी विवादग्रस्त अंश की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है जिससे उसका सार अथवा अर्थ ही बिल्कुल बदल जाय। अगली बार फिर जब कोई और इसी प्रसङ्ग की समस्या सामने आए तो इस व्याख्या के आधार पर उसका आगे और विस्तार किया जा सकता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया चलती रहती है, विकास की रेखा एक के बाद दूसरे निर्णय के आधार पर आगे खिंचती जाती है और अंत में पहुँचकर यह पता चलता है कि जो व्याख्या सर्वप्रथम की गई थी वह अब बहुत आगे बढ़ चुकी है। कांग्रेस के सूचीबद्ध १८ अधिकारों के

(ख) न्यायालयों का निर्णय

अतिरिक्त प्रायः सभी महत्वपूर्ण निहित अधिकारों का स्रोत इसी प्रक्रिया में मिलता है और इसी कारण सर्वोच्च न्यायालय को "अटूट सवैधानिक कन्वेंशन" कहा गया है जो संविधान की व्याख्या कर निरन्तर उसका विकास तथा प्रसार करता रहता है। उदाहरण के लिए,जिस धारा के अन्तर्गत कांग्रेस को अन्तर-राज्य और विदेशी व्यापार को नियमित करने का अधिकार दिया गया है उससे सम्बन्धित सर्वोच्च न्यायालय को सैकड़ों बातों पर अपना निर्णय देना पड़ा। और चूँकि बहुत कुछ अंशों में सर्वोच्च न्यायालय अपने पूर्व प्रदर्शनों (Precedents) का अनुसरण करता है इसलिए इसके निर्णयों के अटूट क्रम से संविधान का विकास और प्रसार होता रहता है।

संविधान अपने मूल रूप में विभिन्न सामान्य धाराओं का संग्रह मात्र है। व्यवहारिक क्षेत्र में इसमें हर पग पर यह आशा की गई है कि कांग्रेस आवश्यकतानुसार कानून बनाकर सविस्तार व्यवस्था करेगी। फलस्वरूप

(ग) कांग्रेस द्वारा पारित कानून

कांग्रेस को प्रति वर्ष अनेकों ऐसे कानून और संयुक्त प्रस्ताव पारित करने पड़ते हैं जिनका निश्चित रूप से सवैधानिक महत्व होता है। जब कभी कांग्रेस कानून बनाती है तो वास्तव में संविधान की व्यवस्था करती है और यदि वह कानून कुछ नवीन समस्याओं से सम्बन्धित है या सरकार के अधिकारों में वृद्धि करता है तो कांग्रेस संविधान की केवल व्याख्या ही नहीं करती बल्कि उसमें कुछ अनुदाय भी करती है। इस प्रकार संविधान की धाराओं के अन्तर्गत कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों से और कांग्रेसी कानूनों द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अन्तर्गत जारी किये गये प्रशासनादेशों से राष्ट्रीय सरकार के अधिकारों, कर्त्तव्यों और सीमाओं की व्याख्या की गई है और उसकी वास्तविक कार्यप्रणाली के बहुत बड़े अंश का निर्माण किया गया है। उदाहरण के लिए, संविधान में शासन विभागों की व्यवस्था की गई है परन्तु विभागों के निर्माण, उनकी संख्या, नामकरण, संगठन, अधिकार और कार्यों को निर्धारित करने का कार्य कांग्रेस के लिये छोड़ दिया गया है। यदि विधान मण्डल की ओर दृष्टिपात किया जाय तो यह पता चलेगा कि संविधान में केवल कांग्रेस के दो सदनों की व्यवस्था की गई है परन्तु सिनेटरों और प्रतिनिधियों के निर्वाचन के समय, स्थान और ढंग को निर्धारित करने का कार्य राज्य के विधान मण्डलों और कांग्रेस पर छोड़ दिया गया है। कांग्रेस ने अपने अधिकार का पूरा लाभ उठाया और १८४२ में प्रतिनिधियों के चुनाव और १८६६ में सिनेटरों के चुनाव सम्बन्धी कानून पास कर इस सम्बन्ध के सवैधानिक कानून का बड़ा विस्तार किया। इसी प्रकार संघीय न्यायपालिका बहुत कुछ अंश में समय समय पर कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों का ही परिणाम है। संविधान में केवल एक सर्वोच्च न्यायालय की

व्यवस्था की गई है परन्तु निम्न श्रेणी के संघीय न्यायालयों के निर्माण का काय कांग्रेस के ऊपर ही छोड़ दिया गया है, सर्वोच्च न्यायालय की रचना, उसका संगठन, उसके नियम और उसके पुनरावेदन क्षेत्र की सारी व्यवस्था कांग्रेस ने ही की है, इसी प्रकार जिला, सरकिट और विशेष न्यायालयों की सारी प्रणाली का विकास भी संविधान स नहीं बल्कि इसी स्रोत (कांग्रेस) से हुआ है। लगभग इसी प्रकार सार्वजनिक सेवा प्रणाली, बजट व्यवस्था, नियोजन और रिपोर्ट प्रस्तुत करने वाली संस्थाओं, अमेरिका की परराष्ट्र सेवा, सेना, नौ-सेना और इसी प्रकार के अन्य अनेक महत्वपूर्ण विषयों का उन कानूनों के आधार पर सचालन होता है जिनको कांग्रेस ने संविधान की व्यापक व्यवस्था के अन्तर्गत पारित किया है।

(घ) शासकीय आदेश निर्देश

केवल कांग्रेस ने ही नहीं बल्कि सरकार के प्रशासन विभाग न भी शासन प्रणाली की अनेक बातों को निर्धारित किया है और इस प्रकार संविधान का विस्तार और प्रसार और उसमें रूपान्तर किया है। प्रशासन विभाग के अध्यक्षों को केवल संविधान ही नहीं बल्कि कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों को भी लागू करना पड़ता है। दोनों ही को लागू करने में उनके स्वतन्त्र रूप से कार्य करने के लिये काफी क्षेत्र होता है। आधुनिक काल में तो जब कि कांग्रेस को अत्यधिक कार्य करना पड़ता है जो केवल दिन-दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ता ही नहीं जा रहा है बल्कि दिन प्रति दिन अधिक टेकनिकल और अधिक जटिल भी होता जा रहा है प्रशासन विभाग के अध्यक्षों को कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों को लागू करने में अपने विवेकानुसार स्वतन्त्र होकर कार्य करने को अधिकाधिक अवसर मिलता है। संयुक्त राज्य के प्राय सभी महान राष्ट्रपतियों ने संविधान की अपने अपने ढंग से व्याख्या की है और शासन प्रणाली पर अपनी छाप छोड़ी है, जैसे वाशिंगटन ने यह परम्परा आरम्भ की थी कि राष्ट्रपति पद पर एक व्यक्ति दो से अधिक बार आसीन नहीं होना चाहिये, १९४० तक यह परम्परा अटूट चलती रही। जेफरसन ने साहस करके लूइसियाना (Louisiana) को खरीद लिया और जेक्सन ने निषेधाधिकार और पदच्युत करने के अधिकारों का विकास किया। इन अधिकारों का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग करने वाले यही प्रथम राष्ट्रपति थे। दक्षिण कैरोलिना के विरुद्ध राष्ट्रपति जेक्सन की कड़ी कार्यवाही लिंकन के लिये इस बात का उदाहरण बन गई कि आदेशों की अवज्ञा और उल्लंघन करने वाले राज्यों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाना चाहिये। अब्राहम लिंकन, विल्सन और फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने प्रशासकीय अधिकारों का उदार पूर्वक प्रयोग किया और राष्ट्रपति के युद्ध सम्बन्धी अधिकारों का बड़ा विस्तार किया। १७९४ में राष्ट्रपति वाशिंगटन ने पैन्सिल्वानिया (Pennsylvania) में "व्हिस्की

विद्रोह" (Whisky Rebellion) का दमन करने, १८६४ में राष्ट्रपति क्लीवलैंड (Cleveland) ने इलिनोय (Illinois) राज्य म पुल्मैन हड़ताल के विरुद्ध न्यायिक आदेश (injunction) को लागू करने, १६१४ में अरकसास (Arkansas) में खानों के मजदूरों की हड़ताल को तोड़ने तथा १६५७ में आइजनावर ने अरकसास की राजधानी लिटिल रौक (Little Rock) में नीग्रो विद्यार्थियों को रक्षार्थ सघीय सेना का प्रयोग किया।

रीति रिवाज और प्रथाएँ (customs and usages) भी एक राष्ट्रीय संविधान के विकास के अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन हैं। अमेरिकी संविधान को एक सजीव प्रलेख बनाने और आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समय और उसको युग के अनुकूल बनाने में केवल कानूनों, विधिवत स्वीकृत संशोधनों एवं न्यायालयों की व्याख्याओं का ही नहीं बल्कि सामाजिक तथा आर्थिक

(ङ) रीति रिवाज और प्रथाएँ

शक्तियों और समय की माँग तथा घटनाओं का भी विशेष हाथ रहा है। कालान्तर में इन प्रथाओं, रीति रिवाजों और परम्पराओं को भी कानून का बल प्राप्त हो जाता है और यह संविधान के अभिन्न और अनिवार्य अग बन जाते हैं। इस प्रकार संयुक्त राज्य में १७८७ के मूल संविधान के साथ ही एक अधिक प्रभावशाली अलिखित संविधान का भी धीरे धीरे विकास होता रहा है जिसमें ऐसी प्रथायें सम्मिलित हैं जो लिखित कानून की व्यवस्था के समान ही सरकार के वास्तविक कार्यों को निर्धारित करती हैं। वास्तव में वर्तमान समय में किसी भी देश के लिये और विशेष कर संयुक्त राज्य अमेरिका के लिये यह नहीं कहा जा सकता है कि उनका संविधान पूर्ण रूप से लिखित है। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य में राजनैतिक दलों के कार्यों, राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये निर्वाचक मण्डल के कार्य, उसके विभागों के अध्यक्षों का एक सलाहकार परिषद के रूप में जिसे मंत्रिमडल कहा जाता है एकत्र होने, संधियों के बदले 'शासकीय समझौतों' के व्यापक प्रयोग, सघीय पदों पर नियुक्ति करने में सिनेट के प्रति शिष्टाचार, सभी सघीय अधिकारियों की पदच्युति के अधिकार, कांग्रेस में अन्तरग मण्डल और समिति प्रणाली और अन्य अनेक उपायों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिकी संवैधानिक प्रणाली के विकास में रीति रिवाजों, प्रथाओं परम्पराओं, समय और स्वभाव का कितना बड़ा हाथ रहा है।

विल्सन ने कहा है कि अमेरिका का संविधान केवल कानूनी पुस्तक नहीं वरन् जीवन को आगे ले जाने का साधन (गाड़ी) है और इसकी आत्मा सदैव समकालीन युग की आत्मा रहती है। इसका अर्थ समय के साथ निरन्तर बदलता रहता है। विशेष कर आधुनिक युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं और

टेकनालाजी के क्षेत्र में जो उन्नति की गई है उसने अमेरिका की राजनैतिक प्रणाली के विभिन्न अंगों की वास्तविक स्थिति और उनकी प्रतिष्ठा को बहुत अधिक प्रभावित किया है। उदाहरण के लिये रेडियो, टेलीविजन और समाचार पत्रों आदि के द्वारा आज अमेरिका का राष्ट्रपति जनता के निकटतम सम्पर्क में आ गया है। अपनी रेडियो वार्ताओं द्वारा, टेलीविजन के कार्यक्रमों द्वारा, पत्रकार सम्मेलनों और सार्वजनिक भाषणों या सार्वजनिक उत्सव समारोहों में सम्मिलित होकर राष्ट्रपति को जनमत अपने पक्ष में प्रभावित करने के अभूतपूर्व अवसर प्राप्त हैं और जनमत को अपने पक्ष में करके राष्ट्रपति कांग्रेस के साथ दृढ़तापूर्वक व्यवहार कर सकता है, क्योंकि ऐसी स्थिति में कांग्रेस सदस्य भी राष्ट्रपति का समर्थन करने के लिये विवशता का अनुभव करेंगे। वाल्टर एफ डाड (Walter F Dodd) का मत है कि संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रीय सरकार के अधिकारों का यातायात एवम् सवादवाहन (communications) के साधनों के विकास से भी प्रसार एवम् विस्तार हुआ है। उदाहरणार्थ इससे अन्तर राज्य तथा विदेशी व्यापार संबंधी अनेकों विषय राष्ट्रीय सरकार के नियंत्रण में आ गये। इसी प्रकार अणुशक्ति की खोज हो जाने और आणविक अस्त्रों के उत्पादन के फलस्वरूप अणुशक्ति आयोग का जन्म हुआ और अणुशक्ति के सम्बन्ध में कांग्रेस की एक संयुक्त समिति का निर्माण हुआ। इससे कांग्रेस और शासन के बीच नये प्रकार के सम्बन्धों का विकास हुआ है जो लगभग उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना स्वयं अणुबम का आविष्कार। विज्ञान और टेकनालाजी के क्षेत्र में जो यह असाधारण विकास हुआ है उसने निस्सन्देह संविधान की अनेक धाराओं को बिल्कुल नया अर्थ दिया है।

संविधान और वैज्ञानिक प्रगति

इस वर्णन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि फिलाडेल्फिया सम्मेलन में अमेरिकी संविधान की जिस रूप रेखा का प्रादुर्भाव हुआ था वह अमेरिका की वास्तविक शासन प्रणाली को समझ सकने में अब अधिक सहायक नहीं हो सकती। यदि हम न्यायालयों क असंख्य निर्णयों, राष्ट्रपति के कार्यों तथा कांग्रेस द्वारा स्वीकृत निधियों पर जिन्होंने संविधान के क्षेत्र का अपार विस्तार किया है तथा उसे इतना व्यापक बनाया है ध्यान न दें तो संविधान में किये कुल २२ संशोधनों से भी शासन प्रणाली का पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। इसके साथ ही संविधान के विकास में पार्टियों, रीति रिवाजों, प्रथाओं, परम्पराओं, समय और स्वभाव का जो प्रभाव पड़ा है जो निरन्तर इसमें परिवर्तन कर इसको समय की माँग के अनुकूल बनाती रही है उसको हम एक क्षण के लिये भी भूल नहीं सकते। यह प्रक्रिया बिना रुके निरन्तर गतिमान है। यही कारण है कि यह जीवित व्यक्तियों का सजीव शब्द एवम् कार्य है और जैसा कि ऑग और रे ने कहा है "हमारे पास जो

संविधान है उसके निर्माण का जान मार्शल, एन्ड्रू जेक्सन, अब्राहम लिंकन, वुडरो विल्सन, न्यायाधीश होल्स, सिनेटर नोरिस और फ्रैंकलिन रुजवेल्ट को उतना ही श्रेय है जितना हैमिल्टन, मेडिसन, फ्रैंकलिन और मोरिस को है"। इस रूप में इसमें अमेरिकी जनता का इतिहास, उनकी समस्याओं को हल करने के उनके प्रयत्न, उनके आदर्श और महत्वाकांक्षाएँ निहित हैं और यह प्रेरणा तथा शक्ति का एक महान स्रोत है। इसने गृह युद्ध और दो विश्व युद्धों के भार का वहन किया है, १३ इकाइयों से आरम्भ हुआ था और अब इसमें ५० राज्य सम्मिलित हैं। फ्रांसीसी क्रांति के वातावरण में इसका निर्माण हुआ था और अब रूसी तथा चीनी क्रांति के युग में यह व्यवहार में लाया जा रहा है। आरम्भ इसका निर्माण व्यक्तिवाद से हुआ और कालक्रमानुसार इसने रुजवेल्ट के न्यू डील और कल्याणकारी राज्य की विचारधारा को अपना लिया, विदेशी मामलों में न फसने और पृथकतावादी नीति से इसने अपना जीवन आरम्भ किया था परन्तु आज क्रमशः अपने आधीन समुदाय का विकास कर उसे एक ऐसे स्तर पर पहुँचा दिया है जहाँ पर यह समस्त विश्व का अन्न भन्डार, शस्त्रागार और बैंकर बन गया है। यह ऐसी सफलता है जिस पर इसके निर्माता और उनके पौत्र-प्रपौत्र निश्चय ही गर्व कर सकते हैं।

अध्याय ३ | कार्यकारिणी : राष्ट्रपति

प्रोफेसर लास्की के अनुसार संयुक्त-राज्य के राष्ट्रपति का पद विश्व के कार्यकारिणी पदों में सब से जटिल है, परन्तु फिर भी अमेरिका का सर्वसाधारण व्यक्ति इस पद के लिये निर्वाचित हो सकता है। राष्ट्रपति एक ओर अपने राष्ट्र का प्रधान अथवा अध्यक्ष होता है और दूसरी ओर स्वयं अपने मन्त्रिमण्डल का प्रधान मंत्री भी होता है, उसके अधिकार अपरिमित होते हैं और प्रभाव व्यापक। इस रूप में राष्ट्रपति का पद निश्चय ही असाधारण है। लार्ड ब्राइस का मत है कि विश्व में यह सर्वोच्च पद है जिस पर कोई भी व्यक्ति अपने प्रयत्नों से आसीन हो सकता है। ऑग और रे का भी यही कहना है कि यूरोप के तानाशाहों को छोड़ अमेरिकी राष्ट्रपति विश्व में सबसे अधिक शक्तिशाली और अधिकार सम्पन्न प्रशासनाधिकारी होता है। यद्यपि अधिकारों के प्रयोग की वैधानिक सीमायें हैं, जो अधिकार उसे दिये गये हैं उनके उपयोग पर अनेक प्रतिबन्ध भी लगे हैं परन्तु फिर भी वह सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न होता है।

जो भी हो, आरम्भ में ही यह बता देना अनुचित न होगा कि जब अमेरिकी संविधान के निर्माताओं ने इस पद की सृष्टि की थी तब उन्होंने उसके इस रूप की कल्पना भी नहीं की थी जो रूप उसका आज हो गया है। उन्होंने संविधान में अमेरिकी राष्ट्रपति के अधिकारों के सम्बन्ध में अत्यन्त सरल भाव से यह व्यवस्था की थी कि 'राष्ट्रपति को प्रशासन के अधिकार प्राप्त होंगे'। वह उस समय इस छोटी सी धारा की महत्ता को नहीं समझ सके, वह यह कल्पना नहीं कर सके कि भविष्य में यह छोटी सी धारा राष्ट्रपति द्वारा इतने अधिक अधिकारों को प्राप्त करने का साधन बन जायगी जितना लोकतंत्र में अब तक कोई भी व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सका है। वह यह नहीं जान सके, जैसा मनरो का कथन है, कि 'राष्ट्र के विकास के साथ ही राष्ट्रपति का पद सभी संघीय अधिकारों (federal authority) का केन्द्र और राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन जायगा'। बिना किसी तर्क के यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस वातावरण में राष्ट्रपति को काम करना पड़ा है और राष्ट्रपति पद पर जब-जब जैसा व्यक्ति आसीन हुआ है तब-तब उसी प्रकार राष्ट्रपति पद का रूप बदलता गया है। वास्तव में अमेरिका के राष्ट्रपति पद के अधिकारों और उसके सम्मान में जो वृद्धि हुई है वह एक लिखित संविधान की

उस क्षमता का उदाहरण है जिसकी आरम्भ में कल्पना भी नहीं की जा सकी थी। ब्रोगन (Brogan) का तो यह कहना है कि राष्ट्रपति आज जनता का साक्षात प्रतिरूप (The majesty of the people incarnate) बन गया है।

१७८७ के फिलाडेलफिया सम्मेलन के सदस्यों के विचार प्राय सभी सार्वजनिक प्रश्नों पर विभिन्न थे। विशेष रूप से प्रधान प्रशासनाधिकारी के कार्य काल, चुनाव के तरीकों, अधिकारों और कार्यों के सम्बन्ध में उतने ही मत थे जितने प्रतिनिधि। कुछ प्रतिनिधि तो यह चाहते थे कि 'राजाओं की वंश परम्परा' का तरीका स्वीकार कर लिया जाय परन्तु इस सुझाव पर एक तन्त्री शासन, शक्तिशाली सरकार, निरकुशता का भय प्रकट किया गया फिर भी प्रतिनिधियों ने यह अच्छी तरह जानते हुए कि संघ-व्यवस्था म काग्रेस की स्थिति कितनी कमजोर थी एक शक्तिशाली प्रशासनाधिकारी के सिद्धान्त का ही समर्थन किया। अमेरिकी जनता को राज्यों के गवर्नरों के शासन का पूरा अनुभव था, परन्तु प्रतिनिधि सभाओं में तत्काल निर्णय कर कार्य करने की शक्ति का अभाव और उत्साह की कमी देखकर बहुमत एक प्रशासक के पक्ष में था। यहाँ यह बता देना अनुचित न होगा कि एक व्यक्ति के प्रभुत्व से पैदा होने वाले खतरों की जो चेतावनी दी गई थी वह जार्ज वाशिंगटन के होने के कारण बहुत अंशों में निर्मूल जान पड़ी। इस पद का निर्माण ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति में अत्यन्त न्याय सगत प्रतीत हुआ जो निस्सन्देह उस पद के लिये पूर्णतया उपयुक्त था। परिणाम यह हुआ कि संविधान में 'राष्ट्रपति को सभी प्रशासनाधिकार प्राप्त होंगे" धारा जोड़ दी गई। यह पद राज्य के गवर्नरों के पद का ही एक वृहद् रूप था। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ब्रिटेन के राजपद का सीमित और सुधरा हुआ रूप ही राष्ट्रपति है।

राष्ट्रपति का चुनाव

संविधान के निर्माताओं को जिस एक प्रश्न को हल करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और जिस पर गहरे मतभेद पैदा हो गये थे वह था राष्ट्रपति के निर्वाचन के तरीके का प्रश्न। अनेक प्रतिनिधियों ने यह मत व्यक्त किया कि राष्ट्रपति के चुनने का अधिकार काग्रेस को दिया जाय। पहले यह तरीका मान लिया गया परन्तु बाद में जब यह ज्ञात हुआ कि इस प्रणाली से 'प्रतिबन्धों और सन्तुलन' (checks and balances) की व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा हो जायगी, तो इस प्रणाली को अस्वीकार कर दिया गया। कुछ प्रतिनिधियों ने सुझाव दिया कि जनता ही प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रपति को चुने परन्तु बहुमत ने इसका विरोध किया क्योंकि उसे भय था कि यदि यह प्रणाली अपना

ली गई तो राष्ट्रपति पद के लिये दम्भी व्यक्तियों (demagogues) के चुने जाने का द्वार खुल जायगा। अन्त में राष्ट्रपति के निर्वाचक मण्डल द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचन की प्रणाली को स्वीकार कर इस जटिल प्रश्न पर सुखद समझौता हो गया।

मूल पद्धति (Original Method)

अमेरिकी संविधान के निर्माता प्रधान प्रशासनाधिकारी अथवा राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति से ऊपर उठाना चाहते थे। वह ऐसी प्रणाली चाहते थे जिससे दम्भी व्यक्ति (demagogues) की इस पद तक पहुँच न हो सके। उन्हें जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन से उत्पन्न होने वाले खतरे का ज्ञान था। इसलिये उन्होंने इस निर्वाचन के लिये यह योजना बनायी कि प्रत्येक राज्य अपने विधान मण्डलों के निर्देशानुसार उतने निर्वाचक नियुक्त करे जो अमेरिकी कांग्रेस में इस राज्य के सिनेटरों और प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के कुल योग के बराबर हों। यह निश्चित किया गया कि नियुक्त हो जाने के पश्चात् इन निर्वाचकों का अपने-अपने राज्य में सम्मेलन हो जिसमें वह राष्ट्रपति पद के लिये दो उम्मीदवारों को लिखित रूप से मत दें परन्तु इन दो उम्मीदवारों में से कम से कम एक उसी राज्य का निवासी नहीं होना चाहिये जिस राज्य के यह निर्वाचक होंगे। मतदान के ब्योरे का एक प्रमाण पत्र तैयार कर सील मुहर करके सिनेट के अध्यक्ष के पास भेज दिया जायगा। सिनेट के अध्यक्ष को यह अधिकार दिया गया कि वह अमेरिकी कांग्रेस के सामने इन मतदान प्रमाण पत्रों को खोलकर मत गणना करे और परिणाम घोषित करे। जिस व्यक्ति को सबसे अधिक मत मिलें वह राष्ट्रपति घोषित किया जायगा। परन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि उसे निर्वाचक मतदाताओं का बहुमत प्राप्त हो। दूसरे नम्बर पर सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाला व्यक्ति उप राष्ट्रपति घोषित किया जायगा परन्तु उसे भी पूर्व शर्त पूरी करना आवश्यक होगा।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि योजना बनाने के बाद जो घटनाएँ घटी हैं उनसे इसमें अनेक संशोधन हुए हैं और प्राय सारी योजना ही बदल गई है। मूल योजना में राजनीतिक पार्टियों को बिल्कुल अलग रखने की चेष्टा की गई थी क्योंकि संविधान के निर्माता राष्ट्रपति का चुनाव [illegible] के स्तर से ऊपर उठाना चाहते थे। वह चाहते थे कि राष्ट्रपति के चुनाव पर जनता में पैदा की गई उत्तेजना और दम्भपूर्ण बातों से उत्पन्न हुई भावनाओं का कोई भी प्रभाव न पड़े, चुनाव में पार्टी बन्दी न हो, शान्तिमय ढंग से सम्पन्न हो और सारी कार्यवाही [illegible] के [illegible] से

इसके विपरीत राष्ट्रपति का चुनाव विभिन्न पार्टियों के बीच कड़े संघर्ष का कारण बन गया। इस दिशा में राष्ट्रपति के लिये निर्वाचकों के पृथक मतदान की व्यवस्था करने वाले बारहवें संशोधन का तो हाथ रहा ही है परन्तु इससे अधिक और निर्णायक योगदान राष्ट्रपति एवम् उपराष्ट्रपति के उम्मेदवारों को ही नहीं बल्कि निर्वाचक मण्डल के सदस्यों को मनोनीत करने में विभिन्न राजनीतिक दलों की सक्रियता और उनके संगठन का रहा है। इससे राष्ट्रपति के निर्वाचन की मूल योजना में आमूल परिवर्तन हो गया है। उदाहरणार्थ १९५२ तथा १९५६ में आइजनावर की नामजदगी या १९५६ में डिमोक्रैटिक सम्मेलन द्वारा स्टिवेंसन की नामजदगी।

आज जबकि राष्ट्रपति पद के उम्मेदवार और राष्ट्रपति निर्वाचक मंडल के सदस्यों को मनोनीत करने के लिये विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ राष्ट्रीय सम्मेलन करती हैं और अपने मंचों से, प्रचार द्वारा तथा एक संघर्ष (campaign) कर अपने उम्मेदवारों को जिताने का प्रयत्न करती हैं तब यह कहना कि राष्ट्रपति निर्वाचक-मंडल ने चुना या जनता ने चुना सही नहीं होगा, वास्तव में इनके चुने जाने का श्रेय उस राजनीतिक पार्टी को है जिसने उसे मनोनीत किया और अपने संघर्ष तथा सङ्गठन द्वारा विजयी किया है।

नयी पद्धति (New Method)

इस समय अमेरिकी राष्ट्रपति के निर्वाचन को ५ भागों में बाँटा जा सकता है—(१) उम्मेदवारों की नामजदगी, (२) निर्वाचकों की नामजदगी, (३) निर्वाचकों का चुनाव, (४) निर्वाचकों द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव, और (५) मतदान प्रमाणपत्रों का भेजा जाना और मतगणना।

इनमें से प्रथम—विभिन्न पार्टियों द्वारा उम्मेदवारों की नामजदगी—के संबंध में यद्यपि संविधान में एक शब्द भी नहीं कहा गया है परन्तु इसमें संदेह नहीं कि यह नामजदगी की प्रक्रिया सबसे आश्चर्यक और सबसे अधिक जटिल प्रक्रिया होती है। इसका आरम्भ विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के राष्ट्रीय सम्मेलनों से होता है। नियम के अनुसार राजनीतिक पार्टियों द्वारा प्रत्येक राज्य से अपने प्रतिनिधि और इनकी अनुपस्थिति में भाग ले सकने वाले कुछ और प्रतिनिधि चुने जाते हैं, द्वीप वासियों और उन क्षेत्रों को भी जो राज्य के सदृश संगठित तो किये जा चुके हैं परन्तु जिन्हें राज्य के अधिकार प्राप्त नहीं हैं (territorial and insular possessions) अपने प्रतिनिधि और उनकी अनुपस्थिति में भाग ले सकने वाले अन्य प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार राष्ट्रीय सम्मेलन

राष्ट्रीय सम्मेलन समारोह

में एक हजार से अधिक प्रतिनिधि होते हैं। १९५६ में हुई रिपब्लिकन पार्टी कन्वेन्शन में ११२१ प्रतिनिधि थे और डिमोक्रेटिक कन्वेन्शन में १३७२।

जहाँ तक प्रतिनिधियों को चुनने का प्रश्न है २०वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों तक वे राज्यों और काँग्रेसी प्रदेशों (congressional districts) में होने वाले पार्टी सम्मेलनों द्वारा मनोनीत किये जाते थे। १९०५ में विस्कोंसिन (Wisconsin) में सर्वप्रथम यह निश्चित किया गया कि प्रतिनिधियों का चुनाव जनता द्वारा किया जाय। अगले २० वर्षों में लगभग ३० राज्यों ने इस प्रणाली को विभिन्न रूपों में अपना लिया। अनेक राज्य इस व्यवस्था से कुछ और आगे बढ़े और उनमें यह व्यवस्था की गई कि मतदाता जब राष्ट्रीय सम्मेलन के लिये अपने प्रतिनिधियों को चुनें तो साथ ही उन प्रतिनिधियों को यह भी निर्देश दे दें कि उन्हें किस उम्मेदवार का समर्थन करना होगा। आरम्भ में यह योजना अत्यन्त लोकप्रिय हुई परन्तु १९१६ के उपरान्त यह इतनी लोकप्रिय न रही और उन राज्यों ने भी एक के बाद एक इस योजना को त्याग दिया जिन्होंने आरंभ में इसे स्वीकार कर लिया था। इसलिये वर्तमान समय में राष्ट्रपति के उम्मेदवार की नामजदगी के लिये राष्ट्रपति-निर्वाचक-आरम्भिक सम्मेलनों का विशेष महत्व नहीं रह गया है। १९५२ में केवल १७ राज्यों में राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिनिधि प्रारम्भिक चुनावों (Primaries) द्वारा नियुक्त किये गये। कुछ में उनकी नियुक्ति राज्य की दलीय समिति (State party committee) द्वारा की गई और शेष में प्रादेशिक (district) अथवा राज्य-व्यापी सम्मेलनों (conventions) द्वारा। परन्तु १९५५ में कांग्रेस द्वारा पारित एक कानून ने यह व्यवस्था की कि राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिनिधियों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से प्रदेशों (districts) में हुआ करेगा।

नामजदगी—प्रतिनिधियों का चुनाव सम्पन्न होने के बाद राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति पद के लिये अपने उम्मेदवार चुनने के लिये प्रत्येक पार्टी का राष्ट्रीय सम्मेलन होता है। सम्मेलन का अध्यक्ष चुनने, प्रतिनिधियों के प्रमाण पत्रों की जाँच करने और विषय इत्यादि का ब्यौरा तैयार करने में तीन-चार दिन लग जाते हैं। सम्मेलन का कार्यक्रम तैयार करने के निमित्त पहिले ही एक समिति नियुक्त कर दी जाती है।

सम्मेलन की इन आरम्भिक कार्यवाइयों के पश्चात अध्यक्ष राष्ट्रपति पद के लिये नामजदगी की घोषणा करता है। सचिव (Secretary) सभी राज्यों का नाम पुकारता जाता है। सबसे पहिले अल्बामा का नाम पुकारा जाता है। वास्तव में राज्यों के नाम ए० बी० सी० डी० के क्रम से पुकारे जाते हैं। नाम पुकारे जाने पर उस राज्य के प्रतिनिधि मण्डल को अपने उम्मेदवार को मनोनीत करने का

अवसर मिलता है, वह प्रतिनिधि मण्डल किसी अन्य राज्य के पक्ष में अपना नाम वापस भी ले सकता है। इस प्रकार दो या तीन से लेकर लगभग एक दर्जन नाम तक प्रस्तुत किये जाते हैं और प्रत्येक उम्मेदवार का नाम प्रस्तावित करते समय जोरदार भाषण दिये जाते हैं जिसमें उम्मेदवार के गुणों पर प्रकाश डाला जाता है और इसके बाद प्रस्तावित नाम के समर्थन में ओजस्वी भाषण किये जाते हैं। समर्थन के लिए प्रतिनिधि वक्ताओं का चुनाव इस प्रकार किया जाता है जिससे यह प्रकट हो कि उम्मेदवार को व्यापक समर्थन प्राप्त है। अपने प्रिय उम्मेदवार का समर्थन कराने के लिये प्रतिनिधि प्राय प्रदर्शन कर एक समां बांध देते हैं, इसके लिये रत्य चिल्लाते हैं, बाजों का उपयोग करते हैं, ध्वजाओं को फहराते हैं और लगभग एक घण्टे तक या जब तक प्रतिनिधि थक न जायें यह प्रदर्शन जारी रहता है।

मतदान (Balloting of nominations)—नामजदगी के पश्चात् सम्मेलन प्रस्तावित नामों पर मतदान करता है। मतदान मतदान-पत्र द्वारा नहीं बल्कि केवल कण्ठ ध्वनि (voice-vote) द्वारा किया जाता है। राज्यों के नामों को फिर से क्रमानुसार पुकारा जाता है और प्रतिनिधिमण्डल के अध्यक्ष अपने मतों की घोषणा करते हैं या यदि दो या अधिक उम्मेदवारों का समर्थन किया गया है तो उसकी सूचना देते हैं। जब सभी राज्यों के मतों को दर्ज कर लिया जाता है और उन की गणना हो जाती है तब परिणाम घोषित किया जाता है। कभी कभी एक बार (उदाहरणार्थ १९५२ तथा १९५६ में आइजनावर की नामजदगी या १९५६ में डिमोक्रैटिक सम्मेलन द्वारा स्टिवेंसन की नामजदगी) मतदान पर्याप्त होता है परन्तु यदि कोई एक उम्मेदवार आवश्यक बहुमत प्राप्त नहीं कर पाता है तब उस समय तक मतदान करना आवश्यक हो जाता है जब तक कि एक उम्मेदवार प्रतिनिधियों के आधे से अधिक मत प्राप्त न कर ले। इस बीच पार्टी के नेतागण और प्रतिनिधि मण्डलों के अध्यक्ष अलग बैठकर समझौता करते हैं, कमजोर उम्मेदवार चुनाव से हट जाते हैं, और प्रत्येक बार मतदान होने पर मतदाता एक के बाद दूसरे उम्मेदवार के पक्ष में टूटते रहते हैं और इस प्रकार धीरे धीरे एक उम्मेदवार स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर ही लेता है। कभी-कभी मतदान में बहुत समय लग जाता है। १९२४ की घटना है कि डेमोक्रेटों द्वारा जान डेविड की नामजदगी के लिये १०३ बार मतदान करना पड़ा और यह गतिरोध बराबर ९ दिन तक बना रहा। इसी प्रकार १९५२ में स्टिवेंसन की नामजदगी ३ बार मतदान के उपरान्त हुई।

उपराष्ट्रपति की नामजदगी—जब राष्ट्रपति पद के लिये उम्मेदवार चुन लिया जाता है तब पार्टी उपराष्ट्रपति पद के लिये अपना उम्मेदवार चुनती है और राष्ट्रपति पद के उम्मेदवार के चुनाव की तरह ही इस बार भी यही क्रिया दोहरायी

जाती है—राज्यों के नाम पुकारे जाते हैं, नाम प्रस्तावित होते हैं, नाम प्रस्तावित करते समय और उसके समर्थन में ओजस्वी भाषण किये जाते हैं और मतदान होकर परिणाम की घोषणा की जाती है। परन्तु उपराष्ट्रपति पद के लिये संघर्ष बहुत कड़ा नहीं होता है और एक उम्मेदवार शीघ्र ही निश्चित बहुमत प्राप्त कर लेता है। इस बार बहुत कम परेशानी उठानी पड़ती है, कभी कभी तो उपराष्ट्रपति की नामजदगी जल्दी-जल्दी में सम्पन्न होती है क्योंकि प्रतिनिधि वास्तविक संघर्ष तो राष्ट्रपति की नामजदगी समझते हैं और उसके समाप्त होते ही घर लौटने की सोचने लगते हैं। यद्यपि उपराष्ट्रपति पद की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता और उसके चुनाव में भी विशेष उत्साह नहीं होता परन्तु फिर भी इस पद का बहुत महत्वपूर्ण उपयोग किया जाता है। यदि पार्टी के अन्दर प्रभावशाली वर्ग राष्ट्रपति के चुनाव में हार जाता है तो प्राय उसको प्रसन्न करने के लिये और उसका सहयोग प्राप्त करने के लिये उपराष्ट्रपति पद के लिये उस वर्ग का उम्मेदवार चुन लिया जाता है (या किसी महत्वपूर्ण राज्य को अपने पक्ष में करने के लिये भी इसका उपयोग होता है)। सन्तुलन स्थापित करने के लिये यह भी प्रयास किया जाता है कि यदि मनोनीत राष्ट्रपति पूर्वी राज्यों का है तो उपराष्ट्रपति पश्चिमी राज्यों का हो, यदि राष्ट्रपति अनुदार विचारों का है तो उपराष्ट्रपति उदार विचारों वाला चुनने का प्रयत्न किया जाता है, या इसके विपरीत उदार राष्ट्रपति के होने पर अनुदार उपराष्ट्रपति की खोज की जाती है। ऑग और रे (Ogg and Ray) का मत है कि उपराष्ट्रपति पद के उम्मेदवार की नामजदगी में प्राय सभी बातों पर अच्छी तरह विचार कर लिया जाता है परन्तु केवल एक बात पर जो सब से अधिक महत्वपूर्ण है ध्यान नहीं दिया जाता। वह यह है कि नामजद उपराष्ट्रपति पद का उम्मेदवार अपने भाग्यवश राष्ट्रपति पद भी ग्रहण कर सकता है।

पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन का अन्तिम कार्य यह होता है कि एक नई राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति (National Committee) की नियुक्ति की जाय। इस कार्यकारिणी समिति में प्रत्येक राज्य एवम् प्रदेश (Territory) से एक पुरुष और एक स्त्री को प्रतिनिधि नियुक्त किया जाता है। १९५२ में संशोधित रिपब्लिकन पार्टी के नियमानुसार इस समिति में उस प्रत्येक राज्य के दलीय संगठन का अध्यक्ष भी पदेन (ex officio) सदस्य होता है जिसका गवर्नर रिपब्लिकन हो या जहाँ के कांग्रेस सदस्यों में रिपब्लिकन दल का बहुमत हो या जहाँ गत राष्ट्रपति-चुनाव में रिपब्लिकन दल का बहुमत रहा हो। इसके बाद विधिवत दो समितियाँ और नियुक्त की जाती हैं जिनमें प्रत्येक राज्य और अर्ध राज्य का एक प्रतिनिधि होता है। यह समितियाँ मनोनीत उम्मेदवारों को उनकी नामजदगी की सूचना देने के लिए भेजी जाती हैं। परन्तु इस तरह की पुरानी

प्रथा को अब त्यागा जा रहा है। फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने मनोनीत हो जाने के बाद १६३२ में अत्यंत नाटकीय ढंग से अपना चुनाव संघर्ष प्रारम्भ किया था। वह तत्काल अल्वेनी (Albany) में विमान पर सवार हो गए और कुछ ही घण्टों बाद शिकागो में उतर कर उन्होंने अपनी नामजदगी को स्वीकार किया। १६४४ में रिपब्लिकन उम्मेदवार थॉमस डिवी ने भी नामजदगी की स्वीकृति के लिए अल्वेनी से शिकागो तक की विमान यात्रा की क्योंकि शिकागो में सम्मेलन हुआ था। इसी प्रकार १६५२ तथा १६५६ में भी दोनों दलों के उम्मेदवारों ने सम्मेलन स्थल पर अपनी नामजदगी व्यक्तिगत रूप से स्वीकार की।

राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया का दूसरा चरण विभिन्न पार्टियों द्वारा राज्यों में राष्ट्रपति के निर्वाचकों का नामजदगी है। प्रत्येक राज्य में उसके नियमों के अनुसार विभिन्न पार्टियाँ अपने निर्वाचकों की सूची तैयार कर लेती हैं।

निर्वाचकों की नामजदगी

नियुक्त समय पर २७ राज्यों में मतदान पत्र तैयार कर लिए जाते हैं जिन में पार्टी चिह्नों के नीचे निर्वाचकों की सूची समानान्तर कालमों में छपी रहती है।

निर्वाचकों का चुनाव

नवम्बर में राष्ट्रव्यापी चुनाव के लिए जो तिथि निश्चित की जाती है उस दिन प्रत्येक राज्य में मतदाता यह निश्चय कर लेते हैं कि वह निर्वाचकों के किस समूह का समर्थन करेंगे और इसी के आधार पर वह राष्ट्रपति एवम् उपराष्ट्रपति के पदों के लिए भी अपने उम्मेदवार निश्चित कर लेते हैं। वास्तव में निर्वाचकों को मत देना तो एक विधि समझ कर यह कार्य पूरा कर दिया जाता है, साधारणतया न तो वह व्यक्तिगत रूप से जानते हैं कि वह निर्वाचक कौन है और न जानने का प्रयत्न ही करते हैं। २१ राज्यों में निर्वाचकों के नाम भी मतदान पत्रों में नहीं छापे जाते हैं।

परन्तु यदि राष्ट्रपति निर्वाचक मण्डल न हो और चुनाव फल मतदाताओं के बहुमत से निर्धारित किया जाय तो यह आवश्यक नहीं है कि दोनों स्थितियों में परिणाम समान हों, परिणाम प्राय समान नहीं होता। १६५६ के राष्ट्रपति चुनाव में राष्ट्रपति आइजनावर को ५७.३८% जनमत परन्तु निर्वाचक मण्डल में ४५७ मत, तथा स्टीवेंसन को ४१.६% जनमत परन्तु निर्वाचक मण्डल में केवल ७४ मत प्राप्त हुए। सर्वाधिक जनमत १६३६ में फ्रैंकलिन रूजवेल्ट को प्राप्त हुआ था जब कि मत प्रतिशत ६२ पहुँच गया और निर्वाचक मण्डल में प्राप्त मतों की संख्या ५२३। उनके प्रतिद्वन्दी को केवल ८ निर्वाचकों के मत प्राप्त हुए थे। सब से गम्भीर बात तो यह है कि ऐसी प्रणाली से यह सम्भव है कि अल्प मत प्राप्त राष्ट्रपति चुन लिया जाय अर्थात् राष्ट्रपति कुल मतदान के आधे से भी कम मत प्राप्त करे। १६४८ में ट्रूमैन को जनमत के केवल ४६% भाग का समर्थन प्राप्त हुआ

था परन्तु निर्वाचक मण्डल के ३०३ मत। साथ ही यह भी सम्भव है कि वह उम्मेदवार जो सारे देश में अधिक मत प्राप्त करे राष्ट्रपति न चुना जाय क्योंकि प्रत्येक राज्य मे निर्वाचक एक समूह के रूप में चुने जाते हैं। कोई भी पार्टी जो किसी राज्य में बहुमत प्राप्त करती है उसका उस राज्य के राष्ट्रपति निर्वाचक मण्डल पर कब्जा हो जाता है जब कि अन्य पार्टियों को कुछ प्राप्त नहीं होता। इसीलिए १८६० में लिंकन को अपने प्रतिद्वन्दियों की अपेक्षा सर्वाधिक मत प्राप्त हुए परन्तु फिर भी कुल मतदान ने बहुमत से ५ लाख मत कम मिले; १८७६ में हेस (Hayes) टिल्डेन (Tilden) को पराजित कर विजयी घोषित किए गए जब कि उनको टिल्डेन से ३ लाख कम मत प्राप्त हुए, १८८८ में हेरिसन ने क्लीवलैंड को पराजित किया यद्यपि क्लीवलैंड को अपने प्रतिद्वन्दी की अपेक्षा १ लाख अधिक वोट प्राप्त हुए थे।

प्रत्येक राज्य में निर्वाचित निर्वाचकों को दिसम्बर के तीसरे सप्ताह में सोमवार को अपने राज्य की राजधानी पहुँच जाना चाहिए और राष्ट्रीय सम्मेलन में उनकी पार्टी ने जिन उम्मेदवारों का मनोनीत किया है उनको मत देना चाहिए। यद्यपि वह किसी अन्य को भी मत दे सकते हैं और इसमें कोई वैधानिक बाधा भी नहीं है परन्तु साधारणतया ऐसा होता नहीं है। १९४८ में टैनिसी (Tennessee) राज्य के निर्वाचकों में से एक का ट्रूमैन (Truman) को मत न दे कर श्री जे० एस० थरमांड (J S Thurmond) को मत देना अथवा १९५६ के निर्वाचन में अल्बामा (Alabama) के एक निर्वाचक का स्टीवेंसन (Stevenson) को मत न दे कर श्री जोंस (Jones) के पक्ष में मतदान करना अपवाद (exceptions) हैं। १२ वें संशोधन में यह व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के लिए पृथक पृथक मत पत्रों द्वारा मतदान किया जायगा, दोनों पदों के लिए मत प्राप्त उम्मेदवारों तथा प्राप्त मतों की पृथक पृथक सूचियां बनाकर, उन पर हस्ताक्षर करके तथा उन्हें प्रमाणित करके उन सूचियों को मोहरबन्द किया जाय और सिनेट के अध्यक्षों के नाम अमेरिका की राजधानी को भेज दिया जाय।

निर्वाचकों द्वारा मतदान

चुनाव की अंतिम प्रक्रिया अब आरम्भ होती है। सिनेट के अध्यक्ष कांग्रेस के दोनों सदनों के सदस्यों की उपस्थिति में राज्यों से प्राप्त मतदान के प्रमाण पत्र को खोलते हैं। यह हो सकता है कि दो उम्मेदवारों को बराबर मत मिले हों या किसी भी उम्मेदवार को आधे से अधिक निर्वाचकों का बहुमत प्राप्त न हो। ऐसी स्थिति में प्रतिनिधि सभा को प्रथम तीन उम्मेदवारों में से राष्ट्रपति चुनने का अधिकार दिया गया है। प्रतिनिधि सभा के इस मतदान में सदस्य राज्यवार मत देते हैं, व्यक्तिगत रूप में

निर्वाचकों के मतों की गणना

नहीं, क्योंकि राष्ट्रपति चुनने के लिए राज्यों का बहुमत होना भी आवश्यक होता है। यदि निर्वाचक स्पष्ट बहुमत से उपराष्ट्रपति नहीं चुन सके हों तो प्रथम दो उम्मेदवारों में से सिनेट के सदस्य उपराष्ट्रपति हैं। यहाँ सिनेटर राज्यों के रूप में नहीं बल्कि व्यक्तिगत रूप से मतदान करते हैं। यदि किसी निर्वाचक मण्डल के मतदान के प्रमाणपत्र पर विवाद खड़ा हो जाय तो १८८७ के निर्वाचक मतदान गणना कानून के अनुसार इस विवाद को हल करने का उत्तरदायित्व जहाँ तक सम्भव हो स्वय राज्यों पर ही होता है। मत गणना ६ जनवरी को होती है और यह केवल रस्म ही रह जाती है क्योंकि जनता कई सप्ताह पहिले यह जान जाती है कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति कौन व्यक्ति होंगे।

निर्वाचित राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति २० जनवरी को अपने पद की शपथ ग्रहण करते हैं। अमेरिका के मुख्य न्यायाधीश शपथ ग्रहण कराते हैं। राष्ट्रपति की शपथ इस प्रकार है—"मैं शपथ लेता हूँ कि मैं संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के पद का कार्य श्रद्धापूर्वक करूँगा और अपनी पूरी सामर्थ्य से संयुक्त राज्य अमेरिका के विधान का पालन, पोषण और रक्षण करूँगा"।

१९३३ में स्वीकृत २०वें संशोधन में यह व्यवस्था की गई है कि यदि राष्ट्रपति की अपने कार्यकाल के आरम्भ से पहले ही मृत्यु हो जाती है तो उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के पद का भार सँभालेंगे। यदि उद्‌घाटन तिथि तक कोई राष्ट्रपति नहीं चुना गया है तो जब तक राष्ट्रपति का चुनाव नहीं हो जाता तब तक उपराष्ट्रपति ही राष्ट्रपति का कार्य करेंगे। अत में, संशोधन में कांग्रेस को यह अधिकार दिया गया है कि यदि २० जनवरी तक न राष्ट्रपति चुना गया हो और न उपराष्ट्रपति तो उसे कानून द्वारा आवश्यक प्रबन्ध करने का अधिकार होगा।

अमेरिकी राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रणाली सभ्य संसार में अन्यत्र नहीं पाई जाती। इस प्रणाली के आलोचकों ने इस सम्बन्ध में बड़े कड़े शब्दों का प्रयोग किया है। प्रोफेसर लास्की ने इस प्रणाली के मुख्य दोषों को गिनाते हुए लिखा है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन वास्तव में रुपयों का खेल है, इसके पीछे भ्रष्ट पद्धतियाँ छिपे रूप में सक्रिय रहती हैं, इसमें सन्देहपूर्ण (doubtful) राज्यों को पार्टियाँ अनुचित महत्व देती हैं। विशेष प्रकार के उम्मेदवारों के प्रति खुले तथा छिपे रूप में पूर्व धाराएँ सक्रिय रहती हैं जैसे रोमन कैथोलिक चर्च के उम्मेदवार के लिये किसी उम्मेदवार के समर्थक प्रतिनिधि मंडल को दूसरे उम्मेदवार के पक्ष में करने के लिये अवांछित चालें चली जाती हैं, देश की 'लोकप्रिय सन्तान' होने का रंग गाँठा जाता है जैसा लिंकन के चुनाव में हुआ। सम्मेलन किस राज्य में हो इसका निर्णय भी अनुचित महत्व रखता है, कभी सम्भावित उम्मेदवार के एक ही भाषण का अवांछित प्रभाव रहता है जैसा १८९६ में डेमोक्रेटिक पार्टी के

सम्मेलन में हुआ था, ऐसे उम्मेदवार खड़े कर दिये जाते हैं जिनके विषय में बहुत कम मालूम होता है, कभी कभी झूठे या नकली उम्मेदवार खड़े कर दिये जाते हैं जिसके पीछे सुसङ्गठित दल मौके की तलाश में रहता है और अवसर आते ही पहिले से सोचे समझे अपने उम्मेदवार का नाम प्रस्तावित कर देता है, सम्मेलन का वातावरण भी तनातनीपूर्ण, उलझा हुआ और गरम रहता है। इसके उत्साह की पराकाष्ठा, निर्वाचन के समय के छल-कपट, विचार शून्यता, अफवाहों का जोर, अनुचित षड्यन्त्र यह सभी बातें बाहरी व्यक्तियों को विशेषकर यूरोपवासियों को उचित प्रतीत नहीं होती हैं। वह इसे अत्यन्त विकृत और अनुचित तरीका समझते हैं। उनका मत है कि एक लोकतन्त्रीय राष्ट्र-मण्डल के सर्वोच्च प्रशासन पदाधिकारी का निर्वाचन जिस विकृत रूप में किया जाता है उससे अधिक विचार की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति के संबध में मार्च २७, १९५६ को निम्नलिखित मूल सुधार प्रस्तावों पर सिनेट ने विचार किया यद्यपि उनमें से कोई भी स्वीकार नहीं किया। प्रथम, प्रत्येक राज्य में राष्ट्रपति पद के प्रथम ३ उम्मेदवारों में उनके द्वारा प्राप्त जनमत (popular vote) के अनुपात में उस राज्य के निर्वाचकों का विभाजन होना चाहिये। अथवा द्वितीय, निर्वाचकों का चुनाव जनता द्वारा उसी प्रकार हो जिस प्रकार सिनेट तथा प्रतिनिधि सभा के सदस्यों का चुनाव प्रत्येक राज्य में होता है। अथवा तृतीय, राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा किया जाये।

कार्यकाल, योग्यता, विमुक्ति इत्यादि

राष्ट्रपति का कार्यकाल निर्धारित करने में फिलाडेल्फिया सम्मेलन के सदस्यों को पहिले कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा परन्तु बाद में यह निश्चित हुआ कि राष्ट्रपति का कार्यकाल ४ वर्ष होगा और यह इसकी समाप्ति पर पुनः चुनाव लड़ने का अधिकारी होगा। यद्यपि संविधान में ऐसा कोई व्यवस्था नहीं है कि राष्ट्रपति अधिक से अधिक कितनी अवधि तक राष्ट्रपति पद पर कार्य कर सकता है परन्तु १९४० तक यह परम्परा सी बन गई थी कि राष्ट्रपति अधिक से अधिक दो बार इस पद पर कार्य कर सकेगा। वाशिंगटन और जेफरसन को तीसरी बार राष्ट्रपति पद सम्भालने के लिये कहा गया था परन्तु उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। परन्तु १९४० में राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी० रूजवेल्ट ने इस परम्परा को तोड़ दिया और वह तीसरी बार भी राष्ट्रपति पद के लिये निर्वाचित हो गये। यही नहीं, १९४४ में चौथी बार राष्ट्रपति का चुनाव लड़कर और उसे जीतकर उन्होंने संसार

कार्यकाल

को आश्चर्य में डाल दिया। लोकतन्त्र में प्रभावशाली व्यक्तित्व का जनता पर ऐसा मोहक प्रभाव पड़ता है जो कभी कभी हानिकारक भी हो सकता है। इस मोहक प्रभाव की पुनरावृत्ति रोकने के निमित्त १९४७ में २२वाँ संशोधन प्रस्तुत किया गया जो १९५१ में स्वीकार कर लिया गया। इस संशोधन में कहा गया है कि "कोई भी व्यक्ति दो बार से अधिक राष्ट्रपति नहीं चुना जायगा, और ऐसा कोई भी व्यक्ति जो इस पद पर दो वर्ष से अधिक समय तक कार्य कर चुका हो वह एक से अधिक बार तक राष्ट्रपति पद पर नहीं चुना जा सकता है"।

अमेरिका का राष्ट्रपति या कोई भी सार्वजनिक पदाधिकारी देशद्रोह, घूसखोरी या अन्य भारी अपराधों के आरोप पर महाभियोग (impeachment) द्वारा दण्डित कर अपने पद से च्युत किया जा सकता है। सदन को आरोप लगाने का अधिकार है और सिनेट उन आरोपों के आधार पर चलाये गये मुकदमे की सुनवाई करता है। एन्ड्रू जॉनसन ही एक ऐसे राष्ट्रपति हुए हैं जिन पर महाभियोग आरोपण किया गया परन्तु सिनेट उनको दण्डित कर सकने में असफल रही क्योंकि इसके लिये दो-तिहाई के बहुमत की आवश्यकता थी जिसमें एक मत कम रह गया था।

अमेरिकी संविधान में कहा गया है कि (१) कोई भी ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति नहीं बन सकेगा जो संयुक्त राज्य अमेरिका का पैदाइशी (natural born) नागरिक न हो, (२) जिसकी आयु ३५ वर्ष न हो, और (३) जो १४ वर्ष से संयुक्त राज्य अमेरिका का निवासी न हो।

योग्यता

१९४९ से अमेरिका के राष्ट्रपति को एक लाख डालर वार्षिक वेतन मिलता है, इसके अतिरिक्त अन्य खर्चों के लिये ५० हजार डालर तथा यात्रा के लिये ४० हजार डालर प्रति वर्ष और मिलता है। यात्रा भत्ते पर आय कर नहीं लगता। इसके साथ ही राष्ट्रपति को जल-विहार के लिये छोटा जहाज, घर, विमान, रेलरोड, कार और मोटर गाड़ियाँ भी मिलती हैं। २५ अगस्त १९५८ को राष्ट्रपति आइजनावर ने एक विधेयक पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार भूतपूर्व राष्ट्रपतियों (ex presidents) को २५ हजार डालर प्रति वर्ष तथा उनकी विधवाओं को १० हजार डलर पेंशन दिये जाने की व्यवस्था की गई। राष्ट्र के प्रधान के रूप में राष्ट्रपति विश्व में कहीं भी आ जा सकते हैं। किसी भी अपराध के लिये कोई अधिकारी उन्हें गिरफ्तार नहीं कर सकता है, कोई भी न्यायालय उन पर मुकदमा नहीं चला सकता और न ऐसे मामले पर सुनवाई ही कर सकता है। राष्ट्रपति पर देश द्रोह, घूसखोरी तथा अन्य भारी अपराधों के लिये अभियोगारोपण का अधिकार केवल कांग्रेस को है।

विमुक्ति (Immunities)

राष्ट्रपति के अधिकार और कार्य

अमेरिकी शासन प्रणाली में प्रशासन का प्रधान राष्ट्रपति होता है। राष्ट्रपति के अधिकार क्या हों, यह निर्धारित करने में संविधान निर्माताओं को कठिन समस्या का सामना करना पड़ा। उपनिवेशों के गवर्नरों के शासन का कटु अनुभव उन्हें इस ओर प्रेरित करता था कि प्रशासन के प्रधान के अधिकार सीमित हों परन्तु संघ-विधान (Articles of Confederation) में शासन की निर्बलता को देखते हुए इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती थी कि प्रशासन का प्रधान दृढ़ और शक्तिशाली हो। उसकी शक्ति इतनी हो कि वह कांग्रेस को सीमा उल्लंघन करने से रोक सके और कानूनों को कुशलता और प्रभावोत्पादक ढंग से लागू कर सके। परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक था कि राष्ट्रपति के इन अधिकारों की भी कुछ सीमायें निर्धारित कर दी जाँय जिससे वह निरंकुश शासन स्थापित न कर सके। इसलिये समस्या यह थी कि एक ऐसे प्रधान प्रशासनाधिकारी की सृष्टि की जाय जो कानूनों को उचित ढंग से ठीक अर्थों में लागू करा सकने की क्षमता रखता हो परन्तु वह इतना शक्तिशाली न हो कि व्यक्तिगत तानाशाही स्थापित कर दे। १७८७ के विधान निर्माता न तो निर्बल और प्रभावहीन शासन चाहते थे और न तानाशाह, वह ऐसा राष्ट्रपति चाहते थे जो एक ओर शक्ति सम्पन्न और प्रभाव शाली हो और दूसरी ओर उसके अधिकार इतने सीमित हों कि उससे किसी प्रकार का भय न रहे।

परन्तु इस उद्देश्य प्राप्ति में वह सफल नहीं हो सके क्योंकि उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं था कि वह एक ऐसे पद की सृष्टि कर रहे हैं जो लास्की के शब्दों में "ब्रिटिश सम्राट व प्रधान मन्त्री दोनों का अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली भी है और कम भी"। अमेरिका में राष्ट्रपति पद का क्रमशः विकास हुआ है। ब्रोगन (Brogan) का मत है कि आज अमेरिका के राष्ट्रपति में बोनापार्ट के एकतन्त्र की सभी विशेषतायें निहित हैं। इस लक्षण को स्पष्ट करने के लिये राष्ट्रपति के अधिकारों के स्रोत को जानना आवश्यक है। वे निम्नलिखित हैं

राष्ट्रपति के अधिकारों के स्रोत

(१) राष्ट्रपति के वह कानूनी अधिकार जिनकी संविधान में व्याख्या की गई है। (२) 'आवश्यक और उपयुक्त धाराओं' की पूर्ति के लिये कांग्रेस द्वारा स्वीकार कानून समय समय पर कांग्रेस ने कानूनों की विस्तृत व्याख्या करने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया है और इन अधिकारों के आधार पर उसने नियमों के निर्माण द्वारा काफी शक्ति प्राप्त कर ली है। उदाहरणार्थ जब कांग्रेस कोई नया प्रशासन विभाग स्थापित करती है, किसी नये राजनीतिक पद का निर्माण करती है या नया

प्रशासन आयोग नियुक्त करती है तब स्वाभाविक ही नियुक्ति करने तथा पदच्युति करने के राष्ट्रपति के अधिकारों में वृद्धि होती है।

(३) न्यायालय के निर्णयों द्वारा भी राष्ट्रपति ने अनेक अधिकार प्राप्त कर लिये हैं। जैसा पहिले कहा जा चुका है अमेरिकी संविधान में अनेक महत्त्वपूर्ण बातों के विषय में कोई व्यवस्था नहीं की गई है और जब आवश्यकता पड़ती है तब उसकी व्याख्या करने और उपयुक्त व्यवस्था करने के लिये न्यायालयों की सहायता लेनी पड़ती है। न्यायिक निर्णयों के द्वारा ही राष्ट्रपति के अधिकार शस्त्रागार में गर्भित शक्ति सिद्धान्त सम्मिलित हुआ। उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) ने राष्ट्रपति को अपने वैधानिक अधिकारों की व्याख्या कर लेने की व्यापक छूट दी है।

(४) राष्ट्रपति को बहुत से अधिकार व्यवहार (custom) और परिस्थितियों के दबाव के द्वारा भी प्राप्त हुए हैं। व्यवहार के रूप में यह उदाहरण दिया जा सकता है कि राष्ट्रपति अपनी पार्टी का नेता माना जाता है, इस नेतृत्व के बल पर उसके सम्मान में और अधिकारों में अत्यन्त वृद्धि हो जाती है, यद्यपि बहुत कुछ राष्ट्रपति के व्यक्तित्व पर भी निर्भर करता है साथ ही जिन परिस्थितियों में वह कार्य कर रहा है उनका भी इसमें बहुत कुछ हाथ रहता है। जैसा कि बाद में बताया जायगा नूतन सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक विकासों के परिणाम स्वरूप और राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने से भी राष्ट्रपति के अधिकारों में काफी वृद्धि हुई है।

अमेरिका के राष्ट्रपति के व्यापक अधिकारों को चार भागों में बाँट सकते हैं; (क) प्रशासनाधिकार, (ख) विधान निर्माण सम्बन्धी अधिकार, (ग) पार्टी के नेता के रूप में प्राप्त अधिकार, और (घ) राष्ट्र के प्रधान के रूप में और नागरिकों की राजनीतिक रुचि का केन्द्र होने के रूप में प्राप्त अधिकार। इनके साथ युद्ध सम्बन्धी अधिकारों को भी जोड़ा जा सकता है।

(क) प्रशासनाधिकार

प्रशासनाधिकार के अन्तर्गत यह अधिकार आते हैं (१) कानून लागू करना, (२) प्रशासन सम्बन्धी सर्वोच्च आदेश जारी करना, (३) सार्वजनिक (civil) एवम् सैन्य अधिकारियों की नियुक्ति, (४) उन्हें पद मुक्त करना, (५) क्षमादान (pardon), मृत्युदण्ड स्थगित करना (reprieve) तथा सामूहिक क्षमादान (amnesty), (६) परराष्ट्रीय मामलों का संचालन, और (७) प्रधान सेनापति के रूप में सेना तथा नौ सेना के कार्यालयों का नियंत्रण और युद्ध का संचालन या प्रतिरक्षा सम्बन्धी अधिकारों का प्रयोग।

संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रधान प्रशासनाधिकारी के रूप में सभी कानूनों—न केवल कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों बल्कि संधियों (Treaties) व संघीय न्यायालय के निर्णयों—का लागू करना और संविधान द्वारा दिये गये अन्य कर्तव्यों का पालन करना राष्ट्रपति का प्रमुख कर्तव्य है। राष्ट्रपति पद की शपथ में ही उसमें यह अपेक्षा की गई है कि वह सभी कानूनों से महान् कानून अर्थात् संविधान का पोषण एवम् रक्षण करेगा। युद्ध काल में या आन्तरिक संकट काल में राष्ट्रपति का यह कार्य अत्यन्त गंभीर और महत्वपूर्ण हो जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि वह ऐसे संकट काल का सामना करने के लिये और अधिक अधिकारों की मांग करता है जो साधारणतया उसे दे दिये जाते हैं। स्थल सेना तथा जल-सेना के प्रधान सेनापति के रूप में और कानूनों को ठीक तरह से लागू कराने के लिये उत्तरदायी होने के कारण वह उन सभी अधिकारों को प्राप्त कर सकता है जिनकी उस संकट काल का सामना करने के लिये आवश्यकता हो। नीग्रो जाति के साथ होने वाले भेद भाव के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का पालन कराने के लिये राष्ट्रपति आइजनहावर ने २३ सितम्बर १९५७ को यह घोषित किया कि "संघीय न्यायालय के निर्णयों को लागू करने के लिये मैं संयुक्त राज्य अमेरिका की सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग करूँगा और यदि सेना की आवश्यकता होगी तो उसका भी।" अगले दिन संघीय सेना लिटिल रौक में शान्ति स्थापित करने के लिये विमान द्वारा भेजी गई।

(१) कानून लागू करना

कानून लागू करने के अधिकार के साथ प्रशासन के संचालन का घनिष्ट सम्बन्ध है, यद्यपि इस क्षेत्र में राष्ट्रपति कांग्रेस के एक एजेन्ट के रूप में कार्य करता है। कानून सही तौर पर लागू करने और संविधान का उचित रीति से पालन, पोषण और रक्षण करने के हेतु उसे समय समय पर निर्देश जारी करने पड़ते हैं। यह आदेश निर्देश वह विभिन्न विभागों के अध्यक्षों और उनके अधीन कर्मचारियों को भेजता है जिनकी सहायता से वह शासन संचालन करता है। नित्य प्रति का प्रशासन विभागों के अध्यक्षों और उनके अधीन कर्मचारियों, बोर्डों और आयोगों और उनके हजारों लाखों कर्मचारियों द्वार चलाया जाता है। यह सभी कर्मचारी उन्हीं आदेशों के आधार पर कार्य करते हैं जो एक अटूट शृंखला के रूप में उन्हें राष्ट्रपति से प्राप्त होते रहते हैं। प्रशासन के सर्वोच्च संचालक होने के कारण राष्ट्रपति इस स्थिति में होता है कि वह कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों का वास्तविक रूप व अर्थ स्थिर कर सके।

(२) प्रशासन के प्रधान के रूप में

प्रशासन चलाने के कर्तव्य का पालन करने के लिये राष्ट्रपति को आदेश जारी करने और नियम निर्धारित करने के व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं। वर्तमान समय में जब कि सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त जटिल और अस्थिर होती जा रही है जिस पर कि कांग्रेस को कानून बनाने पड़ते हैं, राष्ट्रपति का अध्यादेश जारी करने का अधिकार (ordinance making power) अधिकाधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है क्योंकि कांग्रेस इन जटिल और अस्थिर व्यवस्थाओं के अनुकूल तत्काल कानून बना सकने में असमर्थ है, उसके पास इसके लिये पर्याप्त समय का अभाव रहता है और अत्यधिक जटिल तथा टेकनिकल बातों को समझने और सुलझाने तथा उनपर कानून पास कर लेने की क्षमता उसके सदस्यों में नहीं होती। इसलिये कांग्रेस केवल सरकार के विविध कार्यों के क्षेत्र की मोटे रूप से व्याख्या कर देती है और संगठन सम्बन्धी विस्तार की बातें, कार्यप्रणाली उसके विभिन्न रूप इत्यादि को वह छोड़ देती है। उनको सरकार के प्रशासन विभाग निर्धारित और लागू करते हैं क्योंकि जो कुछ कार्य किया जाता है उसका इन्हीं से घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। अधिकांश उप कानूनों (subordinate legislation) तथा प्रशासन नियमों का निर्माण विभागों के अध्यक्ष करते हैं और वही इन्हें जारी करते हैं। इनके अधीन कर्मचारियों को भी यह आदेश जारी करने का अधिकार कुछ परिस्थितियों में प्राप्त है परन्तु प्रशासकीय आदेशों का अधिकांश भाग राष्ट्रपति द्वारा ही जारी किया जाता है। चाहे कुछ भी हो जारी किये गये सब ही नियमों और आदेशों का अन्तिम उत्तरदायित्व मुख्य प्रशासनाधिकारी पर ही होता है जो इस अन्य बातों के अतिरिक्त जनपदाधिकारी वर्ग सम्बन्धी नियमों (civil service rules), स्वाधिकार कार्यालय सम्बन्धी नियमों (rules for the patent office) और चुंगी एवम् आन्तरिक राजस्व (custom and internal revenue) व्यवस्था सम्बन्धी कानूनों को लागू करता है।

परन्तु विभागों द्वारा जारी किये गये आदेशों का स्रोत कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों में ही होना चाहिये यद्यपि बाह्य रूप में यह आदेश वही मान्यता एवम् प्रभाव रखते हैं जो कानून में होता है। इसलिये इस बात की कड़ी आलोचना की जाती है कि यह प्रवृति अमेरिकी संविधान के अधिकारों के पृथक्करण सिद्धान्त (separation of powers) का उल्लंघन करती है। १९३५-३६ में उच्चतम न्यायालय के एक के बाद एक अनेक निर्णयों से आलोचना को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली। उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रीय उद्योग पुनरुत्थान कानून (National Industrial Recovery Act), कृषि व्यवस्था कानून (Agricultural Adjustment Act), और मन्दी का सामना करने के लिये स्वीकृत अन्य कानूनों

को अवैध घोषित कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने घोषित किया कि इनसे मुख्य प्रशासक को कानून बनाने का अधिकार मिलता है इसलिये यह अवैधानिक हैं। परन्तु राष्ट्रपति के नियम-सृजन सम्बन्धी अधिकार में यह व्यवधान (setback) अस्थायी और अल्पकालीन सिद्ध हुआ। १६४० में अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में कशमकश बढ़ जाने से और १६४१ में अमेरिका के युद्ध में सम्मिलित हो जाने से राष्ट्रपति को जितने व्यापक अधिकार प्राप्त हुए उतने इतिहास में पहिले कभी न हुए थे। शासनादेशों (Executive Orders) द्वारा कानून बनाने के अपार अधिकारों के प्राप्त हो जाने का परिणाम यह हुआ कि विविध नियन्त्रणों एवम् प्रतिबन्धों को जन्म मिला परन्तु विश्व युद्ध का सफल संचालन करने के लिये यह व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भविष्य में शासन अध्यादेश जारी करने के अधिकारों में और भी वृद्धि होगी।

राष्ट्रपति के मुख्य प्रशासनाधिकारी के अधिकारों के साथ नियुक्ति तथा पदच्युत करने के अधिकारों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति संयुक्त राज्य अमेरिका भर में संघीय कानूनों को सही रूप में लागू कराने और उनके पालन की स्वयं देख रेख नहीं कर सकता है। उसे यह काम अपने सहकारियों द्वारा कराने पड़ते हैं इसीलिये संविधान में उसे नियुक्तियाँ करने का अधिकार दिया गया है। राष्ट्रपति को राजदूत, प्रदूत, वाणिज्यदूत, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश और उन सभी अधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार है जिनकी संविधान में कोई व्यवस्था नहीं दी गई है परन्तु जो कांग्रेस के कानून द्वारा स्थापित किये गये हों। अन्य अधिकारियों में मंत्रिमण्डल के सदस्य या विभागों के अध्यक्ष, उपसचिव, सहकारी सचिव, ब्यूरो के प्रधान, अनेक संघीय आयोगों के सदस्य, संघीय बोर्डों के सदस्य, चुंगी तथा राजस्व वसूलने वाले अधिकारी, जिले के अटर्नी तथा मार्शल, स्थल तथा जल सेना के अफसर और अनेक निम्न अधिकारी सम्मिलित हैं जिनका नाम संघीय वेतन तालिका में है।

(३) नियुक्ति सम्बन्धी अधिकार

संविधान में संघ सरकार द्वारा की जाने वाली नियुक्तियों को दो भागों में बाँटा गया है (१) वह उच्च पद जिनपर राष्ट्रपति सिनेट की परामर्श और उसके बहुमत की सहमति से नियुक्तियाँ कर सकता है, और (२) वह निम्न पद जिन पर कांग्रेस की सहमति पर राष्ट्रपति स्वयं नियुक्तियाँ कर सकता है। इन पदों पर विभागीय अध्यक्ष और न्यायालय भी नियुक्ति कर सकते हैं।

चूँकि संविधान में निम्न पदों की व्याख्या नहीं की गई है इसलिये यह निश्चित करना कि 'निम्न पदों' के अन्तर्गत कौन अधिकारी आते हैं कांग्रेस के अधिकार में है और वही उक्त लिखित तरीकों में से किसी तरीके से इन पदों पर

नियुक्ति की व्यवस्था कर सकती है। परन्तु संविधान में राजदूतों, अन्य प्रदूतों, वाणिज्य दूतों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में निश्चित व्यवस्था दी गई है। इन पदों पर राष्ट्रपति और सिनेट मिलकर नियुक्तियाँ कर सकते हैं। वर्तमान समय में विभिन्न विभागों के अध्यक्षों, उनके सचिवों, विभिन्न संघीय आयोगों के सदस्यों, चुँगी अधिकारियों, आन्तरिक राजस्व अधिकारियों और सेना तथा नौ-सेना में उच्चाधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति कर सकते हैं परन्तु सिनेट द्वारा उन नियुक्तियों की पुष्टि होना अनिवार्य होता है। इस संक्षिप्त सूची के अतिरिक्त संविधान में कांग्रेस को यह अधिकार दिया गया है कि वह निम्न पदाधिकारियों की व्याख्या करे और उनकी नियुक्ति के लिये राष्ट्रपति को, न्यायालयों को या विभिन्न विभागीय अध्यक्षों को समुचित अधिकार प्रदान करे। जिनके सम्बन्ध में यह व्यवस्था नहीं दी गई है वह उच्च पदाधिकारी मान लिए जाते हैं और उनकी संपुष्टि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होने पर सिनेट करती है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि राष्ट्रपति को नियुक्ति का अधिकार देकर उसके संरक्षण के प्रभाव क्षेत्र (power of patronage) को कितना व्यापक कर दिया गया है। यह बात तब और भी स्पष्ट हो जाती है जब हम इस बात पर ध्यान दें कि १९५४ के अन्त तक कुल २३,४३,७०७ पदों में से केवल २५,००० ऐसे थे जिन पर राष्ट्रपति सिनेट की सहमति से नियुक्ति करता था। कुल पदों में से लगभग ८५% पर नियुक्ति प्रतियोगात्मक परीक्षाओं द्वारा योग्यता के आधार पर होती है।

अल्पावकाश नियुक्ति (Recess Appointments)—जिन अधिकारियों की नियुक्ति के लिये सिनेट की सहमति आवश्यक होती है उनकी भी राष्ट्रपति एक विशेष विधि के अनुसार कुछ समय तक सिनेट की सहमति लिये बिना नियुक्ति कर सकता है। इस विधि को अल्पावकाश नियुक्ति कहते हैं। इस विधि के अनुसार जब सिनेट का अधिवेशन नहीं चल रहा है तब राष्ट्रपति सिनेट का अधिवेशन आरम्भ होने और उसके द्वारा नियुक्ति की पुष्टि करने तक के लिये अपने विशेषाधिकार से अधिकारियों की नियुक्ति कर सकता है। यदि सिनेट ने नियुक्ति की पुष्टि नहीं की और उसका अधिवेशन समाप्त हो जाता है तो सम्बन्धित पदाधिकारी हटा दिया जा सकता है परन्तु राष्ट्रपति पुन अगले अधिवेशन की समाप्ति तक के लिये इस पदाधिकारी को अपने उक्त विशेषाधिकार के द्वारा नियुक्त कर सकता है। इस विधि से नियुक्त पदाधिकारी को यदि वह ऐसे समय रिक्त स्थान पर नियुक्त किया गया है जब कि सिनेट का अधिवेशन चल रहा हो, और सिनेट ने नियुक्ति की पुष्टि नहीं की है तो पुष्टि न होने तक की अवधि का वेतन नहीं मिलता है।

सिनेट और महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ—यद्यपि संविधान में सिनेट को इस बात का पूर्ण अधिकार दिया गया है कि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत व्यक्ति की नियुक्ति को वह अपनी स्वीकृति प्रदान करे या न करे परन्तु महत्वपूर्ण पदों पर की जाने वाली नियुक्तियों के सम्बन्ध में सिनेट बहुत अंशों में राष्ट्रपति के निर्णय के अनुकूल ही अपने अधिकारों का उपयोग करती है। पैटरसन (Patterson) का मत है कि यद्यपि राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली नियुक्तियों को सिनेट द्वारा पुष्टि होना आवश्यक कहा गया है परन्तु तथ्य यह है कि यह प्रक्रिया केवल वैधानिक विधि मात्र है। विदेशों में अमेरिकी प्रतिनिधियों की नियुक्ति, प्रशासन विभागों के अध्यक्षों, उनके सहकारियों और सेना तथा नौ सेना के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति में सिनेट बहुत कम हस्तक्षेप या आपत्ति करती है। चूँकि सरकार के शासन-प्रशासन कार्यों के लिये राष्ट्रपति ही उत्तरदायी होता है इसलिये अपने प्रमुख सहकारियों की नियुक्ति में राष्ट्रपति को अधिक स्वतन्त्रता देना उचित ही है। यह विशेष सन्तोष की बात है कि अब तक सिनेट ने केवल ऐसे ८ अधिकारियों की नियुक्ति को अस्वीकार किया है जिन्हें मन्त्रिमण्डल में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया गया था। इन अस्वीकृतियों में अन्तिम नाम श्री स्ट्रास (Lewis Strauss) का है जिन्हें राष्ट्रपति आइजनहावर ने वाणिज्य विभाग (Department of Commerce) के लिये मनोनीत किया था परन्तु सिनेट ने १६ जून १९५९ को उनका नाम इस पद के लिए अस्वीकार कर दिया। १९२५ के उपरान्त यह इस प्रकार का प्रथम दृष्टान्त है जब कि राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रिमण्डल के लिये मनोनीत किसी व्यक्ति को सिनेट ने अस्वीकार किया हो।

इधर अनेक वर्षों से सिनेट ने न्यायाधीशों और विदेशी राजदूतों की नियुक्तियों को अनेक बार अस्वीकार किया और यदि अस्वीकार न भी किया तो घोर विरोध अवश्य किया है। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में और कम महत्व के पदों पर की जाने वाली नियुक्तियों को स्वीकार करने या अस्वीकार कर देने के अधिकारों का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग किया है। इससे यह आवश्यक है कि राष्ट्रपति ऐसी नियुक्तियों के लिये जब अपने मनोनीतों की सूची सिनेट के सम्मुख प्रस्तुत करे तो उसे विशेष सावधानी और दूर दृष्टि का परिचय देना चाहिए। १९४६ में राष्ट्रपति ट्रूमेन को विरोध करने वाले सिनेटरों तथा जनमत के दबाव के कारण नौ सेना के उप सचिव के पद पर मनोनीत एड पौले (Ed Pauley) का नाम सिनेट से वापस ले लेना पड़ा था।

सिनेट के प्रति शिष्टाचार (Senatorial courtesy)—कानून के अनुसार राष्ट्रपति को किसी भी पद के लिए कोई भी पदाधिकारी मनोनीत करने का पूरा अधिकार है परन्तु व्यवहार में अमेरिकी राजनीति की एक विशेष परम्परा से यह

अधिकार बहुत सीमित हो गया है। इस विशेष परम्परा के अनुसार, जिसे सिनेट के प्रति शिष्टाचार कहते हैं, जब किसी राज्य में संघीय अधिकारी की नियुक्ति करनी होती है तो राष्ट्रपति को नियुक्ति के लिये किसी व्यक्ति को मनोनीत करने के पूर्व उस राज्य के सिनेटरों से परामर्श कर लेना चाहिए। यदि राष्ट्रपति ने किसी सिनेटर को असन्तुष्ट या नाराज कर दिया तो उसके सभी सिनेटर साथी उसका साथ देते हैं और नियुक्ति की पुष्टि करना अस्वीकार कर सकते हैं क्योंकि वह सिनेट के प्रति शिष्टाचार (Senatorial courtesy) की इस शिक्षा को मानते हैं कि "शक्ति एक की नहीं समूह की होती है और समूह के बल पर ही एक भी शक्तिशाली होता है"। १६३६ में वर्जीनिया के दो सिनेटरों ने सफलता-पूर्वक इस परम्परा का उपयोग किया और अपने राज्य में फ्लायड राबर्ट्स (Floyed Roberts) की संघीय जिला जज के पद पर नियुक्ति रोक दी। इस परम्परा का लाभ वह सिनेटर भी उठा सकते हैं जो राष्ट्रपति की पार्टी के नहीं हैं। इसका भी एक उदाहरण है। १६५० में मिचिगन के सिनेटर होमर फरगूसन ने मोटर केरियर क्लेम्स कमीशन पर १६४८ के चुनाव में अपने असफल प्रतिद्वन्द्वी फ्रैंक एफ० हुक की नियुक्ति की पुष्टि नहीं होने दी। उन्होंने यह तर्क दिया कि उन्हें इस नियुक्ति पर व्यक्तिगत रूप से आपत्ति है, यह उनके सम्मान के विरुद्ध होगा। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि राष्ट्रपति का नियुक्ति करने का अधिकार सीमित है। इस सम्बन्ध में 'सिनेट' के अध्याय में विस्तार से लिखा गया है।

वास्तविक स्थिति—परन्तु अधिकांश संघीय नियुक्तियों की पुष्टि की आवश्यकता ही नहीं होती। इससे राष्ट्रपति को अपने संरक्षण क्षेत्र का व्यापक प्रसार करने का अधिकार प्राप्त हो गया है। इस अधिकार का वह व्यक्तिगत लाभ या राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी उपयोग कर सकता है। इस अधिकार के कुशल उपयोग पर राष्ट्रपति की बहुत कुछ शक्ति निर्भर करती है क्योंकि जब विभिन्न राज्यों में वह अपने इस अधिकार का उपयोग करता है तो इससे अपनी योग्यतानुसार वह कांग्रेस में उस राज्य के प्रतिनिधियों का समर्थन प्राप्त कर सकता है और साथ ही समर्थन खो भी सकता है। इसके साथ ही वह इन राज्यों के नागरिकों को रुष्ट कर अपनी पार्टी की शक्ति को भी कमजोर बना सकता है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करने में वह, चाहे अप्रत्यक्ष रूप से ही हो, वैधानिकता का मापदण्ड निर्धारित करता है। अत्यन्त उत्सुक और प्रयत्नशील सिनेटरों तथा प्रतिनिधियों का लक्ष्य रहता है कि उच्चतम न्यायालय के इन पदों पर उनके क्षेत्र का व्यक्ति मनोनीत किया जाय। राष्ट्रपति उनके दबाव को स्वीकार कर या अस्वीकृत कर दोनों रूप में कानून निर्माण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। ओग और रे का मत है कि राष्ट्रपति को नियुक्तियाँ करने

का ऐसा महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त है कि वह इसके द्वारा अपनी सरकार और पार्टी दोनों का प्रधान बन सकता है।

अंत में उन विभिन्न व्यवहारिक कठिनाइयों का भी वर्णन कर देना चाहिये जिनसे राष्ट्रपति का नियुक्ति करने का अधिकार सीमित हो जाता है। वास्तव में, जैसा कि लार्ड ब्राइस ने वर्णन किया है, राष्ट्रपति के व्यक्तिगत निर्णय का क्षेत्र बहुत सीमित है। उसको सिनेट की स्वीकृति चाहिये। जिन लोगों ने उसे चुना है उनको पुरस्कृत करना पड़ता है। उसको देश भर में नियुक्तियाँ इस कौशल से करनी पड़ती हैं कि जिससे स्थानीय राजनीतिज्ञ सतुष्ट रह सकें और जो लोग पार्टी के लिए कुछ कर चुके हैं या वर्तमान में कर रहे हैं उनको लाभान्वित कर उसे अपनी पार्टी की शक्ति को भी बढ़ाना है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति के संरक्षण अधिकार एक कुशल कूटनीति के हाथ में एक ऐसे इजन के सदृश्य बन सकते हैं जिसकी शक्ति का विस्तृत क्षेत्र में उपयोग किया जा सकता है।

(४) पदच्युति (Removals)

जहाँ तक पदच्युति का सम्बन्ध है अमेरिकी संविधान में केवल यह व्यवस्था दी गई है कि अमेरिका के सभी सिविल अधिकारियों को महाभियोग द्वारा (impeachment) देशद्रोह, घूसखोरी तथा अन्य अपराधों के लिए दण्डित होने पर पदच्युत किया जा सकता है। यह व्यवस्था त्रुटिपूर्ण है। इसमें दो त्रुटियाँ हैं। प्रथम, इसमें यह नहीं कहा गया है कि यह अधिकारी किसके द्वारा पदच्युत किये जायेंगे और द्वितीय, अयोग्यता, अकुशलता और उन अन्य कारणों से भी जिनके आधार पर महाभियोग नहीं चलाया जा सकता है अधिकारी पदच्युत किए जाने की स्थिति बन सकती है परन्तु यह पदच्युति किस प्रकार की जाय। यह प्रश्न संविधान के अन्तर्गत नयी सरकार का निर्माण होते ही कांग्रेस के सम्मुख आया। साधारणतया यह तर्क दिया गया कि जब तक राष्ट्रपति को अपने उन आधीन कर्मचारियों को पदच्युत करने का अधिकार नहीं दिया जाता जिनको वह अयोग्य समझता है तो कानून को सही-सही लागू करने के लिए उसको उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता है। अन्त में इस तर्क की विजय हुई।

सीमाएँ (limitations)—७५ वर्ष तक ऐसा प्रतीत हुआ कि सभी बातें सुव्यवस्थित हो गई हैं। परन्तु १८६७ में कांग्रेस ने राष्ट्रपति जॉनसन (Johnson) के विरुद्ध शत्रुता से प्रेरित होकर राष्ट्रपति के निषेध (veto) की उपेक्षा कर कार्य काल कानून (Tenure of Office Act) को स्वीकृत कर लिया जिसमें यह व्यवस्था की गई थी कि राष्ट्रपति किसी भी सिविल अधिकारी को—अपने मंत्रिमण्डल के सदस्य को भी—जिसकी नियुक्ति सिनेट की स्वीकृति से की गई

है बिना सिनेट की स्वीकृति के पदच्युत नहीं कर सकता है। यह कानून १८८७ में पूर्णतया रद्द कर दिया गया और संविधान के विरुद्ध घोषित कर दिया गया। परन्तु कानून-संहिता में से इसको अलग कर देने के पूर्व १८७६ में पास किए गए एक कानून ने इस में प्रतिपादित विवादग्रस्त सिद्धान्त की पुष्टि की। इस कानून में यह व्यवस्था दी गई थी कि प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के पोस्टमास्टरों की नियुक्ति और उनकी पदच्युति राष्ट्रपति सिनेट की सलाह और स्वीकृति से करेगा। १८७६ का कानून लगभग ५० वर्ष तक लागू रहा और उस पर विशेष आपत्ति नहीं की गई। परन्तु १९२६ में प्रसिद्ध मेयर्स के मामले (Myers case) में उच्चतम न्यायालय के सम्मुख इस कानून की वैधानिकता को चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय के निर्णय से राष्ट्रपति के पदच्युत करने के अधिकार को अधिक बल मिला क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि १८७६ के इस कानून में जहाँ तक राष्ट्रपति के उन अधिकारियों को पदच्युत करने के अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने की बात है जिनको उसने सिनेट की स्वीकृति से नियुक्त किया है वह संविधान के विरुद्ध है। इसका यह अर्थ हुआ कि पदाधिकारियों को पदच्युत करने के राष्ट्रपति के अधिकार को (सिनेट की स्वीकृति के अधीन कर) सीमित करने का कांग्रेस को कोई अधिकार नहीं है।

परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अधिकारियों को पदच्युत करने का राष्ट्रपति का अधिकार असीमित है, उस पर कोई रोक नहीं है। पदाधिकारियों के अनेक ऐसे वर्ग हैं जो राष्ट्रपति के अधिकार क्षेत्र के बाहर हैं। (१) संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों को संविधान की व्यवस्था के अनुसार केवल महाभियोग द्वारा ही अलग किया जा सकता है। (२) जो अधिकारी सिविल सर्विस के नियमों के आधार पर और योग्यता की प्रणाली के आधार पर नियुक्त किये गये हैं वे उसी दशा में हटाये जा सकते हैं जिससे सर्विस में कुशलता और कार्यक्षमता को बल प्राप्त होता हो। (३) १९३५ का हम्फ्री का मामला (Humphrey case) लिया जा सकता है जिसने यह स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस द्वारा नियुक्त किये गये विभिन्न बोर्डों और आयोगों (commissions) के सदस्यों को पदच्युत नहीं किया जा सकता है। इनको केवल बोर्ड अथवा आयोगों की स्थापना के समय कांग्रेस द्वारा निर्धारित नियमों के आधार पर ही पदच्युत किया जा सकता है। इस मामले ने यह सिद्ध कर दिया कि सामान्य तौर पर राष्ट्रपति सिनेट की स्वीकृति लिए बिना स्वतन्त्रता पूर्वक अधिकारियों को पदच्युत करने के अपने अधिकार का उपयोग कर सकता है परन्तु कांग्रेस को भी इस क्षेत्र में अपवाद (exceptions) निश्चित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। परन्तु इन सीमाओं के होते हुये भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राष्ट्रपति संरक्षण के बहुत महत्वपूर्ण अधिकारों

का उपभोग करता है और हजारों ऊँचे वेतन वाले अधिकारियों का नियुक्ति राष्ट्रपति के अधिकार में ही रहती है।

उच्चतम न्यायालय के निर्णयों ने यह भी निश्चित कर दिया है कि सिनेट या कांग्रेस राष्ट्रपति को किसी अधिकारी को पदच्युत करने के लिए विवश नहीं कर सकती। १९२४ में सिनेट ने राष्ट्रपति कूलिज (Coolidge) से नौ सेना मन्त्री एडविन डेनबी (Edwin Denby) को पदच्युत करने की मांग की। सिनेट ने यह सन्देह प्रकट किया कि नौ सेना मन्त्री एडविन डेनबी का सम्बन्ध उन तेल समझौतों (oil leases) से है जो ऐसी परिस्थितियों में किये गये हैं जिनसे धोखा देही और भ्रष्टाचार का आभास मिलता है। राष्ट्रपति कूलिज ने प्रशासक की स्वतन्त्रता पर जोर दिया और कहा कि किसी भी पदाधिकारी को महाभियोग के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से पदच्युत करना केवल राष्ट्रपति के हाथ में है। इसी प्रकार १९४३ में कांग्रेस ने व्यय विनियोग कानून (Appropriation Act) में यह संशोधन करके कि इन अधिकारियों को कुछ वेतन नहीं दिया जायगा तीन अधिकारियों को पदच्युत करने की चेष्टा की परन्तु अमेरिकी उच्चतम न्यायालय ने निर्णय किया कि यह संशोधन वास्तव में सर्वाहरण व्यवस्था (Bill of Attainder) है इसलिए अवैध है।

(५) क्षमादान, प्राण दण्ड स्थगित करना और राज्यक्षमा

प्रधान प्रशासनाधिकारी होने के कारण अपराधियों को क्षमादान (pardon) करना, उनके प्राणदण्ड को स्थगित करना (reprieve) और राज्य क्षमा (amnesty) करना राष्ट्रपति के विशेषाधिकार हैं। क्षमादान के अधिकार का प्रयोग राष्ट्रपति कांग्रेस तथा न्यायालयों से पूर्ण स्वतन्त्र होकर करता है, परन्तु इनके प्रयोग में कांग्रेस तथा न्यायालयों से पूर्ण स्वतन्त्र होने पर भी दो वैधानिक सीमायें होती हैं (१) जिस व्यक्ति को महाभियोग द्वारा दण्डित किया गया है राष्ट्रपति उसे क्षमा नहीं कर सकता, और (२) वह केवल उन्हीं मामलों में अपने क्षमादान के अधिकारों का प्रयोग कर सकता है जिन में अपराध संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध किया गया है न कि किसी राज्य के कानून के विरुद्ध।

यदि अपराधी राष्ट्रपति के पास क्षमादान के लिए प्रार्थना पत्र भेजे तो राष्ट्रपति उस प्रार्थना पत्र पर निम्नलिखित कार्यवाई कर सकता है—(१) पूर्ण और बिना शर्त क्षमादान, (२) शर्तों के आधार पर क्षमादान और यदि अपराधी उन शर्तों का पालन न करे तो क्षमादान वापस लिया जा सकता है, (३) बिना क्षमा किए अभिवचन पर मुक्ति (parole), (४) दण्ड घटा देना। इसके अन्तर्गत कारावास की अवधि कम की जा सकती है या जो दण्ड दिया गया है उसको घटाया

जा सकता है जैसे प्राणदण्ड के स्थान पर आजीवन कारावास (५) प्राणदण्ड को स्थगित किया जा सकता है, या बिना विधिवत स्थगन के दण्ड देने में विलम्ब किया जा सकता है, और (६) कुछ भी कार्यवाई करने से इन्कार किया जा सकता है। राष्ट्रपति ऐसे अपराधियों को सामूहिक-क्षमादान भी दे सकता है जिन्हें व्यक्तिगत रूप में नहीं वरन् संघीय कानून भंग करने के अपराध में जैसे विद्रोह फैलाने के प्रयत्न में एक साथ दण्डित किया गया है।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि राष्ट्रपति क्षमादान के अपने अधिकार का अपनी इच्छानुसार प्रयोग नहीं करता है। इस अधिकार का प्रयोग वह न्याय विभाग की सिफारिश के अनुसार ही करता है। साधारणतया राष्ट्रपति का कार्य सिफारिश को लागू करना भर होता है। परन्तु जो कुछ किया गया है उसका अंतिम उत्तरदायित्व राष्ट्रपति पर ही होता है और इस दिशा में वह कांग्रेस और न्यायालयों से पूर्ण स्वतन्त्र होता है। क्षमादान मुकदमे के पहले, मुकदमे के दौरान में और मुकदमें के निर्णय के बाद भी दिया जा सकता है परन्तु सामान्य तौर पर क्षमादान निर्णय हो जाने के पश्चात् ही दिया जाता है। परन्तु क्षमादान के द्वारा अपहरित सम्पत्ति इत्यादि वापस नहीं की जा सकती और न वह पद ही प्राप्त हो सकता है जो दण्डित होने के फलस्वरूप उससे छिन गया।

राष्ट्र के प्रधान प्रशासनाधिकारी के रूप में राष्ट्रपति संयुक्त राज्य अमेरिका की परराष्ट्र नीति निर्धारित करता है और विदेशों से अमरिका के सम्बन्धों का

(१) राष्ट्रपति और परराष्ट्र सम्बन्ध

संचालन करता है। प्रशासन विभागों के पुनर्संगठन के सम्बन्ध में नियुक्त हूवर आयोग (Hoover Commission on *Reorganisation of Executive Departments*) ने यहाँ तक घोषित किया कि केवल राष्ट्रपति ही विदेशी नीति के और उद्देश्यों की व्याख्या करता है और उनकी प्राप्ति के लिए उपयुक्त नीतियाँ लागू करता है। करेंट हिस्ट्री के अप्रैल १९५२ के अंक में श्री ग्राहम एच० स्टुअर्ट ने लिखा है कि चूँकि संविधान में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि विदेशी नीति निर्धारित करने का कार्य किसका है इसलिए राष्ट्रपति ने ही उस अधिकार को अपने हाथ में ले लिया है। परराष्ट्र नीति और परराष्ट्र सम्बन्ध निर्धारित करने के कार्य राष्ट्रपति अनेक साधनों के द्वारा सम्पन्न करता है —

(१) यद्यपि राजदूतों और अन्य राज्य प्रतिनिधियों की नियुक्ति की सिनेट द्वारा पुष्टि होना आवश्यक है फिर भी राष्ट्रपति इनकी नियुक्ति करने के अपने अधिकार के द्वारा परराष्ट्र विभाग के कर्मचारियों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष नियन्त्रण रखता है। परराष्ट्र मन्त्री (Secretary of State) राष्ट्रपति के इस कार्य को सम्भालने वाला प्रथम और प्रमुख सहकारी होता है और परराष्ट्र विभाग के

कर्मचारी, विदेशों में दूतावास आदि विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले सहकारी होते हैं। राष्ट्रपति विदेशों में 'विशेष', 'गुप्त' और 'निजी' दूतों (Envoys) को नियुक्त कर सकता है जिनकी नियुक्ति की उनके सरकारी कर्मचारी न होने के कारण सिनेट द्वारा पुष्टि की आवश्यकता नहीं होती है। इन सहकारियों को यदि वेतन दिया जाता है तो राष्ट्रपति के संयोगिक-कोष (Contingent Fund) से दिया जाता है।

(२) केवल राष्ट्रपति ही संयुक्त राज्य अमेरिका का अन्तर्राष्ट्रीय प्रवक्ता होता है। राष्ट्रपति ही विदेशी राजदूतों तथा विदेशी प्रतिनिधियों का स्वागत करता है और आवश्यकता पड़ने पर वही इनसे सम्बन्ध विच्छेद कर इन्हें वापिस भेज सकता है। विदेशों से होने वाले पत्र व्यवहार उसके द्वारा ही होते हैं या उन विभागों तथा कार्यालयों के द्वारा किये जाते हैं जिन पर राष्ट्रपति का नियन्त्रण रहता है, और विदेशी राष्ट्र भी संयुक्त राज्य से अपने सरकारी पत्र व्यवहार इन ही माध्यमों के द्वारा कर सकते हैं। परराष्ट्र विभाग के द्वारा राष्ट्रपति विदेशों से पत्रव्यवहार करता है, वहीं से सूचना प्राप्त करता है, उसके द्वारा नीति घोषित करता है, अपनी बात या दावों पर जोर डाल सकता है, समझौते का अवसर दे सकता है और हर प्रकार की पूछताछ का तथा प्रस्तावों एवम् सुझावों का उत्तर देता है। अपने विचारों को प्रकट करने के लिए वार्षिक तथा विशिष्ट सन्देश (message) उसका सर्वोत्तम साधन है और राष्ट्रपतियों ने नियमित रूप से इसका लाभ उठाया है। पृथकता का सिद्धान्त (Doctrine of Isolation), मनरो सिद्धान्त, अच्छे पड़ोसी की नीति (Good Neighbour Policy), राष्ट्रपति ट्रूमन का चतुरसूत्री कार्यक्रम और आइजनावर का मध्य-पूर्वी-क्षेत्र सबंधी सिद्धान्त आदि वह नीति सम्बन्धी घोषणाएँ हैं जिनको राष्ट्रपति ने कांग्रेस के नाम अपने सन्देश में घोषित किया था।

कभी कभी राष्ट्रपति को नीति निर्धारित करने के सम्बन्ध में कांग्रेस उपयोगी सुझाव देती है और राष्ट्रपति पर उसे मानने के लिए दबाव भी डालती है। पर राष्ट्रपति परराष्ट्रीय मामलों का संचालन करने में अपनी इच्छा का पूरा प्रयोग कर सकता है। वह प्रत्यक्ष तथा व्यक्तिगत रूप से इसका संचालन कर सकता है, यहाँ तक कि स्वयं अपने कार्यालय में बैठकर वह अपने देश के परराष्ट्र सम्बन्धों को निर्धारित कर सकता है जैसा प्रथम विश्वयुद्ध के अन्तकाल में राष्ट्रपति विल्सन ने किया। राष्ट्रपति परराष्ट्रों के प्रतिनिधियों से मुलाकात कर सकता है और किसी भी स्थान पर जो उपयुक्त समझा जाय उनके साथ परामर्श कर सकता है जैसा राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने किया। रूजवेल्ट ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अनेक बार प्रधान मन्त्री चर्चिल और मार्शल स्टालिन से मुलाकातें

की और परामर्श किया और एक बार च्यांगकाई शेक के साथ भी परामर्श किया।

(३) राष्ट्रपति को किसी नये राज्य को मान्यता (Recognition) प्रदान करने या मान्यता प्रदान न करने का भी अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार महत्वपूर्ण है। राष्ट्रपति इस अधिकार का प्रयोग कर बहुत कुछ अमेरिका की परराष्ट्र नीति और अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध निर्धारित कर सकता है।

(४) अन्तराष्ट्रीय सम्बन्धों को नियमित करने और उनमें स्थायित्व लाने का प्रमुख साधन संधि है और अमेरिका में संधि करने का अधिकार राष्ट्रपति के हाथ में एक ऐसा अस्त्र है जिससे वह अमेरिका की परराष्ट्र नीति को प्रभावित कर सकता है। सन्धि के लिये समझौता वार्ता करने के लिए राष्ट्रपति स्वतन्त्र है परन्तु उस सन्धि को कानून का रूप देने के लिए सिनेट के दो तिहाई बहुमत की स्वीकृति आवश्यक होता है। राष्ट्रपति के अधिकार में इस प्रतिबन्ध से निरन्तर संघर्ष को बल मिला है और कभी कभी तो प्रशासन विभाग और सिनेट के सम्बन्ध बहुत कटु भी हो गये हैं। वार्साइल की संधि (Treaty of Versailles) की स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति विल्सन को जो असफल संघर्ष करना पड़ा वह ऐसे अनेकों उदाहरणों में से एक है। इस प्रकार की निराशा से बचने के लिए कुछ राष्ट्रपतियों ने यह नीति अपनाई है कि संधि को स्वीकृति के लिए सिनेट के सम्मुख प्रस्तुत करने से पहिले विरोधी पक्ष के प्रमुख सिनेटरों से विचार विमर्श कर लिया जाय। इसके साथ ही यदि राष्ट्रपति संधि करते समय सिनेट की परराष्ट्र-सम्बन्ध समिति का विश्वास प्राप्त कर ले तो उसके लिये सहायक सिद्ध होगा। इस प्रकार उत्तरी अतलाँतिक समझौते को स्वीकृत कराने के लिये राष्ट्रपति ट्रूमेन को रिपब्लिकन सिनेटर वैन्डेनबर्ग (Vandenberg) पर उतना ही निर्भर करना पड़ा था जितना डेमोक्रेट सिनेटर कोनेली (Connelly) पर। इस प्रकार जापान से की गई संधि की पुष्टि के लिए जो प्रयत्न किये गये वह भी दोनों पार्टियों के आधार पर किये गये।

अमेरिकी संविधान में संधि करने की जो प्रणाली दी गई है उससे विशेष रूप से वर्तमान में बहुत असन्तोष पैदा हो रहा है—(१) दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता की कड़ी आलोचना की गई है, (२) यह आरोप लगाया गया है कि इस नियम के अनुसार 'विशेष हित' सरलतापूर्वक अपनी इच्छानुसार किसी भी संधि की पुष्टि कर सकते हैं और पुष्टि होने से रोक सकते हैं, (३) प्रतिनिधि सभा को न संधि करने का अधिकार प्राप्त है और न उसकी पुष्टि करने का, परन्तु उसे विवश होकर स्वीकृत सन्धियों को लागू करने के लिए व्यय विनियोग स्वीकार करने पड़ते हैं और कभी कभी कानून बनाने पड़ते हैं। इससे प्रतिनिधि सभा विषम स्थिति में पड़ जाती है। परन्तु सन्धि करने या न करने का निर्णय पूर्णतया

राष्ट्रपति पर निर्भर करता है और समझौता वार्ता करने पर भी उसका ही पूर्ण नियन्त्रण होता है। पैटरसन का कहना है कि राष्ट्रपति जनमत का समर्थन प्राप्त कर बल पूर्वक ऐसी सन्धि की पुष्टि करा सकता है जो सिनेट की इच्छानुसार न हो। राष्ट्रपति यद्यपि बिना सिनेट की स्वीकृति के किसी अन्य राष्ट्र से सन्धि नहीं कर सकता है परन्तु राजनीति का सचालन वही करता है और राजनीति के सचालन का अर्थ है अन्य राष्ट्रों से की जाने वाली सन्धियों को निर्धारित करना। यदि सरकार पर विश्वास बनाये रखना है और उसके सम्मान की रक्षा करनी है तो सिनेट को विवश हो कर राष्ट्रपति का समर्थन करना पड़ता है। राष्ट्रपति यदि सन्धि वार्ता चला रहे हैं तो उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वार्ता पूर्ण हो जाने तक वह उस सम्बन्ध में कुछ भी बतायें और जब किसी नाजुक मामले में सन्धि वार्ता सफल हो जाता है तो सामान्य रूप से वह सरकार की स्वीकृति ही होती है। सिनेट का उस सन्धि के विषय में चाहे कुछ भी मत हो परन्तु वह भी उसको स्वीकृति देने के लिए प्राय अपने को बाध्य समझता है।

(५) सिनेट द्वारा पुष्टि कराने की कठिनाई से बचने के लिए राष्ट्रपति ने एक नया ढग निकाला है। प्राय सन्धियाँ न कर उनके स्थान पर प्रशासकीय समझौते (executive agreements) किये जा सकते हैं। इन समझौतों में भी वही शक्ति और प्रभाव होता है जो सन्धि में होता है परन्तु यह माना गया है कि प्रशासकीय समझौते ऐसी बातों पर या ऐसी समस्याओं पर किये जाते हैं जो इतने महत्वपूर्ण नहीं होते कि उन पर सन्धियाँ की जाँय। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने प्रशासकीय समझौते के द्वारा ग्रेट ब्रिटेन के साथ पश्चिमी जगत में नौ-सेना के अड्डों के बदले निध्वसकों (Destroyers) का विनिमय किया। यह इसलिये किया क्योंकि राष्ट्रपति को भय था कि यदि सन्धि की गई तो सम्भव है सिनेट उसे स्वीकृति देने से इन्कार कर दे या उसमें विलम्ब कर दे। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने तो अपने अधिकार का प्रयोग कर अपने उत्तरदायित्व पर गुप्त समझौते तक किए, जैसे याल्टा समझौता। यह गुप्त समझौता मार्शल स्टालिन के साथ किया गया था जिसके अनुसार यह तय किया गया कि जापान से जीता गया क्षेत्र या चीनी क्षेत्र सोवियत रूस को सौंप दिया जायगा। समस्त व्यापार समझौते, उत्तरी अमेरिकी सीमा की किलेबन्दी न करने का निश्चय और अन्य अनेक कार्यवाइयाँ प्रशासकीय समझौतों पर ही आधारित हैं यद्यपि कांग्रेस ने इनकी पहले ही स्वीकृति दे दी थी।

ब्रिकर का सशोधन (Bricker Amendment)—विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् अमेरिकी कांग्रेस सदस्य युद्ध काल में राष्ट्रपति द्वारा किये गये अनेक गुप्त और प्रशासकीय समझौतों से अत्यन्त चिंतित हो गये

और उन्हें यह भय हुआ कि आपसी बात-चीत में, या मैत्रिक भोज के समय हुयी वार्तालाप में राष्ट्रपति कुछ वायदे कर अपने देश को फँसा सकता है अत इन आपसी समझौतों के सम्बन्ध में सभी प्रशासकों पर कड़ा नियन्त्रण रखा जाय। भविष्य में राष्ट्रपतियों को गुप्त समझौते कर राज्य की सुरक्षा को खतरा न पहुँचाने देने के लिए सिनेटर मैक्कैरन ने २१ जनवरी १९५२ को कांग्रेस में एक संयुक्त प्रस्ताव रखा जिसमें यह स्पष्ट किया गया था कि जब तक ऐसे समझौते पूरे पूरे संघीय रजिस्टर (Federal Register) में प्रकाशित नहीं हो जाते तब तक उनका कोई प्रभाव नहीं होगा।

परन्तु राष्ट्रपति के संधि करने के अधिकार पर प्रतिबन्ध लगाने के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण संशोधन हाल ही में प्रस्तुत किया गया। संविधान में यह महत्वपूर्ण संशोधन ओहियो के रिपब्लिकन सिनेटर जान डब्ल्यु० ब्रिकर ने प्रस्तुत किया। इस संशोधन में तीन महत्वपूर्ण बातें है (क) संधि का कोई भी भाग जो यदि अमेरिका के संविधान के विरुद्ध है तो अवैध माना जायगा। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमेरिका की सिनेट को देशान्तरगमनात्मक चिड़ियां (migratory birds) का शिकार नियमित करने का कोई अधिकार नहीं है। केवल विभिन्न राज्य ही इस सम्बन्ध में अपनी इच्छानुसार निर्णय कर सकते हैं। फिर भी १९२० में अमेरिका के राष्ट्रपति ने कनाडा के साथ एक संधि कर इस प्रकार की चिड़ियों का शिकार नियमित किया और अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने इस संधि को वैध माना। सन्धि कर किस प्रकार संविधान की व्यवस्थाओं का उल्लंघन किया जा सकता है यह उसका एक उदाहरण है। ब्रिकर संशोधन में इस त्रुटि को दूर करने की व्यवस्था की गई है, (ख) कोई भी संधि देश के अन्दर कानून की तरह तभी लागू की जा सकेगी जबकि उस सम्बन्ध में कानून बनाया जाय जो कि सन्धि की अनुपस्थिति में भी वैध होगा, और (ग) कांग्रेस को राष्ट्रपति द्वारा किसी अन्य राष्ट्र के साथ या अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के साथ किये गये प्रशासकीय समझौते को नियमित करने का अधिकार दिया जाय।

कुछ दिनों तक इन संशोधनों पर गरमागरम विवाद हुआ परन्तु ब्रिकर संशोधन स्वीकार न हुआ।

(६) संयुक्त राज्य अमेरिका की परराष्ट्र नीति निर्धारित करने में राष्ट्रपति का महत्वपूर्ण हाथ होता है। किसी नीति का स्वयं प्रणेता न होते हुए भी विश्व में उसकी घोषणा करने और उसे लागू करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करके वह उस नीति की सभी बातों और उद्देश्यों से देश को सम्बद्ध कर सकता है। वाशिंगटन ने देश को 'पृथक्वाद' (isolation) के मार्ग पर चलाया, मनरो ने १८२३ में मनरो सिद्धान्त को जन्म दिया, राष्ट्रपति टेलर (Tylers) के परराष्ट्र

मन्त्री डेनियल वेब्सटर ने चीन के प्रति 'मुक्त द्वार' (Open Door) की नीति लागू की। इनके अतिरिक्त अनेक सिद्धान्त और हैं। अमेरिकी परराष्ट्र नीति में सम्मिलित 'अच्छे पड़ोसी की नीति', ट्रूमन योजना, आइजनहावर की अणुशक्ति संग्रह योजना (Eisenhower's Atom Pool Plan) आदि उन उदाहरणों में से कुछ हैं जो इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि विश्व की राजनीति में अमेरिका के योगदान में राष्ट्रपति का कितना अधिक हाथ रहता है।

परराष्ट्र नीति के अन्तर्गत ही युद्ध की घोषणा भी निहित है। यद्यपि राष्ट्रपति युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता क्योंकि यह केवल कांग्रेस ही कर सकती है परन्तु राष्ट्रपति (१८४५-४६ में राष्ट्रपति पोल्क की तरह) ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है जहाँ कांग्रेस के पास युद्ध की घोषणा करने के सिवाय और कोई चारा ही न रह जाय। स्थल और जल सेना के प्रधान सेनापति की हैसियत से राष्ट्रपति सेना को इस रूप से सचालित कर सकता है कि युद्ध अवश्यम्भावी हो जाय। राष्ट्रपति पोल्क ने मेक्सिको के साथ और मैकिनले ने स्पेन के साथ इसी प्रकार युद्ध घोषित कराया। हाल ही जून १९५० में राष्ट्रपति ट्रूमन ने इसी आधार के अन्तर्गत अमेरिकी सेनाओं का संयुक्त राष्ट्र संघ की पुलिस के रूप में उत्तरी कोरिया की कम्युनिस्ट सेना से लड़ने के लिए दक्षिण कोरिया भेज दिया। सिनेटर टाफ्ट (Taft) ने कांग्रेस की स्वीकृति के बिना राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त होने वाले इस अधिकार के औचित्य का प्रश्न उठाया है यद्यपि सिनेटर टाफ्ट के पिता राष्ट्रपति टाफ्ट ने इस बात पर जोर दिया था कि प्रधान सेनापति की हैसियत से राष्ट्रपति देश के महत्त्वपूर्ण हितों की रक्षा के निमित्त सेना का प्रयोग कर सकता है।

परराष्ट्रों से अमेरिका के सम्बन्ध निर्धारित करने के लिए राष्ट्रपति अन्य अनेक साधनों का उपयोग कर सकता है। राष्ट्रपति किसी भी विदेशी राजदूत को देश छोड़कर चले जाने का आदेश दे सकता है और इससे अपने राष्ट्र को अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के द्वार तक पहुँचा सकता है। वह किसी ऐसे नवीन राज्य को मान्यता प्रदान कर उससे दौत्य सम्बन्ध स्थापित कर सकता है जिसने सम्मत प्रभुसत्ता (de jure sovereignty) के विरुद्ध विद्रोह कर दिया हो और इस प्रकार उस प्रभुसत्ता से युद्ध का खतरा मोल ले सकता है। यह साधारणतः माना जाता है कि राष्ट्रपति ट्रूमन ने इस्रायल राज्य को उचित समय से पहले ही मान्यता प्रदान कर दी थी। वह अपने सन्देशों और नीतियों द्वारा अन्य राज्यों से अपने राज्य का दौत्य-सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है। विल्सन और रूजवेल्ट ने सारी स्थिति को इस तरह सचालित किया कि कांग्रेस के पास १९१७ और १९४१ में क्रमशः जर्मन और जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा

करने के अतिरिक्त और दूसरा मार्ग ही नहीं रह गया था। कभी कभी राष्ट्रपति द्वारा अपनाई गई नकारात्मक (negative) नीतियों की भी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में गहरी प्रतिक्रिया एवम् प्रभाव हो सकता है। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के उपरान्त यूरोपीय-राष्ट्र सम्मेलन में भाग न लेने का निर्णय कर राष्ट्रपति हार्डिङ्ग ने युद्ध के पश्चात् कालीन यूरोप का चित्र ही बदल दिया। यदि राष्ट्रपति हार्डिङ्ग इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए होते तो स्थिति सम्भवतः दूसरी ही होती।

(७) इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति का यह भी कर्तव्य है कि विदेश-यात्रा करने वाले और प्रवासी अमेरिकी नागरिकों को भी संरक्षण प्रदान करे। यदि प्रवास काल में किसी भी नागरिक के साथ वहाँ दुर्व्यवहार किया जाता है तो राष्ट्रपति ऐसे मामलों में हस्तक्षेप कर हर्जाना देने की माँग कर सकता है।

आलोचना—इससे स्पष्ट है कि अमेरिकी शासन प्रणाली में परराष्ट्र सम्बन्धों पर नियन्त्रण बहुत कुछ राष्ट्रपति के हाथ में होता है। वह अपनी नियुक्ति करने के अधिकार से, सन्धि करने, युद्ध करने और नीति निर्धारित करने के अधिकार से संयुक्त राज्य अमेरिका की नीति को अपनी इच्छानुसार ढाल सकता है। लास्की के मतानुसार वास्तव में राष्ट्रपति नीति निर्धारित और लागू करता है। राष्ट्रपति के इस अधिकार तक किसी भी प्रतिद्वन्द्वी की पहुँच नहीं हो सकती। राष्ट्रपति के अधिकारों के सम्बन्ध में यह बात मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि घटना चक्र की चरम सीमाओं पर जब जनता यह प्रश्न करती है कि अमुक परिस्थिति में अब संयुक्त राज्य अमेरिका क्या करने वाला है तो वास्तव में जनता यह जानना चाहती है कि अमुक परिस्थिति में अब राष्ट्रपति क्या करेंगे। जब तक स्थिति ऐसी रहती है तब तक राष्ट्रपति नेतृत्व करने के लिए बाध्य हैं। राष्ट्रपति को जो अधिकार प्राप्त हैं वह अपार हैं साथ ही विकासशील (elastic) भी। राष्ट्रपति को अमेरिका में ऐसा स्थान प्राप्त है कि अमेरिकी जनता की दृष्टि में राष्ट्रपति द्वारा कोई कार्य अस्वीकार कर देना केवल राष्ट्रपति की व्यक्तिगत अस्वीकृति नहीं है बल्कि सारे संयुक्त राज्य अमेरिका की अस्वीकृति है। इस प्रकार व्यवहारिक रूप में राष्ट्रपति सारे राष्ट्र के सम्मान का प्रतीक होता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में परराष्ट्र नीति का संचालन करने की व्यवस्था की कड़ी आलोचना की गई है। यह कहा गया है कि इस प्रणाली से लोकतन्त्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत परराष्ट्र नीति निर्धारित करने और इसको लागू करने में जो आन्तरिक निर्बलतायें हैं वह अधिक बढ़ जाती हैं। अमेरिकी परराष्ट्र नीति संचालन में श्री हान्स मार्गेनथन (Hans Morgenthau)

ने वैधानिक स्तर पर चार त्रुटियाँ बताई हैं (१) सरकार के विभिन्न विभागों के कार्य निर्धारित करने में अनिश्चितता, (२) अधिकारों का पृथकरण, जिसके आधार पर प्रशासन और कानून निर्माण विभाग अपना कार्य पृथक रूप से करते हैं और कुछ सीमा तक एक दूसरे का ध्यान रखे बिना अपनी नीतियाँ लागू करते हैं, (३) नियन्त्रण और सन्तुलन की वह कुछ बाधायें जिनके आधार पर सरकार का एक विभाग दूसरे विभाग को अपनी नीति लागू करने से रोक सकता है, और (४) कुछ परिस्थितियों में कोई भी विभाग अकेले कोई कार्यवाई नहीं कर सकता है इसके लिए दोनों विभागों की स्वीकृति और संयुक्त प्रयत्न आवश्यक है। संविधान में यह नहीं स्पष्ट किया गया है कि परराष्ट्र मामलों के संचालन का अंतिम उत्तरदायित्व किस पर है।

इस प्रकार युद्ध की घोषणा करने या शांति स्थापित करने के लिए राष्ट्रपति के अधिकार पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हुए हैं (अ) व्यय के लिए धन केवल कांग्रेस ही स्वीकृत कर सकती है, (ब) संधि को मान्यता प्रदान करने और लागू करने के लिए कुछ कानूनों की आवश्यकता होती है और यह कानून भी केवल कांग्रेस ही पारित कर सकती है, (स) बिना कांग्रेस की अनुमति अथवा स्वीकृति प्राप्त किए हुए राष्ट्रपति किसी भी देश से दौत्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बात-चीत नहीं चला सकता है। इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि कुछ अधिकार राष्ट्रपति को देकर, कुछ सिनेट को और कुछ कांग्रेस को देकर परराष्ट्र नीति के संचालन का अन्तिम उत्तरदायित्व किस पर है। इस सम्बन्ध में कुछ भी स्पष्ट न कर, प्रोफेसर कारविन (Prof Corwin) के शब्दों में, "संविधान वास्तव में अमेरिकी परराष्ट्र नीति के संचालन का विशेषाधिकार प्राप्त करने के लिए परस्पर संघर्ष का निमन्त्रण मात्र है"। परराष्ट्र नीति का संचालन जिन बातों पर निर्भर करता है वह परराष्ट्रीय मामलों में प्रशासन के उत्साह पर प्रतिबन्ध का काम करते हैं। प्रशासन पर केवल कांग्रेस ही प्रतिबन्ध नहीं लगाती है बल्कि जनमत भी प्रतिबन्धक के रूप में सक्रिय रहता है जब कि अमेरिकी परराष्ट्र नीति को आगे बढ़ाने के लिए इसे सहायक होना चाहिए। जनमत को एक स्वतन्त्र और निश्चित शक्ति के रूप में संगठित करने का राष्ट्रपति पर भारी उत्तरदायित्व होता है।

(७) प्रतिरक्षा अधिकार

अमेरिका की सेना में प्रयुक्त वायु, स्थल और नौ-सेना तथा नागरिक सेना (State militia) का राष्ट्रपति ही प्रधान सेनापति होता है और इस रूप में अमेरिका की राष्ट्रीय प्रतिरक्षा का उत्तरदायित्व उस पर ही होता है। प्रतिरक्षा व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु, विशेषकर युद्ध-संचालन में, राष्ट्रपति ही होता है। स्थूल रूप में राष्ट्रपति के

प्रतिरक्षा अधिकारों के मुख्य तीन स्रोत हैं (अ) संविधान के अनुसार मुख्य प्रशासनाधिकारी होने के रूप में, (ब) अमेरिकी सेना का प्रधान सेनापति होने के रूप में, और (स) कांग्रेस से प्राप्त अनुदान (grants) व अधिकार। व्यवहार में इन तीन प्रकार से प्राप्त अधिकारों में विभेद करना सरल नहीं है। मुख्य प्रशासनाधिकारी के रूप में राष्ट्रपति को सिनेट की स्वीकृति पर स्थल जल तथा वायु सेना के रेगुलर और रिजर्व अफसरों को नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त है, उसे स्थल, जल तथा वायु विभागों का निरीक्षण करने और उनको संचालित करने का अधिकार प्राप्त है। उसे स्थल तथा जल सेना के सैन्य-नियमों को लागू करवाने और संविधान के अन्तर्गत अपनी ओर से पूरक नियमों को बनाने और लागू करवाने का भी अधिकार प्राप्त है। वही स्थल, जल और वायु सेना के व्यय का बजट प्रस्तुत कर सकता है और कानूनों को सही तौर पर लागू करवाने तथा मनमाने और राज्यों को (विधान मण्डल या गवर्नर द्वारा माँग करने पर) आन्तरिक उपद्रवों से बचाने के लिये आवश्यकतानुसार सेना का उपयोग करने का भी उसे अधिकार प्राप्त है।

प्रधान सेनापति के रूप में युद्ध काल में राष्ट्रपति के विशेषाधिकार उसे वह स्थान दे देते हैं जिसका अन्य किसी भी लोकतन्त्रीय देश में उदाहरण नहीं मिलता है। सेना की गतिविधि का संचालन करने, युद्धक जहाजों (vessels of war) की गतिविधि नियन्त्रित करने और आक्रमणों की योजना बनाने तथा उनको लागू कराने का केवल एकमात्र उसे ही अधिकार प्राप्त है। राष्ट्रपति प्रधान सेनापति के रूप में जो भी आदेश जारी करता है उसको कानून की मान्यता प्राप्त होती है। युद्ध संचालन में वह दुश्मन की स्थिति को कमजोर करने और उस पर विजय प्राप्त करने के लिए जो कुछ कार्यवाही आवश्यक समझे, कर सकता है। यद्यपि कांग्रेस ने आवश्यक अधिकार प्रदान नहीं किए किन्तु फिर भी राष्ट्रपति विल्सन ने व्यापारी जहाजों में भी प्रतिरक्षा के निमित्त तोपें लगवा दीं। ब्रोगन (Brogan) का कहना है कि युद्ध सम्बन्धी अधिकार अस्पष्ट हैं, इनकी व्याख्या भी नहीं हो सकती और राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार इनका उपयोग कर सकता है। उदाहरण के लिए गृह युद्ध के समय राष्ट्रपति लिंकन ने उन राज्यों में भी जो गृह युद्ध के क्षेत्र के बाहर थे बन्दी प्रत्यक्षीकरण समादेश (Writ of habeus corpus) स्थगित कर दिया और संघ के विरुद्ध युद्ध ग्रस्त क्षेत्रों में गुलामों को स्वतन्त्र कर दिया और अपने ही बल पर तथा अपनी ही जिम्मेदारी पर उन युद्ध सम्बन्धी अधिकारों का उपयोग किया जिनका इतिहास में पहिले कभी उपयोग नहीं हुआ था। राष्ट्रपति विल्सन ने प्रथम विश्व युद्ध में और राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने द्वितीय विश्व-युद्ध में और भी गम्भीर और व्यापक अधिकारों का उपयोग किया।

राष्ट्रपति का एक कर्तव्य यह भी है कि वह प्रत्येक राज्य में गणतन्त्रीय शासन प्रणाली को बनाये रखने का विश्वास दिलाये और उनकी बाहरी आक्रमणों से तथा आन्तरिक उपद्रवों से रक्षा करे। इस कर्तव्य का पालन करने के लिए भी राष्ट्रपति अपार अधिकारों को प्राप्त कर सकता है।

राष्ट्रपति कांग्रेस से भी साधन और अधिकार प्राप्त करता है और उसके सहयोग से कार्य करता है। कांग्रेस उसे धन और जन देती है और राष्ट्रपति इन दोनों साधनों का अपनी इच्छानुसार उपयोग करता है। कांग्रेस उसको अनेक अधिकार भी प्रदान करती है। कभी-कभी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत अनुदानों से राष्ट्रपति उन प्रतिबन्धों से मुक्त हो जाता है जो स्वयं कांग्रेस ने लागू किये हैं। उदाहरणार्थ १६४१ में जब संयुक्त राज्य अमेरिका भी युद्ध में सम्मिलित हो गया तब राष्ट्रपति को सलेक्टिव सर्विस के अन्तर्गत केवल पश्चिमी राष्ट्रों में और अमेरिकी उपनिवेशों में ही नहीं बल्कि विश्व के सभी राष्ट्रों में अपने राष्ट्रीय स्वयं सेवकों को भर्ती करने और उनको काम पर लगाने का अधिकार प्रदान किया गया था। बहुधा कांग्रेस द्वारा स्वीकृत अनुदानों से राष्ट्रपति को युद्ध के लिए भर्ती करवाने, युद्ध सामग्री के उत्पादन, यातायात, संचार इत्यादि से सम्बन्धित अनेक अधिकार प्राप्त हुए जिनका वह अपनी इच्छानुसार उपयोग कर सकता था। १६५७ में राष्ट्रपति आइजनहावर ने कांग्रेस से यह मांग की कि मध्य पूर्व यूरोप में साम्यवादी संकट को रोकने के लिये आवश्यकता अनुसार उसे अमेरिकी सैनिक शक्ति के प्रयोग का अधिकार दिया जाये। राष्ट्रपति की माँग को कांग्रेस ने स्वीकार किया।

अंत में यह बताना अनुचित न होगा कि स्थल तथा जल सेना के प्रधान सेनापति के रूप में राष्ट्रपति युद्ध संचालन सीधे अपने हाथ में ले सकता है और सारी सैन्य कार्यवाही का संचालन रण क्षेत्र में जाकर स्वयं कर सकता है।

युद्ध, आन्तरिक अशांति या आर्थिक संकट से उत्पन्न राष्ट्रीय संकट के समय राष्ट्रपति को अपार अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। जब तक संकट काल रहता है तब तक जितने भी अधिकारों की वह मांग करता है और प्रयोग करता है वह उसे प्राप्त हो सकते हैं। १७ मार्च, १६५४ को राष्ट्रपति आइजनहावर ने घोषित किया कि

(८) संकट-कालीन अधिकार

यदि अमेरिका का राष्ट्रपति अमेरिका पर आक्रमण होने पर उसका सामना करने और आक्रमणकारी को पीछे हटाने के हेतु तत्काल कार्यवाई नहीं करता है (चाहे युद्ध घोषित करने के लिए उस समय कांग्रेस की स्वीकृति मिल सकती हो या न मिल सकती हो), तो वह मृत्यु दण्ड पाने के योग्य है। ऐसी स्थितियों में राष्ट्रपति को कितने अधिक अधिकार प्राप्त हो सकते हैं उसका कुछ अनुमान देश के अन्दर एन्ड्रू जैकसन के संयुक्त राज्य अमेरिका के बैंक (Bank of United

States) से प्रविद संघर्ष से और ४ मार्च १६३३ को पदग्रहण करने के पश्चात अमेरिका पर छाये आर्थिक सकट की स्थिति में फ्रेंकलिन रूजवेल्ट द्वारा प्रयुक्त अधिकारों से लगाया जा सकता है। गृह युद्ध के समय राष्ट्रपति विल्सन ने और द्वितीय विश्वयुद्ध के समय राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने जिन अपार अधिकारों का प्रयोग किया उससे युद्ध काल में राष्ट्रपति के अधिकारों का आभास मिलता है। १६४२ में एक समय राष्ट्रपति ने कृषि उपज की कीमतों से सम्बन्धित कानून को रद्द करने की माग की क्योंकि राष्ट्रपति की राय में वह कानून भयंकर मुद्रा-स्फीति (inflation) का कारण था। परन्तु जब कांग्रेस ने राष्ट्रपति की माग स्वीकार करने के प्रति उदासीनता दिखाई तो राष्ट्रपति ने यह घोषित किया कि सविधान के अन्तर्गत और कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कानूनों के अनुसार राष्ट्रपति को सकट से रक्षा करने के निमित्त और युद्ध में विजय प्राप्त करने के हेतु कोई भी आवश्यक कार्यवाही करने का अधिकार प्राप्त है और इस प्रकार यदि कांग्रेस की स्वीकृति नहीं मिली तो केवल एक मात्र घोषणा से वह कोई भी कानून जारी कर सकता है। इस घोषणा ने सारे देश को आश्चर्य चकित कर दिया। युद्ध घोषित हो जाने के उपरात राष्ट्रपति अनेक अधिकारों का प्रयोग कर सकता है—

(१) वह स्थल तथा नौ-सेना को मोर्चों पर भेज सकता है, रण क्षेत्र में जाकर स्वय उनका संचालन कर सकता है और युद्ध सम्बन्धी सारी कार्यवाई अपने हाथ में ले आक्रमणों की योजना बनाकर उनको कार्यान्वित करा सकता है। वह फौजी अधिकारियों को निकाल सकता है और सेना का आकार तथा उसका रूप निर्धारित कर सकता है।

(२) शत्रु की स्थिति निर्बल करने के लिए वह कुछ भी कर सकता है जैसे बन्दी प्रत्यक्षीकरण समादेश (Habeus Corpus) स्थगित कर सकता है।

(३) वह जनमत पर नियन्त्रण रख सकता है जिससे नागरिक स्वतन्त्रता पर भी प्रहार हो सकता है।

(४) राष्ट्रपति ने कभी कभी कांग्रेस द्वारा विधिवत युद्ध की घोषणा किये बिना युद्ध घोषित किया है और युद्ध करने के आदेश जारी किए हैं।

(५) युद्ध के समय जीते गये देशों पर राष्ट्रपति ही शासन करता है। परन्तु अब कांग्रेस के एक नये नियम के अनुसार वह जीतने के तुरन्त उपरात वहाँ का शासन अपने हाथ में ले लेती है।

(६) देश में सकट उपस्थित होने पर वह सेना का उपयोग कर सकता है, जैसे राज्यों की गणतन्त्र शासन प्रणाली की रक्षा के लिए, हड़ताल रोकने के लिए, इत्यादि।

(७) वह फौजी-शासन की घोषणा कर सकता है और फौजी न्यायालयों की स्थापना कर सकता है।

(८) देश के आर्थिक जीवन को नियन्त्रित करने के लिए भी वह आवश्यक कार्यवाई कर सकता है। राष्ट्रपति विल्सन और रूजवेल्ट ने युद्ध काल में रेल यातायात अपने हाथ में ले लिया, मूल्य निर्धारित किये और विभिन्न रीतियों से राष्ट्र के आर्थिक जीवन को नियन्त्रित किया यद्यपि अमेरिकी सरकार की नीति का आधार यदभाव्यम नीति (laissez faire) है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने प्रधान सेनापति के रूप में निम्नलिखित अधिकारों का प्रयोग किया—

(१) युद्ध सामग्री के उत्पादन में लगे उद्योगों में श्रम सम्बन्धी झगड़ों और हड़तालों में हस्तक्षेप (इसके लिए राष्ट्रीय युद्धश्रम परिषदों का निर्माण किया गया)।

(२) युद्ध के ठेकों पर काम करने वाले उद्योग कारखानों का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लेना।

(३) देश की यातायात की सुविधाओं का युद्ध कार्य में सहायता देने के लिए प्रयोग करना।

(४) व्यापारी जहाजों को युद्ध कार्य के लिए ले लेना।

(५) हड़ताल हो जाने पर युद्ध सामग्री का उत्पादन करने वाले कारखानों में स्थल तथा जल सेना के जवानों की नियुक्ति।

(६) आवश्यक युद्ध सामग्री का उत्पादन करने वाले उद्योगों के लिए श्रम की व्यवस्था करना (इसके लिए युद्ध जनशक्ति आयोग स्थापित किए गए)।

वास्तव में युद्ध आरम्भ होने से पूर्व ही २८ जून १९४० के एक कानून द्वारा राष्ट्रपति को निजी तौर पर किये जाने वाले निर्यातों में सभी युद्ध-सामग्री के निर्यात को प्राथमिकता देने का अधिकार दे दिया गया। १६ सितम्बर १९४० को एक दूसरा कानून सलेक्टिव ट्रेनिंग और सर्विस कानून (Selective Trai ning and Service Act) स्वीकार किया गया जिसके द्वारा राष्ट्रपति को अनिवार्य सैन्य-भर्ती का अधिकार दे दिया गया। ११ मार्च १९४१ को तीसरा कानून लैंड लीज कानून (Land Lease Act) पास किया गया जिसके अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया कि वह किसी भी ऐसे देश की सरकार को सामग्री के रूप में या सामग्री खरीदने के लिए ऋण के रूप में सहायता दे सके जिसकी युद्ध कार्यवाई संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए लाभदायक कही जा सकती हो। पर्ल हार्बर के आक्रमण के ११ दिन पश्चात् प्रथम युद्ध अधिकार कानून (First War Powers Act) पास किया गया जिसके अनुसार राष्ट्रपति को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हुए—(१) डाक, केबल (cable), रेडियो द्वारा

अमेरिका तथा राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित किसी भी अन्य देश के बीच भेजे और उनसे प्राप्त किये जाने वाले सन्देशों की जाँच (censorship) की जायगी, (२) युद्ध संचालन से सम्बन्धित कार्यों को वह एक विभाग से दूसरे विभाग के हाथ सौंप सकेगा, (३) प्रतिरक्षा सम्बन्धी ठेकों में संशोधन किया जा सकेगा और बिना प्रतियोगिता के ठेके दिये जा सकते हैं, और (४) विदेशियों (alien) के लेन-देन पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकेगा और संयुक्त राज्य अमेरिका में उनकी सात करोड़ डालर की सम्पत्ति को राष्ट्रीय हित के उपयोग में लाया जा सकेगा। तीन माह के पश्चात् द्वितीय युद्ध अधिकार कानून (Second War Powers Act) पास किया गया जिसके अनुसार राष्ट्रपति के मकान, औजार और अन्य सामग्री प्राप्त करने के अधिकारों को बढ़ा दिया गया और देश में राशनिंग निर्धारित करने का अधिकार प्रदान किया गया। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे-वैसे राष्ट्रपति को अधिकार प्रदान किये गये और युद्ध समाप्त होने से पहिले राष्ट्रपति को जितने युद्ध सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हो गये थे उतने उनसे पहिले किसी अन्य राष्ट्रपति को प्राप्त नहीं हुए थे।

✓(ख) विधान निर्माण सम्बन्धी अधिकार

राष्ट्रपति और काँग्रेस का क्या सम्बन्ध होना चाहिये यह अमेरिका के राजनीतिक इतिहास में निरन्तर सक्रिय विभिन्न शक्तियों द्वारा निर्धारित किया गया है। उपनिवेशिक काल के अनुभवों से जनता इस परिणाम पर पहुँची थी कि राजनीतिक शक्ति और विशेषकर कार्यकारिणी शक्ति इतनी खतरनाक होती है कि इस पर उचित प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिये। इसलिये इतिहास की दृष्टि से अधिकारों के पृथक्करण की योजना में राष्ट्रपति और काँग्रेस दो परस्पर विरोधी अङ्ग थे। यद्यपि संविधान के निर्माताओं ने सरकार के प्रशासन और व्यवस्थापिका सम्बन्धी विभागों को अलग अलग कर दिया परन्तु उन्होंने यह अनुभव किया कि यदि सरकार के दोनों विभागों में पूर्ण पृथक्करण होगा तो इससे सरकार का कार्य नहीं चल सकेगा। परिणामस्वरूप उन्होंने दोनों के बीच सहयोग की और दोनों के कार्यों को सुसम्बद्ध करने की ऐसी व्यवस्था भी की कि वह एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र में प्रतिबन्ध और सन्तुलन स्थापित कर सकें। ऑग और रे का मत है कि वास्तविक रूप में जैसे काँग्रेस केवल कानून बनाने वाली संस्था ही नहीं है वैसे ही राष्ट्रपति भी केवल प्रशासक ही नहीं है। राष्ट्रपति के प्रायः सभी कार्यों और उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त आदेश जारी करने और नियम बनाने के निरन्तर बढ़ते अधिकारों के आधार पर वह अपने अधिकार क्षेत्र के अन्दर स्वयं एक प्रकार से कानून निर्माता है और केवल संविधान के

अनुरूप ही नहीं बल्कि व्यवहारिक आवश्यकताओं के आधार पर भी राष्ट्रपति का काँग्रेस के कानून निर्माण कार्य में बहुत बड़ा हाथ होता है। यदि कानून निर्माता के रूप में राष्ट्रपति के व्यापक कार्य क्षेत्र का अनुमान करें तो उससे इस कथन की सत्यता प्रमाणित हो जाता है।

संविधान में राष्ट्रपति को निम्नलिखित अधिकार दिये गये हैं--(१) वह काँग्रेस के विशेष अधिवेशन बुला सकता है, (२) यदि काँग्रेस के दोनों सदन बैठक स्थगित करने के समय पर सहमत नहीं हो पाते तो उसे उनको स्थगित करने का अधिकार प्राप्त है, (३) वह ऐसे सन्देश भेज सकता है जिनमें संयुक्त राज्य की स्थिति की सूचना का वर्णन हो, (४) काँग्रेस द्वारा विचार किए जाने के लिये विषयों का प्रस्तावना कर सकता है, और (५) काँग्रेस द्वारा स्वीकृत विधेयकों (bills), आदेशों और प्रस्तावों पर अपने निषेधाधिकार (veto) का प्रयोग कर सकता है। संविधान में दिये गये अधिकारों के अतिरिक्त भी अनेक अन्य साधन व व्यवस्थाएँ विधान प्रदत्त अधिकारों के बराबर ही महत्वपूर्ण हैं जैसे काँग्रेस के सदस्यों से विचार-विमर्श करने का अवसर, विधेयकों को तैयार करने और काँग्रेस में उनको प्रस्तुत करने का निर्देशाधिकार, अपनी पार्टी के कानून सम्बन्धी वचनों की पूर्ति के लिए कार्य करने का उत्तरदायित्व, कानून सम्बन्धी कार्यक्रम पर जनता से अपील करना और नीति निर्धारित करने में अपने नेतृत्व से काँग्रेस के कार्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना।

काँग्रेस के दोनों सदनों में से किसी का सदस्य न होते हुये भी राष्ट्रपति उसके कानून बनाने के कार्य पर बहुत कुछ नियन्त्रण रख सकता है। यद्यपि १६३३ में २०वें संशोधन के पास हो जाने से इसका महत्व काफी घट गया है परन्तु फिर भी राष्ट्रपति का काँग्रेस के दोनों सदनों या दोनों में से किसी भी सदन का विशेष अधिवेशन बुलाने का अधिकार प्राप्त है। १६३३ से पूर्व नव निर्वाचित

(१) काँग्रेस के अधिवेशनों पर नियन्त्रण

काँग्रेस का अधिवेशन निर्वाचन के उपरान्त लगभग एक वर्ष से अधिक समय बीत जाने तक नहीं हो पाता था और इस बीच पुरानी काँग्रेस की ही बैठकें हुआ करती थी। पुरानी काँग्रेस की बैठकों को 'लेम-डक सेशन' (Lame Duck Session) कहा जाता था। इन अधिवेशनों के इस नामकरण का कारण यह था कि पुरानी काँग्रेस का कार्यकाल मार्च में समाप्त होता था और इस बीच नवम्बर में नव निर्वाचन हो जाने से अनेक पुराने काँग्रेस सदस्य पराजित हो जाने पर भी अधिवेशनों की कार्यवाही में भाग लेते रहते थे। अब स्थिति बदल गई है। २०वें संशोधन के अनुसार नये सदस्यों का निर्वाचन होते ही काँग्रेस का कार्यकाल आरम्भ हो जाता है। काँग्रेस के नियमित अधिवेशन प्रतिवर्ष जनवरी

से आरम्भ होते हैं और ग्रीष्म तक चलते हैं। सामान्य तौर पर ३१ जुलाई इन नियमित अधिवेशनों की अंतिम तिथि निर्धारित की गई है परन्तु यह अनिवार्य नहीं। विशेष अधिवेशन बुलाने की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। विशेष अधिवेशन तभी बुलाये जाते हैं जब संकटकालीन स्थिति उत्पन्न हो जाय, जैसे १९३९ में यूरोप में युद्ध छिड़ जाने से पैदा हो गई थी। युद्ध छिड़ जाने पर कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया था। राष्ट्रपति को अपने निर्णय पर कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाने का अधिकार प्राप्त है इसलिए कांग्रेस के अधिवेशन काल पर राष्ट्रपति का नियंत्रण रहता है। वह कांग्रेस से आवश्यक कानून पास हो जाने तक अधिवेशन जारी रखने का अनुरोध कर सकता है और यदि अनुरोध स्वीकार होने में शंका हो तो राष्ट्रपति विशेष अधिवेशन बुलाने की धमकी देकर कांग्रेस पर दबाव डाल सकता है।

(२) अधिवेशन स्थगन

यदि कांग्रेस के दोनों सदन अधिवेशन स्थगित करने के समय के सम्बन्ध में एक-मत न हो सकें तो राष्ट्रपति को कांग्रेस अधिवेशन स्थगित कर सकने का अधिकार प्राप्त है यद्यपि साधारणतया अधिवेशन के आरंभ होने और उनके समाप्त होने पर राष्ट्रपति का कोई नियंत्रण नहीं है। संविधान की व्यवस्था के अनुसार कांग्रेस का कार्यकाल दो वर्ष होता है और उसका प्रतिवर्ष एक नियमित अधिवेशन होता है जो जनवरी के प्रथम सप्ताह में आरंभ होता है।

(३) संदेश (Messages)

यह सत्य है कि राष्ट्रपति कांग्रेस के दोनों सदनों में से किसी एक का भ सदस्य नहीं होता है और इस कारण वह न तो कोई विधेयक प्रस्तुत कर सकत है और न उसकी स्वीकृति के लिए प्रयत्न कर सकता है। वह अपने मन्त्रियों द्वारा भी यह काम कराने में असमर्थ होता है क्योंकि मन्त्रिगण भी कांग्रेस के सदस्य नहीं होते। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि संविधान ने राष्ट्रपति को इस सम्बन्ध में बिल्कुल असहाय छोड़ दिया हो। संविधान में कुछ ऐसी व्यवस्थायें हैं जिनके आधार पर वह कांग्रेस को प्रभावित कर सकने की क्षमता रखता है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को समय समय पर कांग्रेस को संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थिति के सम्बन्ध में सूचना देना अनिवार्य है और वह कांग्रेस से ऐसे उपायों पर विचार करने की प्रस्तावना कर सकता है जिन्हें वह आवश्यक और उपयोगी समझता है। कांग्रेस के नाम राष्ट्रपति के संदेश का यही आधार है और आरम से ही राष्ट्रपतियों ने इसका स्वतन्त्रता से उपयोग किया है। काफी लम्बे समय से यह परम्परा सी हो गई है कि कांग्रेस के नियमित अधिवेशन के आरंभ में राष्ट्रपति संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थिति का संक्षिप्त विवरण और आवश्यक कानूनों को बनाने के सुझाव अपने

सन्देशों द्वारा प्रस्तुत करता है। वर्तमान समय में अधिवेशन आरम्भ होने के तीन चार दिन के अन्दर ही वार्षिक बजट के साथ राष्ट्रपति का दूसरा सन्देश प्रस्तुत किया जाता है। १९४६ के पूर्ण रोजगार कानून के अनुसार अधिवेशन आरम्भ होने के उपरान्त ही 'राष्ट्रीय उत्पादन और रोजगार बजट' या आर्थिक बजट प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। यह बजट आर्थिक परामर्शदात्री परिषद् द्वारा किए गए राष्ट्र की स्थिति के अध्ययन के आधार पर तैयार किया जाता है और उसमें वह नीतियाँ भी प्रस्तुत की जाती हैं जिन्हें राष्ट्रपति उत्पादन का उच्चस्तर और पूर्ण रोजगार की स्थिति बनाये रखने के लिए आवश्यक समझता है। इनके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर या राष्ट्रपति की इच्छानुसार कांग्रेस के अधिवेशन की अवधि में अनेक छोटे छोटे सन्देश जारी किये जा सकते हैं, कभी कभी तो ऐसे संदेशों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। यह संदेश विशेष समस्याओं या योजनाओं के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् रूप से जारी किए जा सकते हैं।

राष्ट्रपति वाशिंगटन ने अपना संदेश कांग्रेस में स्वयं भाषण द्वारा दिया था परन्तु राष्ट्रपति जेफरसन ने १८०१ में कांग्रेस के नाम अपना [illegible] लिखित रूप में भेजकर एक नई परम्परा आरम्भ की। यह परम्परा [illegible] रही। इसके पश्चात् राष्ट्रपति विल्सन ने पुनः स्वयं भाषण कर [illegible] परम्परा का पुनः सृजन किया। तदोपरान्त मौखिक और लिखित [illegible] जाते रहे और राष्ट्रपति ट्रूमन ने तो लिखित भाषण का [illegible] अपनाया। राष्ट्रपति आइजनहावर ने मौखिक [illegible] है। कांग्रेस में जाकर स्वयं भाषण करने से राष्ट्रपति को [illegible] का प्रभाव डालने का अवसर मिलता है, [illegible] माध्यम से सारे देश पर भी प्रभाव होता है [illegible] के लिये तो प्रशासक तथा व्यवस्थापिका [illegible] में आ जाते हैं।

सन्देशों का विषय और [illegible] निर्माताओं को घरेलू तथा परराष्ट्र [illegible] है और विभिन्न समस्याओं को [illegible] है। सन्देशों की संख्या पर [illegible] प्रतिबन्ध नहीं है। राष्ट्रपति [illegible] निमित्त निश्चित उत्तर [illegible] जाना चाहिए। कभी राष्ट्रपति [illegible] भी भेज सकता है [illegible] से। कभी राष्ट्रपति [illegible]

६

प्रयत्न के कारणों पर सन्देश द्वारा प्रकाश डाल सकता है। सन्देश द्वारा नीति सम्बन्धी घोषणा भी की जा सकती है जिसका अधिक सम्बन्ध कांग्रेस से ही नहीं बल्कि देश की साधारण जनता और विश्व से होता है। प्रसिद्ध मनरो सिद्धान्त और विल्सन की १४ सूत्री योजना की घोषणा सन्देशों के माध्यम से ही की गई। ५ जनवरी १९४९ को राष्ट्रपति ट्रूमन ने अपने सन्देश द्वारा अनेक विषयों की समालोचना प्रस्तुत की, उनकी टीका की और इस सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें भी प्रस्तुत कीं और उनकी विस्तृत रूप रेखा तैयार करने का कार्य कांग्रेस पर छोड़ दिया। कुछ अन्य विषयों पर राष्ट्रपति ट्रूमन ने निश्चित सिफारिशें कीं, जैसे टाफ्ट हार्टले कानून रद्द किया जाय, न्यूनतम वेतन में ४० से ७५ प्रतिशत तक वृद्धि की जाय, इत्यादि। जनवरी १९५७ में "आइजनहावर सिद्धान्त" की घोषणा कांग्रेस के नाम सन्देश में ही की गई थी।

इन सन्देशों के महत्व और प्रभाव के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कोई बात नहीं कही जा सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्रपति के इन सन्देशों का सरकार के अन्य किसी वक्तव्य (Document) से अधिक प्रचार किया जाता है। वित्तीय और आर्थिक बजट से सम्बन्ध रखने वाले सन्देशों के अतिरिक्त कांग्रेस के लिए यह आवश्यक नहीं है कि अन्य सन्देशों को आदर पूर्वक सुनने के साथ ही उन पर कुछ कार्यवाही भी करे। यहाँ तक कि उक्त लिखित दोनों सन्देशों के सम्बन्ध में भी कांग्रेस सभी वांछित कार्यवाहियों को पूरा करने के लिए विवश नहीं की जा सकती है। अन्य सन्देशों के सम्बन्ध में तो कांग्रेस उनमें की गई सिफारिशों से बिल्कुल भिन्न कार्यवाई कर सकती है, उन पर कुछ कार्यवाई करने से इनकार कर सकती है और उनको टाल भी सकती है। इन सन्देशों में की गई सिफारिशों के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इस बात पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है कि कांग्रेस में राष्ट्रपति की पार्टी बहुमत में है या नहीं। यदि कांग्रेस के दोनों सदनों पर राष्ट्रपति की पार्टी का प्रभुत्व है तो यह सम्भव है कि राष्ट्रपति के सन्देशों में की गई सिफारिशों पर सहानुभूति पूर्वक विचार किया जाय। कुछ भी हो अपनी सिफारिशों को लागू करवाने के लिए राष्ट्रपति प्रत्यक्ष रूप से और कोई कार्य नहीं कर सकता है। यह कार्य पार्टी के नेताओं पर निर्भर करता है जिनपर राष्ट्रपति का कोई अधिकार नहीं है। एक लेखक का कहना है कि राष्ट्रपति के पास कांग्रेस के सदस्यों को प्रलोभन देने के लिए कोई भी साधन नहीं है, कांग्रेस का सदस्य रहते हुए उनको शासन में कोई पद नहीं दिया जा सकता। वह उन्हें कांग्रेस को भङ्ग करके दण्डित भी नहीं कर सकता है और पार्टी से अनुशासन की कार्यवाई करने की अपील करने का उसका अधिकार भी सीमित है। किसी सिनेटर से निपटने के लिए राष्ट्रपति के

यह स्मरण रखना चाहिए कि इससे पहले कि विद्रोही सिनेटर फिर से चुनाव के लिए खड़ा हो वह स्वयं ही पदमुक्त हो जायगा। सन्देशों का प्रभाव अनेक बातों पर निर्भर करता है, जैसे उस समय की परिस्थितियाँ, उस समय राष्ट्र का रुख और जनता की मानसिक स्थिति, व्यक्तित्व का प्रभाव और राष्ट्रपति तथा काँग्रेस का पारस्परिक सम्बन्ध। १९४९-५० में अनुदारवादी डेमोक्रेटों और रिपब्लिकनों ने अनाधिकारी तौर पर गठबन्धन करके राष्ट्रपति ट्रूमन के अधिकांश कार्यक्रम को पराजित कर दिया।

संविधान में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह जिन उपायों को आवश्यक और उपयोगी समझता है उनकी स्वीकृति के लिए कांग्रेस से प्रस्तावना कर सकता है। व्यवहारिक रूप में यह अधिकार

(४) विधि उपक्रमण विधेयकों को प्रस्तुत करने के अधिकार के समान है और वास्तव में कांग्रेस के सम्मुख जो विधेयक प्रस्तुत होते हैं उनमें से अधिकतर सरकार के प्रशासन-विभाग द्वारा ही प्रस्तुत किए हुए होते हैं। इन विधेयकों में महत्वपूर्ण सुधारों की व्यवस्था भी की जा सकती है, जैसे विल्सन के बैंकिंग और व्यापार सम्बन्धी प्रस्ताव और रूजवेल्ट के न्यू-डील सम्बन्धी प्रस्ताव, परन्तु साधारणतया वह लगभग दिन प्रतिदिन के प्रशासन कार्य से सम्बन्ध रखने वाले ही होते हैं। काँग्रेस उनको स्वीकार कर तभी कानून बनाती है जब वे त्रुटिहीन और जनता की आवश्यकता के अनुकूल सिद्ध होते हैं। परन्तु काँग्रेस के लिए उनको स्वीकार करना आवश्यक नहीं है। फिर भी किसी समय राष्ट्रपति किसी कानून को बनाने का केवल सुझाव ही नहीं देता और कांग्रेस से उसे स्वीकार कर लेने का अनुरोध ही नहीं करता बल्कि कांग्रेस से उसे स्वीकार करने की दृढ़ माँग भी कर सकता है। सितम्बर १९४२ की एक घटना इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। सितम्बर १९४२ में राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने मुद्रास्फीति से उत्पन्न भारी संकट को टालने के लिए कांग्रेस तथा सारे देश से स्पष्ट और कठोर शब्दों में कहा कि यदि पहली अक्टूबर तक गत २ फरवरी को बनाए गए संकट कालीन कीमत नियन्त्रण कानून की व्यवस्थाओं को रद्द करने के लिए कानून नहीं बनाया गया (जिसके अंतर्गत खाद्य पदार्थों की अधिकतम कीमत तब तक निर्धारित नहीं की जा सकती है जब तक कि फार्मों के मावों में समान भाव (parity prices) से औसतन १६ प्रतिशत से अधिक की वृद्धि न हो जाय), तो मैं प्रधान सेनापति की हैसियत से जो कुछ भी कार्यवाई आवश्यक समझूँगा करने के लिए स्वतन्त्र रहूँगा। इस धमकी के कारण काँग्रेस ने न चाहते हुए भी राष्ट्रपति के आदेशों का पालन किया। एल० एच० चेम्बरलेन ने १९४६ में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'राष्ट्रपति, कांग्रेस और विधान' (The President, Congress and Legis

lation) में गत ५० वर्षों में कांग्रेस द्वारा बनाए गए ६६ महत्वपूर्ण कानूनों के इतिहास का विश्लेषण किया है और वह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि २० प्रतिशत कानून प्रशासन के प्रभाव से, ४० प्रतिशत कांग्रेस के प्रभाव से, ३० प्रतिशत प्रशासन और कांग्रेस के बराबर प्रभाव से और १० प्रतिशत गैर सरकारी निजी हितों के प्रभाव से स्वीकृत किये गए हैं। इससे स्पष्ट है कि अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था में विधान-निर्माण के क्षेत्र में राष्ट्रपति का प्रभाव महत्वपूर्ण है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि बजट के मामले में कानून निर्माण विभाग नेतृत्व के लिए प्रशासन विभाग पर निर्भर करता है। १९२१ के बजट और लेखा कानून (Budget and Accounting Act) ने राष्ट्रपति को वास्तव में सरकार का प्रधान व्यवसाय प्रबन्धक बना दिया है। बजट का कार्य वह एक बजट सचालक की सहायता से करता है। राष्ट्रपति प्रतिवर्ष कांग्रेस को राष्ट्र की वित्तीय स्थिति की सूचना देता है और आगामी वर्ष के लिए सुसम्बद्ध वित्तीय योजना प्रस्तुत करता है। वह पूरक मांगों (Supplementary appropriations) को भी स्वीकृति के लिए कांग्रेस के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है। इसमें स देह नहीं कि कांग्रेस अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतन्त्र है। यदि कांग्रेस राष्ट्रपति की मांगों को स्वीकार नहीं करती है तो राष्ट्रपति उसको स्वीकृति के लिए वैधानिक रूप से बाध्य नहीं कर सकता।

(५) वित्तीय क्षेत्र में पथ प्रदर्शन

कांग्रेस द्वारा स्वीकृत प्रत्येक विधेयक, आदेश, प्रस्ताव या मतदान स्वीकृति और अनुमति प्राप्त करने के लिए राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है। यदि राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर कर देता है तो वह विधिवत कानून बन जाता है परन्तु यदि राष्ट्रपति को आपत्ति हो तो वह उस पर अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है और उसे कांग्रेस के उस सदन को वापस कर सकता है जहाँ वह सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया था। राष्ट्रपति उसके साथ अपना एक वक्तव्य भी भेज सकता है जिसमें निषेधाधिकार के प्रयोग के कारणों पर प्रकाश डाला गया हो। यह तब तक विधिवत कानून नहीं बन सकता है जब तक कि कांग्रेस राष्ट्रपति के निषेधाधिकार के बावजूद दो तिहाई बहुमत से उसे पुन स्वीकृत न कर ले।

(६) निषेधाधिकार (veto power)

मैसेज्ड वीटो (Messaged Veto)—यदि राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये प्रस्तुत विधेयक पर राष्ट्रपति द्वारा १० दिन तक (जिनमें रविवार शामिल नहीं है) कोई कार्यवाही नहीं की गई, न उसपर हस्ताक्षर किए गये और न निषेधाधिकार का प्रयोग किया गया, तो विधेयक कानून बन जाता है और इसे मैसेज्ड वीटो कहते हैं।

पॉकिट वीटो (Pocket Veto)—यदि राष्ट्रपति को विधेयक प्राप्त होने के पश्चात १० दिन से पहिले ही कांग्रेस अधिवेशन स्थगित हो जाता है और इस बीच राष्ट्रपति द्वारा विधेयक के सम्बन्ध में कोई कार्यवाह नहीं की गई है तो कांग्रेस अधिवेशन स्थगित हो जाने के पश्चात राष्ट्रपति की निष्क्रियता (non-action) से विधेयक रद्द हो जाता है। इस प्रक्रिया को पॉकिट वीटो कहते हैं।

आइटम वीटो (Item Veto)—ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रपति को विधेयक के पृथक अंशों (items) पर निषेधाधिकार का प्रयोग करने का अधिकार नहीं है। वह विधेयक या किसी प्रस्ताव को या तो सम्पूर्ण रूप में स्वीकार कर सकता है या निषेध कर सकता है। इस व्यवस्था से बहुत असन्तोष पैदा हुआ है और यह माग की गई है कि राष्ट्रपति को भी तीन चौथाई राज्यों में गवर्नरों की तरह विनियोग विधेयकों (Appropriation Bills) के पृथक अंशों पर निषेधाधिकार के प्रयोग का अधिकार दिया जाय क्योंकि इससे वह विनियोग के मामलों में कांग्रेस के अपव्यय पर नियन्त्रण रख सकता है। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति को सम्पूर्ण विनियोग विधेयक स्वीकार करना पड़ता है। यद्यपि यह विधेयक राष्ट्रपति के बजट ब्यूरो द्वारा तैयार किये गये अनुमानों के आधार पर ही बनाया जाता है परन्तु फिर भी कांग्रेस इसमें अपनी ओर से कुछ अतिरिक्त व्यय की मदें सम्मिलित कर सकती है या बजट में किसी विशेष मद के लिए जितनी धनराशि रखी गई है उसमें परिवर्तन कर सकती है। इन अतिरिक्त मदों को या प्रस्तावित बजट में किए गए परिवर्तनों को राष्ट्रपति द्वारा निषेध कर दिया जाना जनता के हित में हो सकता है, परन्तु ऐसा वह नहीं कर सकता है क्योंकि बजाय उसके कि कुछ मदों के लिये सम्पूर्ण विधेयक का निषेध कर वह अन्य महत्वपूर्ण कार्यों के लिये भी स्वीकृत धननिधि को रोक, राष्ट्रपति को जिस रूप में विधेयक उसके सामने प्रस्तुत किया जाता है वह साधारणतया उस पर हस्ताक्षर कर देता है।

परन्तु बजट विधेयक के अंशों पर आइटम वीटो के विरुद्ध जो आपत्तियाँ हैं उनके तर्क में भी शक्ति है। १६३८ में जब राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने इस अधिकार की माग की और प्रतिनिधि सभा ने अपनी स्वीकृति दे दी तो सिनेट ने उसकी पुष्टि करने से इन्कार कर दिया। सिनेट ने यह तर्क दिया कि इस अधिकार से कांग्रेस के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप होगा और (१) यदि राष्ट्रपति को यह अधिकार मिल गया और वह पक्षपाती प्रकृति का हुआ तो वह अपने समर्थकों द्वारा समर्थित विनियोगों और विरोधियों द्वारा समर्थित विनियोगों में अनुचित भेद करेगा, और (२) राष्ट्रपति के हाथ में इस अधिकार की पूर्व धारणा से अनावश्यक मदों या अनावश्यक व्यय को स्वीकार कर विभागों और स्वीकृति के प्रयत्नशील

कुछ दबाव डालने वाले गुटों को प्रसन्न रखना कांग्रेस का स्वभाव बन जायगा, कांग्रेस इस प्रकार जान बूझ कर प्रशासन को इन मदों में भारी कटौती करने को विवश करेगी और उसे उससे उत्पन्न होने वाले असन्तोष तथा अप्रियता का भागी बना देगी।

निषेधाधिकार की उपयोगिता—संविधान में दी गई निषेधाधिकार की व्यवस्था के दो कारण हैं—(१) राष्ट्रपति वंशागत अधिकारी नहीं होता, वह निर्वाचित अधिकारी होता है, इसलिए वह जनता के प्रति उत्तरदायी होता है और जनता का समर्थन उसकी शक्ति होती है। जनता उसे केवल अपने प्रतिनिधियों की जल्दबाजी, उदासीनता या लापरवाही पर ही नहीं बल्कि उनकी अपने निर्वाचकों के किसी भाग के दबाव में आ जाने या निजी रूप में किसी लालच में पड़ जाने की प्रवृत्ति पर एक स्वस्थ और अत्यावश्यक प्रतिबन्ध मानती है। (२) दूसरा कारण यह है कि जब तक कांग्रेस के दोनों सदनों में से किसी में भी राष्ट्रपति से सहमत सदस्यों की संख्या कुल के एक तिहाई से अधिक न हो तब तक निषेधाधिकार लागू नहीं होता है। सदस्यों का यह अल्प संख्या राष्ट्रपति के उत्तरदायित्व में साझेदार होती है और उसे बहुमत की धमकियों का प्रतिरोध करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यदि राष्ट्रपति को जनता का पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं है तो उसके विरोध को आसानी से निष्फल किया जा सकता है।

अपवाद—तीन बातें ऐसी हैं जिन पर राष्ट्रपति अपने निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है। (१) कांग्रेस अधिवेशन के स्थगन प्रस्ताव पर संविधान की व्यवस्था के अनुसार राष्ट्रपति निषेधाधिकार लागू नहीं कर सकता है। (२) संविधान में प्रस्तावित संशोधन पर भी निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं हो सकता है। (३) कांग्रेस ने एक विशेष प्रकार के प्रस्ताव को जन्म दिया है जिसे सगामी प्रस्ताव (Concurrent Resolution) कहते हैं। यह स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत नहीं किया जाता है।

निषेधाधिकार का महत्व—उक्तलिखित अपवाद वास्तव में राष्ट्रपति के निषेधाधिकार पर विशेष प्रभाव नहीं डाल पाते हैं। व्यवहार में निषेधाधिकार प्रथाओं द्वारा इतना व्यापक हो गया है कि यह एक प्रकार से राष्ट्रपति का संशोधन-अधिकार (revisory power) कहा जा सकता है। राष्ट्रपति की शक्ति का अनुमान लगाने के लिए यह सुझाव दिया गया है कि राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त सफल निषेधाधिकारों की एक ओर और असफल निषेधाधिकारों की दूसरी ओर गणना कर ली जाय और दोनों की तुलना का परिणाम निकाला जाय (ब्रोगन)। लार्ड ब्राइस का मत है कि प्रतिनिधियों के निर्णय का विरोध कर राष्ट्रपति की लोकप्रियता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है, यदि वह दृढ़ता के साथ अपने

निषेधाधिकार का प्रयोग करता है तो अप्रिय होने की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हो जाता है। यह राष्ट्रपति की दृढ़ता को प्रकट करता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि राष्ट्रपति का अपना भी कुछ मत है और वह उसको कार्यान्वित करने में किसी से डरना नहीं है। राष्ट्रपति एन्ड्रू जैक्सन से उनके उपरान्त राष्ट्रपतियों को निषेधाधिकार के स्वतन्त्र प्रयोग के कारण महत्वपूर्ण शक्ति प्राप्त हुई है। ब्रोगन का मत है कि उनके समय से राष्ट्रपति स्वयं तृतीय सदन (Third House) बन गया है। कांग्रेस को कानून बनाते समय राष्ट्रपति द्वारा निषेधाधिकार के प्रयोग की सम्भावना को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। कुछ राष्ट्रपति तो इसका आभास पहिले ही दे देते हैं कि यदि अमुक कानून में उनके सुझावों के अनुकूल संशोधन नहीं किया जायगा तो वह अपने निषेधाधिकार का प्रयोग करेंगे। इस प्रकार से व्यवहार में राष्ट्रपति ही कानून की अंतिम रूपरेखा को भी निर्धारित कर सकता है। निषेधाधिकार की धमकी कांग्रेस से अपने उद्देश्य की पूर्ति कराने के लिए राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त होने वाले परिचित अस्त्रों में से एक अस्त्र बन गया है।

निषेधाधिकार का व्यवहारिक रूप—फैडरलिस्ट में हैमिल्टन ने यह भविष्यवाणी करने का साहस किया कि साधारणतया निषेधाधिकार का बड़ी सतर्कता से प्रयोग किया जायगा और इस अधिकार का अत्यधिक प्रयोग किये जाने की अपेक्षा भय यह है कि राष्ट्रपति अपने इस अधिकार का आवश्यकता होने पर भी प्रयोग न करेंगे। अनेक दशाब्दियों तक यह भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। आरम्भकाल के राष्ट्रपतियों ने इस अधिकार का बहुत कम प्रयोग किया। जान एडम्स, जेफरसन और क्विन्सी एडम्स ने तो इस अधिकार का प्रयोग किया ही नहीं। गृह-युद्ध से पहिले कुल ५१ बार निषेधाधिकारों का प्रयोग किया गया। परन्तु जेक्सन ने इस अधिकार को एक नया रूप दिया। उन्होंने ऐसे कानूनों (measures) को रद्द करने में इसका प्रयोग किया जो वैधानिक दृष्टि से पूर्णतया वैध और टैक्निकल दृष्टि से पूर्णतया सही थे। इन कानूनों के विषय और उद्देश्य को आपत्तिजनक बना कर निषेधाधिकार का प्रयोग किया गया था। १८२९ से पहिले केवल ९ विधेयकों पर ही निषेधाधिकार का प्रयोग किया गया था परन्तु इसको देखते हुए बाद में राष्ट्रपति जैक्सन द्वारा बारह बार प्रयुक्त निषेधाधिकार ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे "कांग्रेस को फौलादी घूंसे जड़ दिये गये हों"। बाद के राष्ट्रपतियों ने इसका खुल कर प्रयोग किया। उन्होंने इसका प्रयोग केवल अवैधानिक कानूनों पर ही नहीं बल्कि उन सभी कानूनों पर किया जिन्हें वह व्यय, असामयिक, सन्धि की शर्तों के विरुद्ध या अनावश्यक समझते थे परन्तु निषेधाधिकारों का औसत प्रति वर्ष पाँच या छः बार प्रयोग हुआ है, इससे अधिक नहीं। फिर भी कुल जितने कानूनों या प्रस्तावों पर निषेधाधिकार क

प्रयोग किया गया है उनके तीन चौथाई पर निषेधाधिकार का प्रयोग करने का श्रेय अकेले राष्ट्रपति ग्रोवर क्लीवलैंड (Grover Cleveland), फ्रैंकलिन रूजवेल्ट तथा ट्रूमन को है। राष्ट्रपति क्लीवलैंड ने ५८४ बार और रूजवेल्ट ने ६३१ बार (३७१ प्रत्यक्ष और २६० पॉकिट) और ट्रूमन ने २५० बार (१८० प्रत्यक्ष तथा ७० बार पॉकेट वीटो) इसका प्रयोग किया।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कांग्रेस को राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त निषेधाधिकार रद्द करने के लिये आवश्यक दो तिहाई का बहुमत बहुधा प्राप्त नहीं होता है परन्तु फिर भी अमेरिकी संवैधानिक इतिहास में अनेकों ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें कांग्रेस ने दो-तिहाई बहुमत द्वारा राष्ट्रपति के निषेधाधिकार को रद्द कर दिया। राष्ट्रपति टेलर (Tyler) के पूर्व कोई राष्ट्रपति द्वारा निषिद्ध विधेयक काँग्रेस में दो तिहाई बहुमत न पा सका। तब से १६५५ तक ऐसे विधेयकों की संख्या जो राष्ट्रपति के निषेध पर ⅔ बहुमत से पारित हो सके ५७ थी। राष्ट्रपति जानसन द्वारा १५ विधेयकों पर प्रयुक्त निषेधाधिकार को कांग्रेस ने दो तिहाई के बहुमत से अस्वीकृत कर दिया। परन्तु फ्रैंकलिन रूजवेल्ट द्वारा ३७१ बार प्रयुक्त निषेधाधिकार में से कांग्रेस केवल ६ को अस्वीकृत कर पाई। ट्रूमन ने जिन १८० विधेयकों पर निषेधाधिकार का प्रयोग किया उनमें से १२ कांग्रेस ने दो तिहाई बहुमत से पारित कर कानून बना दिये। निषेधाधिकारों को अस्वीकृत करने की ट्रूमन काल में दो महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। १६४७ में कांग्रेस ने राष्ट्रपति की आपत्तियों को अस्वीकृत कर दो तिहाई मत से टाफ्ट हार्टले कानून पारित किया है और इसी प्रकार १६५० में आन्तरिक सुरक्षा कानून।

राष्ट्रपति के अध्यादेश (Ordinance) जारी करने के अधिकार का पहिले प्रसंग आ चुका है। इस अधिकार से राष्ट्रपति स्वयं कानून निर्माता का रूप धारण कर लेता है। सरकार के अनेक महत्वपूर्ण विभागों के शासन की विस्तृत-व्यवस्था प्रशासन आदेशों (Executive orders) द्वारा की जाती है। और शासन-कार्य चलाने के लिये प्रशासन आदेशों द्वारा कानून की विस्तृत रूप रेखा तैयार कर राष्ट्रपति वास्तव में कानून-निर्माण विभाग का सहकारी बन जाता है।

(७) कानून निर्माण पर प्रभाव डालने के लिये संविधान के अतिरिक्त अन्य साधन

यदि राष्ट्रपति चाहे तो कांग्रेस से अपने प्रभावशाली सम्बन्ध बना सकता है। राष्ट्रपति पद के सम्मान के द्वारा, अपनी पार्टी के नेता की हैसियत से, और राज्य के प्रधान के रूप में कांग्रेस पर उसके अधिकार और प्रभाव में निरन्तर वृद्धि होती रही है। राष्ट्रपति के अधिकार संविधान की धाराओं पर उतना निर्भर नहीं करते जितना वह उसके व्यक्तित्व के प्रभाव, राजनीतिक चतुराई, दलों और व्यक्तियों के साथ काम करने की उसकी कुशलता, उसके साधन

सम्पन्नता और ऐसी अन्य बातों पर निर्भर करते हैं। वास्तव में सत्य तो यह है कि लोग ऐसा राष्ट्रपति पसन्द नहीं करते जिसके कांग्रेस से बहुत ढीले ढाले, अप्रभावोत्पादक सम्बन्ध हों। यदि वह कानून-निमात्री संस्थाओं का साहस पूर्वक नेतृत्व ग्रहण कर ले और अपनी योजनाओं को लागू करवा ले तो निश्चय ही वह जनता में अत्यन्त लोकप्रिय हो सकता है।

सम्मेलनों के द्वारा कानून निर्माण पर प्रभाव (Influencing legislation by conferences)—यह सत्य है कि राष्ट्रपति स्वयं कांग्रेस में विधेयक प्रस्तुत नहीं कर सकता है परन्तु वह अपना योजना (measures) को कांग्रेस के किसी सदस्य के द्वारा प्रस्तुत करा सकता है और इस विधेयक का स्वीकृत या अस्वीकृत होना उसके व्यक्तिगत प्रभाव पर निर्भर करता है। जिन विधेयकों में उसकी अभिरुचि होती है उन पर वह अपनी दृष्टि रखता है। यदि वह चाहता है कि अमुक विधेयक स्वीकार न किया जाय या अमुक विधेयक स्वीकार कर लिया जाय तो वह अपनी पार्टी के कांग्रेसी नेताओं की बैठक बुला सकता है, इस सम्मेलन में वह विरोधी पार्टी के नेताओं को भी निमन्त्रित कर सकता है और इस प्रकार के सम्मेलनों से अनेक प्रश्नों को तय करा सकता है। इधर कुछ वर्षों से राष्ट्रपति और कांग्रेस नियमित रूप से परस्पर सम्पर्क बनाये हुए हैं। राष्ट्रपति कांग्रेस के महत्त्वपूर्ण सदस्यों से, विभिन्न समितियों के अध्यक्षों से और अन्य प्रभावशाली सदस्यों से अपने कार्यालय में या चाय-गोष्ठी में अपना सम्पर्क स्थापित कर सकता है, उनसे आवश्यक बातचीत कर सकता है, प्रस्तावित विधेयकों में संशोधन का सुझाव दे सकता है, वह माँग कर सकता है कि अमुक विधेयक स्थगित कर दिया जाय, अमुक को निर्धारित कार्यक्रम से पहिले प्रस्तुत किया जाय, इत्यादि। ऑग और रे (Ogg and Ray) का मत है कि अपनी बात मनवाने के लिए राष्ट्रपति अनुरोध, प्रोत्साहन और नम्रता पूर्वक दबाव डालने से लेकर दृढ़ता पूर्वक चुनौती तक दे सकता है। उदाहरणार्थ वह यह धमकी दे सकता है कि कांग्रेस का अधिवेशन तब तक जारी रहेगा जब तक कि उसकी बात नहीं मान ली जाती है या यदि उसके विरोध के बावजूद विधेयक स्वीकृत किया गया तो वह उस पर अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर देगा। कानून-निर्माण में नियन्त्रण रखने के इन उपायों का राष्ट्रपति क्लीवलैंड, विल्सन और थियोडोर तथा फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने खूब प्रयोग किया।

संरक्षण का प्रयोग (Use of Patronage)—राष्ट्रपति अपनी पार्टी के कांग्रेस सदस्यों और विरोधी पार्टी या दलों के सदस्यों का समर्थन प्राप्त करने के लिए अपने संरक्षण के व्यापक अधिकार का भी उपयोग कर सकता है। कांग्रेस के सदस्य यह कभी नहीं भूलते हैं कि राष्ट्रपति अपने संरक्षण का प्रयोग कर उन्हें

पुरस्कृत या दण्डित कर सकता है। संघीय संरक्षण का प्रयोग कभी कभी विरोधी पार्टियों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता में निर्णायक सिद्ध होता है, साथ ही संघीय संरक्षण व पुरस्कार का आभास ही प्रतिद्वन्द्विता पैदा कर सकता है। प्राय यह कहा जाता है कि राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता को समाप्त करने की सबसे उत्तम विधि संघीय पद पर नियुक्ति होती है। अपनी पार्टी के कांग्रेस सदस्यों को नियंत्रण में रखने के लिए संरक्षण अधिकार राष्ट्रपति का महत्वपूर्ण अस्त्र है। यदि वह उन नीतियों या विधेयकों का समर्थन नहीं करते हैं जिन्हें वह चाहता है तो वह उनको *संरक्षण लाभ से वंचित कर उन्हें पद के लिए भूखे निर्वाचकों की आलोचना का* लक्ष्य बना सकता है। मार्च १९३३ में जब सदन राष्ट्रपति के वचत विधेयक *(President's Economy Bill) पर मतदान करने वाला था तो एक डेमोक्रेट* प्रतिनिधि ने उठ कर कहा कि 'कल प्रात काल जब कांग्रेस की कार्यवाही के *कागजात राष्ट्रपति रूजवेल्ट के सामने प्रस्तुत किये जायँगे तो वह नामों की सूची* देखेंगे। मैं नवनिर्वाचित डेमोक्रेट सदस्यों को चेतावनी देना चाहता हूँ कि वह इस बात पर सावधानी से विचार कर लें कि वह पक्ष विपक्ष किस ओर अपना नाम रखना पसन्द करेंगे'।

मतदाताओं से अपील—यदि राष्ट्रपति को जनता का समर्थन प्राप्त है तो कांग्रेस के अनेक सदस्यों को अपने निर्वाचकों (constituents) की सहानुभूति बनाये रखने के लिए विवश होकर राष्ट्रपति का समर्थन करना पड़ेगा। किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न पर कांग्रेस के सदस्य जनमत के विरुद्ध कार्यवाही करने का साहस नहीं कर सकते। इसीलिए प्रत्येक राष्ट्रपति पत्रकार-सम्मेलनों, रेडियो-वार्ता, सार्वजनिक भाषणों, टेलीविजन आदि के द्वारा अपील करके अपने तथा अपनी नीतियों के लिए जनता का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। रेडियो द्वारा जनता से सम्पर्क स्थापित कर सकने की सम्भावनाओं का पूर्ण प्रदर्शन राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने किया। राष्ट्रपति रूजवेल्ट के 'गुड ईवनिंग माई फ्रेंड्स' (मित्रों नमस्कार) के चिर परिचित अ[illegible] ही [illegible] सख्या में जनता राष्ट्र के सम्बन्ध में उनके सन्देश [illegible] खिंच आया करती थी।

तथ्य निरूपण आयोग (F[illegible]din[illegible] से एक नई विधि का विकास [illegible] होगी। यह विधि कुछ अस्थ[illegible] या समस्या की जाँच करने अ[illegible] कार्य सौंपा जाता है। आयोग [illegible] बनाने की सिफारिश कांग्रेस से [illegible]

की प्रेरणा राष्ट्रपति से ही प्राप्त होती है, वही इनकी नियुक्ति करता है और निर्देश देता है, इन आयोगों की रिपोर्टें भी सीधे राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत की जाती हैं और वह जैसे चाहे वैसे इनका उपयोग करने का अधिकारी होता है। इस प्रकार राष्ट्रपति हूवर ने १६२६ में कानून के पालन तथा कार्यान्वियन आयोग (Commission on Law Observance and Enforcement) नियुक्त किया, राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने १६३८ में अस्थायी राष्ट्रीय आर्थिक समिति (Temporary National Economic Committee) नियुक्त की, १६३४ में आर्थिक सुरक्षा समिति नियुक्त की, और १६४६ में राष्ट्रपति ट्रूमन ने अनिवार्य प्रशिक्षण सलाहकार आयोग (Advisory Commission on Universal Training) नियुक्त किया। यह आयोग नियुक्त करने की विधि के कुछ अच्छे उदाहरण हैं। यदि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त इन आयोगों द्वारा तथ्य निरूपण का और जनमत का पथ प्रदर्शन करने का कार्य नहीं किया गया होता तो निश्चय ही बहुत से महत्त्वपूर्ण कानूनों का निर्माण ही न हो पाता।

(ग) पार्टी के नेता के रूप में

अमेरिकी संविधान के निर्माताओं ने मूल रूप में राष्ट्रपति के पद को पार्टी के झगड़ों और गुटबाजी या दलबन्दी से मुक्त रखने की यथासम्भव चेष्टा की थी परन्तु उनकी यह महत्त्वाकांक्षा निष्फल रही। इसमें सन्देह नहीं कि वाशिंगटन ने अपने को न किसी पार्टी से सम्बन्धित समझा और न किसी दल का प्रधान परन्तु आज इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि राष्ट्रपति पार्टी के हाथ का खिलौना बन गया है। पार्टी ही उसे मनोनीत करती है, पार्टी की सहायता से ही वह विजय प्राप्त कर सकता है और जब तक संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के रूप में वह 'ह्वाइट हाउस' में रहता है तब तक वह अपनी पार्टी का नेता समझा जाता है। इस परिस्थिति से निश्चय ही राष्ट्रपति को लाभ होता है, विशेष कर अपने वैधानिक अधिकारों के प्रयोग में, और उक्तलिखित विधान के अतिरिक्त अन्य साधनों के प्रयोग में उसे इस स्थिति से विशेष लाभ पहुँचता है। वह सारे देश में अपनी पार्टी का प्रतिनिधित्व करता है और उसकी किसी भी नीति या संगठन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है जिसमें राष्ट्रपति की राय सब से अधिक महत्त्व न रखती हो। देश भी उसकी पार्टी द्वारा किये गए वायदों की पूर्ति के लिए कांग्रेस से अधिक राष्ट्रपति से ही आशा रखता है। उसकी पार्टी की सुदृढ़ता और भविष्य को प्रभावित करने वाली प्रत्येक बात का उसके प्रशासन की सफलता से सम्बन्ध होता है और इसी लिये यह उसके व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने की बात हो जाती है। राष्ट्रपति टाफ्ट ने एक बार यह घोषित किया कि अमेरिकी प्रणाली के अन्तर्गत राष्ट्रपति उस पार्टी का प्रधान है जिसने उसे चुना है इसलिये वह अपने

प्रशासन कार्य के या दोनों सदनों में उसकी पार्टी की विधान नीति के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं रह सकता है। जबकि राष्ट्रपति की ही पार्टी का कांग्रेस के दोनों सदनों पर नियन्त्रण है तब उसके सन्देशों और उसकी सिफारिशों के स्वीकृत हो जाने और उनको कार्यान्वित किये जाने की सबसे अधिक आशा की जा सकती है। उन विषयों पर जिनके सम्बन्ध में उसे जनता और अपनी पार्टी दोनों का समर्थन प्राप्त है उसकी सिफारिशों के स्वीकृत हो जाने में कुछ सन्देह नहीं। यह आशा की जाती है कि कांग्रेस में उसकी पार्टी के नेता उसके साथ पूर्ण सहयोग करेंगे अन्यथा पार्टी का कार्यक्रम लागू नहीं किया जा सकता है और यह भय रहता है कि आगामी चुनाव में उसकी पार्टी हार जाय। पार्टी के प्रधान नेता के रूप में राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि पार्टी से सम्बन्धित प्रत्येक महत्वपूर्ण बात पर, चाहे उसका सम्बन्ध कांग्रेस से हो या कांग्रेस से बाहर, उससे अवश्य परामर्श किया जाय। कांग्रेस के दोनों सदनों के लिये अपनी पार्टी के उम्मेदवार मनोनीत करने में राष्ट्रपति भाग लेता है, अनेक उपायों से वह पार्टी के हितों को पुष्ट करता और आगे बढ़ाता है और प्राय हर बात में पार्टी का नेतृत्व करता है। इससे उसको यह लाभ भी होता है कि वह कांग्रेस में अपनी पार्टी के सदस्यों के साथ प्रभावोत्पादक ढंग से व्यवहार कर सके। ऐसे राष्ट्रपतियों में जिन्होंने अपनी पार्टियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था लिंकन, मैकिनले (Mckinley), विल्सन और थियोडोर तथा फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के नाम लिये जा सकते हैं। ऑग और रे का कहना है कि जब कांग्रेस के दोनों सदनों में राष्ट्रपति की पार्टी का इतना बहुमत हो कि जो कुछ विधेयक आदि वह पास करना चाहे पास किया जा सकता हो तो सारे देश में ऐसी पार्टी का प्रधान नेतृत्व राष्ट्रपति के लिए बहुमूल्य सिद्ध होता है। परन्तु अल्पमत वाली पार्टी का नेतृत्व राष्ट्रपति के लिये विशेष लाभदायक सिद्ध नहीं होता है। राष्ट्रपति अपनी पार्टी के नेतृत्व का उपयोग कानून बनाने में उस समय कर सकता है जब पार्टी के प्रति ईमानदारी की भावना हो और पार्टी का दोनों सदनों में पूर्ण बहुमत हो। राष्ट्रपति अपने नेतृत्व का उपयोग पार्टी के मतभेद तथा निर्बलताओं आदि को दूर करने के लिये भी कर सकता है।

(द) राज्य के प्रधान के रूप में

अमेरिका में राष्ट्रपति केवल राजनीतिक व्यवस्था का ही प्रधान नहीं होता बल्कि वह वहाँ के राष्ट्रीय जीवन का भी प्रधान होता है। वह केवल पार्टी का अध्यक्ष ही नहीं बल्कि सारी जनता का प्रतीक होता है। वह अमेरिका का ठीक उसी अर्थ में प्रतीक होता है जिस अर्थ में ब्रिटेन में सम्राट साम्राज्य का प्रतीक

माना जाता है। 'ह्वाइट हाउस' अमेरिका में सबसे बड़ा मंच है जिसकी ओर महत्वपूर्ण सार्वजनिक समस्याओं को हल करने के निमित्त तथा पथ प्रदर्शन के लिये लाखों लोगों की दृष्टि लगी रहती है। राष्ट्रपति के सम्बन्ध में विल्सन ने एक बार लिखा था कि "सारे राष्ट्र ने उसे चुना है और राष्ट्र इस बात को जानता है कि उसका कोई दूसरा राजनीतिक प्रवक्ता नहीं है। सार्वजनिक महत्व के मामलों में वही राष्ट्र की वाणी या प्रवक्ता है। वह किसी एक निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधि नहीं वरन् सारी जनता का प्रतिनिधि है। यदि वह राष्ट्रीय विचार धारा की सही व्याख्या करता है और दृढ़तापूर्वक उसकी स्वीकृति के लिये अटल रहता है तो उसका कोई विरोध नहीं कर सकता और यदि राष्ट्रपति अन्त दृष्टि (insight) वाला और योग्य है तो उसके कार्य से जनता को जो आनन्द व हर्ष मिलता है वह अन्यत्र असम्भव है। जनता राष्ट्र को एक बद्ध हो कर कार्यशील देखना चाहती है, वह एक के नेतृत्व के लिये लालायित रहती है (its instinct is for unified action and it craves for a single leader)"। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्रपति ही राजनीतिक रंगमंच का केन्द्र बिन्दु होता है। उसका व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन व्यवहार उसके देशवासियों की गहरी अभिरुचि का विषय होता है। उसके सन्देशों और भाषणों को लाखों लोग सुनते और पढ़ते हैं, और इसी प्रकार मछली मारने में राष्ट्रपति को कैसी सफलता मिली या वह कौन सा कसरत पसन्द करते हैं, आदि रिपोर्टें भी लाखों व्यक्ति उसी चाव से सुनते हैं और पढ़ते हैं। अमेरिकी जनता किसी अन्य की बात सुने या न सुने परन्तु यदि राष्ट्रपति किसी भी विषय पर बोलता है तो सबका ध्यान उसकी ओर अवश्य आकर्षित हो जाता है। राष्ट्रपति जो कुछ भी करता है उसके प्रति जनता की गहरी दिलचस्पी होने का कारण यही नहीं है कि उसे अनेक अधिकार प्राप्त हैं बल्कि यह भी है कि वह रस्मी तौर पर (ceremonial) और वास्तविक रूप में राष्ट्र का प्रधान है। अमेरिकी जनता की राष्ट्र के अध्यक्ष के प्रति जो भावनाएँ हैं उसे उनका पोषण करना पड़ता है। वह राष्ट्रीय जीवन का प्रधान होता है और साथ ही उसे ही राष्ट्र का प्रवक्ता भी स्वीकार किया गया है। इसी कारण कभी कभी उसे ऐसे कार्य करने होते हैं जिनका वैसे राजनीतिक महत्त्व नहीं होता है परन्तु फिर भी जो अत्यन्त आकर्षक और रोमांचकारी होते हैं। लास्की ने लिखा है कि "किसी दिन उसे वाशिंगटन को नेशनल गैलरी के लिए जार्ज पंचम का चित्र स्वीकार करना पड़ सकता है, मंगलवार को उसे अमेरिका क्रान्ति की कन्याओं (Daughters of American Revolution) का स्वागत करना पड़ सकता है, और बुधवार को राष्ट्रीय शिक्षा संघ (National Education Association) का स्वागत करना पड़ सकता है। यह सम्भव है कि

उसे स्काउटों के नाम सन्देश देना है, किसी दूसरे देश से आये हुए शाही अतिथि से मिलना है, न्यायाधीशों के साथ भोज में सम्मिलित होना है, विदेशी राजदूतों के मनोरंजन के लिये आयोजित समारोह में भाग लेना है"। इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि अनेक अमेरिकी अपने राष्ट्रपति को अमेरिकी जनता का साक्षात प्रतीक समझते हैं और उसे ही वह अपने राष्ट्रीय जीवन की एकता दृढ़ रखने वाली शक्ति समझते हैं। वास्तव में जनता चाहती है कि राष्ट्रपति कांग्रेस का ठीक से संचालन करे, उसे न भटकने दे और न सीमा का अतिक्रमण करने दे। परन्तु यदि राजनीतिक अनुभवहीनता के कारण या ऐसी विपरीत परिस्थितियों के कारण जिन पर विजय पा सकना अत्यन्त कठिन है वह ऐसा नहीं कर पाता है तो वह उसे असफल राष्ट्रपति घोषित कर देती है चाहे यह घोषणा उचित हो या अनुचित। ई० एस० कॉरविन (E S Corwin) का यह कहना सही है कि राष्ट्रपति की शक्ति और उसका सम्मान अमेरिकी जनता की बहुमूल्य राजनैतिक सम्पत्ति है, और इसकी सत्यता में भी तनिक सन्देह नहीं कि इनकी निर्माता स्वयं अमेरिकी जनता ही है। इसी आधार पर लिंकन ने विद्रोही राज्यों में गुलामों को मुक्त करने का साहस किया था जेफरसन ने साहसपूर्वक लुइसियाना (Louisiana) को खरीद लिया और विल्सन तथा फ्रेंकलिन रूजवेल्ट आसानी से राष्ट्रीय नेता बन गये। रूजवेल्ट की लोकप्रियता का तो सबसे बड़ा उदाहरण यही है कि द्वि-काल अवधि की परम्परा का उल्लंघन कर चार बार अमेरिका के राष्ट्रपति बनने में वह सफल हुये।

(घ) व्यावहारिक दृष्टि से राष्ट्रपति के अधिकार और उसकी स्थिति

राष्ट्रपति पद की विशेषता यह है कि व्यवहार में उसके अधिकार और कर्तव्य संविधान की व्यवस्था के आधार पर ही पूर्णतया निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं। इसके लिए हमें नियमों (statutes), परम्पराओं (precedents), रीतियों (conventions), न्यायालयों की व्याख्या, पूर्व प्रथाओं (usages) आदि पर ध्यान देना पड़ेगा। परन्तु कुछ और तथ्य भी इतना ही महत्व रखते हैं जिनका सम्बन्ध राष्ट्रपति पद पर आसीन व्यक्ति से होता है, जैसे राष्ट्रपति का व्यक्तित्व और उसके गुण, उसके प्रभाव का क्षेत्र, व्यक्तियों को नियन्त्रण में रखने की क्षमता और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त व्यक्ति का निर्वाचन या राष्ट्रपति की गुणग्राहकता, महत्वपूर्ण और महत्वहीन के बीच भेद कर सकने तथा इनमें परस्पर उचित सम्बन्ध स्थापित कर सकने की क्षमता, नेतृत्व के लिए कांग्रेस की शक्ति, अमेरिकी जनता के मन की स्थिति (temper) और समय की आवश्यकता आदि। जब देश में शांति और समृद्धि होती है उस समय यदि

राष्ट्रपति अपने संविधान से प्राप्त अधिकारों की सीमा का अतिक्रमण करे तो जनता इसे आसानी से सहन नहीं करेगी। इसलिए शांति काल में राष्ट्रपति के प्रत्यक्ष कानूनी अधिकार अधिक और विशेष महत्व के नहीं होते हैं परन्तु यदि वह अपने कौशल और साहस का सफल प्रयोग कर सके तो उसका काफी प्रभाव हो सकता है। उसे हर पग पर अपनी पार्टी को प्रसन्न रखना पड़ता है और सदा कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है, यह उसके मार्ग की बाधायें हैं। वह इङ्गलैंड के प्रधान मन्त्री की तरह संसद को सहयोग देने के लिए विवश नहीं कर सकता। लार्ड ब्राइस ने शांति काल के राष्ट्रपति की तुलना एक बड़े व्यापारी फर्म के प्रधान (senior) या मैनेजिंग क्लर्क से की है जिसका मुख्य कार्य अपने अधीन कर्मचारियों का निर्वाचन करना होता है जबकि फर्म की नीति निर्धारित करने का कार्य संचालक-मण्डल (Board of Directors) का होता है। परन्तु अशांति काल में स्थिति इसके विपरीत हो जाती है। उस समय उस एक व्यक्ति पर सारा उत्तरदायित्व लाद दिया जाता है जो एक ओर प्रधान सेनापति भी होता है और दूसरी ओर मुख्य प्रशासक या राष्ट्रपति भी। उदाहरण के लिए जब अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति गम्भीर हो जाती है, या जब संघ के अन्दर फैली अव्यवस्था में उसके हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है, जब विद्रोह को दबाने का उत्तरदायित्व उस पर होता है, या उसे यह निर्णय करना होता है कि वह दो प्रतिद्वन्द्वी सरकारों में से किसको मान्यता प्रदान करे और उसे सशस्त्र सहायता दे तब कुछ उसके अपने निर्णय पर, उसके साहस और संविधान के सिद्धान्तों के प्रति उसकी हार्दिक इमानदारी पर निर्भर करता है। वास्तव में अशांति के समय जनता चाहती है कि स्थिति का सामना करने के लिए तत्काल कार्यवाही की जाय और जो राष्ट्रपति तत्काल कार्यवाही करने में हिचकिचाता है जनता उसे लांछित करती है। विल्सन का यह कहना सही है कि राष्ट्रपतित्व का रूप समयानुसार बदलता रहता है, इस पद पर आसीन होने वाले व्यक्ति और उसकी परिस्थितियों के साथ साथ इसमें परिवर्तन होता रहता है। जब जैक्सन राष्ट्रपति थे तब राष्ट्रपति पद पहले की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति सम्पन्न हो गया, और जैक्सन के उपरान्त जैसे जैसे इस पद पर प्रभावशाली और कमजोर व्यक्ति आसीन होते गए इस पद का महत्व भी परिवर्तित होता रहा। जैसे-जैसे समय ने राष्ट्रपति से प्रभावशाली कार्यों की अपेक्षा की या उसे अधिक निष्क्रिय रहने दिया इसमें अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे परन्तु जो कुछ भी अधिकार इस पद को प्राप्त हो चुके थे उसका एक अंश भी छोड़ने के लिए कोई राष्ट्रपति तैयार नहीं हुआ और फ्रैंकलिन रूजवेल्ट को जितने अधिक अधिकार प्राप्त हुए उतने की पहिले कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

ऑग और रे (Ogg & Ray) के मतानुसार इस असाधारण विकास-क्रम के आधारभूत कारण इस प्रकार हैं—(१) संघीय सरकार के कर्तव्यों और कार्यों में अपार वृद्धि हो गयी है, इसके साथ ही सरकार के कार्यों को चलाने वाली प्रशासन-व्यवस्था के कार्यक्षेत्र का भी व्यापक प्रसार हो गया है, (२) वस्तुतः जनता द्वारा चुने जाने की व्यवस्था का विकास जिससे मुख्य प्रशासक (राष्ट्रपति) को यह विश्वास प्राप्त हुआ कि वह भी राष्ट्र के प्रवक्ता के रूप में कांग्रेस से किसी अर्थ में कम नहीं है, (३) गत ५० वर्षों में कांग्रेस की साधन सम्पन्नता और कुशलता का ह्रास जिससे राष्ट्रपति के नेतृत्व और नियन्त्रण में वृद्धि हुई, उसके लिए अपनी इच्छा को कार्यान्वित करने का मार्ग खुल गया, (४) जैसा कि प्रायः प्रकट होता रहता है कानून निर्माण में और नीति निर्धारित करने के लिए निश्चित नेतृत्व की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव की गई है और यह आवश्यकता निरंतर बढ़ती और निश्चित होती रही है परन्तु इसके लिए कोई अन्य वैधानिक व्यवस्था न होने से राष्ट्रपति ही सर्वाधिक महत्त्व रखता है, और (५) इस पद के महत्त्व को इतना अधिक बढ़ा देने का श्रेय एक के बाद दूसरे आने वाले राष्ट्रीय संकटों को भी है, जैसे गृहयुद्ध, प्रथम विश्वयुद्ध, १९३० का आर्थिक संकट, द्वितीय विश्वयुद्ध, १९४५ के बाद युद्ध आतंक (cold war) का आरम्भ और साम्यवाद के विकास और प्रसार से फैला व्यापक भय।

राष्ट्रपति अधिनायक नहीं है (The President not a dictator)—प्रोफेसर लास्की का कहना है कि अमेरिकी शासन व्यवस्था सीज़रवाद (caesarism) के प्रतिकूल है। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के हेतु राष्ट्रपति जिन अधिकारों का प्रयोग कर सकता है वह हर मोड़ पर एक निश्चित प्रणाली बद्ध होने के कारण अत्यन्त सीमित होते हैं और उसे अनेक प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ता है। वह कांग्रेस को भंग करने की धमकी नहीं दे सकता। लास्की ने लिखा है कि "कांग्रेस की इच्छा के घेरे में सीमित राष्ट्रपति एक ऐसे सागर में पड़ा नाविक है जिसको सागर के विषय में अभी कुछ ज्ञात नहीं है, वह निश्चयपूर्वक अपना मार्ग निर्धारित नहीं कर सकता क्योंकि मार्ग अनिश्चित है"। वह अपने समर्थकों से यह सफल अपील भी नहीं कर सकता है कि उसकी अपनी पार्टी में से उसके आलोचकों को निकाल दिया जाय, इसका अनुभव १९३८ में फ्रेंकलिन रूजवेल्ट को हुआ था। दो तिहाई सिनेटरों का समर्थन प्राप्त करना सामान्य तौर पर उसकी शक्ति के बाहर की बात है, क्योंकि वह उसके राष्ट्रपति होने से पहिले से ही पदासीन थे और उसके चले जाने के बाद भी उनके पदासीन रहने की सम्भावना रहती है। वह केवल जनमत पर ही विश्वास कर सकता है, यदि वह जनमत अपने पक्ष में कर ले तो यही उसका सहारा सिद्ध हो सकता है। लार्ड ब्राइस का मत है कि राष्ट्रपति शक्तिशाली

होता है क्योंकि उसे सीधे जनता से अधिकार प्राप्त होते हैं और इसी कारण उसे अत्यन्त सम्माननीय पद प्राप्त है, उस पद पर उसका कोई अन्य प्रतिद्वन्द्वी नहीं और इस पद से वह निःशंक हो जनता को अपने विचारों से प्रभावित कर सकता है। "परन्तु ऐसे राष्ट्रपति की कल्पना करना सम्भव नहीं जो संविधान को उलट कर अपनी तानाशाही स्थापित कर सके। राष्ट्रपति की न कोई स्थायी सेना होती है और न वह उसका निर्माण ही कर सकता है। धन-अनुदान बन्द करके कांग्रेस उसके मार्ग में बाधा डाल सकती है, ऐसा कोई अभिजात वर्ग (aristocracy) नहीं जो उसका साथ दे सके। प्रत्येक राज्य उसके मार्ग में स्वतन्त्र प्रतिरोध केन्द्र बन सकता है। यदि वह मनमानी करना चाहे तो वह केवल कांग्रेस के विरुद्ध जनता से अपील करके ही कर सकता है और कांग्रेस के लिए जनता का विरोध करना सरलता से सम्भव नहीं क्योंकि प्रत्येक दो वर्ष बाद जनता द्वारा ही उसका पुनर्निर्वाचन होता है। इस प्रकार साहसी राष्ट्रपति जनमत अपने पक्ष में कर कानून का उल्लंघन करने का प्रयत्न कर सकता है। वह निरंकुश शासक बन सकता है परन्तु जनता के विरुद्ध नहीं, जनता की सहायता से। परन्तु अमेरिका की वर्तमान राजनीतिक स्थिति में ऐसी कोई बात दृष्टिगोचर नहीं होती है जिससे यह आशंका पैदा हो" (ब्राइस)।

अध्याय ४ | कार्यकारिणी : उपराष्ट्रपति

अमेरिका के संविधान में उपराष्ट्रपति पद को निष्क्रिय परन्तु सम्मानित पद (idle post of honour) माना गया है, सरकार में उसका स्थान शून्य के समान है अर्थात् उसके रहने न रहने से सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, इसके लिए यह भी कहा जा सकता है कि उपराष्ट्रपति गाड़ी के पाँचवें पहिये के समान होता है। जान एडम्स ने एक बार यह घोषित किया कि मनुष्य द्वारा किये गये आविष्कारों में शायद ही अन्य कभी ऐसे अत्यन्त महत्वहीन पद के विषय में सोचा गया हो, सम्भवतः यह पद विश्व में अपना तरह का अकेला है जिसमें दृढ़ता और धैर्य बिल्कुल व्यर्थ है। जैफरसन ने कहा कि "दुनिया में मुझे यही एक ऐसा पद दिखाई दिया जिसके बारे में मैंने अपने को यह निर्णय कर सकने में असमर्थ पाया कि मुझे यह पद स्वीकार करना चाहिए या नहीं। पद सम्मान पूर्ण और आराम दायक है, इसको स्वीकार कर लेने से मैं हर शरद ऋतु की सन्ध्या दाशनिक चिन्तन में बिता सकूँगा और ग्रीष्म में ग्रामों में निवास कर सकूँगा"। यह कुछ अतिशयोक्ति है क्योंकि पद के अनुसार उपराष्ट्रपति सरकार का दूसरे क्रम का अधिकारी ही नहीं है बल्कि यदि राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाय, वह पद त्यागपत्र दे दे, या उसे उसके पद से अलग कर दिया जाय तो ऐसी स्थिति में वही राष्ट्रपति होता है। इस सम्बन्ध में प्रथम उपराष्ट्रपति के शब्दों का दोहराना अनुचित न होगा। उन्होंने कहा था। "यह (राष्ट्रपति) कुछ नहीं है परन्तु वह सब कुछ हो सकता है"। यह ध्यान देने योग्य बात है कि यदि निर्वाचन के बाद तत्काल राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाय और चाहे तब तक उद्घाटन समारोह भी न मनाया गया हो तो यही उपराष्ट्रपति अगली शेष अवधि या पूरे चार वर्षों के लिए राष्ट्रपति पद का भार सम्भालता है।

उपराष्ट्रपति के चुनाव की पद्धति और उसकी विधि के सम्बन्ध में पहिले कहा जा चुका है और यह बताया जा चुका है कि उपराष्ट्रपति की नामज़दगी और उसका चुनाव राष्ट्रपति के निर्वाचन के साथ साथ उसी विधि से सम्पन्न होता है और यह निर्वाचन उसी सम्मेलन और निर्वाचक मण्डल द्वारा ही किया जाता है। वास्तव में संविधान में दोनों पदों के लिए पृथक रूप से मतदान करने की व्यवस्था नहीं की गई थी उसमें केवल यह कहा गया था कि "निर्वाचित" के

अपने अपने राज्य में सम्मेलन होगा और वह दो व्यक्तियों को गुप्त मतदान करेंगे जिनमे से कम से कम एक व्यक्ति उसी राज्य का नहीं होना चाहिए। जिस व्यक्ति को सर्वाधिक मत प्राप्त होंगे वह राष्ट्रपति होगा, परन्तु उसे समस्त निर्वाचक मण्डल की संख्या के आधे से अधिक मत प्राप्त होने चाहियें। राष्ट्रपति के चुनाव के पश्चात् शेष व्यक्तियों में से जिसे निर्वाचक मण्डल के सबसे अधिक मत प्राप्त होंगे वह उपराष्ट्रपति घोषित किया जायगा। परन्तु यदि एकाधिक व्यक्ति समान मत प्राप्त करें तो सिनेट गुप्त मतदान द्वारा उनमें से किसी एक को उपराष्ट्रपति चुनेगी। इससे स्पष्ट है कि मूल संविधान में यह नहीं कहा गया है कि उपराष्ट्रपति पद के लिये निर्वाचक मण्डल मतदान करेगा, उसमें उपराष्ट्रपति पद के लिये योग्यताओं के सम्बन्ध मे भी कुछ नहीं कहा गया है। उसे राष्ट्रपति के रूप में मतदान दिया जायेगा, उसकी योग्यता, आयु, नागरिकता और निवास की शर्तें राष्ट्रपति के समान ही रखी गई।

परन्तु १८०४ के १२ वें संशोधन की स्वीकृति के उपरान्त अब निर्वाचक एक व्यक्ति को राष्ट्रपति पद के लिये और दूसरे व्यक्ति को उपराष्ट्रपति पद के लिए अलग अलग मत-पत्रों द्वारा मतदान देते हैं। संविधान निर्माताओं ने उपराष्ट्रपति को भी राष्ट्रपति के रूप में ही मत देने की व्यवस्था निश्चित उद्देश्य से की थी। उनका वास्तविक उद्देश्य एक ऐसा दूसरा व्यक्ति खोज निकालना था जिस पर आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति के रिक्त आसन की पूर्ति के लिए निर्भर किया जा सके। उपराष्ट्रपति के पृथक निर्वाचन की व्यवस्था कर १२ वें संशोधन ने उस पद के महत्त्व को घटा दिया और उसे गौण स्थान (secondary character) प्राप्त हुआ है क्योंकि पद के आधार पर उपराष्ट्रपति की नामजदगी कर उसका निर्वाचन इस उद्देश्य से नहीं किया जाता कि वह राष्ट्रपति पद पर आसीन हो सकता है, इसका तत्कालिक उद्देश्य पार्टी का लाभ होता है। इसका क्या परिणाम होगा, स्पष्ट है। उपराष्ट्रपति पद का एक प्रकार से बिक्री सी होती है, राष्ट्रपति के लिये मत प्राप्त करने को उपराष्ट्रपति पद का विनिमय किया जाता है। इस पद के लिये आवश्यक योग्यता का केवल एक यह मापदण्ड होता है कि उसके राज्य के निर्वाचक मण्डल पर उसका प्रभाव हो, इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति के चुनाव में सहायता पहुँचाने वाली अनुकूल बातें हों। मार्च १९५३ के 'पोलि-टिकल साइन्स क्वाटरली' में लुसियस विल्मरडिंग ने लिखा है कि निर्वाचक [illegible] या पार्टी सम्मेलन के सदस्य उपराष्ट्रपति के चुनाव में विशेष रूप से [illegible] प्रभावित होते हैं जिनसे उन्हें प्रभावित नहीं होना चाहिये, और [illegible]। और बिल्कुल ध्यान नहीं देते (कि उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति भी [illegible] है) जिसके आधार पर उन्हें निर्णय करना चाहिये। [illegible]

में सन्देह है वहाँ से पार्टी की स्थिति मजबूत बनाने के लिये उपराष्ट्रपति पद के लिये उम्मेदवार चुना जा सकता है (जैसे १८८४ में हैण्डरिक्स), दूसरा व्यक्ति पार्टी के उस अल्प संख्यक दल का समर्थन प्राप्त करने के लिये चुना जा सकता है जो पार्टी-सम्मेलन में राष्ट्रपति पद के लिए असफल हो रहा हो (जैसे १८८० में आर्थर), तीसरा व्यक्ति जन संख्या के किसी विशेष अंग के प्रतिनिधित्व के लिये चुन लिया जा सकता है (जैसे १८६४ में सीमावर्ती राज्यों का वफादार नेता जान सन)। इस दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि १२ वें संशोधन ने स्वयं अपने उद्देश्य को समाप्त कर दिया। इसका घोषित उद्देश्य ऐसे व्यक्ति को राष्ट्रपति होने से रोकना है जिसे राष्ट्रपति बनाने का विचार नहीं है। इससे किसी को आपत्ति नहीं। परन्तु जब राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाती है, तब उसी व्यक्ति की पदोन्नति कर दी जाती है चाहे वह इस योग्य हो या न हो क्योंकि उसको निर्वाचन करते समय तो इस बात की सम्भावना पर ध्यान नहीं किया गया था कि वह राष्ट्रपति भी बन सकता है। इस स्थिति म सुधार करने के लिये यह सुझाव दिया गया है कि उपराष्ट्रपति के अधिकारों को बढ़ाया जाय परन्तु यह सभी सुझाव अस्पष्ट और अव्यवहारिक हैं। इससे पहिले कि हम इन सुझावों पर विचार करें वर्तमान म उपराष्ट्रपति के कर्तव्यों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

उपराष्ट्रपति के सम्बन्ध में सबसे पहली ध्यान देने योग्य बात यह है कि उसका कोई कर्तव्य नहीं है, उसे कुछ कार्य नहीं करना पड़ता। केवल दुर्घटना उपस्थित होने पर ही उसके लिये राष्ट्रपति का कार्य भार सम्भालना अधिकार और कार्य आवश्यक हो सकता है। ऐसा सात बार हो चुका है। इसका सब से नया उदाहरण श्री ट्रूमन का है जो १९४५ में राष्ट्रपति रूजवेल्ट की मृत्यु हो जाने पर उपराष्ट्रपति पद से राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए। साधारणतया उपराष्ट्रपति को जिसे ४५ हजार डालर प्रतिवर्ष वेतन मिलता है केवल सिनेट की अध्यक्षता करने के अतिरिक्त और कोई विधान द्वारा निर्धारित कार्य नहीं करना पड़ता। परन्तु सिनेट में भी उसका सदस्य न होने के कारण उसे मतदान का अधिकार नहीं है, वह केवल पक्ष विपक्ष में बराबर मत मिलने पर ही मत दे सकता है। यद्यपि उसे प्राय वही सब कार्य करने पड़ते हैं जो प्रतिनिधि सदन के अध्यक्ष को करने पड़ते हैं, परन्तु दोनों पद बिल्कुल भिन्न हैं।

जान एडम्स ने कहा है, "मैं दो अधिकारों का स्वामी हूँ, मैं उपराष्ट्रपति हूँ। इस रूप में मैं कुछ नहीं हूँ, यद्यपि मैं सब कुछ हो सकता हूँ। परन्तु मैं सिनेट का अध्यक्ष भी हूँ"। सिनेट के अध्यक्ष के रूप में उपराष्ट्रपति को एक लाभ भी है। वह यह जान सकता है कि कानून निर्माण के क्षेत्र में क्या हो रहा है। अपने

सम्भावित अधिकारों को देखते हुए, यदि वह सार्वजनिक अथवा सरकार की स्थिति के सम्बन्ध में और प्रशासन की नीतियों और योजनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी रखेगा तो इससे उसका लाभ ही होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त सबसे उपयुक्त साधन यह समझा गया है कि वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों में उपस्थित रहे। यद्यपि एडम्स को वाशिंगटन ने कम से कम एक बार मन्त्रिमण्डल की बैठक में बुलाया था परन्तु १९२१ तक कोई भी उपराष्ट्रपति नियमित रूप से मन्त्रिमण्डल की बैठक मे सम्मिलित नहीं हुआ। राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन ने उपराष्ट्रपति टॉमस मार्शल को युद्धकाल में मन्त्रिमण्डल की बैठकों मे भाग लेने के लिये कभी-कभी आमन्त्रित किया और जब राष्ट्रपति विश्व शान्ति सम्मेलन में भाग लेने गये थे तो मार्शल ने ही मन्त्रिमण्डल का सभापतित्व किया। परन्तु यह एक अस्थाई प्रबन्ध था। १९२१ में राष्ट्रपति हार्डिङ्ग ने उपराष्ट्रपति कूलिज को नियमित रूप से मन्त्रिमण्डल की बैठकों म बुलाना आरम्भ कर दिया परन्तु १९२३ म राष्ट्रपति हार्डिङ्ग की मृत्यु हो जाने से यह प्रयत्न भी समाप्त हो गया। इसकी पुनावृत्ति दस वर्ष उपरान्त राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने की और तदोपरान्त उपराष्ट्रपति नियमित रूप से मन्त्रिमण्डल में आमन्त्रित होता रहा है। राष्ट्रपति आइजनहावर के काल में उपराष्ट्रपति पद सशक्त हुआ है और अधिक सम्मानजनक तथा प्रभावशाली भी। १९४९ से उपराष्ट्रपति राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद (National Security Council) का सदस्य होता है। १९५४ मे यह घोषणा की गई कि जबकभी राष्ट्रपति परिषद की बैठकों से अनुपस्थित होंगे तो उपराष्ट्रपति ही इसका सभापतित्व करेंगे। इस पद के कारण तथा अपनी विदेश यात्राओं क बल पर उपराष्ट्रपति निक्सन (Nixon) विदेशी मामलों के सचालन मे विशेष रूप से प्रभावशाली हो गये हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि राष्ट्रपति के अस्वस्थ होने की दशा म उपराष्ट्रपति निक्सन ही मन्त्रिमण्डल की बैठकों का सभापतित्व करते हैं। यथासम्भव राष्ट्रपति आईजनहावर ने उपराष्ट्रपति को एक राजनैतिक तथा प्रशासकीय पदाधिकारी के रूप में विकसित करने का प्रयास किया है।

उपराष्ट्रपति पद को अधिक लाभदायक और महत्वपूर्ण बनाने के लिये इसके अधिकारों में वृद्धि करने के सम्बन्ध में अनेक सुझाव दिये गये हैं। उदाहरणस्वरूप, १९०९ में सिनेटर बैवरिज ने सुझाव रखा कि उपराष्ट्रपति को सिनेट की समितियों में नियुक्त किया जाना चाहिए परन्तु अनेक आलोचकों ने यह सुझाव स्वीकार नहीं किया। लूसियस विल्मरडिङ्ग ने अपने एक लेख में लिखा है कि 'सिनेट का अपना अध्यक्ष चुनने की अनुमति नहीं दी गई है यह बहुत बड़ा अन्याय है। यदि बार रीड जैसा कोई अध्यक्ष उस पर लाद दिया जाय तो जब तक सिनेट

अधिकारों में वृद्धि करने के सुझाव

और उसकी एक ही राजनीतिक विचारधारा होगी यह व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहेगी परन्तु यदि उपराष्ट्रपति किसी और पार्टी का हो और सिनेट का बहुमत किसी दूसरी पार्टी का अनुयायी हो तो ऐसी स्थिति में क्या होगा' ?

उपराष्ट्रपति के प्रशासन अधिकारों में वृद्धि करने के भी अनेकों सुझाव दिये गये हैं। उदाहरण के लिये १६१६ में प्रतिनिधि सभा के सदस्य हेस ने संविधान में यह संशोधन करने का अनुरोध किया कि उपराष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल का सदस्य बनाया जाय चाहे उसको कोई विभाग न सौंपा जाय। १६४६ में प्रतिनिधि सभा के सदस्य मनरोने ने एक ऐसे संशोधन की बात चलायी जिसके आधार पर उपराष्ट्रपति को प्रशासन कार्य में राष्ट्रपति का सहकारी बनाया जा सके। हाल ही (२० दिसम्बर १६५२) मनरो इ-क्यू-च ने 'दि नेशन' के १७५ वें खण्ड में सुझाव दिया है कि उपराष्ट्रपति संयुक्त राष्ट्रसंघ में अमेरिकी प्रतिनिधि मण्डल का पदेन सदस्य (ex officio member) बना दिया जाय या राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद का अध्यक्ष बना दिया जाय। परन्तु कहा गया है कि यह सभी प्रस्ताव और सुझाव अमेरिका संविधान के अनुकूल नहीं हैं क्योंकि उसमें संयुक्त राज्य अमेरिका के समस्त प्रशासन अधिकार एक व्यक्ति के हाथों में सौंप दिये गये हैं। और यह आशंका भी प्रकट की गई कि उपराष्ट्रपति जिसको केवल महाभियोग द्वारा ही हटाया जा सकता है पर्याप्त अधिकार प्राप्त कर अपने पद का उपयोग न केवल प्रशासन की सहायता करने के लिए ही कर सकता है बल्कि उसका दुरुपयोग भी कर सकता है।

उपराष्ट्रपति के चुनाव की विधि को बदलने के सम्बन्ध में भी कुछ सुझाव दिये गये हैं। यह कहा गया है कि उपराष्ट्रपति का चुनाव राष्ट्रपति के चुनाव से पृथक हो, चुनाव में उपराष्ट्रपति को राष्ट्रपति के साथ एक जोड़े के रूप में न खड़ा किया जाय जैसे वर्तमान में होता है, अर्थात नवम्बर १६५६ में होने वाले चुनाव में अमेरिकी जनता वास्तव में आइजनहावर और निक्सन या स्टीवेन्सन और केफेवर (Kefauver) में से किसी एक जोड़े को चुन सकती थी। वह ऐसा नहीं कर सकती कि आइजनहावर को राष्ट्रपति और केफेवर को उपराष्ट्रपति चुन ले। अर्थात् दोनों एक ही पार्टी के होने चाहियें। यह सोचा गया कि यदि दोनों पदों के लिए पृथक चुनाव कराये जाँय तो इससे पार्टी सम्मेलनों को इन पदों के लिये अधिक अच्छे उम्मेदवार खड़े करने के लिये विवश किया जा सकेगा।

श्री लुसियस विल्मरडिंग ने मार्च १६५३ के 'पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली' में सुझाव दिया है कि यदि नियम बना कर यह व्यवस्था कर दी जाय कि जब राष्ट्रपति का पद रिक्त हो तो उपराष्ट्रपति उस पद पर तब तक कार्य कर सकता है

जब तक कि राष्ट्रपति का पुनः निर्वाचन न हो जाय, तो उपराष्ट्रपति के सम्बन्ध में जो आपत्तियाँ की जाती हैं वह दूर हो जायँगी। १९५२ में वाल्टर लिपमैन ने भी इसी प्रकार का सुझाव दिया है। लिपमैन ने लिखा है कि मध्यकाल में होने वाले चुनाव से पहिले ही राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाय तो नये राष्ट्रपति का चुनाव किया जाना चाहिये, यह चुनाव अगले चार वर्षों के लिये किया जाना चाहिये। परन्तु यदि राष्ट्रपति की अपने कार्यावधि के उत्तर मध्यकाल (second half of his term) में मृत्यु हो जाय तो व्यवस्था उसी प्रकार होनी चाहिये जैसी वर्तमान में होती है। सिनेटर स्मैथर्स ने भी हाल ही संविधान में संशोधन करने के निमित्त इसी प्रकार का एक संयुक्त प्रस्ताव रखा है जिसमें कहा गया है कि "यदि राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाय या वह राष्ट्रपति पद पर कार्य करने का योग्य न रहे (कार्यावधि के पूर्व मध्य काल में) और अगले सार्वजनिक चुनाव में अभी ६० दिन से अधिक देर हो तो राष्ट्रपति के रिक्त स्थान में अगले चुनाव तक के लिये उपराष्ट्रपति पदासीन होगा"।

१९४७ का राष्ट्रपति उत्तराधिकार कानून

यदि मृत्यु, त्यागपत्र, पद से अलग कर दिये जाने या किसी अन्य प्रकार की अयोग्यता के कारण देश राष्ट्रपति विहीन या उपराष्ट्रपति विहीन हो जाय तो संविधान में कांग्रेस को ऐसी परिस्थितियों में किसी अधिकारी का राष्ट्रपति घोषित करने का अधिकार दिया गया है। १८८६ के राष्ट्रपति उत्तराधिकार कानून में यह व्यवस्था दी गई थी कि ऐसी परिस्थिति में मन्त्रिमण्डल के सचिव अपने विभागों—परराष्ट्र, वित्त इत्यादि—की ज्येष्ठता के क्रमानुसार राष्ट्रपति पद पर नियुक्त किये जायँगे। परन्तु इस व्यवस्था पर अनेक आपत्तियाँ की गईं इसलिए १९४७ में राष्ट्रपति ट्रूमन की सिफारिश पर कांग्रेस ने १९४७ का राष्ट्रपति उत्तराधिकार कानून पास किया। इस कानून के अनुसार उत्तराधिकारियों की सूची में प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष का नाम सर्वप्रथम आता है (निस्सन्देह उपराष्ट्रपति के पश्चात्, इसके उपरान्त सिनेट के अध्यक्ष (Senate's President pro tempore), इसके बाद प्रशासन विभागों के अध्यक्षों (परम्परागत क्रमानुसार) का नाम आता है। इस व्यवस्था की भी अनेक कारणों से आलोचना की गई है, विशेषकर उस व्यवस्था की जिसमें कहा गया है कि राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर कार्यवाहक राष्ट्रपति पूर्व राष्ट्रपति के कार्यकाल की समाप्ति तक पदासीन रहेगा। आलोचकों की आपत्ति है कि यह व्यवस्था अनुचित है। इधर राष्ट्रपति आइज़नहावर के अस्वस्थ रहने से विशेष चिन्ता उत्पन्न हुई है और इसको लेकर गम्भीर विवाद किया जाता है कि यदि राष्ट्रपति बीमार पड़ जाने के कारण अपने पद के कार्यों को कर सकने में असमर्थ हो जाये तो ऐसी दशा में क्या होगा। संविधान

राष्ट्रपति की अयोग्यता की स्थिति में उपराष्ट्रपति के उत्तराधिकार की व्यवस्था करता है। परन्तु "अयोग्यता" की पराकाष्ठा क्या है? कौन यह निर्धारित करेगा कि राष्ट्रपति अपने पद के कार्य सम्पन्न करने के अयोग्य हो गये हैं? क्या उपराष्ट्रपति को राष्ट्रपति पद की शपथ लेनी होगी? क्या राष्ट्रपति स्वस्थ हो जाने पर पुनः अपने पद को प्राप्त कर सकेगा? इस प्रकार के प्रश्न अमेरिकी राजनीति में पिछले कुछ वर्षों में समय समय पर आइज़नहावर के बीमार पड़ जाने के कारण गम्भीर विवाद का विषय बने हुये हैं। २६ फरवरी १९५६ को राष्ट्रपति ने घोषित किया कि वह और उपराष्ट्रपति पूर्णतया सहमत हैं कि उनकी बीमारी की दशा में उपराष्ट्रपति को क्या करना होगा।। संक्षेप में, यदि राष्ट्रपति अपना कार्य करने के अयोग्य हो गया तो वह उपराष्ट्रपति को यदि उनके लिये सम्भव होगा तो इसकी सूचना देंगे जिसको पाकर उप राष्ट्रपति उनके पुन स्वस्थ होने तक राष्ट्रपति पद का कार्य भार वहन करेंगे। यदि राष्ट्रपति अपनी अयोग्यता की सूचना देने तक में असमर्थ होंगे तो उप राष्ट्रपति उचित और आवश्यक परामर्शोपरान्त राष्ट्रपति पद का कार्य भार ग्रहन कर सकेंगे। राष्ट्रपति को यह निमार्ण करने का अधिकार होगा कि वह अपने पद का कार्य कर सकने के योग्य हो गये हैं। उपराष्ट्रपति को राष्ट्रपति पद की शपथ नहीं लेनी होगी। २५ मार्च १९५६ को आइज़नहावर ने एक संशोधन प्रस्ताव कांग्रेस के सामने प्रस्तुत किया जिसका अभिप्राय यह था कि मन्त्रिमण्डल को यह निर्णय करने का अधिकार दिया जाये कि कब राष्ट्रपति अपने पद का कार्य कर सकने के अयोग्य हो गया है और उपराष्ट्रपति को उसके स्थान पर कार्य करना आवश्यक है।

संयुक्तराज्य अमेरिका में हा ऐसे प्रचारकों और राजनीतिज्ञों की संख्या कम नहीं है जिनका यह मत है कि उपराष्ट्रपति का पद समाप्त कर दिया जाना चाहिये और यदि पूर्व मध्यकाल में राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाय, वह त्यागपत्र दे दे, पद से अलग कर दिया जाय या अन्य कारणों से अयोग्य हो जाय तो कानून द्वारा मध्य काल में निर्वाचन किये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिये। इनका यह भी कथन है कि नया राष्ट्रपति चुन लिये जाने तक के लिये कांग्रेस का किसी अधिकारी को राष्ट्रपति पद पर आसीन करने का अधिकार दिया जाना चाहिये, और यदि राष्ट्रपति अस्थायी तौर पर कार्य चला सकने में असमर्थ हो तो इस असमर्थता या अयोग्यता के दूर होने तक के लिये भी किसी अधिकारी को पदासीन करने का अधिकार कांग्रेस को दिया जाना चाहिये।

क्या उपराष्ट्रपति *का पद समाप्त कर* दिया जाय?

इस दृष्टिकोण के समर्थन में अनेक तर्क दिये गये हैं (१) यह पद अना

वश्यक है, इसका कोई कार्य नहीं है, सिनेट के अध्यक्ष के रूप में भी इसकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसके न रहने पर भी सिनेट का कोई अध्यक्ष होगा ही, राष्ट्रपति के उत्तराधिकारी के रूप में भी यह पद अनावश्यक है। (२) उपराष्ट्रपति का केवल अस्तित्व मात्र ही खतरे से खाली नहीं है क्योंकि यदि राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाय या उसे पद से अलग कर दिया जाय तो उसके रिक्त स्थान में एक ऐसा व्यक्ति पदासीन होकर व्हाइट हाउस में प्रवेश कर सकता है जिसके सम्बन्ध म पहिले यह कल्पना ही न की गई हो, जो अयोग्य हो और राष्ट्रपति पद पर आसीन होने के लिये पूर्णतया अनुपयुक्त हो। (३) यदि उपराष्टपति पद को समाप्त कर दिया जायगा तो राष्ट्रपति पद रिक्त होते ही कांग्रेस द्वारा राष्ट्रपति के निर्वाचन का आदेश जारी करने की वैधानिकता में तनिक भी सन्देह नहीं रहेगा।

इन सब तर्कों से यह प्रश्न उठता है कि क्या उपराष्ट्रपति की कोई आवश्यकता है और यदि नहीं तो क्या इस पद को समाप्त कर देना उचित न होगा ? परन्तु फिर भी ऐसे आलोचकों का और उत्तरदायी व्यक्तियों का बहुमत है जो उपराष्ट्रपति पद को बनाये रखना और उसको शक्ति सम्पन्न बनाना चाहते हैं। कुछ लेखक इस बात का गम्भीरता से सोचते हैं कि आधुनिक राष्ट्रपति के अत्यधिक कार्य में से कुछ कार्य उपराष्ट्रपति को सौंपा जा सकता है, यदि ऐसी व्यवस्था हो जाय तो राष्ट्रपति को अपने अन्य क्षेत्र में कुछ कार्य करने का अवसर मिल जायगा। उपराष्ट्रपति पद को महत्वपूर्ण बनाने के निमित्त उचित अधिकार हस्तान्तरित करने के लिये और इससे राष्ट्रपति को पर्याप्त अवकाश (relief) देने के लिये सम्भवत संविधान म संशोधन करने का आवश्यकता पड़ेगी, परन्तु साधारण नियमों से भी इस दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये जा सकते हैं।

अध्याय ५ | मंत्रिमण्डल

अमेरिका की राष्ट्रपति-मूलक शासन प्रणाली में ब्रिटेन की भाँति मन्त्रिमण्डल नहीं होता है परन्तु फिर भी अमेरिकी संविधान सम्बन्धी साहित्य में इस शब्द का प्रयोग किसी भी रूप में ब्रिटेन से कम नहीं है। अमेरिका का मन्त्री-मण्डल ब्रिटेन की तरह कानून द्वारा निर्मित नहीं बल्कि प्रथाओं के आधार पर ही विकसित संस्था है। दोनों देशों की मंत्रिमण्डल व्यवस्था में असाधारण भेद होते हुए भी यह एक समानता है। चूँकि दोनों देशों के मन्त्रिमण्डल एक दूसरे से नितान्त भिन्न प्रणालियों—राष्ट्रपति मूलक शासन प्रणाली और संसदीय प्रणाली—पर आधारित हैं इसलिये दोनों के संगठन, योग्यता, गुण, स्थिति, अधिकार और कार्यों में बहुत अन्तर है। ब्रिटेन की मन्त्रिमण्डलीय व्यवस्था के विपरीत अमेरिकी मन्त्रिमण्डल के सदस्य संविधान के अनुसार न तो कांग्रेस के किसी सदन के सदस्य हो सकते हैं और न उसके कार्य में भाग ले सकते हैं। अमेरिका में मन्त्रिमण्डल के सदस्य वास्तव में राष्ट्रपति के परामर्शदाता मात्र होते हैं। लास्की ने लिखा है कि अमेरिका मन्त्रिमण्डल के मन्त्री का अस्तित्व, उसका जीवन और उसकी गतिविधि सब राष्ट्रपति के साथ ही सम्बद्ध होती है, प्राइस का मत है कि 'राष्ट्रपति से पृथक मन्त्रिमण्डल की बात ही नहीं की जा सकता है'।

अमेरिका की राष्ट्रपति मूलक शासन प्रणाली में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि समस्त प्रशासनाधिकार राष्ट्रपति में ही केन्द्रित होते हैं। अतः मन्त्रिमण्डल का अस्तित्व और उसके कार्य राष्ट्रपति पर ही निर्भर करते हैं। यदि उसको राष्ट्रपति से अधिकार प्राप्त न हो तो मन्त्रिमण्डल का अस्तित्व ही नहीं हो सकता है। दो ऐसे चुटकुले (anecdotes) हैं जिनके आधार पर ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल और अमेरिकी मन्त्रिमण्डल के अन्तर को समझाया जा सकता है। कहा जाता है कि मेलबोर्न ने ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की बैठक में 'कौर्न लॉज' (Corn Laws) पर मत देने को कहा। उन्होंने कहा 'हमारा निर्णय चाहे कुछ भी हो परन्तु आवश्यक यह है कि हम सब उससे सहमत हों'। इसके विपरीत अमेरिकी राष्ट्रपति लिंकन ने किसी समस्या पर अपने मन्त्रिमण्डल का मत माँगा और घोषित किया कि 'सात विरुद्ध, एक पक्ष में, इसलिये एक की बात मान ली गई' (Noes seven, ayes one, the ayes have it)। अमेरिकी कैबिनेट का 'राष्ट्रपति

का परिवार' भी कहा जाता है जिसमें सारा बातों पर उसका ही नियन्त्रण और अंतिम निर्णय होता है। अमेरिकी मन्त्रिमण्डल में वह सब विशेषताएँ नहीं हैं जिनका हम ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल से सम्बन्ध जोड़ते हैं, जैसे एकता, समानता, दृढ़ संगठन, गोपनीयता (secrecy), सामुहिक या संयुक्त उत्तरदायित्व।

वैधानिक आधार और विकास

१७८७ में अमेरिकी संविधान के निर्माता इस बात पर सहमत थे कि अमेरिका में केवल एक प्रशासक या एक व्यक्ति की कार्यकारिणी होनी चाहिए, एक से अधिक की नहीं। यह निर्णय करने में उन्हें केवल अमेरिका के पिछले इतिहास से ही सहायता नहीं मिली बल्कि उनको इस व्यवस्था से यह लाभ दिखाई दिया कि इससे किसी भी मामले में तत्काल कार्रवाइ कर सकने में सहायता मिलेगी और उत्तरदायित्व को भी अधिक केन्द्रित किया जा सकेगा। इस व्यवस्था से प्रशासक की निरंकुशता का भय उत्पन्न हो सकता था परन्तु इस भय को दूर करने के लिये उसका कार्य काल निश्चित कर दिया गया, अधिकार सीमित कर दिये गये और यह व्यवस्था की गई कि महाभियोग के द्वारा उसे पदच्युत किया जा सकेगा। 'अधिकारों के पृथक्करण' के सिद्धान्त के प्रति गहरी आस्था होने के कारण ब्रिटेन की तरह मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था करना असम्भव था।

यह स्पष्ट था कि भविष्य में राष्ट्रपतियों को परामर्श की आवश्यकता पड़ेगी। उनका विचार था कि क्रिनेट कार्यकारिणी परिषद के रूप में काय कर सकती है और परामर्श के लिए राष्ट्रपति इस से सहायता ले सकता है। परन्तु जब वाशिंगटन ने सदन में उपस्थित होकर मूल निवासियों से की गई संधियों (Indian Treaties) के सम्बन्ध में परामर्श करना चाहा तो सदस्यों के व्यवहार से यह स्पष्ट हो गया कि वह इसे अपना कार्य नहीं समझते। इससे राष्ट्रपति और सिनेट के बीच वह सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका जिसकी आशा की जाती थी। इसके अतिरिक्त १७९३ में उच्चतम न्यायालय ने वाशिंगटन को सूचित किया कि वह अपने को कानून सम्बन्धी प्रश्नों पर सम्मति देने का अधिकारा नहीं समझता है, वह केवल उसके सम्मुख लाये गये मुकदमों पर ही निर्णय दे सकता है, इसलिये इस दिशा में भी परामर्श करने की आवश्यकता की पूर्ति नहीं का जा सकी। अत मे, प्रतिनिधि सभा ने भी इस दिशा म हतोत्साह किया। इन सभी कारणों से, जो यद्यपि एक दूसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र थे परन्तु समकालीन थे, राष्ट्रपति को अपने वैधानिक अधिकारों का प्रयोग करने के लिये विवश होना पड़ा जिनके अनुसार वह प्रशासन विभाग के प्रधान अधिकारी से किसी भी समस्या पर जो उनके विभागों से सम्बन्ध रखती हो लिखित सम्मति मांग सकता था। क्रमश इसी क्रम में मन्त्रिमण्डल का उदय हुआ।

राष्ट्रपति वाशिंगटन और उनके विभागीय अध्यक्षों के बीच हुई बैठकों के कागजात मिले हैं जिनमें सबसे पुराने १७९१ के हैं। यह कागजात बिखरे रूप में प्राप्त हैं। १७९३ में विदेशी युद्ध का सकट उत्पन्न हो जाने से प्राय परामर्श किया जाने लगा और बाद में इस विधि ने नियमित रूप ही ग्रहण कर लिया। यद्यपि राष्ट्रपति वाशिंगटन ने मन्त्रिमण्डल शब्द का कभी प्रयोग नहीं किया परन्तु इस बीच प्राय इस शब्द का प्रयोग किया जाने लगा था। तब से अमेरिकी मन्त्रिमण्डल का अटूट इतिहास आरम्भ हुआ यद्यपि बीच में कभी कभी अन्य सस्थाओं (Agencies) और कभी राष्ट्रपति के निजी सलाहकारों के मन्त्रिमण्डल पर छा जाने से इसका महत्व कम हो गया। इस सम्बन्ध में कर्नल हाउस, हैरी हापकिन्स और एवरल हैरी-मेन जैसे व्यक्तियों के अतिरिक्त जैक्सन के 'किचिन केबिनेट' और फ्रेंकलिन रूजवेल्ट के 'ब्रेन ट्रस्ट' तथा 'सुपर केबिनेट' का उदाहरण दिया जा सकता है। राष्ट्रपति आइजनहावर के अपने भाई डा० मिल्टन आइजनहावर तथा जनरल क्ले (General Clay) से प्राय परामर्श लेने का बात सर्वविदित है। यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यद्यपि गत डेढ़ सौ वर्षों से मन्त्रिमण्डल अमेरिकी सरकार का महत्वपूर्ण अग बना हुआ है फिर भी यह सस्था आज भी पूर्व सी ही केवल प्रथाओं पर ही आधारित है और यदि कोई राष्ट्रपति इसके बिना कार्य करना चाहे तो कोई वैधानिक या कानूनी आपत्ति नहीं उठाई जा सकती है।

मन्त्रिमण्डल की वर्तमान स्थिति

यदि विश्लेषण कर देखा जाय तो प्रतीत होगा कि मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति की अध्यक्षता में विभागीय अध्यक्षों की बैठक मात्र है। इसमें (१) परराष्ट्र मन्त्री, (२) प्रतिरक्षा मन्त्री, (३) वित्त मन्त्री, (४) वाणिज्य मन्त्री, (५) श्रम मन्त्री, (६) गृह मन्त्री, (७) कृषि मन्त्री, (८) पोस्ट-मास्टर जनरल, (९) एटर्नी जनरल, (१०) स्वास्थ्य शिक्षा व सुधार मन्त्री होते हैं। अन्तिम विभाग की स्थापना १ अप्रैल १९५३ को हुई थी और श्रीमती ओवेटा कल्प हॉबी इसकी प्रथम मन्त्री २ अप्रैल १९५३ को मनोनीत हुई। इन विभागीय अध्यक्षों का शासक राष्ट्रपति होता है और यदि राष्ट्रपति परामर्श मांगे तो इन अध्यक्षों को परामर्श देना अनिवार्य होता है, इनको स्वय परामर्श देने का अधिकार नहीं है। कभी कभी उपराष्ट्रपति को भी मंत्रिमण्डल की बैठक में शामिल किया गया है, यद्यपि यह प्रश्न उठा है कि उपराष्ट्रपति मंत्रिमण्डल का सदस्य है या नहीं। चूंकि मन्त्रिमण्डल की सदस्यता के लिये कोई निश्चित नियम नहीं है इसलिए यह निर्धारित करना प्रत्येक राष्ट्रपति पर निर्भर करता है कि यदि उप राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की बैठक में भाग लेने के लिये तैयार हो तो वह ऐसा निम

हैसियत से कर सकता है या मन्त्रिमण्डल में उसका क्या स्वर होगा। राष्ट्रपति आइजनहावर ने श्रीमती हॉबी को संघीय सुरक्षा एजेंसी (Federal Security Agency) की संचालिका के रूप में नियुक्ति करते समय (नवम्बर १९५२) यह घोषित किया कि उनको मन्त्रिमण्डल की बैठकों में भाग लेने का भी अधिकार होगा। इसी प्रकार ६ फरवरी १९५८ को गॉरडन ग्रे (Gordon Gray) की Director of the office of Defence Mobilisation के रूप में नियुक्ति करते समय उनके मन्त्रिमण्डल की बैठकों में भाग ले सकने की भी घोषणा की गई। इससे पूर्व १९५५ में हैरल्ड स्टैसन (Herald Stassen) को निःशस्त्रिकरण पर राष्ट्रपति के विशेष परामर्शदाता के रूप में नियुक्त करते समय मन्त्रिमण्डलीय स्थिति (सदस्यता नहीं) दी गई थी। सार्वजनिक सेवा आयोग के अध्यक्ष को भी नियमित रूप से मन्त्रिमण्डल की बैठकों में आइजन हावर ने आमन्त्रित किया है।

नियुक्ति और पदच्युति—विभागों का निर्माण समय समय पर कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कानूनों के अनुसार हुआ है। उनके अध्यक्षों की नियुक्ति राष्ट्रपति सिनेट की स्वीकृति पर करता है। परन्तु राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत नाम को सिनेट प्रायः स्वीकार कर लेती है क्योंकि धारणा यह है कि यदि राष्ट्रपति प्रशासन के लिये उत्तरदायी है तो उसे अपने सहकारियों को चुनने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। आज तक राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत मन्त्रिमण्डल के नामों में केवल ६ नामों को सीनेट ने अस्वीकार किया है। अन्तिम अस्वीकृत नाम श्री स्ट्राउस (Lewis Strauss) का है जिन्हें राष्ट्रपति आइजनहावर ने वाणिज्य विभाग (Department of Commerce) के लिए मनोनीत किया था परन्तु सिनेट ने १६ जून १९५६ को उनका नाम पद के लिए अस्वीकार कर दिया।

जिस रीति से उनकी नियुक्ति की जाती है उस। तर्क के आधार पर मन्त्रिमण्डल के सदस्य प्रत्येक मामले में केवल राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं जो यदि चाहे तो स्वतन्त्रतापूर्वक उनको पदच्युत भी कर सकता है। इंग्लैंड या फ्रांस में यदि प्रधान मन्त्री अपने प्रभावशाली साथी को मन्त्रिमण्डल से अलग करता है तो उसे गम्भीर महत्व दिया जाता है। परन्तु राष्ट्रपति को अपने मन्त्रिमण्डल से किसी प्रभावशाली साथी को अलग करने में किसी भय पर विचार करने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि उसके दृष्टिकोण से उसके मन्त्रिमण्डल में ऐसा प्रभावशाली सदस्य कोई नहीं है जो उसकी स्थिति को खतरे में डाल सके। "वास्तव में मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति के सलाहकारों की एक संस्था है, यह उसके उत्तराधिकारियों की परिषद नहीं है जिनके साथ मिलकर उसे कार्य करना है और जिनकी इच्छा अथवा स्वीकृति पर वह निर्भर करता है" (लास्की)।

राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति को प्रभावित करने वाले तथ्य (Factors in President's choice)—मन्त्रिमण्डल के लिये सदस्यों की नियुक्ति करने में सिनेट की स्वीकृति प्राप्त करने की आवश्यकता के अतिरिक्त वैधानिक दृष्टि से राष्ट्रपति पूर्ण स्वतन्त्र है और यह सिनेट का प्रतिबन्ध भी व्यवहार में अधिक महत्व नहीं रखता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, गत १७० वर्षों में सिनेट द्वारा केवल ६ नामों को अस्वीकार किया गया है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि राष्ट्रपति जब अपने शासनकाल के आरम्भ में मन्त्रिमण्डल का सगठन करता है या मन्त्रिमण्डल के रिक्त स्थान की पूर्ति करता है तो वह इस कार्य में पूर्ण स्वतन्त्र है। वास्तव में उसे विभिन्न और कभी कभी तो अत्यन्त चिन्ताजनक व्यवहारिक बातों को ध्यान में रखना पड़ता है। सबसे पहली आवश्यकता यह है कि पार्टी की एकता और सुदृढ़ता बनी रहे इसलिये स्वभाविक ही जिन व्यक्तियों को मनोनीत किया जाता है वह साधारणतया उसकी पार्टी के होने चाहियें। १७९५ के पश्चात् पार्टी की एकता के सिद्धान्त का काफी दृढ़ता से पालन किया गया है यद्यपि कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें व्यक्तिगत कारणों से या अन्य विशेष कारणों से पार्टी के बाहर के भी एक आध सदस्यों को मन्त्रिमण्डल में मनोनीत किया गया है। क्लीवलैंड ने एक ऐसे व्यक्ति को परराष्ट्र मन्त्री नियुक्त किया जो वैसे रिपब्लिकन पार्टी की ओर से राष्ट्रपति पद का उम्मेदवार समझा जाता था परन्तु इस व्यक्ति (वाल्टर ग्रेशम) ने चुनाव सघर्ष में क्लीवलैंड का समर्थन किया था, मेकिनले ने डेमोक्रेटिक पार्टी के सदस्य को वित्तमंत्री नियुक्त किया, थियोडोर रूजवेल्ट और टाफ्ट ने डेमोक्रेट सदस्य को युद्ध मन्त्रि नियुक्त किया, हूवर ने डेमोक्रेट सदस्य को एटर्नी जनरल बनाया, राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने १९४० में अपने मन्त्रिमण्डल में दो प्रसिद्ध रिपब्लिकन सदस्य हैनरी एल० स्टिमसन और फ्रेंक नाक्स को क्रमश युद्ध मन्त्रालय में युद्ध मन्त्री और नौसेना मन्त्री नियुक्त किया। राष्ट्रपति आइजनहावर (Eisenhower) ने नवम्बर १९५२ म श्री मारटिन डरकिन (Martin Durkin) को श्रम मंत्री (Secretary of Labour) के पद पर मनोनीत किया। श्री डरकिन डिमोक्रेट दल के थे और राष्ट्रपति चुनाव में आइजनहावर के विरुद्ध उन्होंने श्री स्टीवेन्सन का समर्थन किया था।

राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रिमण्डल के चुनाव को प्रभावित करने वाली कुछ और व्यवहारिक बातें भी हैं जैसे (१) भौगोलिक विभाजन, (२) पार्टी के विभिन्न वर्गों और दलों का प्रतिनिधित्व, (३) चुनाव में प्राप्त राजनीतिक समर्थन का आभार, (४) व्यक्तिगत मैत्री और कृपा। इस प्रकार अपनी पार्टी के अतिवादी (Radical) वर्ग का समर्थन प्राप्त करने के लिये राष्ट्रपति विल्सन ने १९१३ में डबल्यु० जे०

ब्रयाँ (W J Bryan) को अपना परराष्ट्र मन्त्री नियुक्त किया और १८६१ में राष्ट्रपति लिंकन ने उस समय की रिपब्लिकन पार्टी के पारस्परिक मतभेद रखने वाले दलों का समान-समर्थन प्राप्त करने के लिये अपने मन्त्रिमण्डल में यथासम्भव सबको स्थान देने का प्रयत्न किया, (५) राष्ट्रपति को निस्सन्देह एक व्यक्ति ऐसा सम्मिलित करना चाहिये जिसको कांग्रेस का अनुभव हो और कांग्रेस पर जो प्रभाव भी रखता हो क्योंकि कांग्रेस में वह अपनी उपस्थिति से उस पर नियन्त्रण रखने में राष्ट्रपति की सहायता कर सकता है। इस प्रकार राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने श्री कार्डेल हल को अपना परराष्ट्र मन्त्री नियुक्त किया जिससे श्री हल का कांग्रेस का अनुभव कांग्रेस के साथ अच्छा सम्बन्ध बनाये रखने में सहायक हो, (६) पार्टी के प्रधान नेता को साधारणतया पोस्ट मास्टर जनरल नियुक्त किया जाता है, (७) राष्ट्रपति से यह भी आशा की जाती है कि वह उन व्यक्तियों में से अपना वित्त मन्त्री चुनेगा जिनको देश के पूँजीपतियों का समर्थन प्राप्त है, (८) वह राष्ट्रपति पद के लिये अपने असफल प्रतिद्वन्द्वी उम्मेदवार को उसका समर्थन प्राप्त करने के लिये या पुरस्कृत करने के लिये मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित कर सकता है। इसलिए राष्ट्रपति विल्सन ने श्री ब्रयाँ को अपना परराष्ट्र मन्त्री नियुक्त किया। परन्तु ट्रूमन मन्त्रिमण्डल की तरह अनेक व्यक्तियों को व्यक्तिगत कारणों से (जैसे मित्रता के नाते) मन्त्रिमण्डल में लिया जा सकता है उनका चाहे राजनीति में कुछ भी अनुभव न हो। यह भी संभव है कि किसी मन्त्रिमंडल के सदस्य की ओर मन्त्री नियुक्त होने के उपरान्त ही पहली बार राष्ट्र का ध्यान आकर्षित हुआ हो और जैसे ही उसकी कार्यावधि समाप्त हो वह फिर राष्ट्र के रंगमंच से ओझल हो जाय और अपना एकांत जीवन व्यतीत करने लगे। मुख्य न्यायाधीश स्टोन यद्यपि रिपब्लिकन पार्टी के सदस्य थे परन्तु राष्ट्रपति कूलिज के सहपाठी होने के कारण ही राष्ट्रपति ने उन्हें १९२८ में अटर्नी जनरल के पद पर नियुक्त किया था यद्यपि श्री स्टोन मन्त्रिमण्डल में नियुक्त होने से पूर्व अनेकों वर्ष तक कूलिज के सम्पर्क में न थे। लास्की का मत है कि राष्ट्रपति का मन्त्रिमण्डल एक ऐसी संस्था है जो अमेरिकी राष्ट्र की प्रमुख विशेषताओं को व्यक्त करता है। यदि उसमें पूर्वीय सदस्य हैं तो पश्चिमी भी होंगे, यदि उसमें उत्तरी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व है तो सन्तुलन स्थापित करने के लिये यह आवश्यक है कि दक्षिणी क्षेत्र का भी प्रतिनिधि रखा जाय। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने प्रथम बार एक महिला [illegible] फ्रांसिस परकिंस को अपने मन्त्रिमण्डल में श्रम-मन्त्री नियुक्त किया। [illegible] सदा किसी ट्रेड यूनियन का नेता ही श्रममन्त्री नियुक्त किया [illegible] अमेरिकी श्रमिक सङ्घ में उच्च स्थान हो। अनेक [illegible] युद्ध के पश्चात्, अपने मन्त्रिमण्डल के गठन में भी [illegible]

दिया है, एक मैथोडिस्ट, एक रोमन कैथोलिक और एक एपिस्कोपेलियन को मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित करना आवश्यक सा रहा है, (६) इसके अतिरिक्त विशेष ज्ञान और अनुभव या उनकी प्रशासन योग्यता के आधार पर भी मन्त्रिमण्डल के सदस्य चुने जाते हैं। क्रमश यह अनुपात बढ़ता जा रहा है। मन्त्रिमण्डल में बहुधा उन लोगों को सम्मिलित किया जाता है जिन्होंने अपने व्यवसायिक क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस प्रकार एटर्नी जनरल एक वकील होता है, वाणिज्य और कृषि मन्त्री, जैसा कि हरबर्ट हूवर और हेनरी वालस के उदाहरण से स्पष्ट है, अपने काम के विशेषज्ञ होते हैं, वित्त मन्त्री वह व्यक्ति नियुक्त किया जाता है जिसे देश के महत्त्वपूर्ण बैंकों का विश्वास प्राप्त हो, (१०) राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल निर्माण में दलीय नेताओं से भी प्रभावित होता है। नवम्बर १९५२ में आइजनहावर द्वारा की जाने वाली नियुक्तियों में श्री हर्बर्ट ब्राउनेल (Herbert Brownell) का नाम उल्लेखनीय है।

अमेरिकी मन्त्रिमण्डल की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें ऐसे व्यक्ति नियुक्त होते हैं जिनमें कोई असाधारण योग्यता नहीं होती। यदि अमेरिका के अनेक मन्त्रिमण्डलों पर विचार किया जाय तो पता चलेगा कि उनमें से अधिकांश सदस्यों का अमेरिका के राजनीतिक जीवन में कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं रहा। कांग्रेस का विशेष ख्याति प्राप्त सदस्य कांग्रेस की सदस्यता छोड़कर मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित होना पसन्द नहीं करता। विशेषकर यह युद्ध के उपरान्त ऐसे बहुत कम उदाहरण हैं जबकि कांग्रेस की सदस्यता को छोड़ व्यक्ति मन्त्रिमण्डल में नियुक्त हुए हों। ब्रिटेन और फ्रांस में विधान सभा अथवा संसद के सदस्यों का लक्ष्य ही मन्त्रिमण्डल तक पहुँचना होता है और वे क्रमश उसी दिशा में प्रगतिशील होने का प्रयत्न करते हैं। मन्त्रिमण्डल में स्थान पाना वह अपने राजनीतिक जीवन की चरम सफलता समझते हैं। परन्तु अमेरिका में यह स्थिति नहीं है। लास्की के शब्दों में "मन्त्रिमण्डल की सदस्यता उनके जीवन की एक घटना भर है, वह स्वयं उनके जीवन-लक्ष्य का अभिन्न अंग नहीं। मन्त्रिमण्डल की सदस्यता स्वयं लक्ष्य नहीं बल्कि लक्ष्यप्राप्ति के प्रयत्न में एक विराम मात्र (interlude) है। इसकी प्राप्ति के लिये प्रत्यक्ष रूप से तैयारी करने की कोई विधि नहीं है। मन्त्रिमण्डल की सदस्यता प्राप्त हो गई है इसलिए यह जारी रहेगी, यह निश्चित नहीं। इस बात का कोई आश्वासन नहीं है कि यदि वह अपने पद से सम्बन्धित कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करेगा तो इसके बाद आने वाली सरकार में भी उसको स्थान मिलेगा।" यह पद राष्ट्रपति पद प्राप्त करने की सीढ़ी नहीं और यदि मन्त्रिमण्डल का कोई सदस्य राष्ट्रपति बनने की महत्वाकांक्षा रखता हो तो निस्सन्देह उसके

मन्त्रिमण्डल गुणात्मक दृष्टिकोण से

व्यवहार से राष्ट्रपति को असन्तोष हो जाने की ही अधिक सम्भावना रहती है।

आंशिक रूप से मन्त्रिमण्डल की महत्वहीनता का कारण यह है कि मन्त्रिमण्डल कोई उत्तरदायी संस्था नहीं है, वास्तव में उसके कार्यों के लिये अकेला राष्ट्रपति ही उत्तरदायी होता है। इसका एक कारण यह भी है कि यह ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के अनुरूप नीति निर्धारित करने वाली संस्था नहीं है, साथ ही विभागीय निर्णयों की भी अपील केवल राष्ट्रपति से ही की जा सकती है। इस सम्बन्ध में पुन लास्की का उद्धरण देना अनुचित न होगा। लास्की का मत है कि कांग्रेस के किसी भी सदन के प्रमुख सदस्य, शक्तिशाली व्यवसायिक संस्था अथवा शक्तिशाली ट्रेड यूनियन को यह विश्वास रहता है कि यदि वह विभागीय निर्णय से असन्तुष्ट है तो उसे अपना दृष्टिकोण सीधे राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत कर सकने का अवसर मिलेगा।

राष्ट्रपति और मन्त्रिमण्डल

अमेरिकी शासन प्रणाली म मन्त्रिमण्डल का अपना कोई रूप नहीं है, राष्ट्रपति उसे जो रूप देना चाहे वही उसका रूप होता है। यह उसके हाथ का खिलौना है। ओगन के शब्दों में 'जहाँ तक इसके सदस्यों का प्रश्न है जिस प्रकार एक क्षण में यह सदस्य बनाये गये उसी प्रकार एक क्षण में इनकी सदस्यता समाप्त की जा सकती है'। यह केवल राष्ट्रपति की सलाहकार परिषद के रूप में है क्योंकि कानूनी तौर पर सारे प्रशासन अधिकार केवल राष्ट्रपति को ही प्राप्त होते हैं। वह कुछ कार्रवाई करने से पहिले इससे परामर्श कर सकता है, वह इसकी परामर्श के विरुद्ध भी कार्रवाई कर सकता है, वह इससे परामर्श किये बिना ही कार्रवाई कर सकता है। फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने जब अपनी न्यायालय-योजना प्रस्तुत की तब मन्त्रिमण्डल के बहुत से सदस्यों को इसके विषय में कुछ भी मालूम नहीं था, इसके बाद पर्ल हारबर के आक्रमण के बाद के वर्षों में अणुनम बनाये जाने की भी किसी को सूचना नहीं थी। वह अपने युद्ध मन्त्री की नीति का जोरदार विरोध कर उसे पद त्याग करने के लिये विवश कर सकता है और इसके कुछ सप्ताह पश्चात ही वह अपने नये युद्ध मन्त्री को पूर्व मन्त्री की नीति अपनाने और उसे पहिले की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली ढंग से लागू करने को कह सकता है। यदि कोई मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की डायरी पढ़े (जैसे लिंकन के अधीन गाडियन वेल्स या विल्सन-काल में फ्रैंकलिन लेन या राबर्ट लैन्सिंग की) तो उसे तत्काल मालूम होगा कि नीति निर्धारित करने में उनका सम्बन्ध अन्तरालीय (interstitial) रहा है। उन्हें बहुधा यह मालूम नहीं रहता था कि राष्ट्रपति ने क्या करने का निश्चय किया है, वह यह भी नहीं जानते थे कि राष्ट्रपति ने किस को नियुक्त करने का

निश्चय किया है। उन्हें यह सरलता से ज्ञात हो सकता था कि अमुक महत्वपूर्ण सिनेटर का या किसी निजी मित्र का राष्ट्रपति से उनकी अपेक्षा कहीं अधिक निकट सम्बन्ध है। यह जानने के लिये कि राष्ट्रपति के निजी मित्र या गैर सरकारी सलाहकार का कितना अधिक महत्व हो सकता है मार्क हना और कर्नल हाउस के राष्ट्रपति विल्सन से और थी हैरी हापकिन्स के राष्ट्रपति रूजवेल्ट से सम्बन्धों के उदाहरण ही पर्याप्त हैं और थी हापकिन्स वास्तव में उस लम्बी सूची में सब से साधारण रहे हैं जो पीछे राष्ट्रपति जैक्सन की सुविख्यात 'किचिन कैबिनेट' तक जाती है। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट द्वारा संगठित 'ब्रेन ट्रस्ट', 'उच्चतर मन्त्रिमण्डल (Super Cabinet) और 'आन्तरिक मन्त्रिमण्डल' (Inner Cabinet) से यह प्रकट होता है कि किस प्रकार राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल की उपेक्षा कर उन लोगों का आश्रय ले सकता है जिन पर वह विश्वास करता है। ऐसा भी समय रहा है जब राष्ट्रपति रूजवेल्ट पर रेमण्ड मोले और समर वेलेस का अपने उच्चाधिकारियों से अधिक प्रभाव था। इस प्रकार अनगिनत उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इन गैर-सरकारी परामर्शदाताओं के कारण एक समस्या उत्पन्न हो गई है जिसके दो पहलू हैं (१) वह राष्ट्रपति को जो भी परामर्श देते हैं उसका कोई कानूनी उत्तरदायित्व उन पर नहीं होता है, और (२) परामर्शदाता के पद पर वह तब तक बने रह सकते हैं जब तक वह राष्ट्रपति को अपनी बातों से प्रभावित कर सकते हों। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि राष्ट्रपति और उनके मन्त्रि मण्डलों का परस्पर सम्बन्ध बदलता रहता है जैसे बुचनन या हार्डिङ्ग जैसे निर्बल राष्ट्रपति अपने साथियों को अधिक छूट देते हैं, जिसका कभी-कभी भयानक परिणाम होता है, परन्तु राष्ट्रपति विल्सन अधिक महत्त्व की बातों के सम्बन्ध में अपने परराष्ट्र मन्त्रियों को कार्यालय के साधारण कर्मचारियों के समान समझते थे। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के समय सभी महत्वपूर्ण बातों का सचालन और उन पर नियन्त्रण राष्ट्रपति के ही हाथ में रहता था। इसके विपरीत राष्ट्रपति कुलिज के समय मन्त्रिमण्डल के तीन मन्त्री तो ऐसे थे जो अपनी नीति स्वय निर्धारित करते थे और इसमें राष्ट्रपति ने कम से कम हस्तक्षेप किया। जनवरी-मार्च १९५७ के पोलिटिकल क्वार्टरली (Political Quarterly) में प्रकाशित आर० एच० पीयर के लेख से ज्ञात होता है कि राष्ट्रपति आइजनहावर ने अपने मन्त्रि मण्डल को यथासभव शक्ति और सम्मान प्रदान किया है। "आइजनहावर ने यह नीति अपनाई कि मन्त्रि मण्डल प्रभावशाली अंग से तथा संयुक्त हो कर अधिकाधिक परिश्रम करे। मन्त्रिमण्डल राष्ट्रपति की सहायता करता है और इसके सदस्य परस्पर एक दूसरे का इस प्रकार समर्थन करते हैं जो अमेरिकी इतिहास में अपूर्व है।

मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को दो प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं (१) शासन विभाग का प्रशासन और (२) राष्ट्रपति को परामर्श देने में योगदान। जहाँ तक उनके प्रशासन कार्य का सम्बन्ध है साधारणतया यह विशेषज्ञ नहीं होते हैं क्योंकि बहुधा जिस विभाग की उन्हें अध्यक्षता करनी होती है उन्होंने न उसमें कभी कार्य किया है और न उसके सम्बन्ध में उन्हें कोई पूर्व अनुभव ही होता है। वह ब्रिटेन के अधिकतर मन्त्रियों की तरह राजनीति को अपना व्यवसाय नहीं बना लेते। ब्रिटेन में जिस प्रकार मन्त्रियों का प्रशिक्षण होता है उसका अमेरिका में उदाहरण मिलना बहुत कठिन है। राष्ट्रपति मैकिनले ने जब एलिहू रूट (Elihu Root) को अपना युद्ध मन्त्री नियुक्त किया तो श्री रूट ने कहा 'मैं युद्ध के विषय में कुछ भी नहीं जानता, सेना के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं'। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अब मन्त्रिमण्डल के अधिकाधिक सदस्यों को उनके अनुभव और प्रशासन योग्यता के आधार पर ही नियुक्त किया जाने लगा है। परन्तु यह सम्भव है कि जिस विभाग में उनकी नियुक्ति की जाय उसका उन्हें अनुभव न हो। बहुत से ऐसे होते हैं जिन्होंने व्यवसायिक जगत में या किसी अन्य क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है।

मन्त्रिमण्डल के कार्य

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है मन्त्रिमण्डल का परामर्श देने का कार्य सारहीन होता है। राष्ट्रपति को उनसे परामर्श करना आवश्यक नहीं है, यह भी आवश्यक नहीं कि राष्ट्रपति उनसे परामर्श देने के लिये कहे। प्रोफेसर लास्की ने तो यहाँ तक लिखा है कि "वास्तव में अमेरिकी मन्त्रिमण्डल का सदस्य ब्रिटेन के मन्त्री के समान नहीं बल्कि ब्रिटेन में सरकारी विभाग के स्थायी सचिव के समान होता है। केवल इतना अंतर है कि वह भाषण देता है और उसे कुछ औपचारिक कार्रवाइयाँ करनी पड़ती हैं अपने तर्कों की शक्ति के अतिरिक्त राष्ट्रपति या कांग्रेस को प्रभावित करने के लिये उसके पास अन्य साधन नहीं और यदि वह मंत्रिमण्डल की सदस्यता से अलग हो जाय तो इससे भी राष्ट्रपति या कांग्रेस किसी की स्थिति पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता"। वास्तव में तथ्य यह है कि मन्त्रिमण्डल केवल वही कार्य कर सकता है जो राष्ट्रपति चाहता है, वह पूर्णतया राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करता है। ब्रोगन का मत है कि मन्त्रिमण्डल वास्तव में अपने प्रधान (राष्ट्रपति) की छाया मात्र है और राष्ट्रपति द्वारा उसको विशेष महत्व की संस्था बनाये जाने की भी बहुत कम सम्भावना है।

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और मनोरंजक बात है कि कोई भी राष्ट्रपति परामर्श के लिये केवल मंत्रिमण्डल पर ही निर्भर नहीं करता है, कुछ ने तो (विशेषकर राष्ट्रपति जैकसन ने) परामर्श के लिये मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा अन्य सूत्रों

का आश्रय लिया। कांग्रेसी सदस्य, पुराने मित्र और सहयोगी, बैंकर, मजदूर नेतागण, व्यापारी, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के विशेषज्ञ उन कुछ लोगों में से हैं जिन्हें प्राय 'व्हाइट हाउस' की ओर जाते देखा जा सकता है। राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की पूर्ण उपेक्षा भी कर सकता है और इसके स्थान पर ऐसे परामर्श दाताओं पर विश्वास कर सकता है जिनमें से कुछ उच्चपदाधिकारी रह चुके हैं या कुछ कभी भी किसी पद पर नहीं रहे हैं। कर्नल हाउस, श्री नार्मन डेविस, प्रोफेसर फ्रैंकफर्टर, श्री लुईस डी० ब्रायडीज उन परामर्शदाताओं में से थे जो सरकार में किसी भी पद पर नहीं रहे, इनके विपरीत श्री डीन एचीसन, श्री एडोल्फ बर्ले, श्री टी० जी० कोरकोरन उन सलाहकारों में से थे जो सरकारी पदों पर आसीन रह चुके थे। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के शासन काल के आरम्भिक वर्षों में *एक ओर तो मन्त्रिमण्डल "उच्चतर मन्त्रिमण्डल" में समा गया था जिसे राष्ट्रीय* संकट कालीन परिषद (National Emergency Council) कहा जाता था और जिसमें विभागों के अध्यक्षों (मन्त्रिमण्डल के सदस्यों) के अतिरिक्त नयी संस्थाओं (new recovery agencies) के लगभग दो दर्जन अध्यक्ष और ऐसे व्यक्ति सम्मिलित थे जिन्हें सरकारी-क्षेत्र के बाहर से विशेषज्ञों के रूप में सम्मिलित किया गया था। दूसरी ओर "लघु मन्त्रिमण्डल" को जन्म देकर वास्तविक मन्त्रि मण्डल को पृष्ठ भूमि में डाल दिया गया। यह 'लघु मन्त्रिमण्डल' (little cabinet) वास्तव में विद्वत्‌जनों की मण्डली था जिसमें अधिकतर प्रोफेसर, विशेषज्ञ और सुधारक नियुक्त किये गये थे। इनकी नियुक्ति अधिकतर अधीन सचिवों (Under secretaryship) और सहकारी सचिवों (Assistant secretaryship) के पदों पर की गई थी, *इन्हीं का गुट 'ब्रेन-ट्रस्ट' के नाम से* प्रसिद्ध हो गया। संकट दूर होने के पश्चात जब सामान्य स्थिति उत्पन्न हो गई तब भी यद्यपि वास्तविक मन्त्रिमण्डल अपने पूरे प्रभाव के साथ प्रकट हो गया *फिर भी मन्त्रिमण्डल के बाहर के कुछ व्यक्तियों का प्रभाव बहुत कुछ बना रहा।* हैरी हापकिन्स अनेक वर्ष तक राष्ट्रपति के प्रमुख परामर्शदाता बने रहे यद्यपि वह कुछ अल्पकाल को छोड़कर मन्त्रिमण्डल के सदस्य नहीं थे।

इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भ में विभागों के अध्यक्षों की राष्ट्रपति के साथ विचार विमर्श करने के लिये बैठकें हुआ करती थीं और बाद में बैठकों के इसी क्रम से मन्त्रि मण्डल का जन्म हुआ। अब सप्ताह में एक मन्त्रिमण्डल की बैठकें दिन—शुक्रवार को—मन्त्रिमण्डल की बैठक हुआ करती है यद्यपि संकट काल में या युद्ध के समय यह बैठकें सप्ताह में कई बार भी हो सकती हैं। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के शासन काल के आरम्भिक वर्षों तक अधिकतर मन्त्रिमण्डल की सप्ताह में दो बार बैठकें हुआ

करती थीं। राष्ट्रपति के अतिरिक्त किसी अन्य को मन्त्रि मण्डल की बैठक बुलाने का अधिकार नहीं है। विल्सन के अस्वस्थ हो जाने पर उनके परराष्ट्र मन्त्री श्री लानसिंग को अपने आप मन्त्रि मण्डल की बैठकें बुलाने के कारण राष्ट्रपति के कोप का भाजन बनना पड़ा और इसके बाद शीघ्र ही उनको त्यागपत्र देने के लिये विवश किया गया।

मन्त्रिमण्डल के सदस्य अपनी सरकारी कारों (cars) में अपने कार्यालय में आते हैं, यहाँ से उन्हें मन्त्रिमण्डल की बैठक के कमरे में ले जाया जाता है जहाँ वह निर्धारित क्रम के अनुसार मेज के चारों ओर बैठ जाते हैं। परराष्ट्र मन्त्री और वित्त मन्त्री क्रमशः राष्ट्रपति के दाहिने और बायें ओर बैठते हैं। राष्ट्रपति अष्टकोण मेज के बीच में बैठते हैं और सदस्यगण अपने विभागों की प्रमुखता के क्रम से मेज के चारों ओर। राष्ट्रपति आइज़नहावर से पूर्व बैठक का कार्य आरम्भ करने के लिये कोई विधि बद्ध क्रम नहीं होता था। न ही मन्त्रिमण्डल का कोई सचिव होता था और बैठक की कार्यवाही भी नियमित रूप से लिपीबद्ध नहीं की जाती थी परन्तु राष्ट्रपति आइज़नहावर ने इन तीनों कमियों की पूर्ति कर दी है। वादविवाद के कोई नियम नहीं हैं, परस्पर बातचीत के रूप में खुलकर विचार-विनिमय किया जाता है, मतदान बहुत कम लिया जाता है, बैठक में न कोई प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है और न कोई प्रस्ताव पारित किया जाता है, कभी-कभी इस प्रश्न पर कि किसी कार्य को किस रूप में सम्पन्न किया गया था या उस पर विचार भी किया गया या नहीं मतभेद पैदा हो जाते हैं। बैठक की कार्यवाही किस रूप में की जानी चाहिये इसको निर्धारित करना राष्ट्रपति पर निर्भर करता है। वह इस बात पर जोर दे सकता है कि बैठक नियमित हों, सम्मान और गम्भीरतापूर्वक हो। यह भी सम्भव है कि राष्ट्रपति दैनिक और असह्य गम्भीर वातावरण को कम करने के लिये औपचारिक ढंग से कार्यवाही चलाना अधिक पसन्द करे।

वास्तव में विभिन्न राष्ट्रपतियों के अन्तर्गत मन्त्रि मण्डल की बैठकों का वातावरण भी बदलता रहता है। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन [illegible] के समय बैठकें लगभग दो घण्टे तक चलती रहती थीं और प्रत्येक को [illegible] बोलने का अवसर मिलता था यद्यपि कभी-कभी राष्ट्रपति [illegible] इन वार्तालापों में [illegible] बचा होते थे और पुरानी कहानियाँ सुना-सुना कर [illegible] को कुछ कहने का अवसर ही न देते थे। राष्ट्रपति [illegible] बैठकें [illegible] थीं और रसहीन वातावरण रहता था। बैठकें [illegible] से अधिक [illegible] थीं, राष्ट्रपति घड़ी देखते रहते थे [illegible] कोई सदस्य अपने विचार [illegible]

आइज़नहावर के मन्त्रिमण्डल की बैठकें लगभग ३ घन्टे तक चलती हैं और राष्ट्रपति इस बात पर बल देते हैं कि मन्त्रिमण्डल के निर्णय को प्रत्येक सदस्य अपना मानसिक निर्णय माने।

मन्त्रि मण्डल की बैठक में प्रशासन-नीतियों और अन्य समस्याओं पर विचार किया जाता है परन्तु विशेष रूप से उन्हीं बातों पर विचार होता है, जो चाहे बड़ी हों या छोटी, जिनको स्वयं राष्ट्रपति प्रस्तुत करता है। यद्यपि विभागों के अध्यक्ष अन्य समस्याओं को भी प्रस्तुत कर सकते हैं परन्तु साधारणतया उनके लिये पूर्व स्वीकृति ले ली जाती है। विस्तारपूर्वक यद्यपि इस सम्बन्ध म अधिक ज्ञात नहीं है कि मन्त्रि मण्डल की गुप्त बैठकों में किन बातों पर विचार किया गया है या क्या निश्चय किया गया है परन्तु प्राय यह अनुमान लगाया जाता है कि दो प्रकार के कार्य किये गये होंगे। प्रथम तो यह कि सरकार की व्यापक नीतियों की समीक्षा की गई होगी, उनका विश्लेषण किया गया होगा और उनके समर्थन के लिये जोर दिया गया होगा। नीति निर्धारित करने में उसका कितना बड़ा योगदान होगा यह अधिकतर राष्ट्रपति पर निर्भर करता है। यह सम्भव है कि राष्ट्रपति अपने सलाहकारों की योग्यता एवम् क्षमता पर सन्देह होने के कारण या अपने ही विचारों के अनुरूप दृढ़तापूर्वक कार्य करते रहने की इच्छा के कारण और साथ ही मन्त्रि मण्डल को अनभिज्ञ रखने के उद्देश्य से (जैसा कि कभी कभी राष्ट्रपति विल्सन ने किया) उस समय की अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्याओं को भी विचारार्थ प्रस्तुत न करे। मन्त्रि मण्डल का दूसरा कार्य नियमित रूप से किये जाने वाले दैनिक कार्यों पर विचार विमर्श करना होता है जिसका सम्बन्ध राष्ट्रपति द्वारा विभिन्न विभागों के कार्यों के निरीक्षण और उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने से होता है।

मन्त्रिमण्डल के रूप म कार्य करने के अतिरिक्त मन्त्रिगण विभिन्न प्रशासन विभागों के अध्यक्ष (secretaries) भी होते हैं और अपने विभाग के कार्यों के लिये उत्तरदायी होते हैं। इस रूप में उन्हें नीतियों का प्रारूप तैयार करने, नियुक्तियाँ करने, पत्रव्यवहार करने, मिलने आये हुये लोगों से भेंट करने, शिकायतों को दूर करने, कार्यक्रम तैयार करने, अपने विभाग की नीतियों को जनता को समझाने, अन्य विभागों से समझौता वार्ता करने और विभाग के लिये अधिक अनुदान प्राप्त करने के लिये कांग्रेस को प्रसन्न रखने आदि अनेक कार्य करने पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त उन्हें बहुत से अन्य सामाजिक और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना पड़ता है जिनमें उनका—और कभी-कभी तो उनकी पत्नियों का भी—काफी समय लग जाता है।

मन्त्रिमण्डल के रूप और उसके अधिकारों की उक्त चर्चा के पश्चात् इसकी

मुख्य विशेषताओं पर पुन संक्षेप में प्रकाश डाल देना अनुचित न होगा। (१) मंत्रिमण्डल पूर्णतया राष्ट्रपति के नियन्त्रण में होता है। वही इसकी बैठकों की अध्यक्षता करता है और किसी समय किसी भी मन्त्री को पदच्युत कर सकता है। किसी मन्त्री को पदच्युत कर देने से ब्रिटेन की तरह राजनीतिक सकट पैदा नहीं होता। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए लास्की ने लिखा है कि "राष्ट्रपति एक प्रकार से कुछ अंश तक सारे राष्ट्र का प्रतीक होता है और इस कारण जब तक वह पदासीन रहता है तब तक कोई उसका प्रतिद्वन्दी नहीं हो सकता। उसके सामने मन्त्रिमण्डल के सदस्य की आवाज़ केवल फुसफुसाहट मात्र है, जो सुनी भी जा सकती है और नहीं भी"।

मन्त्रिमण्डल की विशेषताएँ

(२) मन्त्रिमण्डल में समान विचारधारा के लोगों का होना, जैसा ब्रिटेन में होता है, आवश्यक नहीं है और प्राय ऐसा नहीं होता है यद्यपि राष्ट्रपति द्वारा अधिकतर मन्त्री अपनी ही पार्टी से लिये जाते हैं।

(३) मन्त्रिमण्डल के सदस्य जनता द्वारा नहीं चुने जाते हैं। इसके विपरीत यह आवश्यक है कि वे कांग्रेस के सदस्य न हों, उन्हें कांग्रेस के बाहर से ही चुना जा सकता है और यह भी सम्भव है कि उन्हें सार्वजनिक जीवन का बिल्कुल अनुभव न हो।

(४) अमेरिकी मन्त्रिमण्डल में एकता और सुदृढ़ता का अभाव होता है और इस रूप में भी यह ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल से भिन्न है। वास्तव में तथ्य यह है कि राष्ट्रपति जब मन्त्रिमण्डल के सदस्य चुनता है तब उसका उद्देश्य एक समान मत वाले सदस्यों की टीम बनाना नहीं होता है। यह सम्भव है कि जिन्हें वह अपने मन्त्रिमण्डल का सदस्य चुनता है उनमें से कुछ को वह जानता ही न हो, और सदस्यों में भी कुछ ऐसे हो सकते हैं जो एक दूसरे से परिचित न हों। वह ऐसे कारणों से मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित और उससे अलग किये जाते हैं जो यूरोपीय अनुभव से बिल्कुल भिन्न होते हैं। इनमें से बहुत कम ऐसे होते हैं जिनका जनता पर भी कुछ प्रभाव हो।

(५) अन्त में, अमेरिकी मन्त्रिमण्डल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह संयुक्त रूप से या व्यक्तिगत रूप से केवल राष्ट्रपति के ही प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य कांग्रेस की बैठकों में सम्मिलित हो कर वाद विवाद में भाग नहीं ले सकते। मतदान का भी उन्हें अधिकार नहीं होता। वह न कोई विधेयक प्रस्तुत कर सकते हैं और न किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिये विवश ही किये जा सकते हैं। यद्यपि उनपर महाभियोगारोपण किया जा सकता है परन्तु कांग्रेस उनको पदच्युत नहीं कर सकती। किसी भी निर्णय का उत्तरदायित्व राष्ट्रपति पर होता है न कि मन्त्रियों पर और कांग्रेस के पास भी राष्ट्रपति तक पहुँचने

के लिये महाभियोग के साधन के अतिरिक्त और कोइ अस्त्र नहीं है। परन्तु मन्त्रिगण अपने प्रधान (राष्ट्रपति) के बिल्कुल अधीन होते हैं और उसके प्रति उत्तरदायी होते हैं। परिणाम यह होता है कि मन्त्रियों पर राष्ट्रपति का पूर्ण प्रभुत्व होता है। सम्बन्धित कागजात से मालूम होता है कि अमेरिका में मन्त्रिमण्डल के कार्य की जो प्रणाली है उसमें ब्रिटिश या फ्रांसीसी मन्त्रिमण्डल की तरह सामुहिक रूप से विचार करने की व्यवस्था नहीं है। लास्की का मत है कि मन्त्रिमण्डल का बैठक का उद्देश्य वास्तव में राष्ट्रपति द्वारा विभिन्न मत का संग्रह करना होता है जिससे वह अपने अस्पष्ट विचारों को स्पष्ट कर सके। इसका उद्देश्य सामुहिक रूप से कुछ निर्णय करना नहीं होता है। मन्त्रिमण्डल के निर्णय वास्तव में राष्ट्रपति को दिये गये परामर्श मात्र हैं। मन्त्रिमण्डल का कोई भी सदस्य यह आशा कर सकता है कि उसके विभाग से सम्बन्धित मामलों पर उससे परामर्श किया जायगा यद्यपि उसे इस प्रकार का कोइ आश्वासन नहीं होता कि उसकी सलाह मान ही ली जायगी। वह यह नहीं जानता कि उससे साधारण रूप से अन्य बातों पर भी परामर्श लिया जायगा, इसका उसको अधिकार भी नहीं है। यह भी सम्भव है कि किसी महत्वपूर्ण निर्णय के सम्बन्ध में उसको उस विषय में साधारण जनता से अधिक जानकारी न हो। निर्णय ले लिये जाने पर जनता को उस सम्बन्ध में जितना मालूम हो सकता है प्रायः उसे भी उतनी ही जानकारी होती है। हो सकता है कि निर्णय करने में किसी प्रमुख सिनेटर या कांग्रेस सदस्य को उससे अधिक उपयोगी समझा गया हो। मन्त्रिमण्डल को स्वतन्त्र रूप से न कोई अधिकार प्राप्त है और न सम्मान। यह आवश्यक नहीं कि किसी प्रश्न पर मन्त्रिमण्डल एकमत हो या एकमत होने का बहाना बनाये, क्योंकि उसका निर्णय एक व्यक्ति का निर्णय होता है और उसी के पास शक्ति होती है, उसी की प्रतिष्ठा होती है और वही उत्तरदायी होता है। राष्ट्रपति आइजनहावर के अन्तर्गत इस स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है। पीयर ने इसका वर्णन करते हुये लिखा है "राष्ट्रपति विचाराधीन प्रश्नों पर मन्त्रिमण्डल की सनमति का अनुरोध है और निर्णय करने में इस बात पर बल देता है कि वह सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल का निर्णय माना जाय और प्रत्येक उसका पालन करे।"

मन्त्रिमण्डल की असफलता

प्रोफेसर लास्की के मतानुसार अमेरिका की संघीय संस्थाओं में सब से कम सफल संस्था अमेरिकी मन्त्रिमण्डल रही है। इसके अनेक कारण हैं। प्रथम कारण तो यह है कि यह राष्ट्रपति के बिल्कुल आधीन है और नीति निर्धारित करने में मन्त्रियों का कोई हाथ नहीं होता। जो कुछ राष्ट्रपति उससे करवाना चाहता है वह उससे अधिक कुछ नहीं कर सकता और राष्ट्रपति द्वारा उसे अधिक महत्व दिया जाना बहुत

कम सम्भव है। यहाँ तक कि मन्त्रिमण्डल का प्रख्यात सदस्य भी यह अनुभव करता है कि उसका जीवन-लक्ष्य क्रमशः निरर्थकता में परिणत होता जा रहा है। वह चाहे कितनी ही महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त कर ले पर इस बात का कोई आश्वासन नहीं है कि उसकी मन्त्रिपद पर कार्य करने की अवधि उसकी इच्छा पर्यन्त या जीवन पर्यन्त रह सकेगी। वास्तव में महत्व राष्ट्रपति का ही होता है, उसी के निर्णयों को मान्यता मिलती है और यदि सभी एकमत से उसके निर्णय के विरुद्ध हों तब भी उसी का निर्णय मान्य होता है।

मन्त्रिमण्डल की निर्बलता का दूसरा कारण उसके सदस्यों में एकता की भावना का अभाव होना है, इसका परिणाम यह होता है कि उनमें परस्पर सहयोग का भी अभाव रहता है और विभिन्न विभागों के कार्यों में सामञ्जस्य स्थापित नहीं हो पाता। प्रत्येक सदस्य अपने को केवल अपने ही विभागों के लिये उत्तरदायी समझता है और यह समझता है कि पूरे प्रशासन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसीलिये अमेरिकी मन्त्रिमण्डल में उस एकता, सुदृढ़ता, समान हितों के प्रति निष्ठा और एक दल के रूप में सहयोग की भावना का पूर्ण अभाव रहता है जो ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल की मुख्य विशेषतायें हैं।

अमेरिकी मन्त्रिमण्डल की असफलता का तीसरा कारण यह है कि मन्त्रि-मण्डल के सदस्य अनुभवी राजनीतिज्ञ या परिपक्व राज्यमर्मज्ञ (statesmen) नहीं होते। ब्रिटेन में मन्त्रिमण्डल की सदस्यता सक्रिय संसदीय जीवन का पुरस्कार होता है, वह वह लक्ष्य होता है जिसकी ओर संसद के सदस्य निरन्तर आगे बढ़ने का प्रयत्न करते रहते हैं। परन्तु अमेरिका में सदस्यता प्राप्त करना कांग्रेस जीवन का लक्ष्य नहीं होता, न ही कांग्रेसी जीवन व्यक्ति को इसके लिये तैयार करता है और न यह राष्ट्रपति पद प्राप्त करने की सीढ़ी ही है, यह सदस्य के जीवन की एक घटनामात्र है। कांग्रेस की सदस्यता भी मन्त्रिमण्डल में स्थान पाने की भूमिका नहीं। वास्तव में सिनेट ही एक ऐसी संस्था है जिसकी ओर देश के सार्वजनिक जीवन में सक्रिय प्रभावशाली और शक्तिशाली व्यक्ति आकृष्ट होते हैं, उनके लिये आकर्षण का केन्द्र मन्त्रिमण्डल नहीं होता। यह भी आवश्यक नहीं है कि मन्त्रिमण्डल में नियुक्त किये जाने से पहिले उस सदस्य का राजनीति में कोई महत्वपूर्ण स्थान रहा हो, और यह भी सम्भव है कि मन्त्रिमण्डल से अलग हो जाने के बाद वह देश के सार्वजनिक जीवन से लुप्त हो जाये।

अन्त में यह बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि कभी-कभी मन्त्रिमण्डल पृष्ठ भूमि में पड़ जाते हैं और उनका स्थान 'सलाहकारों' या 'राजनिर्माताओं' (King makers) का गुट ग्रहण कर लेता है। राष्ट्रपति जैकसन ने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को विभागों के अध्यक्ष के रूप में केवल प्रशासनाधिकारी समझा

और परामर्श के हेतु अपने मित्र के गुट को, चाहे वह पदाधिकारी हो या न हो, अधिक पसन्द किया। इस प्रकार 'किचिन केबिनेट' का निर्माण कर राष्ट्रपति जैक्सन ने मन्त्रिमण्डल की नियमित बैठकों को बुलाना ही छोड़ दिया और तदोपरान्त इनके कुछ उत्तराधिकारियों ने भी (जैसे राष्ट्रपति ग्रान्ट ने, राष्ट्रपति विल्सन ने और आरम्भिक वर्षों में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने) अपने मन्त्रिमण्डल की बहुत कम सहायता ली।

अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था में मन्त्रिमण्डल को अधिक उपयोगी, महत्वपूर्ण और प्रभावशाली बनाने के लिये अनेक सुझाव दिये गये हैं। अधिकतर आलोचक अधिकारों के पृथक्करण को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और यह अनुभव करते हैं कि आज के युग में राष्ट्रीय सरकार में सुधार करने का प्रमुख उद्देश्य प्रशासन और विधान निर्माण विभागों में घनिष्ठ और प्रभावशाली सम्बन्ध स्थापित करना होना चाहिये क्योंकि यह दोनों विभाग अब भी पारस्परिक प्रतिद्वन्दी के रूप में अपने अपने अधिकारों को बढ़ाने और उनकी रक्षा करने में प्रयत्नशील रहते हैं जिसके फल स्वरूप कार्य में विलम्ब होता है, गतिरोध उत्पन्न होते हैं, परस्पर दुर्बल समझौते होते हैं और विभाजित उत्तरदायित्व की स्थिति बनी रहती है। इन सब दोषों को दूर करने के लिये अनेकों सुझाव रखे गये हैं। गत अनेक दशाब्दियों में एक विनम्र प्रस्ताव की बात सुनी जाती है कि मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को यह अधिकार दिया जाय कि वह कांग्रेस के दोनों सदनों में उपस्थित हो कर सूचना दे सकें, प्रश्नों के उत्तर दे सकें और वादविवाद में भाग ले सकें चाहे उनको मतदान का अधिकार न हो। फरवरी १८६४ में ओहियो के कांग्रेस सदस्य श्री पेन्डलटन ने यह प्रस्ताव रखा था कि प्रशासन विभाग के अध्यक्षों को प्रतिनिधि सभा में बैठने का अधिकार दिया जाय। १८८६ में श्री लाग ने एक प्रस्ताव रखा जिसके अनुसार मन्त्रिमण्डल के सदस्य अपनी इच्छानुसार जब चाहें प्रतिनिधि सभा की कार्यवाही में उपस्थित रह सकें और वहाँ अपने विचार प्रकट कर सकें। २५ वर्ष पश्चात् इस प्रस्ताव को राष्ट्रपति टाफ्ट ने पुनर्जीवित किया। राष्ट्रपति टाफ्ट ने पूरी शक्ति से कांग्रेस में मन्त्रिमण्डल-प्रतिनिधित्व के प्रस्ताव का समर्थन किया। १९२१ और १९२४ में इस पर पुनः प्रयत्न किया गया परन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। श्री पेन्डलटन की योजना के सम्बन्ध में राष्ट्रपति टाफ्ट ने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। श्री टाफ्ट ने लिखा है कि संविधान में कुछ परिवर्तन किये बिना भी कांग्रेस यह व्यवस्था कर सकती है कि विभागों के अध्यक्षों या राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को दोनों सदनों में प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकने, उनकी स्वीकृति के लिये अनुरोध करने, प्रश्नों का उत्तर देने और अन्य सदस्यों के समान ही वाद

विवाद में भाग लेने का अधिकार हो चाहे मतदान का अधिकार उन्हें नहीं होगा। इस व्यवस्था से मन्त्रिमण्डल का चुनाव करने में राष्ट्रपति की कठिनाई बढ़ जायगी। इससे उसे ऐसे सदस्यों को चुनना पड़ेगा जिन्हें विधान सभा का अनुभव हो और जिन्होंने विधान सबधी वादविवादों में अपने दृष्टिकोण को सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर सकने की क्षमता प्रदर्शित की हो। इससे प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष को अपने कार्य का निकट से निरीक्षण व अधिकतम नियन्त्रण करने का उत्साह उत्पन्न होगा।

परन्तु यदि पेन्डलटन योजना कार्यान्वित की जाय तो उससे अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था में जो अधिकार सन्तुलन स्थापित है वह बिल्कुल बदल जायगा। इसके परिणाम स्वरूप केवल प्रशासन और विधान मण्डल (काँग्रेस) के सम्बन्धों में ही परिवर्तन नहीं होगा बल्कि प्रशासन विभाग के विभिन्न अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो जायगा। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर कुसमैन ने सही कहा है कि यदि यह योजना लागू की गई तो परम्परा से प्रशासन और विधान निर्माण विभाग में जो सम्बन्ध चला आ रहा है उसमें अविवेकपूर्ण उलट-फेर हो जायगा जिसका परिणाम क्या होगा इसकी सहज ही कल्पना नहीं की जा सकती है। और प्रोफेसर लास्की का मत है कि पेन्डलटन की योजना या इसके किसी अन्य रूप को लागू करने का परिणाम यह होगा कि राष्ट्रपति के नेतृत्व की जो मुख्य विशेषतायें हैं वह राष्ट्रपति के हाथों से निकल कर मन्त्रि मण्डल को हस्तान्तरित हो जायेंगी। वास्तव में इसके फलस्वरूप राष्ट्रपति व्यवहारिक रूप में अमेरिकी राष्ट्रपति न रह कर फ्रांसीसी गणतन्त्र के राष्ट्रपति की कोटि में आ जायगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मन्त्रि मण्डल के सदस्य काँग्रेस के सदनों में जितना ही अधिक सफल होते जायेंगे वह राष्ट्रपति से उतने ही स्वतन्त्र भी होते जायेंगे। काँग्रेस भी राष्ट्रपति के विरुद्ध मन्त्रि मण्डल के सदस्यों को बढ़ावा देकर प्रशासन को कमजोर बना सकती है। राष्ट्रपति को अपनी अधिकांश शक्ति अपने साथियों पर अपना अधिकार बनाये रखने में व्यय करनी पड़ेगी जिनमें स्वार्थ और सम्मान की ऐसी भावना पैदा हो सकती है जो लगभग उसी की स्वार्थ और सम्मान की भावना के सदृश्य हो। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस योजना में राष्ट्रपति पद के ऐतिहासिक आधार में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का भय निहित है।

दूसरा सुझाव यह है कि एक संयुक्त व्यवस्थापिका-कार्यकारिणी परिषद (Joint Legislative Executive Council) या मन्त्रि मण्डल का निर्माण कर शासन के दोनों विभागों में प्रभावशाली ढंग से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया जाये। इस परिषद में निश्चित संख्या में काँग्रेस के नेतागण व समितियों के

अध्यक्ष वर्तमान मन्त्रि मण्डल या मन्त्रि मण्डल के कुछ सदस्यों के साथ सम्मिलित हो जो मिलकर नीति सम्बन्धी विषयों पर विचार विमर्श कर उद्देश्यों में सामजस्यता स्थापित कर सकेंगे। इस प्रकार की संस्था स्थापित करने का सुझाव सबसे पहिले 'अटलांटिक मन्थली' के जुलाइ १६४३ के अक में सिनेटर राबर्ट एम० ला फोल्टे ने प्रस्तुत किया था। १६४६ के ला फोल्टे मनरोनो कांग्रेस पुन संगठन विधेयक में संयुक्त विधान प्रशासन परिषद की व्यवस्था की गइ थी जिसमें यह बताया गया कि यह परिषद कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होगी और यदि इसके निर्णय कांग्रेस द्वारा अस्वीकृत कर दिये जायेंगे तो त्यागपत्र दे देगी। सिनेट ने इसे स्वीकार कर लिया परन्तु प्रतिनिधि सभा ने अस्वीकार कर दिया।

इस प्रस्ताव के द्वारा भी संविधान की मूलभूत विचारधारा और उसके व्यवहारिक रूप में उल्लेखनीय परिवर्तन करने का प्रयत्न किया गया जो कि अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था के मूलाधारों के प्रतिकूल है।

अंत में यह बता देना उचित होगा कि कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अधिकारों के पृथक्करण के सिद्धान्त को समूल समाप्त कर देना चाहते हैं और स्पष्ट रूप से ब्रिटेन की तरह के मन्त्रिमण्डल का समर्थन करते हैं। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या अमेरिका का पिछले इतिहास से ऐसा क्रांतिकारी सम्बन्ध विच्छेद सम्भव हो सकता है और क्या यह वांछित है? ऐसी कार्रवाई कुशल राजनीतिज्ञ के लिये अवांछनीय बात होगी जैसा कि बर्क के इन शब्दों से प्रकट होता है—"मेरी दृष्टि में कुशल राजनीतिज्ञ वही है जिसमें जो कुछ है उसको सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति और सुधार कर सकने की क्षमता है"। वास्तव में 'सुधार कर सकने की उसकी क्षमता' से बर्क का केवल यह तात्पर्य था कि सब सुधार आदि आन्दोलनों का आधारभूत अतीत ही होना चाहिये, अतीत से कोइ क्रान्तिकारी सम्बन्ध विच्छेदमूलक सुधार वांछनीय नहीं हो सकता।

अध्याय ६ | जनपदाधिकारी वर्ग

अमेरिका के जनपदाधिकारी वर्ग में वह हजारों महिला और पुरुष कर्मचारी सम्मिलित हैं जो राष्ट्रपति, विभागों के अध्यक्षों और उनके सचिवों के अधीन संयुक्त राज्य अमेरिका का विशाल प्रशासन कार्य चलाते हैं। यह कर्मचारी राष्ट्रपति के प्रशासन-कार्य एवम् कर्तव्यों को पूरा करने, संविधान, संघीय कानूनों और संधियों को लागू करने के साधन होते हैं। जनपदाधिकारी वर्ग (civil service) के अन्तर्गत आने वाले यह कर्मचारी सेना, नौ-सेना, जहाज चालकों (marine corps), समुद्र-तट की रक्षा करने वाले सन्तरियों और अन्य सैन्य-कार्यालयों में काम करने वाले कर्मचारियों से भिन्न होते हैं। इनके कार्य, अधिकार, नियुक्ति पद्धति इत्यादि सेना से सम्बन्धित कर्मचारियों से भिन्न होते हैं। राष्ट्र के विकास और प्रगति के साथ और राज्य के लक्ष्य तथा उद्देश्यों के विकसित होने के साथ साथ जनपदाधिकारी वर्ग का भी विकास हुआ और इसके कर्मचारियों की संख्या में भी वृद्धि होती गई। १७८६ में जब इस व्यवस्था का आरंभ हुआ था तब इन कर्मचारियों की संख्या केवल लगभग ३०० थी परन्तु १६ वीं शताब्दी के अंत तक यह २०८,००० तक पहुँच गई, और १ जनवरी १६४५ को इसकी संख्या ३,३७५,००० हो गई जो अब तक सर्वाधिक रही है। परन्तु युद्ध की समाप्ति के पश्चात यह संख्या घटकर २० लाख रह गई थी और १६५६ तक लगभग २३ लाख।

इस सम्बन्ध में एक और उल्लेखनीय बात यह है कि इधर कुछ वर्षों से सरकार के कार्यों में वृद्धि होने के अतिरिक्त वह निरन्तर जटिल और अधिक टेकनिकल होते गये हैं। इसलिये अब अनुभवहीन राष्ट्रपति या विभागों के अध्यक्षों की अपेक्षा अनुभवी और विशेषज्ञों की आवश्यकता अधिकाधिक होती जा रही है। विशेष प्रशिक्षण पर अब अधिक जोर दिये जाने से और प्रशासन का कार्य सुचारु रूप से चला सकने के निमित्त अब जिस टेकनिकल कुशलता और विशेषज्ञता की आवश्यकता पड़ने लगी है उसको देखते हुए आधुनिक राज्य में जनपदाधिकारी वर्ग का महत्व बहुत बढ़ गया है और उसके कार्यों में भी अपार वृद्धि हो गयी है। जब तक राष्ट्रीय सरकार का कार्यक्षेत्र संकुचित व सीमित था और उसके कार्य साधारण थे तब तक प्रशासन सम्बन्ध में कोई समस्या पैदा नहीं हुयी क्योंकि सन्तोषजनक न होते हुए भी यह सम्भव था कि राजकीय कार्य राजनीतिज्ञों को ही सौंप दिये जाय

और उनके द्वारा ही वे सम्पन्न हों। राजनीतिक प्रभाव ही इसके लिए मुख्य योग्यता मानी जाती थी। परन्तु जैसे जैसे राज्य ने क्रमश: दृढ़ता के साथ अपने नागरिकों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को सुधारने का उत्तरदायित्व ग्रहण किया तो सघ-सरकार की विभिन्न नयी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए क्लर्कों, नकल लेने वालों, सदेश वाहकों (messengers), इन्जीनियरों, सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिये डाक्टरों, कृषि वैज्ञानिकों, कर विशेषज्ञों, वकीलों, लाखों विद्वान, प्रशिक्षित और टेकनिकल विशेषज्ञ स्त्री पुरुषों की आवश्यकता पड़ी।

अमेरिकी जनपदाधिकारी वर्ग का इतिहास १७८६ से आरम्भ होता है। १७८६ से १८२६ तक इस इतिहास का प्रथम अध्याय समझना चाहिये। इस अवधि में प्रशासन अधिकारियों को चुनने और उनकी नियुक्ति में कोई दोष दृष्टिगोचर नहीं होता क्योंकि सघीय पदों पर नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर की जाती थीं। राष्ट्रपति वाशिंगटन ने इसके लिये योग्यता का उच्चस्तर स्थिर किया। यद्यपि राष्ट्रपति वाशिंगटन के उपरान्त राजनीतिक पार्टियों के उद्भव होने से उनके उत्तराधिकारियों (एडम्स, मेडिसन, मनरो और जान क्विन्सी एडम्स) को किसी पद के रिक्त हो जाने पर उसकी पूर्ति के लिये राजनैतिक हितों पर अधिक ध्यान देना पड़ा परन्तु फिर भी योग्यता का स्तर सामान्यतया ऊँचा रहा। जेफर्सन ने (जो डेमोक्रेटिक पार्टी का सदस्य था) राष्ट्रपति बन जाने पर डेमोक्रेटों की नियुक्ति करने के लिये पहिले से काम करने वाले लगभग एक चौथाई सघीय अधिकारियों को पदच्युत कर नौकरियों के क्षेत्र में दोनों पार्टियों के बीच सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास किया।

इतिहास

१८२६ १८६५—१८२६ से १८६५ तक अमेरिकी जनपदाधिकारी वर्ग का दूसरा अध्याय आरम्भ होता है। इस अवधि को प्रोफेसर किंग्सले और मोशेर ने 'पदों की लूट खसोट का काल' (the period of unmitigated spoils) कहा है। इसका समारम्भ राष्ट्रपति जैक्सन ने किया जिनको 'To the victor belong the spoils' सिद्धान्त का प्रवर्तक माना जाता है। इतना कहना अतिश्युक्ति है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्रपति जैक्सन ने राष्ट्रीय सरकार के कर्मचारियों के सम्बन्ध में एक नये सिद्धान्त और नयी कार्य प्रणाली को जन्म दिया। काग्रेस का दिये गये अपने प्रथम सन्देश में राष्ट्रपति जैक्सन ने अपने इन क्रान्तिकारी विचारों को प्रकट किया : (१) कोई भी औसत दर्जे का बुद्धिमान और परिश्रमी व्यक्ति किसी भी सरकारी पद से सम्बन्धित प्राय सभी कार्यों को सुचारु रूप से कर सकता है, (२) अधिक समय तक पदासीन रहने से उस कर्मचारी के अनुभव से लाभ होने की अपेक्षा क्षति अधिक होती है, और (३) अब तक समुद्री तटों के राज्यों (Seaboard) ने ही सभी पदों पर एकाधिकार स्थापित कर रखा है परन्तु

अब इनका उदारता पूर्वक उन सीमावर्ती राज्यों में भी वितरण किया जाना चाहिये जिनका यह (राष्ट्रपति जैक्सन) स्वय प्रतिनिधि था। राष्ट्रपति जैक्सन ने अपनी इस नीति को कार्यान्वित किया। जैसे-जैसे स्थान रिक्त हुये सब में वे अपनी पार्टी के लोगों को नियुक्त करते गये। इतना ही नहीं, अपने शासन काल के प्रथम वर्ष में ही उन्होंने प्राय सभी वर्गों के लगभग ७०० कर्मचारियों को पदच्युत कर अपने कृपा पात्रों ((favourites) के लिये स्थान भी उत्पन्न किये। इतनी बड़ी संख्या पहिले कभी पद से अलग नहीं की गई थी।

परन्तु पदों की लूट खसोट की यह प्रणाली, जिसके लिये अनुचित रीति से राष्ट्रपति जैक्सन की आलोचना और निन्दा की गई है, उनके राष्ट्रपति बनने से २० वर्ष पहिले से ही कुछ राज्यों में, विशेषकर न्यू यार्क में, प्रचलित हो चुकी थी। १८२० में कांग्रेस ने पदाधिकारियों की कार्यावधि कानून पारित किया जिसके अनुसार कुछ पदाधिकारियों का कार्य-काल चार वर्ष रखा गया, धीरे-धीरे इस श्रेणी में अन्य पद भी सम्मिलित होते गये, और इस प्रकार पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में लूट-खसोट का आधार तैयार हो गया। इसके अतिरिक्त पार्टी संगठन के अधिकाधिक जटिल हो जाने और पार्टी बाजी की राजनीति म अधिक सक्रियता हो जाने के परिणामस्वरूप भी पार्टी सेवा के लिये पुरस्कार के रूप में सरकारी पदों का अधिकाधिक उपयोग किया जाने लगा और धीरे धीरे केवल राज्यों एवम नगरों म ही नहीं बल्कि सारे राष्ट्र म पार्टी-आधार पर पदच्युत करने तथा नयी नियुक्तियाँ करना एक प्रकार से सर्व स्वीकृत नियम समझा जाने लगा।

१८६५ १८८३—गृह युद्ध के पश्चात् पद-वितरण की इस लूट खसोट के विरुद्ध, जिससे प्रशासन काफी छिन्न-भिन्न हो गया और उसमें अराजकता तथा अनैतिकता का प्रसार हो गया और जिसके प्रभाव से स्वय राजनीति में भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया, चारों ओर से आवाज उठायी जाने लगी। नौकरी खोजने वाले एक निराश व्यक्ति ने राष्ट्रपति गारफील्ड की हत्या कर दी, इस दुर्घटना ने जनता का ध्यान पदों की लूट खसोट प्रथा के दोषों पर आकर्षित किया और सब दिशाओं से सुधार की माँग की जाने लगी। १८५३ और १८५५ में कांग्रेस ने विभागों के क्लर्कों के वर्गीकरण का आदेश देकर और यह निर्धारित करके कि जो व्यक्ति परीक्षा में सफल हो उसी को नियुक्त किया जाय योग्यता के आधार पर नियुक्ति करने की प्रणाली लागू करने का प्रयत्न किया। १८७१ में एक और कानून बनाया गया जिसके अन्तर्गत एक सार्वजनिक सेवा आयोग नियुक्त किया गया और प्रतियोगिता परीक्षाओं की व्यवस्था की गई। परन्तु इस सीमित पैमाने पर किये गये सुधार का कुछ परिणाम न निकला।

१८८३ का पैन्डेलटन कानून—जनपदाधिकारी वर्ग में सुधार किये जाने के

सम्बन्ध में जनमत क्रमश प्रबल होता गया और इस आन्दोलन में जार्ज विलियम कर्टिस विभिन्न सुधारक संस्थाओं (विशेषकर राष्ट्रीय जनपदाधिकारी वर्ग सुधार लीग) के कार्य और प्रभावशाली पत्रों के सम्पादकीय लेखों का बहुत बड़ा योगदान रहा। इस आन्दोलन के फलस्वरूप १८८३ में पेन्डेलटन कानून पारित किया गया जिसकी आवश्यकता बहुत अधिक समय से अनुभव की जा रही थी। इस कानून की व्यवस्थाओं की संक्षिप्त रूप रेखा निम्नलिखित है।

(१) कुछ वर्गों के जनपदाधिकारियों का वर्गीकरण किया गया, अर्थात् नियम बनाकर इन्हें प्रतियोग्यता प्रणाली के अन्तर्गत सम्मिलित कर दिया गया। अन्य वर्गों के कर्मचारियों का भी इसी प्रकार वर्गीकरण करने का अधिकार राष्ट्रपति और विभागों के अध्यक्षों को दिया गया। जनपदाधिकारियों के प्रगतिशील वर्गीकरण की व्यवस्था की गई।

(२) जिन नौकरियों का वर्गीकरण कर दिया गया उनमें नियुक्ति प्रतियोगिता परीक्षाओं के द्वारा करने की व्यवस्था की गई, इन परीक्षाओं में कोई भी व्यक्ति बैठ सकता था, नियुक्ति के सम्बन्ध में काग्रेस-सदस्यों की सिफारिशों को निरर्थक बना दिया गया।

(३) रोजगार देने में सैनिकों (war veterans) को प्राथमिकता दी जायगी।

(४) कर्मचारियों को पार्टी के हित में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता और साथ ही कर्मचारी सक्रिय राजनीति में भाग नहीं ले सकते।

(५) यह कानून राष्ट्रपति तीन सदस्यों के एक द्विपक्षीय सार्वजनिक सेवा आयोग (Bipartisan Civil Service Commission) के द्वारा लागू करेगा।

१८८३ से आजतक—पेन्डलटन कानून द्वारा जिन सुधारों की व्यवस्था की गई वह अधिक व्यापक नहीं थे। इस कानून से प्रशासकीय कर्मचारियों के केवल १० प्रतिशत स्थानों पर की जाने वाली नियुक्तियाँ ही योग्यता के आधार पर करने की व्यवस्था की गई। परन्तु फिर भी इस कानून ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया जो काग्रेस की उदासीनता और राजनीतिक संगठनों का विरोध होते हुये भी निरन्तर शक्तिशाली होता गया। अगली अर्ध शताब्दी तक सरकारी पदों पर योग्यता के आधार पर की जाने वाली नियुक्तियों का अनुपात बढ़ता गया और १९३३ तक फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के पदासीन होने के कुछ पहिले योग्यता के आधार पर की जाने वाली नियुक्तियों का प्रतिशत ८१-८२ तक बढ़ गया।

परन्तु स्पोयल्समैन (spoilsmen) का विनाश न हो सका, उनकी क्रियाओं और संघर्षों से योग्यता के आधार पर की जाने वाली नियुक्तियों की व्यवस्था को

गहरा धक्का लगा। यद्यपि प्रत्येक नये राष्ट्रपति के प्रशासनकाल में कुछ पदों में निश्चय ही उन्नति हुई परन्तु अन्य दिशाओं में प्रशासन उन्नति नहीं कर सका, उसे पीछे हटना पड़ा और छटनियाँ भी की गईं जिसके लिये कांग्रेस और पदों के भूखे पार्टी सदस्य ही उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं। जब एक पार्टी काफी लम्बे समय बाद अचानक अपने को सत्तारूढ़ पाती थी तो विशेषकर उस समय योग्यता के आधार पर नियुक्ति करने की व्यवस्था को गहरी क्षति पहुँचती थी जैसा १८८५, १६१३ और १६३३ में हुआ जब डेमोक्रेट सत्तारूढ़ हुए और १८६७ और १६२१ में जब रिपब्लिकन सत्तारूढ़ हुए।

इसके पश्चात् अनेक न्यूडील सम्बन्धी नये विभाग (New Deal Agencies) खुले जिनमें काम करने वाले अधिकतर कर्मचारियों की स्वेच्छा से नियुक्तियाँ की गयीं। ऐसे सार्वजनिक पदों की संख्या जो सार्वजनिक सेवा आयोग के अधीन नहीं थे एक लाख से बढ़कर लगभग चार लाख तक पहुँच गयी और स्वेच्छा से की गयी नियुक्तियों का अनुपात भी २० प्रतिशत से बढ़कर ४० प्रतिशत हो गया। तेजी से नये सुधार व पुनरादान संबंधी विभागों (Agencies of recovery and reform) की स्थापना होने से नयी नियुक्तियों की संख्या में भी बहुत वृद्धि हुई और अधिकतर नियुक्तियों को कांग्रेस ने प्रतियोगिता प्रणाली से मुक्त कर दिया और इस प्रकार स्वेच्छा से की जाने वाली नियुक्तियों के लिये द्वार खोल दिया। राष्ट्रपति ने स्वयं विदेशी तथा घरेलू वाणिज्य विभाग में उन पदों को जिनको पूर्व-राष्ट्रपति ने वर्गीकरण की सूची में सम्मिलित कर दिया था एक प्रशासकीय आदेश जारी कर इस विशिष्ठता से मुक्त कर दिया। इससे एक ऐसा वातावरण पैदा हो गया जिसमें योग्यता प्रणाली को चुनौती का सामना करना पड़ा और वह ऐसे संकट में पड़ गई जैसा पहिले कभी नहीं हुआ था।

परन्तु १६३३ ३८ की इन घटनाओं की प्रतिक्रिया का सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्रों से विरोध होना स्वाभाविक ही था। राष्ट्रपति ने स्वयं प्रशासन-व्यवस्था (Administrative Management) सम्बन्धी एक समिति नियुक्त की जिसने १६३७ में यह प्रस्तावना की कि प्रतियोगिता की प्रणाली के आधार पर नियुक्ति की व्यवस्था केवल उच्चपदों एवम् परराष्ट्रीय पदों पर ही नहीं बल्कि निचले स्तर के पदों पर भी लागू की जानी चाहिये जिससे कुशल कर्मचारी और श्रमिक नियुक्त किये जा सकें। इसी वर्ष स्वयं राष्ट्रपति ने कांग्रेस से अनुरोध किया कि केवल उन पदों को छोड़कर जिनका कार्य नीति-निर्धारित करना है शेष सभी पदों पर नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर किये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिये।

१६३६ में राष्ट्रपति ने एक प्रशासकीय आदेश जारी किया जिसमें यह

व्यवस्था की गयी कि प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के पोस्टमास्टरों के पदों पर सार्वजनिक सेवा आयोग द्वारा संचालित प्रतियोगीय-परीक्षाओं के आधार पर नियुक्ति की जानी चाहिये। इसके पश्चात् अनेक प्रशासकीय आदेश जारी किये गये जिनसे सभी सार्वजनिक पद जो कानून द्वारा योग्यता प्रणाली से मुक्त नहीं थे सार्वजनिक-सेवा आयोग के आधीन कर दिये गये। इसके उपरान्त १९४० में काँग्रेस ने भी काफी प्रतीक्षा और वादविवाद के पश्चात् रैम्पसेक कानून (Rampseck Act) पास किया जिसके अनुसार उन सभी पदों को जो अब तक सार्वजनिक सेवा आयोग से मुक्त थे राष्ट्रपति को इस आयोग के अधीन करने का अधिकार दे दिया गया परन्तु इसमें वह पद सम्मिलित नहीं किये गये जिन पर राष्ट्रपति सिनेट की स्वीकृति से स्वयं नियुक्तियाँ करता है। कुछ अन्य पद भी इससे मुक्त रखे गये। इस व्यवस्था की स्वीकृति के बाद अगले वर्ष एक आदेश द्वारा १८२,००० पद सार्वजनिक सेवा आयोग के अधीन कर दिये गये।

परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ हो जाने से सार्वजनिक सेवा आयोग को एक और संकट का सामना करना पड़ा क्योंकि युद्ध जनित परिस्थितियों के कारण विभिन्न प्रकार के अनेक कार्य संचालित किये गये और इससे संघीय सरकार को कई गुने अधिक कर्मचारियों की आवश्यकता हुई। पर्याप्त संख्या में और कुशल कर्मचारियों की कमी और सार्वजनिक सेवा आयोग के कंधों पर अतिरिक्त भार पड़ जाने से भर्ती, जाँच और कर्मचारियों के वर्गीकरण के नियम स्वाभाविक ही ढीले पड़ गये, आयु (age limits) और अनुभव की शर्तों को स्थगित कर दिया गया और कुछ क्षेत्रों की नियुक्तियों के सम्बन्ध में तो विभिन्न परीक्षाओं की व्यवस्था को भी हटा दिया गया। १६ फरवरी १९४२ के एक प्रशासकीय आदेश से अनेक पदों पर की जाने वाली 'युद्ध-सम्बन्धी नियुक्तियों' के लिये मार्ग खुल गया। इस आदेश में यह व्यवस्था की गई कि इन पदों पर की जाने वाली नियुक्तियों के लिये प्रतियोगिता परीक्षायें नहीं होंगी, परीक्षार्थी के केवल 'पास' हो जाने पर ही उसकी नियुक्ति कर दी जायगी, वर्गीकरण की व्यवस्था हटा दी गयी। फिर भी कार्यकाल युद्ध की अवधि भर और युद्ध समाप्ति के ६ महीने बाद तक हो सकता था, यद्यपि अन्तिम निर्णय सार्वजनिक सेवा आयोग के अधीन छोड़ दिया गया। इस प्रकार कुछ समय के लिये संकटकाल के कारण आवश्यक इस सुविधाजनक सरल व्यवस्था ने योग्यता-प्रणाली को निर्बल बना दिया, स्तर गिरा और भर्ती किये गये कर्मचारियों की क्षमता भी उच्च नहीं थी।

परन्तु यह सुविधायें केवल अल्प काल के लिये थीं। १९४४ में सदन के प्रतिनिधि रैम्पसेक के आधीन एक सार्वजनिक सेवा जाँच समिति नियुक्त की जिसने अनेक बुराइयों पर प्रकाश डाला। १९४६ में राष्ट्रपति ने न्यायाधीश रीड

एफ०रीड के अधीन एक नागरिक सेवा सुधार समिति नियुक्त की थी जिसको सार्वजनिक सेवा के व्यवसायिक सदस्यों (professional) विशेष कर वकीलों की नियुक्ति के सबंध मे जाँच करने का कार्य सौंपा गया था। रीड-समिति की रिपोर्ट के आधार पर राष्ट्रपति ने एक प्रशासकीय आदेश जारी किया कि वकीलों को भी सावजनिक सेवा वर्ग (Regular Personnel Machinery) के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाये। परन्तु १६४३ में ऐसे पदों की नियुक्तियां और उन्नति पर जिनका वेतन ४,५०० डालर से अधिक हो (इस वर्ग मे २८,००० पद थे) सिनेट की स्वीकृति अनिवार्य करके सरंक्षण शक्ति (patronage) का प्रसार करने का एक दृढ़ प्रयत्न किया गया।

१६४४ में भूतपूर्व सैनिक प्राथमिकता कानून (Veteran's Preference Act) में भी कुछ ऐसी व्यवस्थायें की गई जिनसे योग्यता प्रणाली को क्षति पहुँची। इस कानून म यह व्यवस्था की गइ कि (१) अनेक छोटे सार्वजनिक पदों पर केवल भूतपूर्व सैनिकों की ही नियुक्ति की जायगी, (२) ससम्मान पद-निवृत्त हुए भूतपूर्व पुरुष अथवा महिला सैनिक कर्मचारियों की नियुक्ति के हेतु ली जाने वाली परीक्षा में प्राप्तांकों में ५ अक और जोडे जायँगे, (३) ऐसे उम्मेदवारों के प्राप्तांकों मे १० अक और जोड़े जायँ जो सेना सेवा के कारण किसी अयोग्यता से पीड़ित हों, जैसे असमर्थ भूतपूर्व सैनिकों का पत्नियाँ, भूतपूव सैनिकों की विध वायें जिन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया हो और (१६ जनवरी १६४८ के कानून क अनुसार) युद्ध मे मारे गये या पूर्णतया पगु भूतपूर्व पुरुष अथवा महिला सैनिकों की विधवा, तलाक शुदा या पृथक की गइ मातायें, (४) ऐसे व्यक्तियों के नाम जो (३) के अन्तर्गत दी गइ भूतपूर्व सैनिक प्राथमिकताओं के अधिकारी हैं योग्य उम्मेदवारों की सूची में सबसे ऊपर रखे जायें परन्तु ऐसे व्यवसायिक या वैज्ञानिक पदों पर की जाने वाली नियुक्तियों में जिनका वेतन ३,००० डालर से अधिक हो यह सुविधा नहीं दी गई।

द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होने के उपरान्त तुरन्त भूतपूर्व सैन्य कर्मचारी प्रति सप्ताह हजारों की सख्या में जनपदाधिकारी वर्ग में प्रविष्ट होने लगे और कानून के अनुसार इन्हें जिन सुविधाओं की प्राप्ति करने का अधिकार था उनको प्रदान करने के लिये सार्वजनिक सेवा आयोग ने प्राय आत्म समर्पण सा कर दिया। १६४६ मे कांग्रेस ने एक और कानून पास किया जिसके अनुसार भूतपूर्व फौजी प्रशासन की मेडिकल यूनिट के सभी पदों को सार्वजनिक सेवा के नियमों से मुक्त कर दिया गया। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि युद्ध की समाप्ति के पश्चात जनपदाधिकारियों के सगठन और सचालन मे अनेकों सुधार हुये। १६४६ में वर्गीकरण कानून (Classification Act) के अनुसार सभी नौकरियाँ क्रम

बन्द कर दी गयी और इस प्रकार विभिन्न स्तरों के नियमित एवं वर्गीकरण किये गये जनपदाधिकारियों का अनुपात बढ़ा, साथ ही इस संख्या में और अधिक वृद्धि कर सकने का राष्ट्रपति का अधिकार वास्तव में जनपदाधिकारियों के सुव्यवस्थित संगठन के लिये किये गये संघर्ष की अभूतपूर्व सफलता है।

अब तक हमने इस बात पर विचार किया है कि अमेरिकी सार्वजनिक पदाधिकारी वर्ग को किस प्रकार अपने पूरे इतिहास मे संरक्षण और योग्यता एवम् नियुक्तियों में स्वेच्छाचारिता और प्रतियोगिता परीक्षाओं के दो विरोधी सिद्धान्तों से संघर्ष करना पड़ा है। १८८३ में पेंडल्टन कानून में तीन सदस्यों के (जिनमें से दो से अधिक एक पार्टी के नहीं हो सकते थे) एक सार्वजनिक सेवा आयोग की व्यवस्था की गई थी। इस आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति और सिनेट द्वारा किये जाने की व्यवस्था की गई थी। इसका कर्तव्य था कि कर्मचारियों की नियुक्ति और पदोन्नति योग्यता के आधार पर करे और कर्मचारियों को उनके सदाचार पर्यन्त कार्यकाल की सुरक्षा का आश्वासन दे सके। अक्टूबर १९४७ में इसके ३५०० कर्मचारी थे। १९४२ में जब विश्व युद्ध के कारण पुनस्संगठन किया गया तब इसके कार्यों को अनेकों विभागों (divisions) में बाँट दिया गया, जैसे कर्मचारियों का वर्गीकरण, परीक्षण और कर्मचारियों की नियुक्ति, पद-निवृत्ति (retirement) की जाँच, अपील और पुनर्विचार, सर्विस रेकार्ड, बजट और वित्त, सूचना, जाँच और निरीक्षण। संघीय प्रशासन के सारे देश में फैले विभागों के कर्मचारियों की आवश्यकता पूर्ति के हेतु सुविधा के लिये समस्त देश को १४ क्षेत्रों में बाँट दिया गया। प्रत्येक क्षेत्र का प्रधान कार्यालय किसी एक प्रमुख नगर में स्थापित है और प्रत्येक को एक क्षेत्रीय संचालक के आधीन कर दिया गया है। क्षेत्रीय कार्यालयों के आधीन परीक्षकों के लगभग ५ हजार स्थानीय बोर्ड हैं जिनमें पोस्ट मास्टर, राजस्व अधिकारी आदि अन्य राष्ट्रीय पदाधिकारी होते हैं जिनको आवश्यकता पड़ने पर आयोग बुला सकता है और यह समय समय पर लगभग ७०० शहरों में प्रथम या द्वितीय श्रेणी के डाकखानों या अन्य संघीय कार्यालय भवन में सामूहिक परीक्षायें (assembled or group tests) लेते हैं। अनेक ऐसे कार्यालय भी हैं जो पहिले निम्न श्रेणी के क्लर्क तथा व्यवसायिक व श्रमिक पदों के लिये प्रार्थियों की व्यक्तिगत रूप से परीक्षा लिया करते थे परन्तु अब वह प्रोफैशनल, टेकनिकल और प्रशासन क्षेत्र के लिये भी उम्मेदवारों की परीक्षा लेते हैं और प्रमाणित करते हैं। यह संस्थायें वास्तव में सार्वजनिक सेवा आयोग के ही अंग हैं जो स्वयं आयोग के या क्षेत्रीय संचालकों के निरीक्षण में कार्य करती हैं।

सार्वजनिक सेवा आयोग के काम में सुविधा पहुँचाने के लिये १९३८ के

बाद से कर्मचारियों के निरीक्षण और उनके प्रबन्ध के निमित्त अलग डिविजन (विभाग) स्थापित कर दिये गये हैं। यह डिविजन सभी महत्वपूर्ण विभागों और स्वतंत्र कार्यालयों में स्थापित किये गये हैं। इनके अध्यक्ष विशेषज्ञ होते हैं और इन विभागीय प्रशासकों (Departmental Personnel Administrators) को विभिन्न समस्याओं एवम् विचारों को सुलझाने के निमित्त एक संगठन में आबद्ध करने के लिये एक अन्तरविभागीय कर्मचारी समिति संगठित की गई है जिसे 'कर्मचारी प्रशासन परिषद' (Council of Personnel Adminis trators) कहते हैं। इस परिषद में विभिन्न विभागों (agencies), बजट परिषद और सार्वजनिक सेवा आयोग के प्रतिनिधि होते हैं। कर्मचारियों की इस नियुक्ति प्रणाली को सीधे राष्ट्रपति से सम्बन्धित करने के लिये १९३९ के एक प्रशासकीय आदेश द्वारा कर्मचारियों के व्यवस्थापकों का एक सम्पर्क-कार्यालय (Liaison office) स्थापित किया गया जो बाद में राष्ट्रपति के प्रशासन कार्यालय का एक अंग बन गया।

सार्वजनिक सेवा आयोग के कार्य

मूल सार्वजनिक सेवा कानून तथा अन्य नियमों के अन्तर्गत और राष्ट्रपति के निर्देशों के अनुसार कार्य करते हुए आयोग नियुक्तियों के लिये प्रतियोगिता परीक्षाओं की व्यवस्था करता है, इन परीक्षाओं में जो परीक्षार्थी उच्च श्रेणी में पास होते हैं उनके नाम प्रमाणित कर नियुक्ति अधिकारियों को भेजता है, नियुक्ति कर्मचारियों का वर्गीकरण करता है, नियुक्ति के पश्चात कर्मचारियों के प्रशिक्षण के निमित्त नियम बनाता है, श्रेणी बद्ध संघीय कर्मचारियों और कुछ राज्यों व स्थानीय कर्मचारियों की राजनीतिक कार्यवाइयों पर कानून-सम्मत व्यवस्थाओं और नागरिक सेवा नियमों को लागू करता है, सभी संघीय कर्मचारियों का सर्विस रेकार्ड और योग्यता रेकार्ड रखता है, पदोन्नति के नियम बनाता है, १९४९ का वर्गीकरण कानून, १९४४ का भूतपूर्व सैनिक प्राथमिकता कानून और सार्वजनिक सेवा पदनिवृत्ति कानून को लागू करता है, और संघीय सेवाओं में निरन्तर सुधार करने से सम्बन्धित अन्य कार्यवाइयों को सम्पन्न करता है और योजनाओं पर विचार करता है।

परीक्षायें—कुछ ऐसे पदों को छोड़कर जिनकी नियुक्ति प्रतियोगिता परीक्षाओं द्वारा न की जाकर केवल साधारण परीक्षा (Pass Examination) द्वारा की जाती है शेष उन सभी पदों पर जिनका वर्गीकरण किया गया है नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर की जाती हैं और यह योग्यता सार्वजनिक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगिता परीक्षाओं द्वारा जाँची जाती हैं। यह परीक्षायें लिखित या अलिखित दोनों प्रकार की हो सकती हैं। यह सामूहिक या व्यक्तिगत ढंग से की जा सकती हैं।

अमेरिकी सार्वजनिक सेवा सम्बन्धी परीक्षा-प्रणाली की विशेषताओं को समझने के लिये उसकी ब्रिटिश प्रणाली से तुलना करना आवश्यक है। (१)

ब्रिटिश प्रणाली से तुलना

ब्रिटिश प्रणाली प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर आयोजित है परन्तु अमेरिकी प्रणाली केवल परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने पर आधारित है, विशेषकर उच्च स्तर के अधिकारियों की नियुक्ति केवल परीक्षा में सफल हो जाने पर ही की जाती है, इसके लिये प्रतियोगिता नहीं होती है।

(२) प्रशासक वर्ग का ब्रिटिश अधिकारी सामान्य स्थिति में प्राय यह विश्वास कर लेता है कि अब उसका जीवन-मार्ग निर्धारित हो चुका है। वह प्राय २२ से २४ वर्ष की आयु में इस क्षेत्र में प्रविष्ट होता है और ६० वर्ष की आयु में जाकर पद-निवृत्त होता है, परन्तु अमेरिका में ऐसा नहीं है। वहाँ ऐसे जनपदाधिकारी बहुत कम मिलते हैं जो जीवन भर सरकारी कर्मचारी ही बने रहें या इसे ही अपना जीवन-लक्ष्य समझ लें। वहाँ राष्ट्रपति के परिवर्तन के साथ प्रशासकीय पदाधिकारियों में भी परिवर्तन हो जाता है। वह एक राष्ट्रपति के प्रशासन काल में नियुक्त होते हैं और दूसरे राष्ट्रपति के पदासीन होने पर हटा दिये जाते हैं और उनके स्थान पर नये कर्मचारी नियुक्त कर दिये जाते हैं।

(३) ब्रिटेन में जो परीक्षायें ली जाती हैं उनका उद्देश्य परीक्षार्थी की योग्यता की जाँच करना होता है और उसका उस कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता है जो उसे नियुक्ति के बाद करना पड़े परन्तु अमेरिका में कानूनी तौर पर यह आवश्यक है कि परीक्षायें व्यवहारिक हों और जहाँ तक सम्भव हो उनका सम्बन्ध उन विषयों से हो जिनसे परीक्षार्थी की उस पद के कार्यों को पूरा कर सकने की योग्यता और क्षमता की भली प्रकार जाँच हो सके जिस पर वह नियुक्ति चाहता है। इस अन्तर के फलस्वरूप अमेरिकी सार्वजनिक सेवा आयोग को विभिन्न प्रकार की अनेक परीक्षायें लेनी पड़ती हैं। कुछ वर्ष पहिले इस प्रकार की परीक्षाओं की गणना की गई थी तो पता चला कि आयोग को लगभग १७०० प्रकार की परीक्षायें लेना पड़ती हैं। इसी प्रकार इस व्यवस्था के अनुकूल ही अमेरिका में अधिकारियों की ब्रिटेन के विपरीत एक विभाग से दूसरे विभाग में बदली बहुत कम की जाती है।

(४) प्रोफेसर लास्की का मत है कि ब्रिटिश प्रणाली का एक फल अधिकारियों के एक ऐसे वर्ग को जन्म देना है जो रूढ़िवादी होता है, जो अपने चिर परिचित कार्यों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं, नये प्रकार के कार्यों में या नीति परिवर्तन में कोई उत्साह नहीं दिखाते और प्रेरणा प्राप्त करने के लिये भविष्य की ओर देखने की अपेक्षा सदैव अतीत की ओर देखते हैं। वास्तव में ब्रिटिश

जनपदाधिकारियों की उल्लेखनीय ईमानदारी, राजनीति से निष्पक्षता, कुशलता और योग्यता के लिये यह मूल्य देना पड़ता है। यह गुण वास्तव में मन्त्रियों पर यह प्रभाव डालने में सफल होता है कि बड़े पैमाने पर परिवर्तन वांछित नहीं है और क्रमश परिवर्तन होना ही उचित है। परन्तु अमेरिकी जनपदाधिकारी के मार्ग में परम्परा, रूढ़ियाँ और वर्ग स्वार्थ ब्रिटिश, फ्रेंच और यहाँ तक कि जर्मन सार्वजनिक कर्मचारियों की अपेक्षा बहुत कम बाधक होते हैं। प्रोफेसर लास्की ने लिखा है कि अमेरिकी जनपदाधिकारी में जो साहस होता है और जिस बड़े पैमाने पर परिवर्तन करने की क्षमता होती है उसकी यूरोपीय जनपदाधिकारी वर्ग के बहुत कम लोग बराबरी कर सकते हैं। इसका कदाचित एक कारण यह है कि उसे वाशिंगटन में अधिक समय तक बने रहने की [illegible] मानकर चलता है कि यहाँ के कार्यभार से मुक्त होने के [illegible] पद पर जायगा वह संघीय-अधिकारी के रूप में [illegible] करेगा, इसका एक कारण यह भी है कि राष्ट्रपति के [illegible] अमेरिकी जनपदाधिकारी के व्यवहार में अपने [illegible] नहीं होता जैसा कि ब्रिटेन के स्थायी सचिव तक [illegible] हैं। इस भेद का एक कारण "शक्ति विभाजन" [illegible] है। यदि कोई प्रमुख ब्रिटिश अधिकारी [illegible] जानता है कि इस भूल का दुष्परिणाम [illegible] बल्कि यह उस सरकार के लिये भी विनाश[illegible] सदस्य है। परन्तु एक प्रमुख अमेरिकी [illegible] नहीं है। यदि उसके मन्त्री के राष्ट्रपति [illegible] मन्त्री से अच्छे सम्बन्ध हैं तो उसका [illegible] होने की आवश्यकता नहीं। [illegible] सकता है।

अपेक्षाकृत कम वेतन मिलता है और एक ऐसे समाज में जहाँ अधिक सम्पत्ति का स्वामी होने का अर्थ अधिक प्रभावशाली होना है वहाँ कानून, बैंकिंग या उद्योग की ओर अधिक आकर्षण होना स्वाभाविक ही है। एक राजनीतिज्ञ जो संघीय क्षेत्र में अपना स्थान बनाना चाहता है पहिले सिनेट की ओर देखता है और तब कहीं बाद में प्रतिनिधि सभा की सदस्यता के विषय में सोचता है परन्तु राष्ट्रपति के अधीन एक मन्त्री, लास्की के शब्दों में, 'केवल अपने स्वामी की गूँज मात्र होता है, उस का अपना अस्तित्व कुछ नहीं होता। संघीय प्रशासकीय पदों में जितना ही निम्न श्रेणी के पदाधिकारियों की स्थिति पर विचार किया जाय उतना ही अधिक यह प्रकट होता है कि या राष्ट्रपति ही सब कुछ है और या अधिकार का प्रभावशाली केन्द्र कांग्रेस में है'। अमेरिकी जनपदाधिकारियों के स्तर और उनकी योग्यता का बहुत कुछ अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उनमें से अधिकतर को राजनीतिक पुरस्कार के रूप में उन पदों पर नियुक्त किया जाता है, या इसका कारण उनकी कोई अन्य विशेष योग्यता होती है जिसकी जाँच प्रतियोगिता परीक्षाओं के द्वारा नहीं बल्कि किसी अन्य उपाय से की जाती है। इसी कारण जब कि लन्दन या पेरिस में महत्वपूर्ण नीतियों के निर्धारण में, कानून निर्माण में और वित्तीय व्यवस्था में वह अधिकारी महत्वपूर्ण भाग लेते हैं वाशिंगटन में इस प्रकार का नौकरशाही का प्रभाव नहीं पाया जाता।

नियुक्तियाँ, पदोन्नति और पदच्युति

पहिले बताया जा चुका है कि श्रेणीबद्ध (classified) पदों पर सभी नियुक्तियाँ सार्वजनिक सेवा आयोग परीक्षाओं के फलानुसार करता है। नियुक्ति के लिये उम्मेदवारों की जैसे ही परीक्षा समाप्त होती है उनमें से

नियुक्ति

सफल परीक्षार्थियों की एक सूची तैयार कर ली जाती है जिसमें उन्हीं परीक्षार्थियों के नाम होते हैं जिनको कम से कम ७० अंक प्राप्त हुए हों। सूची में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले परीक्षार्थियों का नाम सबसे ऊपर लिखा जाता है और फिर अंकों के क्रमानुसार ७० अंक प्राप्त करने वालों के नाम सब से नीचे होते हैं। यह सूची सामान्यतया एक वर्ष के लिये वैध समझी जाती है और जैसे जैसे नियुक्तियाँ करने वाली एजेन्सियों की माँग आती है वैसे वैसे इन सूचियों में से उम्मेदवारों के नाम भेज दिये जाते हैं। आयोग नियुक्ति करने वालों के पास सम्बन्धित सूची में से सब से अधिक अंक प्राप्त करने वालों में से प्रथम तीन के नाम भेज देता है और वह तीनों में से एक की नियुक्ति कर लेते हैं, अन्य दो का नाम फिर प्रतीक्षण सूची में शामिल कर दिया जाता है। जिस उम्मेदवार को नियुक्त किया जाता है एक वर्ष तक उसका परीक्षण काल

(probation) रहता है और इस काल में उसे बिना कोई कारण बताये नौकरी से अलग किया जा सकता है। नौकरी से अलग करने के लिये केवल यही कारण पर्याप्त होता है कि उसका काम असंतोषजनक रहा है। हम इस बात पर भी विचार कर चुके हैं कि किस प्रकार १६४४ के भूतपूर्व सैनिक प्राथमिकता कानून (Veterans' Preference Act) द्वारा नियुक्तियों के सम्बन्ध में भूतपूर्व स्त्री पुरुष सैनिक कर्मचारियों, उनकी पत्नियों तथा माताओं को कुछ सुविधायें एवम् विशेषाधिकार दिये गये हैं। पेन्डलटन कानून से एक और बाधा उपस्थित होती है। इस कानून के अनुसार प्रशासन का भली प्रकार संचालन होने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये वाशिंगटन के विभागों और कार्यालयों में की जाने वाली नियुक्तियों में विभिन्न राज्यों, क्षेत्रों और कोलम्बिया जिले का जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व होना चाहिये।

यह एक साधारण सी बात है कि जिस व्यक्ति या संस्था को नियुक्ति करने का अधिकार हो उसी को पदच्युति करने का भी अधिकार होना चाहिये। इस कानून-सम्मत सिद्धान्त की सीमाओं के अन्तर्गत अमेरिका में १६१२ के एक कानून में यह व्यवस्था की गयी कि जिन नौकरियों का वर्गीकरण किया गया है उनका कोई भी कर्मचारी तब तक नहीं निकाला जा सकता है जब तक कि इस प्रकार की कारवाई से उस नौकरी की कार्य क्षमता में वृद्धि न होती हो, जिस कर्मचारी को नौकरी से निकाला जाय उसको इसके कारणों से लिखित रूप में सूचित किया जाय, उस कर्मचारी को अपने ऊपर लगाये गये आरोपों के सम्बन्ध में अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण करने का अवसर दिया जाये और नौकरी से अलग करने में, वेतन में कटौती करने में या अन्य प्रकार के दण्ड देने में समान अपराधों के लिये समान दण्ड दिया जाये, और धार्मिक अथवा राजनीतिक कारणों पर किसी प्रकार का भेद भाव नहीं किया जाये। यह भी व्यवस्था की गई कि किसी भी अधिकारी को किसी राजनीतिक पार्टी के लिये चन्दा देने से इन्कार करने पर या चन्दा देना स्वीकार करने पर या पार्टी के लिये थोड़ा समय देने या देने से इन्कार करने के कारण नौकरी से न निकाला जाये। इस प्रकार के नियमों का उद्देश्य यही रहा है कि योग्यता के आधार पर नियुक्त अधिकारियों को इस बात का आश्वासन दिया जाय कि उनको नौकरी से अलग करने में स्वेच्छाचरिता का व्यवहार नहीं हो सकेगा और न अनुचित आधार पर ही उनको पदच्युत किया जा सकेगा। परन्तु प्रत्येक कर्मचारी पर उसका उच्चाधिकारी अनुशासनात्मक कार्रवाई कर सकता है और इस प्रकार की कारवाई के अन्तर्गत कर्मचारी को चेतावनी देने से लेकर मुअत्तल तक किया जा सकता है (परन्तु मुअत्तली की

पदच्युति

अवधि ७० दिन से अधिक नहीं होनी चाहिये), पद अवनति की जा सकती है, वेतन में कटौती हो सकती है और भारी अपराध पर पदच्युत भी किया जा सकता है। परन्तु अनुशासिक कार्यवाई के अन्तर्गत पदच्युत करने तथा अन्य प्रकार की कार्यवाइ के अधिकार का बहुत कम प्रयोग किया जाता है।

पदोन्नति

पेन्डलटन कानून के अनुसार वर्गीकरण किये गये पदों पर आसीन कर्मचारियों की बिना परीक्षा के पदोन्नति नहीं की जा सकती है, या तब तक पदोन्नति नहीं की जा सकती जब तक उन्हें ऐसी परीक्षाओं से विशेष रूप से मुक्त नहीं किया गया हो। राष्ट्रपति द्वारा बहुत पहिले लागू किये गये एक आदेश के अनुसार यह प्रबन्ध किया गया है कि जिन पदों का वर्गीकरण किया गया है उनके कर्मचारियों की पदोन्नति हेतु योग्यता प्रमाणित करने के लिये जहाँ तक व्यवहारिक और उपयोगी हो प्रतियोगिता परीक्षाओं की व्यवस्था की जायगी। इस प्रकार अमेरिका में भी अन्य लोकतन्त्री देशों के समान ज्येष्ठता, अपने कार्य में योग्यता का प्रदर्शन, परीक्षाओं में प्रतिभा का प्रदर्शन, प्रशासन के प्रधान का निर्णय तथा अन्य अनेक बातों के आधार पर जनपदाधिकारियों की पदोन्नति निर्धारित की जाती है।

१६३८ के एक प्रशासकीय आदेश द्वारा राष्ट्रपति ने सार्वजनिक सेवा आयोग को निर्देश दिया कि प्रत्येक प्रकार की नौकरी में पदोन्नति की प्रणाली निर्धारित कर उसे लागू किया जाय। तब से आयोग ही एक से अधिक विभागों के समान पदों के लिये पदोन्नति की परीक्षायें लेता है और आयोग के पदोन्नति विभाग की देख रेख में अलग अलग सरकारी विभाग अपने कर्मचारियों की कार्यालय में पदोन्नति के लिये परीक्षायें लेते हैं। आयोग की परीक्षाओं के द्वारा एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्तरण पर भी नियन्त्रण रखा जाता है। प्रत्येक विभाग में कर्मचारियों की कार्य क्षमता का रेकार्ड नियमित रूप से रखा जाता है और रेम्सपेक कानून की धाराओं के अनुसार एक समीक्षा परिषद् उसकी समीक्षा करती है और तत्सम्बन्धी रिपोर्ट आयोग को प्रेषित करती है।

वर्गीकरण

राजनीति शास्त्र के अधिकतर विद्यार्थी इस बात से सहमत होंगे कि १० या २० लाख संघीय कर्मचारियों को सुनियोजित रीति से क्रमबद्ध करने और इस सम्बन्ध में योजनानुसार कार्य करने का एकमात्र उपाय यह है कि उनको वर्गों में और श्रेणियों में बाँट दिया जाय और इस वर्गीकरण या श्रेणी बद्ध करने का स्पष्ट आधार उनके कार्य की प्रकृति या वास्तविक कर्म होगा। १६२३ तक कांग्रेस ने संघीय नौकरियों में पदों के वर्गीकरण के लिये कोई सन्तोषजनक आधार नहीं बनाया था। परन्तु उस वर्ष एक वेतन वर्गीकरण कानून पास किया जिसके अनुसार एक वर्गीकरण परिषद्

ने कोलम्बिया जिले में प्रतियोगी पदों की विस्तृत रूप रेखा तैयार की। परन्तु प्रशासकीय पदों (services) का बहुत बड़ा भाग रिक्त छोड़ दिया गया और शीघ्र ही यह व्यवस्था भी समाप्त कर दी गयी। १६४० के रैम्सपेक कानून ने राष्ट्रपति को नौकरियों के आधार पर यह कार्य पुन आरम्भ करने का अधिकार दिया परन्तु इसी बीच युद्ध आरम्भ हो गया जिससे यह कार्य हाथ में नहीं लिया जा सका। फिर भी वर्तमान में प्रतियोगी-परीक्षाओं के आधार पर नौकरियों को पाँच वर्गों में विभाजित किया गया है जिसमें लगभग २२०० प्रकार के पद सम्मिलित हैं। वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—(१) व्यवसायिक और वैज्ञानिक, (२) उपव्यवसायिक, (३) क्लेरिकल, प्रशासकीय और वित्तीय, (४) संरक्षण (custodian), और (५) क्लेरिकल मिकैनिकल। पहले वर्ग को ६ भागों (grades) में बाँटा गया है और इसमें २३२० से लेकर ९८०० डालर वेतन तक के पद सम्मिलित हैं, दूसरे वर्ग के ८ भाग हैं और इसमें १२२४ से ३६४० डालर वेतन तक की नौकरियाँ हैं, तीसरे वर्ग में १६ भाग हैं जिसमें १५०६ से ६८०० डालर तक की नौकरियाँ हैं, चौथे वर्ग में १० भाग हैं और इसमें ७२० से ३६४० डालर तक की नौकरियाँ हैं, अंतिम वर्ग को ४ भागों में विभाजित किया गया है जिसमें ६५ से ७० सेन्ट और १ से १.१० डालर प्रति घण्टा तक मजदूरी मिलती है। १६५५ में इन कर्मचारियों की वेतन तालिका में पुन वृद्धि की गई।

सार्वजनिक कर्मचारियों की पद निवृत्ति और पेन्शन की व्यवस्था १६२० के कानून में की गई थी। इस कानून में १६२६, १६३०, १६४२ और १६४८ में महत्वपूर्ण संशोधन हुये। १६४१ के पूर्व सभी कर्मचारियों के लिये निवृत्तिलाभ की व्यवस्था थी। पद-निवृत्ति की आयु ७० वर्ष है, जिन कर्मचारियों ने ३० वर्ष नौकरी कर ली है वह स्वेच्छा से ६० वर्ष की आयु में भी पद निवृत्त हो सकते हैं, यदि केवल १५ वर्ष नौकरी की है तो ६२ वर्ष की आयु में। पेन्शन की भी व्यवस्था है परन्तु इसमें कर्मचारी को भी अपने वेतन से कुछ जमा करना पड़ता है। यह व्यवस्था अनिवार्य है। इस अनिवार्य आंशिक-योगदान पेन्शन प्रणाली (compulsory part-contributory pension system) कहते हैं। यह प्रणाली पहिले केवल श्रेणीबद्ध कर्मचारियों पर ही लागू होती थी परन्तु अब यह उन सभी सेवाओं पर भी लागू कर दी गई है जिनका वर्गीकरण नहीं हुआ है। १६५४ में इसी आधार पर ... बीमे की भी व्यवस्था की गई।

पद निवृत्ति

अपने कर्तव्य का उचित रीति से पालन करने के लिए एक आवश्यक बात है कि जनपदाधिकारियों का राजनीतिक दल बन्दी से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। पेन्डलटन कानून की व्यवस्था के अनुसार कोई कांग्रेस सदस्य, सिनेटर

या सघीय पदाधिकारी किसी भी श्रेणीबद्ध अधिकारी या कर्मचारी से राजनीतिक कोष में चन्दा देने को नहीं कह सकता है और जिस भवन म सघीय कार्यालय स्थापित है उसमें जाकर तो कोई भी व्यक्ति राजनीतिक कोष में इन अधिकारियों से चन्दा देने का अनुरोध नहीं कर सकता है। हाँ, साधारण व्यक्ति जो प्रशासन में पदाधिकारी नहीं होते अवश्य इनसे सहायता व सहयोग की माग कर सकते हैं परन्तु इस अनुरोध के लिये वह इन पदाधिकारियों व कर्मचारियों के कार्यालय में नहीं आ जा सकते। सार्वजनिक सेवा आयोग को यह अधिकार है कि इस व्यवस्था के उल्लघन करने वालों की जाँच पड़ताल कर सके। ऐसे किसी भी व्यक्ति के लिये जो सरकारी कर्मचारी है कोई राजनीतिक कार्य करना अनिवार्य नहीं, यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। यदि कोई जनपदाधिकारी किसी राजनीतिक पार्टी को चन्दा देता है या चन्दा अथवा अन्य सहायता देने से इन्कार करता है तो न उसे पदच्युत किया जा सकता है, न उसकी पदावनति ही की जा सकती है और न ही उसे किसी प्रकार की धमकी दी जा सकती है। इसके बदले यद्यपि कर्मचारियों को मतदान की और निजी तौर पर राजनीतिक प्रश्नों पर अपनी राय प्रकट करने की स्वतन्त्रता है परन्तु वह सीधे पार्टी से सम्बन्धित किसी कार्य में खुल कर भाग नहीं ले सकते हैं। वह न किसी पार्टी के राजनीतिक सघर्ष (campaign) में भाग ले सकते हैं और न पार्टी के सचालन में ही। इस नियम की इस तरह व्यवस्था की गई है कि यह कर्मचारी (१) पार्टी के सम्मेलनों के लिये प्रतिनिधि नहीं बन सकते, (२) किसी पद के लिये उम्मेदवार नहीं बन सकते, (३) पार्टी-सघर्ष साहित्य का वितरण नहीं कर सकते, (४) मतदाताओं को न मतदान स्थान तक ला सकते हैं और न वहाँ से ले जा सकते हैं, (५) पार्टी की सभाओं में भाषण नहीं दे सकते, (६) पार्टी की समितियों में भाग नहीं ले सकते। इनके अतिरिक्त पार्टियों से सम्बन्धित ऐसे कार्यों की लम्बी सूची है जिनमें यह कर्मचारी भाग नहीं ले सकते हैं। १६३६ में प्रथम हैच राजनीतिक कार्रवाई सबधी कानून बना जिसमें यह व्यवस्था की गई कि केवल वर्गीकरण किये गये कर्मचारी ही नहीं बल्कि नीति निधारित करने वाले पदों पर आसीन कर्मचारियों के अतिरिक्त कोई सघीय कर्मचारी किसी राजनीतिक कार्रवाई में भाग नहीं ले सकता। १६४० में द्वितीय हैच कानून पास किया गया जिसके अनुसार राज्यों तथा स्थानीय सरकारों के वह सभी कर्मचारी, जो ऐसे कार्यों में नियुक्त हों जिनका पूरा या आंशिक व्यय भार सघीय सरकार वहन करती हो, अपने पद एवम् अधिकार का इस तरह प्रयोग नहीं कर सकते जिनका सम्बन्ध राष्ट्रपति से या कांग्रेस की सदस्यता के चुनाव से हो। वे कर्मचारी ऐसे कार्यालयों में नियुक्त हैं जिनके संचालन के लिये सघीय सरकार

दलबन्दी और सार्वजनिक पदाधिकारी

पूर्णतया सहायता देती है वे (क) अपने पद के अधिकारों या प्रभाव का किसी नामजदगी या चुनाव में हस्तक्षेप करने के उद्देश्य से प्रयोग नहीं कर सकते हैं, (ख) किसी अन्य कर्मचारी को राजनीतिक पार्टी को चन्दा देने या ऋण देने की न सलाह दे सकते हैं न आदेश दे सकते हैं और न उस पर इसके लिये दबाव डाल सकते हैं, (ग) किसी राजनीतिक संघर्ष या व्यवस्था में सक्रिय भाग नहीं ले सकते हैं।

कर्मचारी संगठन

१९ वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में संघीय कर्मचारी संगठनों का भी उद्भव होने लगा जिनमे बहुत कुछ श्रमिक संघवाद (trade unionism) की झलक दिखाई देती है। डाक और रेलवे विभागों में अनेक संगठन पैदा हो गये परन्तु १८९८ में जब इन संगठनों से कांग्रेस पर वेतन-स्तर बढ़ाने के लिए दबाव डालना आरम्भ किया तो प्रशासन इन संगठनों को विरोधी व सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखने लगा। १९०२ में राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने एक प्रशासकीय आदेश जारी कर समीसंघीय अधिकारियों एवम् कर्मचारियों को यह चेतावनी दे दी कि यदि वह अपने विभागीय अध्यक्ष के अतिरिक्त किसी और के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से, निजी तौर पर या किसी संगठन के द्वारा वेतन बढ़ाने की माग करेंगे या किसी अन्य प्रकार के कानून को अपने हित में बनवाने की चेष्टा करेंगे तो उनको नौकरी से निकाल दिया जा सकता है। १९१२ के एक कानून में इस बात को स्वीकार कर लिया गया कि संघीय कर्मचारी को वेतन बढ़ाने के लिये या काम की स्थिति मे सुधार करने के लिये कांग्रेस के पास या उसके किसी भी सदस्य के पास आवेदन पत्र भेजने का पूर्ण अधिकार है और इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये बने कर्मचारी संगठनों की सदस्यता के कारण नौकरी से हटा दिये जाने की व्यवस्था को रद्द कर दिया। साथ ही संगठनों को अपने को गैर-सरकारी श्रम-संघों से सम्बन्धित करने का भी अधिकार दे दिया गया परन्तु यह शर्त रखी गई कि यह सम्बन्ध तभी तक वैध होगा जब तक कर्मचारी संगठनों पर किसी हड़ताल में भाग लेने या संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध आयोजित हड़ताल में सहायता देने के लिये बाध्य न करें। इस प्रकार कांग्रेस द्वारा स्वीकृत इस कानून की सीमाओं के अन्दर कर्मचारी संगठनों का विकास हुआ है यहाँ तक कि आज वाशिंगटन के ९० प्रतिशत सार्वजनिक पदाधिकारी किसी न किसी संगठन के सदस्य हैं।

उपसंहार

उक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि किस प्रकार अमेरिकी जनपदाधिकारी वर्ग ने अपने पूरे इतिहास में स्पोइल्स जैसी भ्रष्ट प्रणाली, दोषपूर्ण आन्तरिक संगठन, अप्रयुक्त विधियों, लालची, स्वार्थी और संकीर्ण मनोवृत्ति वाले कांग्रेस-सदस्यों, देश के युवकों की इस के प्रति उत्साहहीनता और परिणाम स्वरूप कर्मचारियों के निम्नस्तर और

असन्तोषजनक योग्यता तथा क्षमता और अन्य अनेक बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष किया है। स्पोइल्स प्रथा अभी पूर्णतया समाप्त नहीं हो सकी है और कभी कभी यह भय पैदा हो जाता है कि कहीं यह प्रथा पुनः पैर न जमा ले। अभी सेना के कर्मचारियों (field employees) की बहुत लम्बे समय से विचाराधीन कार्य के आधार पर वर्गीकरण की क्रिया को पूरा करने में, कर्मचारियों की कुशलता की जाँच के तरीकों के सुधार में, वेतन के ढाँचे को रहन सहन के परिवर्तनशील व्यय के आधार पर न्यायसंगत और परिवर्तनशील रूप देने में, पदोन्नति की योजना में सुधार करने की दिशा में और प्रशासन तथा कर्मचारियों के सम्बन्ध से उत्पन्न समस्याओं के समाधान की दिशा में बहुत कुछ करना शेष है। लास्की के मतानुसार अमेरिकी राजनीति में इतना व्यापक विरोधाभास है कि सहज ही उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ वित्तीय मामलों पर नियन्त्रण रखने के लिये कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जिससे प्रस्तावों के वित्तीय प्रभाव को गोपनीय रखा जा सके। कोई ऐसा आधार नहीं है जिसके बल पर मन्त्रिमण्डल प्रशासन की एकता का प्रतीक बन सके, इसका एक कारण यह हो सकता है कि इसके सदस्यों को काफी लम्बे समय तक एक साथ काम करने का अवसर नहीं मिलता या उनके प्रधान अधिकारियों को प्रेरित करने के लिये कोई समान परम्परा नहीं होती क्योंकि इसका निर्माण समान अनुभव के आधार पर ही हो सकता है। इसी प्रकार समान उत्तरदायित्व का भी कोई सिद्धान्त नहीं है जिससे किसी एक नीति की रूपरेखा स्पष्ट हो सके।

इस प्रकार जनपदाधिकारी वर्ग का संगठन एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें अभी सुधार और विकास की आवश्यकता है। सर्वप्रथम सरकारी कर्मचारियों के लिये जनता ने जो धारणा बना ली है कि वह 'टैक्स खानेवाला' और 'केवल वेतन से लगाव रखने वाला' होता है या वह अकुशल और भ्रष्ट है, या उसे वेतन तो आवश्यकता से अधिक मिलता है परन्तु वह काम कुछ नहीं करता और जोंक की तरह सरकारी धन चूसता है और इसी प्रकार की अनेकों भ्रान्त धारणाओं का दूर करना आवश्यक है। ऑग और रे ने सुझाव दिया है कि संघीय तथा अन्य सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करने की विधि को और अधिक सरल बनाना चाहिये, साथ ही आकर्षणयुक्त भी बनाना आवश्यक है। इसके लिये निश्चित और लाभदायक शिक्षा दी जानी चाहिये, परीक्षा की विधि में सुधार किया जाना चाहिये, वेतन में वृद्धि होनी चाहिये, उन उच्च पदों का जिन पर वर्तमान में नियुक्तियाँ राजनीतिक आधार पर की जाती हैं वर्गीकरण करके उनमें पदोन्नति की ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिये जिससे प्रत्येक योग्य कर्मचारी में विश्वास पैदा हो और उसे सर्वोच्च पद प्राप्त करने की प्रेरणा मिल सके। इनके अतिरिक्त आलोचकों

को जो त्रुटियाँ प्रतीत हों उनको भी दूर करने की व्यवस्था की जानी चाहिये। अमेरिकी जनपदाधिकारी वर्ग की आज सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि सेवाओं में प्रवेश करने से पूर्व अधिकाधिक उम्मेदवारों के लिये उचित प्रतीक्षण की व्यवस्था हो, वह आगे उन्नति करने में समर्थ व योग्य हों और सार्वजनिक सेवा में उनका जीवन सन्तुष्ट, सुखी व सम्पन्न हो। इस सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि स्वस्थ, उत्साही, प्रतिभाशाली और महत्वाकांक्षी युवक और युवतियों को सार्वजनिक सेवाओं की ओर आकृष्ट करने के लिये उपयुक्त प्रलोभनों की व्यवस्था होनी चाहिये।

कुछ आलोचकों ने सार्वजनिक सेवा आयोग की व्यवस्था पर ही आपत्ति की है और यह सन्देह प्रकट किया है कि चूँकि आयोग बहु-सदस्यक (plural membership) है इसलिये वह कर्मचारियों की नियुक्ति की दिशा में कोई निश्चित दृष्टिकोण नहीं अपना सकता है। यहाँ तक कि सार्वजनिक सेवा आयोग का उन्मूलन कर देने की प्रस्तावना की गई है और यह सुझाव दिया गया है कि कर्मचारियों की नियुक्ति के लिये एक सुयोग्य प्रशासक बनाया जाना चाहिये जिसका राजनीति से कोई सम्बन्ध न हो। इस प्रशासक के आधीन और उसकी अध्यक्षता में एक कार्यालय (Personnel Agency) हो जिसका कर्त्तव्य यह हो कि राष्ट्रपति एवम् प्रशासकीय विभागों के अध्यक्षों को जनपदाधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों के निर्वाचन एवम् उनकी नियुक्ति सम्बन्धी कार्यक्रम तैयार करने और उसको लागू करने में सहायता दे। इसके साथ एक अवैतनिक परिषद भी स्थापित की जा सकती है जो जनता का प्रतिनिधित्व करे, योग्यता प्रणाली पर अपनी दृष्टि रखे और इससे सम्बन्धित विषयों पर राष्ट्रपति तथा कांग्रेस को परामर्श दे। हूवर आयोग ने यह सिफारिश की थी कि प्रशासन विभाग में कर्मचारियों से सम्बन्धित विभाग (Office of personnel) भी खोला जाय जिसका अध्यक्ष एक संचालक (director) हो जो सार्वजनिक सेवा आयोग का भी अध्यक्ष हो। कर्मचारियों से सम्बन्धित प्रत्येक समस्या पर राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिये यही प्रमुख अधिकारी होगा और आयोग के स्तर तथा कार्यक्षमता एवम् कुशलता को बनाये रखने के लिये देख रेख करना भी इसका कर्तव्य होगा जिससे सार्वजनिक सेवाओं के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो और प्रशासन के उत्तरदायी पदों पर उच्च योग्यता के व्यक्तियों को आसीन किया जा सके।

अमेरिका की सार्वजनिक सेवा के सम्बन्ध में लास्की अपनी 'अमेरिकन डेमोक्रेसी' में दो परिणामों पर पहुँचे हैं (१) केवल महान और महत्त्वपूर्ण नीतियाँ ही सुयोग्य और प्रतिभाशाली व्यक्तियों को वाशिंगटन की ओर आकर्षित करती हैं और महत्वपूर्ण नीतियों को जन्म देना केवल महान राष्ट्रपतियों के बस की ही बात

है। अत साधारण राष्ट्रपतियों के अन्तर्गत केवल साधारण योग्यता के व्यक्ति ही प्रशासकीय नौकरियों में जाना पसन्द करते हैं, (२) संघीय जनपदाधिकारी वर्ग सम्भवत भविष्य में नीति निर्धारण में अतीत की अपेक्षा अधिक भाग लेगा। इसका कारण यह है कि प्रतिवर्ष संघीय प्रशासन का कार्य क्षेत्र बढ़ता जाता है और इस विस्तार के फलस्वरूप प्रशासकीय पद अधिक आकर्षक और महत्वपूर्ण हो जाता है, जितना कि अतीत में कभी नहीं था। वास्तव मे प्रशासकीय पदों के विकास का मुख्य कारण स्वय संयुक्त राज्य अमेरिका का विस्तार है। परन्तु इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि संघीय सरकार ने अब वह कार्य अपने हाथ में ले लिये हैं जिनकी संयुक्त राज्य अमेरिका के संस्थापक स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते थे। यह स्पष्ट है कि यदि अमेरिका धीमी गति से भी निश्चित और कल्याणकारी राज्य (welfare state) की दिशा में प्रगति करता गया तो जनपदाधिकारियों के अधिकारों और उनके सम्मान में अपूर्व व अनन्त वृद्धि होगी। यह विचारशील प्रश्न है कि सार्वजनिक पदों के इस विस्तार और जनपदाधिकारियों के कार्यों एवम् अधिकारों में जो वृद्धि होगी उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अमेरिका राजनीतिक व्यवस्था के आलोचकों में, विशेषकर उनमें जो राज्य के व्यक्तिवादी दर्शन के भक्त हैं, ब्रिटिश नागरिक सेवा की तरह। इसके प्रति भी "नौकरशाही की विजय (bureaucracy triumphant) और 'नई निरंकुशता' (new despotism) की शकायें और भय उत्पन्न न हो जायें।

अध्याय ७ | सिनेट

संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया है कि इस विधान द्वारा प्रदत्त कानून निर्माण के समस्त अधिकार संयुक्त राज्य अमेरिका की एक कांग्रेस में निहित होंगे, जिसमें सिनेट और प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) दो सदन होंगे। इसमें सन्देह नहीं कि एक द्विभवनात्मक विधानमण्डल (bicameral legislature) की स्थापना का निर्णय करने में फिलाडेल्फिया सम्मेलन के सदस्य ब्रिटेन और अमेरिकी इतिहास के उदाहरणों से प्रभावित हुये थे। साथ ही यह भी विश्वास था कि द्विसदनीय विधानमण्डल होने से यह लाभ रहेगा कि एक सदन दूसरे सदन पर प्रतिबन्ध का कार्य करेगा। यह उचित नहीं समझा गया कि विशाल कानून निमाण के उस महान् अधिकार को जिसका कि अन्तत संघीय सरकार प्रयोग करेगी एक ही सदन को सौंप दिया जाय। इसीलिए सिनेट का निमाण किया गया ताकि वह विधानमण्डल के अधिक लोकप्रिय भवन प्रतिनिधि सभा के अदम्य उत्साह पर नियन्त्रण रखे। इसमे स्पष्ट है कि सिनेट का जन्म वास्तव में लोकतन्त्रीय व्यवस्था के प्रति अविश्वास के कारण हुआ था। द्विसदनीय विधानमण्डल का सिद्धान्त ही वास्तव में यह है कि उत्साह और उत्तेजनावश एक सदन जो कुछ निर्णय करे उस पर दूसरा सदन शांति से विचार कर उसमें आवश्यक संशोधन कर सके। जेफरसन को दूसरे सदन की आवश्यकता समझाते हुए एक बार जार्ज वाशिंगटन ने गरम गरम चाय प्याले में से तश्तरी में गिरा दी जिससे वह ठंडी हो जाय फिर तश्तरी की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा यही दूसरा सदन है। संभवत इसी दृष्टिकोण के आधार पर सर हेनरी मेन ने घोषित किया था कि 'जब से आधुनिक लोकतन्त्रीय व्यवस्था का ज्वार आया है तब से यदि कोई उपयुक्त और पूर्णतया सफल संस्था स्थापित हो सकी है तो वह निस्सन्देह सिनेट है'।

परन्तु इनके अतिरिक्त कुछ अन्य व्यवहारिक बातें भी थीं जिनके लिये सिनेट की स्थापना की गई थी। कांग्रेस में दो सदन होने से प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर एक समझौता संभव हो सका। इसके अनुसार राज्यों को एक सदन में अपनी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व मिल सका और दूसरे सदन में समान प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। इस व्यवस्था में यह लाभ भी देखा गया कि अधिक जन-

संख्या वाले राज्य वाणिज्य प्रधान हैं और कम जनसंख्या वाले कृषि प्रधान हैं और इससे इन महत्वपूर्ण आर्थिक हितों के बीच सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है। इसलिये प्रतिनिधि सभा के लिये जनता द्वारा जनसंख्या के अनुपात में प्रत्यक्ष निर्वाचन और सिनेट के लिए अप्रत्यक्ष निर्वाचन तथा सभी राज्यों को बराबर प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई। वास्तव में धारणा यह थी कि सिनेट एक राज्य परिषद् (Council of States) के रूप में कार्य करेगी।

जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सिनेट का निर्माण हुआ था उन पर एलेग्जेन्डर हैमिल्टन ने 'फेडरलिस्ट' में प्रकाश डाला है (१) विभिन्न छोटे और बड़े

✓ सिनेट के निर्माण का उद्देश्य

राज्यों में स्वतन्त्रता तथा समानता की भावना की तुष्टि करने के लिये उन्हें राष्ट्रीय सरकार के एक सदन में समान प्रतिनिधित्व देना, (२) अनुभवी सदस्यों की एक ऐसी छोटी परिषद का निर्माण करना जो राष्ट्रपति को उसके नियुक्ति करने के अधिकार के प्रयोग में और सन्धियाँ करने के सम्बन्ध में परामर्श दे सके और उस पर नियन्त्रण रख सके, (३) प्रतिनिधि सभा की गति एवम् उत्साह और उसकी परिवर्तनशील मनोवृति पर नियन्त्रण रखना और इस प्रकार उत्तेजना में की गई कार्यवाहियों और जनमत में एकाएक हुए परिवर्तनों के दुष्प्रभाव को रोकना, (४) एक ऐसी संस्था का निर्माण करना जो अपने सदस्यों के अधिक अनुभव, दीर्घ अवधि काल और सार्वजनिक निर्वाचन से अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता के बल पर राष्ट्रीय सरकार में स्थायित्व प्रदान कर सके, जो विदेशी राष्ट्रों की दृष्टि में सम्मान व महत्व प्राप्त कर सके और जो स्वदेशी तथा विदेशी क्षेत्र में निर्धारित नीतियों का क्रम अटूट रख सके, और (५) एक ऐसे न्यायालय की स्थापना करना जो महाभियोग के मुकदमों का निर्णय कर सके। महाभियोग प्रशासन द्वारा अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने के लिए आवश्यक साधन समझा गया।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सिनेट का संगठन राज्यों के भौगोलिक और संघीय आधार पर किया गया है। इसमें सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व का

✓सिनेट का आकार प्रकार

अधिकार प्राप्त है अतः प्रत्येक राज्य के दो सिनेटर होते हैं। इस व्यवस्था की सुरक्षा के हेतु संविधान में इस बात को स्वीकार किया गया है कि किसी राज्य को एक संवैधानिक संशोधन द्वारा भी सिनेट में समान प्रतिनिधित्व के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकेगा जब तक स्वयं उस राज्य की सहमति न हो। १९१३ तक सिनेट का चुनाव राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा हुआ करता था परन्तु अब संविधान के १७वें संशोधन के अनुसार राज्य की जनता प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से इसका चुनाव करती है और एक व्यक्ति एक बार सिनेटर होने पर भी अगली बार पुनः चुनाव लड़ सकता है।

पहले सिनेटरों की संख्या २६ थी परन्तु वर्तमान काल में अब ४९ राज्य हैं इस लिये सिनेट की सदस्यता अब बढ़कर ९८ हो गई है[1]। सिनेट के केवल एक तिहाई सदस्यों का प्रति दो वर्ष पश्चात नया चुनाव होता है और इस प्रकार प्रत्येक सिनेटर की कार्यावधि ६ वर्ष होती है। इस प्रकार सिनेट एक ऐसी संस्था है जिसका क्रम कभी भंग नहीं होता क्योंकि इसके दो तिहाई सदस्य सदा विद्यमान रहते हैं।

अनेक आलोचकों का मत है कि सभी राज्यों को, चाहे वह छोटे हों या बड़े, अधिक जनसंख्या वाले हों या कम जनसंख्या वाले, समान प्रतिनिधित्व और मताधिकार देना उचित तथा न्यायसंगत नहीं है, वास्तव में यह असमानों की समानता है। यह कितना विचित्र और अलोकतन्त्री प्रतीत होता है कि १,६०,०८३ जनसंख्या वाले नेवादा राज्य के भी उतने ही प्रतिनिधि हैं जितने न्यूयार्क के जिस की जनसंख्या १९५० की जनगणना के अनुसार १४,८३०,१९२ थी। ग्रिफिथ (Griffith) ने अपनी 'अमेरिकी शासन प्रणाली' में लिखा है कि एक दृष्टि से कम जनसंख्या वाले राज्यों के सिनेटरों का बड़े राज्यों के सिनेटरों की अपेक्षा अधिक प्रभाव होता है क्योंकि बड़े राज्यों के सिनेटरों को अपना अधिकांश समय अपने राज्य के स्थानीय मामलों में व्यतीत करना पड़ता है जो राष्ट्रीय मामलों से बिल्कुल भिन्न होते हैं। गणना करने पर पता चला है कि सिनेट में ऐसे सदस्यों का बहुमत हो सकता है जो कुल मिला कर देश की जनसंख्या के पाँचवें हिस्से से अधिक का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि बड़े प्रभावशाली आर्थिक और सामाजिक हितों का प्रतिनिधित्व संतुलित नहीं है। उद्योग एवम् वाणिज्य बहुत कम राज्यों में केन्द्रित है परन्तु इन राज्यों की जनसंख्या काफी घनी है। इसके विपरीत कृषि अनेक राज्यों में प्रसारित है पर इन राज्यों की जनसंख्या घनी नहीं है, इससे सिनेट में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व होने से ग्राम्य हितों का अपने अनुपात से कहीं अधिक प्रभाव होता है।

इस विषमता को दूर करने के लिये यह सुझाव दिया गया है कि सिनेट में प्रत्येक राज्य को दो सीटें पूर्ववत दी जाती रहें परन्तु उन राज्यों को जिनकी जनसंख्या अधिक है बोनस के रूप में एक अतिरिक्त सीट दे दी जाये, उदाहरणार्थ प्रति दस लाख जनसंख्या के लिये एक अतिरिक्त सीट। परन्तु इस सुझाव पर यह आपत्ति की गई है कि (१) इससे सिनेटरों की संख्या बढ़ जायगी, और अपने वर्तमान आकार-प्रकार में सिनेट विचार-विमर्श तथा विधेयकों आदि पर पुनर्विचार करने में जो कुशलता प्रदर्शित करती है उसमें गंभीर क्षति पहुँचेगी, (२) इस

---

१ १९५९ में हवाइ के संघ में सम्मिलित होने से यह संख्या १०० हो जायेगी।

परिवर्तन से दोनों सदन उसी जनता का और उसी अनुपात में प्रतिनिधित्व करने लगेंगे (जब कि वर्तमान में एक जनसंख्या का और दूसरा क्षेत्रफल का प्रतिनिधित्व करता है) और इससे दूसरा सदन स्थापित करने का मूल कारण ही समाप्त हो जायगा, (३) यदि यह परिवर्तन किया गया तो घने बसे हुये कुछ राज्यों का दोनों सदनों पर प्रभुत्व हो जायगा और इस प्रकार सम्पूर्ण राष्ट्रीय नीति पर भी उनका नियन्त्रण स्थापित हो जायेगा जब कि वर्तमान व्यवस्था के अनुसार वह प्रतिनिधि सभा में अपना प्रभुत्व अवश्य स्थापित कर सकते हैं परन्तु सिनेट में किसी कानून को बनाने के लिये आधे या आधे से अधिक राज्यों के मतों की आवश्यकता पड़ती है, (४) वर्तमान व्यवस्था की बहुत कुछ आलोचना इस भ्रान्त धारणा के कारण की जाती है कि बिना जनसंख्या के अनुपात के सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता है। क्या राष्ट्रपति अकेले जनमत और सारे राष्ट्र की इच्छा का जनता द्वारा निर्वाचित सैकड़ों कांग्रेस सदस्यों की अपेक्षा अधिक प्रतिनिधित्व नहीं करता ? (५) प्रस्तावित परिवर्तन के लिये संविधान में संशोधन किया जाना चाहिये जो कि अमेरिकी शासन व्यवस्था में सरल कार्य नहीं है। इस कार्य के लिये संविधान में संशोधन ही पर्याप्त नहीं। इसके लिये तो उन सभी राज्यों की स्वीकृति आवश्यक है जिनका प्रतिनिधित्व अन्य की अपेक्षा घट जायेगा और यह स्पष्ट रूप से अव्यवहारिक बात है।

सिनेटरों की योग्यता

जो व्यक्ति सिनेट की सदस्यता का अभिलाषी है उसकी आयु कम से कम ३० वर्ष होनी चाहिये और कम से कम ९ वर्ष से वह संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक हो। वह उसी राज्य का निवासी होना चाहिये जहाँ से वह निर्वाचन के लिये खड़ा हो और सिनेट की सदस्यता की अवधि में वह अमेरिकी सरकार के अन्तर्गत कोई पदाधिकारी नहीं हो सकता। प्रतिनिधि सभा की तरह सिनेट चुनाव के मामलों में स्वयं निर्णय करती है और चुनाव फल तथा सदस्यों की योग्यता की जाँच भी स्वयं ही करती है। चुनाव सम्बन्धी झगड़ों की नियम तथा प्रशासन सम्बन्धी स्थायी समिति जाँच करती है और अपनी रिपोर्ट देती है। १९४७ से पहिले यह कार्य विशेषाधिकार और चुनाव सम्बन्धी समिति किया करती थी। जनवरी १९४७ में तत्काल ही पुन निर्वाचित मिसिसिपि के सिनेटर थियोडोर बिल्बो को यद्यपि सरकारी तौर पर सिनेट की सदस्यता से वंचित नहीं किया गया परन्तु एक आपरेशन से पुन पूर्ण स्वस्थ न हो जाने तक उसके सिनेट में बैठने के अधिकार की पुष्टि नहीं की गई।। उस पर युद्ध सम्बन्धी ठेकों के मामले में भ्रष्टाचार और अपने चुनाव में जातीयता (Racialism) की भावना उभारने के अनेक आरोप लगाये गये थे। अगली गर्मियों में उसकी मृत्यु हो गयी और इस प्रकार उसके सम्बन्ध में कोई

निर्णय नहीं किया जा सका। यदि किसी सिनेटर या प्रतिनिधि का निष्कासन करना हो तो इसके लिये दो तिहाई मतों की आवश्कता होती है, चाहे कारण कुछ भी हो।

सिनेट का सगठन

यह पहिले बताया जा चुका है कि १९१३ के उपरान्त सिनेटरों का चुनाव प्रत्यक्ष राज्य की जनता द्वारा होता है। वे प्राइमरी (Primaries) या सम्मेलनों (conventions) में मनोनीत किये जाते हैं और प्रतिनिधि सभा की भाँति मत-दाताओं में वह सभी जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होते हैं जो राज्य विधान मण्डल के सार्वजनिक सदन के लिये मतदाता हों। नामजदगी राज्य के कानूनों के अनुसार की जाती है।

✓निर्वाचन

सिनेट में स्थान रिक्त हो जाने पर राज्य का गवर्नर उसकी पूर्ति नियुक्ति के द्वारा करता है परन्तु यह अस्थायी नियुक्ति होती है क्योंकि तुरन्त ही राज्य विधान मंडल के आदेशानुसार निर्वाचन करना होता है। २८ सितम्बर १९५४ को सिनेटर मेक्करैन (Mc Carran) का देहान्त हो जाने के कारण १ अक्टूबर को नेवेदा के गवर्नर ने अर्नेस्ट ब्राउन (Ernest Brown) की नियुक्ति उनके स्थान पर कर दी। उनकी नियुक्ति मैक्करैन की अवधि के अवशेष २ वर्षों के लिये की गई थी परन्तु नेवेदा के सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय किया कि उनका कार्यकाल केवल कांग्रेस के अधिवेशन की समाप्ति (जनवरी १९५४) तक होगा।

सिनेट का प्रमुख अधिकारी उपराष्ट्रपति होता है जो सिनेट का अध्यक्षता करता है परन्तु सिनेट का सदस्य न होने के कारण वाद विवाद में भाग नहीं लेता और मतदान भी केवल तब करता है जब दोनों पक्षों को बराबर मत प्राप्त हों। उपराष्ट्रपति की अनुपस्थिति में अध्यक्ष पद ग्रहण करने के लिये सिनेट एक अध्यक्ष का निर्वाचन करती है जिसको अस्थाई अध्यक्ष (President pro-tempore) कहते हैं। यह साधारणतया सिनेट की बहुमत पार्टी का सदस्य होता है। इनके अतिरिक्त सिनेट में बहुमत और विरोधी दल के नेता तथा पार्टी ह्विप (party whips) होते हैं। कुछ अधिकारियों, जैसे सचिव (secretary), सार्जेन्ट एट आर्म्स, पार्लमेन्टेरियन इत्यादि की नियुक्ति सरक्षण (patronage) के आधार पर की जाती है। सदस्यों की उपस्थिति (roll call) लेने के लिये, कार्यवाई लिखने, फाइल रखने आदि कार्यों के लिये पर्याप्त क्लर्क रखे जाते हैं। सिनेट के अधिवेशन एक प्रार्थना से आरम्भ होते हैं। इसके साथ ही आवश्यक काम करने के लिये नौकरों का भी प्रबन्ध किया गया है।

✓सिनेट के पदाधिकारी

भा की भाँति सिनेट की कार्यवाई के लिये भी विधिवत स्वीकृत है जिसका प्रत्येक अधिवेशन में प्रयोग किया जाता है। इसमें सकते हैं परन्तु इनकी आवश्यकता काफी दीर्घकाल पश्चात् के नियम प्रतिनिधि सभा के नियमों से अधिक सरल व संक्षिप्त हैं। यह नियम अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करने और भाषण-स्वातंत्र्य के लिये प्रतिनिधि सभा के नियमों से अधिक उपयुक्त हैं। सिनेट को इसका बड़ा गर्व है। वक्ता को प्रसंग की सीमा के अन्तर्गत ही रखने के लिये कोई नियम लागू नहीं किया जाता। समापन प्रस्ताव (closure motion) प्रस्तुत करने में इतनी कठिनाई होती है कि इसका बहुत कम प्रयोग किया जाता है और यह बहुत कम बार स्वीकृत हो पाता है। स्वीकृति के लिये दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थन आवश्यक होता है। इसलिये यदि अल्पसंख्यक दल चाहे तो अपनी बात मनवाने के लिये घंटों और कई दिन तक बोलते रह कर प्रस्तावित प्रस्ताव या विधेयक पारित होने में अनावश्यक बाधा डाल सकता है। इसे अभिबाधक नीति (Filibus tering device) कहते हैं। इसलिये सिनेट की कार्यवाई भी धीरे धीरे चलती है और साधारणतया अनेकों दिन वाद विवाद करने में ही व्यतीत हो जाते हैं। अब इसे अपना कार्य सम्पन्न करने में अधिक दिन लगते हैं। १२ जनवरी १९५९ को सिनेट ने एक प्रस्ताव द्वारा यह स्वीकार किया कि किसी उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित प्रस्ताव द्वारा किसी विषय पर वाद विवाद समाप्त किया जा सकेगा। इससे पूर्व इस प्रकार के प्रस्ताव के पारित होने के लिये कुल सदस्यों के दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता थी।

सिनेट में भी प्रतिनिधि सभा की भाँति विशेष समितियाँ (Committees Special), सम्मेलन समितियाँ (Conference Committees) और स्थायी समितियाँ होती हैं। १९४६ से पूर्व अनेक वर्षों तक स्थायी तथा सिनेट की समितियाँ अन्य समितियों की संख्या में अपार वृद्धि हो गई थी जिनका कोई तर्क संगत या नियमित आधार नहीं था। १९४६ के विधानमण्डलीय पुनर्संगठन कानून (Legislative Reorganisation Act) द्वारा न केवल स्थायी समितियों की संख्या ही घटाकर आधी कर दी गई है बल्कि उनके कार्यक्षेत्र को भी प्रशासन के उपयुक्त विभागों एवम् एजेन्सियों के अनुकूल कर दिया गया है। समितियों के नाम से ही उनके कार्यक्षेत्र का पता चल सकता है। समितियों के नाम इस प्रकार हैं —कृषि और वन विभाग, व्यय विनियोग (Appropriation), सैन्य, बैंकिंग और मुद्रा, जिला कोलम्बिया, वित्तीय, परराष्ट्र सम्बन्ध, राजकीय कार्य, गृह और द्वीपिक सम्बन्धी मामले (Interior and insular affairs), श्रम और सार्वजनिक कल्याण, निर्माण कार्य, न्याय विभाग,

डाक और सार्वजनिक सेवा, नियम और प्रशासन (Rules and administration) और लघु-कार्य (small business)।

पूर्व व्यवस्था के अनुसार समितियों के सदस्यों की संख्या ९ से लेकर २५ तक होती थी परन्तु अब केवल व्यय-विनियोग समिति को छोड़कर जिसकी सदस्य संख्या २१ रखी गई है शेष सभी समितियों की सदस्य संख्या १३ निश्चित कर दी गई है। समितियों का दोनों बड़ी पार्टियों के बीच उसी अनुपात में विभाजन किया जाता है जिस अनुपात में वह सिनेट में हैं। पहिले एक सिनेटर का पाँच या इससे भी अधिक समितियों का सदस्य होना कोई आश्चर्य की बात नहीं समझी जाती थी परन्तु नयी योजना के अन्तर्गत अब वह दो से अधिक समितियों का सदस्य नहीं हो सकता, परन्तु जिला कोलम्बिया और प्रशासन विभागों की व्यय समितियों के बहुमत वाले सदस्य तीन समितियों में भी भाग ले सकते हैं। प्रतिनिधि सभा की भाँति सिनेट में भी समितियों के सम्बन्ध में एक समिति होती है जो प्रमुख पार्टियों के नेताओं द्वारा नियुक्त होती है। यह समिति समितियों के रिक्त स्थानों को नये सदस्यों में विभक्त करती है, सीनियारिटी या ज्येष्ठता का प्रश्न तय करती है और विभिन्न समीतियों के अध्यक्षों को मनोनीत करती है। समिति का प्रत्येक दल अपनी सूची तय्यार कर उन्हें स्वीकृति के लिये सम्बन्धित पार्टी-अन्तर्गोष्ठियों (caucuses) के पास भेज देता है और तत्पश्चात् बहुमत और अल्पमत दलों का विभिन्न सूचियाँ सिनेट में प्रस्तुत की जाती हैं। सिनेट में सिंगिल बैलट द्वारा निर्वाचन होता है, और इस समय कोई वाद विवाद नहीं होता।

मार्च १९५५ से दोनों सदनों के सदस्यों का वार्षिक वेतन २२,५०० डालर है। सभा के स्पीकर और सिनेट के अस्थायी अध्यक्ष (President protempore) को ३० हजार डालर प्रतिवर्ष मिलता है।

सिनेटरों का वेतन और विशेषाधिकार

वेतन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अकालिक खर्चों (incidental expenses) के लिये भत्ता मिलता है, पद निवृत्ति का भत्ता मिलता है। इसके अतिरिक्त (१) प्रत्येक अधिवेशन में सदस्य के घर से वाशिंगटन तक की यात्रा का २० सेन्ट प्रति मील के हिसाब से यात्रा भत्ता मिलता है, यह भत्ता सदस्य को अपने परिवार को साथ ले जाने के लिये यातायात-व्यय में सहायतार्थ मिलता है, (२) क्लर्क रखने के लिये भत्ता मिलता है, (३) पत्र और अन्य सामान अपने नाम की मुहर से डाक द्वारा निःशुल्क भेजने का विशेषाधिकार होता है। इसको फ्रेंकिंग अधिकार (franking privilege) कहते हैं।

सिनेट के अधिकार और कार्य

सिनेट के कार्यों को ६ विभागों में विभक्त किया जा सकता है (१) विधान निर्मात्री, (२) प्रशासकीय, (३) न्याय सम्बन्धी, (४) अन्वेषण सम्बन्धी, (५) संवैधानिक, और (६) निर्वाचन सम्बन्धी। केवल प्रशासकीय कार्यों को छोड़ अन्य सभी कार्य सिनेट प्रतिनिधि सभा के संयोग और सहयोग से करती है।

विधान निर्मात्री कार्य

सर्वप्रथम सिनेट का कार्य है कानून बनाना, अत प्रतिनिधि सभा की भांति यह विधेयक पारित करती है जो राष्ट्रपति की स्वीकृति के उपरान्त कानून बन जाते हैं। यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक को अपनी स्वीकृति न दे और पुनर्विचार के लिये सदनों को वापस लौटा दे तो दोनो सदनों द्वारा पुन दो-तिहाई मत से विधेयक स्वीकृत हो जाने पर वह बिना राष्ट्रपति की स्वीकृति पाये कानून बन जाता है।

सिनेट अमेरिकी कांग्रेस संगठन में कोई अधीनस्थ या उपाश्रित भवन नहीं बल्कि एक सहयुक्त (coordinate) भवन है और राष्ट्रीय कानूनों के निर्माण का कार्य इसमें और प्रतिनिधि सभा में बँटा हुआ है। यहाँ पर यह बता देना अनुचित न होगा कि अमेरिकी कांग्रेस को ब्रिटिश संसद की भांति कानून बनाने का असीमित अधिकार प्राप्त नहीं है, उसका यह अधिकार संविधान द्वारा पूर्व निर्धारित व मर्यादित है। अर्थात संविधान में कुछ ऐसी धारायें हैं जो स्पष्ट रूप से कांग्रेस को कुछ विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्रदान करती हैं, कुछ अन्य ऐसे विषयों का वर्णन करती हैं जिनसे सम्बन्धित कानून बनाने से इसको वर्जित कर दिया गया है। इन दो के मध्य गर्भित (implied) तथा परिणामी (resultant) शक्तियों का क्षेत्र पड़ा हुआ है जो जितना विस्तृत है उतना ही विवाद ग्रस्त भी है। संविधान की धारा १ के आठवें अनुच्छेद (section) में ऐसे विषयों की लम्बी सूची दी गई है जिन पर कांग्रेस को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। इसमे कर, ऋण, पेटेन्ट या स्वाधिकार, मुद्रा, कापीराइट, दिवाला, डाक विभाग, नागरिकीकरण (naturalisation), विदेशों और अन्तर राज्य वाणिज्य, स्थल तथा जल सेना की व्यवस्था, युद्ध की घोषणा, आदि विषय सम्मिलित हैं।

केवल एक अपवाद को छोड़कर जो अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण नहीं है सिनेट का कानून बनाने का अधिकार प्रतिनिधि सभा के पूर्णतया समान है। इस अपवाद का सम्बन्ध राजस्वी विधेयकों (Revenue Bills) को प्रस्तुत करने से है। संविधान के अनुसार इनका आरम्भ प्रतिनिधि-सभा से होना चाहिये यद्यपि सिनेट अन्य विधेयकों के समान ही उनमें भी संशोधन प्रस्तुत कर सकती है और उन पर विचार विमर्श व वाद-विवाद करती है। व्यवहार में सिनेट के अधिकारों

पर लगाया गया यह संवैधानिक प्रतिबन्ध विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि सिनेट संशोधन की आड़ में वस्तुतः नये राजस्व विधेयक प्रस्तुत करने में सफल होती है। एक बार देखा गया कि प्रतिनिधि सभा में एक आयात निर्यात-कर-सम्बन्धी विधेयक प्रस्तुत किया गया और उसको स्वीकृति प्रदान कर सिनेट में भेजा गया परन्तु जब वह सिनेट से वापस लौटाया गया तो साथ ही उसमें ८४७ संशोधनों के प्रस्ताव भी संलग्न थे। इससे स्पष्ट है कि यह कर-प्रस्ताव चाहे मूल विधेयक के रूप में न सही परन्तु तथ्य रूप में तो सिनेट में ही प्रस्तुत किया गया।

दूसरी ओर सिनेट को व्यय-विनियोग विधेयक (Expenditure Bills) प्रस्तुत करने का पूर्ण अधिकार है यहाँ तक कि राष्ट्रीय-बजट की भी यात्रा इस सदन से प्रारम्भ हो सकती है। फिर भी व्यवहार और रीति के अनुसार वार्षिक बजट और सामान्य व्यय विनियोग विधेयक पहिले प्रतिनिधि सभा में ही प्रस्तुत किये जाते हैं। पर अन्य सभी विधान निर्माण एवं वित्त से सम्बन्धित क्षेत्रों में सिनेट के अधिकार प्रतिनिधि सभा के बराबर ही हैं। इधर कुछ समय से सिनेट राष्ट्रीय मामलों में अन्वेषण कर और फलस्वरूप विधेयकों के निमित्त सामग्री व आँकडे संग्रह कर अपने विधान निर्माण के कार्य का अधिकाधिक विकास कर रही है।

प्रशासन सम्बन्धी अधिकार

संविधान के निर्माताओं की यह योजना थी कि सिनेट ब्रिटिश प्रीवी-कौंसिल की ही रूपान्तर होगी जिसका प्रमुख कार्य प्रशासन सम्बन्धी कुछ कार्यों के लिये परामर्श देना तथा अपनी स्वीकृति प्रदान करना होगा। इसमें सन्देह नहीं कि वह सिनेट को संघीय शासन प्रणाली का मूल आधार समझते थे। उनका विचार था कि यह केवल एक द्वितीय सदन (Second Chamber) मात्र न रह कर या कांग्रेस का एक संयुक्त भवन न रहकर उससे भी कुछ और अधिक होगी। इसको कुछ कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य भी सौंपे गये थे और वास्तव में सिनेट के प्रति आकर्षण का एक कारण इसके तीन प्रशासन सम्बन्धी कार्य हैं। अतः प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा इसके अधिकार और परिणामस्वरूप अधिक सम्मान प्राप्त होने की लालसा से राजनीतिज्ञ सिनेट की सदस्यता प्राप्त करना अपने राजनीतिक जीवन का लक्ष्य समझते हैं।

राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत की गई नियुक्तियों की पुष्टि करने से सम्बन्धित सिनेट के अधिकारों की हम पिछले अध्याय में चर्चा कर चुके हैं। प्रशासनाधिकारी की नियुक्ति करने का अधिकार महत्वपूर्ण अधिकार है, यहाँ तक कि केवल राष्ट्रपति को ही यह अधिकार दे देना उचित नहीं समझा गया, क्योंकि वह इस अधिकार का प्रयोग

(१) नियुक्तियों की पुष्टि

नाने और अपना व्यक्तिगत हित सिद्ध करने के लिये कर
धान में यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति केवल नाम
नेट की स्वीकृति पर राजदूतों, अन्य राज्य प्रतिनिधियों,
तम न्यायालय के न्यायाधीशों और अमेरिका के उन सभी
नियुक्ति करेंगे जिनकी नियुक्ति के सम्बन्ध में अन्य व्यवस्था नहीं की गई है और जो नये पद कानून द्वारा स्थापित किये जायेंगे।

संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि नियुक्तियों के संबंध में अपने निषेधाधिकार का प्रयोग करने में सिनेट ने बहुत संयम से काम लिया है और विभागों के अध्यक्षों, राजदूतों, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों आदि की नियुक्ति में राष्ट्रपति को पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है। परन्तु इस अधिकार के बल पर और विशेषकर राष्ट्रपति से अपने सम्बन्धों की दिशा में सिनेट कितनी शक्तिशाली हो सकती है इसका प्रमाण इस बात से मिल सकता है कि उसने राष्ट्रपति आइजनहावर द्वारा की गई कुछ उच्च पदों से सम्बन्धित सिफारिशों को स्वीकार करने में काफी विलम्ब व आना कानी की, विशेषकर सिनेट की न्याय समिति के अध्यक्ष सिनेटर लैंगर की श्री वारेन की उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति की पुष्टि रोकने की हठ व चेष्टा उल्लेखनीय है।

सिनेट के प्रति शिष्टाचार (Senatorial courtesy)—उन संघीय पदाधिकारियों की नियुक्ति में जिनका कार्यक्षेत्र एक राज्य होता है 'सिनेट के प्रति शिष्टाचार' राष्ट्रपति के अधिकारों पर सबसे महत्वपूर्ण सीमा है। यह अमेरिकी संविधान की सबसे महान अलिखित परम्परा (convention) है जिसके फलस्वरूप प्रत्येक सिनेटर अपने राज्य में संघीय अधिकारियों के निर्वाचन व नियुक्ति में बहुत प्रभावशाली हो गया है। इसका अर्थ यह है कि यद्यपि सिनेट अधिकारियों को मनोनीत नहीं करती है परन्तु वह यह आशा करती है कि राष्ट्रपति किसी पदाधिकारी को मनोनीत करते समय इस बात का ध्यान रखेगा कि ऐसा व्यक्ति मनोनीत किया जाय जो जिस राज्य में नियुक्त किया जाने वाला हो उस राज्य के राष्ट्रपति की राजनीतिक पार्टी के सिनेटरों को स्वीकार हो, या पदाधिकारी जिस राज्य का नागरिक हो वहाँ के राष्ट्रपति की पार्टी के सिनेटर सन्तुष्ट हों। इसलिये राष्ट्रपति के लिये यह वांछित होगा कि वह उस विशेष राज्य के सिनेटरों से पदों के लिये सिनेट को नाम भेजते समय परामर्श कर ले और उनकी स्वीकृति पूर्व ही प्राप्त कर ले। यदि सिनेटरों के सुझावों की उपेक्षा की गई या राष्ट्रपति द्वारा भेजे हुये नामों में उनकी आपत्तियों को ध्यान में नहीं रखा गया तो संभव है कि सिनेट उस नियुक्ति की पुष्टि न करे। उदाहरणार्थ १९५१ में इलीनोय के सिनेटर पाल डगलस ने राष्ट्रपति ट्रूमन द्वारा मनोनीत अपने राज्य में संघीय न्यायाधीशों के

पद पर जोजेफ ड्रकर (Joseph Drucker) और सी० जे० हैरिंगट की नियुक्ति की सिनेट द्वारा पुष्टि रोकने के लिये 'सिनेट के प्रति शिष्टाचार' की शरण ली और न्याय समिति तथा सिनेट ने उसका पूर्ण समर्थन किया। १६५० के इसी प्रकार के दो अन्य मामलों का अनुसरण करते हुए सिनेटर डगलस ने यह परम्परागत तर्क प्रस्तुत किया कि जो व्यक्ति न्यायाधीश पद पर नियुक्त किये गए हैं वह "व्यक्तिगत रूप से मुझे पसन्द नहीं हैं"। इसके विपरीत सिनेटर ने यह स्वीकार किया कि वह योग्य व्यक्ति है परन्तु उसका कहना यह था कि "विलियम एच० किंग (जूनियर) और न्यायाधीश बेन्जामिन एफ० एप्सटेन जिनकी नियुक्ति मैं चाहता हूँ उनसे अधिक योग्य हैं"। इसके अतिरिक्त सिनेटर ने यह आपत्ति प्रकट की कि राष्ट्रपति ने उसकी सिफारिशों की उपेक्षा की है और उसके द्वारा प्रस्तावित व्यक्तियों को मनोनीत नहीं किया। वास्तव में यही उसकी आपत्ति का मुख्य व मूल्य कारण था। सिनेट के प्रति शिष्टाचार की लम्बी परम्परा की (जिसमें जब जब राष्ट्रपति ने अपनी पार्टी के सिनेटरों की उनके राज्य में की जाने वाली नियुक्तियों के सम्बन्ध में सिफारिशों की उपेक्षा की तब तब उसे सिनेट द्वारा पराजित होना पड़ा है) यह हाल ही की घटना है। इस प्रथा का एक दुष्परिणाम यह हुआ है की सघीय पदों पर जो राज्यों में नियुक्तियाँ होती हैं उनमें उस राज्य के सिनेटर अपना व्यक्तिगत और राजनैतिक लाभ उठाने में सफल होते हैं। योग्यता की अपेक्षा संरक्षण भावना नियुक्तियों की आधार बन जाती है। अतः यह अवाञ्छनीय है।

सिनेट द्वारा पुष्टि की विधि

पद-रिक्त होने पर या नयी नियुक्तियों के लिये राष्ट्रपति पदाधिकारियों के नाम मनोनीत कर पुष्टि (confirmation) के लिये सिनेट में भेज देता है। राष्ट्रपति के प्रस्ताव तत्काल विचारार्थ विशिष्ट समिति (appropriate committee) को भेज दिये जाते हैं। उसकी रिपोर्ट पर ही सिनेट मतदान कर स्वीकृति या अस्वीकृति प्रकट करती है। मतदान हो जाने के उपरान्त परिणाम की सूचना राष्ट्रपति को दो दिन पश्चात् भेजी जाती है।

(२) सन्धियों की पुष्टि

सिनेट को परराष्ट्र नीति से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हैं क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा विदेशों से की गई सन्धियाँ तब तक संयुक्त राज्य अमेरिका पर लागू नहीं हो सकतीं जब तक कि सिनेट दो तिहाई बहुमत से उनको स्वीकार न कर ले। यदि चाहे तो सिनेट सन्धियों की कुछ बातों पर भी आपत्ति प्रकट कर सकती है और ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति सन्धि वार्ता पुनः आरम्भ कर दूसरे पक्ष से उन संशोधनों को स्वीकार कराने के लिये प्रयत्न कर सकता है। परन्तु यदि सिनेट किसी सन्धि को स्वीकार ही नहीं

करती है तब उसका निर्णय अंतिम होता है और राष्ट्रपति का सब परिश्रम व्यर्थ सिद्ध होता है। इसलिये राष्ट्रपति के लिये यह उपयुक्त होता है कि वह प्रमुख सिनेटरों को सन्धि-वार्ता की आरम्भिक स्थिति में ही अपने विचारों से परिचित कर दे और उनकी सहमति प्राप्त कर ले अन्यथा इसकी संभावना अधिक रहती है कि सन्धि निरर्थक सिद्ध हो।

जब से सिनेट ने वर्साइल की सन्धि को अस्वीकार किया है तब से सिनेट के किसी और अधिकार की इतनी कटु आलोचना नहीं हुई है और न किसी के विरुद्ध इतना असन्तोष प्रकट किया गया है जितना कि सन्धियों की पुष्टि करने के अधिकार का। आलोचकों ने सन्धि-करने के अधिकार और विधि पर बड़ी गम्भीरतापूर्वक सोच विचार व वाद विवाद किया है जिससे भविष्य में इस प्रकार की दुर्घटनाओं को रोका जा सके। इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्रपति और परराष्ट्र मन्त्रियों के अनुरोध की उपेक्षा कर और विदेशी राष्ट्रों के क्रोध एवम् असन्तोष की ओर ध्यान दिये बिना सिनेट द्वारा सन्धियों को समाप्त करने और उनके रूप को बिगाड़े जाने का एक लम्बा इतिहास है। जॉन हे (John Hay) ने अपने कटु अनुभवों के कारण यह असन्तोष प्रकट किया कि सन्धियों को सिनेट में भेजना ठीक वैसा ही है जैसे साँड को अखाड़े (arena) में भेजना। यह बता सकना सम्भव नहीं कि वह कब और कैसे मारा जायगा परन्तु इतना निश्चित है कि वह मारा अवश्य जायगा क्योंकि सिनेट का ३४ प्रतिशत भाग सदैव प्रत्येक प्रश्न पर आपत्ति करने को तैयार रहता है। यह अत्युक्ति है परन्तु एक ऐसे देश में जो वंश समूहों (racial groups) से भरा हुआ है और जहाँ राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय भावना को निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है वहाँ सिनेट दम्भियों (demagogues) और विक्षिप्तों (cranks) के लिए एक ध्वनि मेलक (sounding board) बन जाता है। उत्तरदायित्व विहीन सिनेटर विदेशी राष्ट्रों को अपने देश का शत्रु बना सकते हैं, विश्व को भारी क्षति पहुँचा सकते हैं, अमेरिकी हितों पर भी कठोर आघात कर सकते हैं और यह सब वह भावुक-देशभक्ति की आड़ में करते हैं। वास्तव में उनका उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से राजनैतिक लाभ उठाना होता है। इस प्रकार विदेशी राजनीति को स्थानीय राजनीति में घसीटा जाता है और वह इन जटिल स्थानीय हितों द्वारा निर्धारित होती है।

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त इस बात पर विचार विमर्श किया गया कि सन्धियों के सम्बन्ध में सिनेट के अधिकारों को कम कर दिया जाय और संविधान में संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की जाये कि सन्धियों के लिये भी अन्य कानूनों की भाँति काँग्रेस के दोनों सदनों के साधारण बहुमत द्वारा स्वीकृति आवश्यक होगी। कभी-कभी यह भी सुझाव दिया जाता है कि इस क्षेत्र में राष्ट्रपति की

नीति की सुरक्षा के लिये एक विशेष "परराष्ट्र नीति मन्त्रिमण्डल" (foreign policy cabinet) का सगठन किया जाये जो उसे यह आश्वासन दे सके कि राष्ट्रपति उसके परामर्श एवम् सहायता से जो निर्णय करेगा वह सिनेट द्वारा सरलता से स्वीकृत कर लिया जायगा।

प्रोफेसर लास्की के मतानुसार सिनेट के सधियाँ करने के अधिकार की जो आलोचना की गई है वह भ्रमपूर्ण है। यह निश्चित है कि सिनेट ने कभी अपनी हठवादिता के कारण जनमत का गलत अनुमान नहीं लगाया, न ही उसने अपने कार्यों या नीतियों से कभी जनमत की अवहेलना की। राजनीतिक दृष्टि से सिनेट के निषेधाधिकार को न्याय सगत समझा गया है, राष्ट्रपति के द्वारा किसी सार्वजनिक प्रश्न पर निर्णय लेने में सिनेट केवल तब ही तक बाधक रही जब तक उस पर जनमत निश्चित रूप से स्पष्ट न हो गया और बहुधा देखा गया कि सिनेट का दृष्टिकोण जनता के अनुकूल था। उदाहरण के लिये वर्साइल की सधि को अस्वीकार कर देना वास्तव में विश्व के लिये एक दुखान्त घटना थी परन्तु युद्धोपरान्त अमेरिकी निर्वाचन इतिहास इस बात को स्पष्ट कर देता है कि अमेरिकी जनता का भी यही निर्णय था।

इसके अतिरिक्त एक कुशल व सुयोग्य राष्ट्रपति को किसी सधि को सिनेट में भेजने के पूर्व अनेकों अवसर ऐसे मिलते हैं जिनका प्रयोग वह महत्वपूर्ण सिनेटरों से विचार विमर्श कर उनको प्रभावित करने एवम् उनका समर्थन प्राप्त करने के लिये कर सकता है। राष्ट्रपति अपने उद्देश्य की पूर्ति अपने [illegible] के अन्दर प्रशासकीय समझौतों से भी कर सकता है। ऐसा [illegible] कि कुछ विषय इतने अधिक महत्वपूर्ण नहीं होते कि [illegible] की जाये, अत उनके लिए प्रशासकीय समझौतों को ही [illegible] है। १९४० में ब्रिटेन से केरिबियन में फौजी अड्डों के [illegible] का विनिमय इस प्रकार के समझौते का एक अच्छा [illegible] है। [illegible] के मतानुसार "कार्यकारिणी के निर्णयों [illegible] जाने के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा [illegible] सिनेट एक रूप में अमेरिकी जनता [illegible] ब्रिटेन में यह सम्भव नहीं है यद्यपि [illegible] दो-तिहाई मत की व्यवस्था [illegible] अधिक सुरक्षा है परन्तु यह [illegible] सावधान रहे कि परराष्ट्र [illegible] का एकमात्र अधिकार [illegible] सिद्धान्त है जिस पर [illegible]।

सिनेट स्वयं अकेले ही या प्रतिनिधि सभा के साथ संयुक्त रूप से राष्ट्रपति से किसी भी अन्य राष्ट्र के साथ किसी विषय पर संधि वार्ता करने का अनुरोध कर सकती है, परन्तु राष्ट्रपति इस अनुरोध को स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। सन्धियाँ करने के सम्बन्ध में निर्णय करने का एकमात्र अधिकार राष्ट्रपति को ही प्राप्त है। संधि-वार्ता आरंभ करने के अधिकार को राष्ट्रपति इस प्रकार प्रयुक्त कर सकता है कि सारे देश को ऐसी स्थिति में फंसा दे या कार्यवाई के लिये उसे प्रतिज्ञा बद्ध करा दे कि देश के अपमान के भय से सिनेट के पास इसके सिवा कोई चारा ही न रहे कि राष्ट्रपति द्वारा उतावलेपन में दिये गये वचनों का समर्थन तथा उनकी संपुष्टि करे।

न्याय सम्बन्धी अधिकार

सिनेट को न्याय सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त हैं। इस सम्बन्ध में इसका कार्य है प्रतिनिधि सभा द्वारा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और अमेरिका के किसी भी सार्वजनिक पदाधिकारी पर लगाये गये देशद्रोह, घूसखोरी या अन्य किसी भारी अपराध या दुराचार के महाभियोगों का निर्णय करना। ऐसा करते समय सिनेट एक न्यायालय का रूप धारण कर लेती है। महाभियोगारोपण की यह कार्यवाई प्रतिनिधि सभा में आरम्भ होती है। प्रतिनिधि सभा में किसी अधिकारी के विरुद्ध महाभियोग लगाये जाने पर एक अन्वेषण समिति नियुक्त कर दी जाती है। यह समिति अपनी रिपोर्ट सदन में प्रस्तुत करती है और यदि समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् बहुमत पक्ष में मतदान करता है तो इन अभियोगों को सिनेट में भेज दिया जाता है। सिनेट का कर्तव्य है कि मामले की सुनवाई करे। महाभियोगारोपण के मामले की सुनवाई के समय सिनेट न्यायालय का रूप धारण कर लेती है और इन अवसरों पर भी उसकी अध्यक्षता उपराष्ट्रपति करता है परन्तु यदि महाभियोग राष्ट्रपति पर लगाये हों तो अध्यक्षता उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश करते हैं। अपराध सिद्धि के लिये दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है, और इस सिद्धि द्वारा दण्डित व्यक्ति को कोई क्षमा प्रदान नहीं कर सकती।

सिनेट का यह कार्य अन्य कार्यों की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि महाभियोग का प्रयोग अत्युत्कृष्ट (rarely) ही किया जाता है। लार्ड ब्राइस ने कहा है कि महाभियोग कांग्रेस के शस्त्रागार का सबसे भारी शस्त्र है और यह चूँकि इतना अधिक भारी है इसलिए सामान्य स्थिति में इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। 'यह १०० टन की तोप के समान है जिसको स्थिति में लाने के लिये बड़ी जटिल मशीनों की सहायता लेनी पड़ती है और गोला दागने के लिये काफी बारूद का प्रयोग करना पड़ता है। इसके साथ ही निशाना बनाने

के हेतु इसके लिये लक्ष्य बेध्य भी काफी बड़ा होना चाहिये'। देश के सारे इतिहास में केवल १२ संघीय अधिकारियों पर महाभियोगारोपण किया गया जिनमें अधिकतर न्यायाधीश थे। इनमें से केवल चार को दण्डित कर पदच्युत किया गया। यह चारों दण्डित अधिकारी न्याय विभाग से सम्बन्धित थे, तीन जिला न्यायाधीश थे और एक जिनपर १९१३ में मुकदमा चलाया गया था एक विशेष वाणिज्य न्यायालय (जो अब नहीं रहा है) के न्यायाधीश थे।

अन्वेषण कार्य (Investigation functions)

सिनेट केवल वाद विवाद ही नहीं करती है बरन् बड़े मामलों में अन्वेषण भी करती है। लास्की का मत है कि ऐसी परिस्थितियों में जहाँ शक्ति के पृथक्करण या अधिकार विभाजन का सिद्धान्त लागू है वहाँ सिनेट का यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि बेइमानी और अकुशल शासन को रोकने के लिये यह सबसे प्रभावशाली साधन है। ब्रिटेन की प्रथा के प्रतिकूल अमेरिका में मन्त्रीगणों का न सामुहिक उत्तरदायित्व होता है और न कांग्रेस से इनको सम्पर्क ही रहता है। इसलिये अध्यक्षात्मक (राष्ट्रपति) प्रणाली के अन्तर्गत, जहाँ विधान निर्माण और प्रशासन के अधिकारों में विभाजन होता है, जाँच करने का अधिकार ही प्रशासन की योग्यता का सही अनुमान लगा सकने का एकमात्र प्रभावशाली साधन है। इस साधन की सफलता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इसके प्रयोग के फलस्वरूप १९२४ में तीन मन्त्रियों को पद त्याग करना पड़ा और अन्त में उनको जेल जाना पड़ा और दो ने आत्म हत्या कर ली। वास्त में यदि इस बात पर ध्यान दिया जाय कि सिनेट की समिति ने किस प्रकार सूक्ष्म रीति से हैरी डायरी के चरित्र व आचरण, टीपाट डोम स्कैंडल और १९२९ की घोर मन्दी के पूर्व वाल-स्ट्रीट के तरीकों की जाँच की तो यह सिद्ध हो जाता है कि अन्वेषण कार्य सिनेट का अत्यत महत्वपूर्ण कार्य है।

कांग्रेस जाँच-समितियों की समय-समय पर स्थापना केवल प्रशासन के कार्य सञ्चालन की जाँच करने के लिये ही नहीं की गई बल्कि १७८९ से १९४९ के बीच निर्मित लगभग ५०० समितियों से बहुतों को लौबीइंग (lobbying) की जाँच करने, निर्वाचन में व्यय, देशान्तर-वास (immigration), औद्योगिक सम्बन्ध, स्टाक एक्सचेंज का कार्य, छोटे व्यापारियों के हित, युद्धोत्तर काल की आर्थिक नीति और नियोजन तथा ऐसी बीसों समस्याओं की जाँच करने का कार्य सौंपा गया। कुछ दिन हुये सिनेट ने सिनेटर मैकार्थी के अधीन सरकार में से 'विध्वंसक तत्वों' (subversives) का उन्मूलन करने के लिये एक जाँच समिति नियुक्त की थी। सरकार के अतिरिक्त इस समिति को विश्वविद्यालयों, प्रतिरक्षा-

संस्थाओं और देश में अन्य सभी संस्थाओं में से साम्यवादियों को निकालने का कार्य सौंपा गया। इस समिति ने जिस प्रकार कार्य किया है उससे यह बहुत बदनाम हो चुकी है। अनेक प्रमुख वैज्ञानिकों और विद्वानों को उनके विरुद्ध आरोपित 'अमेरिका-विरोधी' कार्यों (Un-American activities) के लिये इस समिति का शिकार बनना पड़ा है।

आरम्भ में अधिकांश समितियाँ चाहे वह किसी भी कार्य के लिये नियुक्त की गई हों प्रतिनिधि सभा की समितियाँ होती थीं परन्तु बाद में क्रमशः सिनेट की समितियों की संख्या बढ़ती गई। कुछ संयुक्त-समितियाँ भी रही हैं और कुछ समितियों में, जैसे १९१२ के औद्योगिक सम्बन्ध आयोग में, केवल कांग्रेस के दोनों सदनों के प्रतिनिधि ही शामिल नहीं थे बल्कि प्रशासन विभाग एवं जनता के प्रतिनिधि भी थे। इन समितियों द्वारा की गई जाँच की एक अन्य उपयोगिता भी है। जहाँ कहीं जाँच-कार्य में किसी महत्वपूर्ण बात या स्थिति का प्रश्न आता है उससे केवल जनता की अभिरुचि ही जाग्रत नहीं होती बल्कि इससे वांछित कानून बनाने का मार्ग भी सरल हो जाता है। "इस प्रणाली में ब्रिटेन के राजकीय आयोग (Royal Commission) और लोक सभा में प्रश्नोत्तर काल की बहुत कुछ विशेषतायें निहित हैं। यह राजकीय आयोग से इस अर्थ में अधिक उच्चकोटि की है कि मंत्री इसमें ब्रिटेन की भाँति अपनी इच्छानुसार व्यक्तियों को भरने में असमर्थ होता है और इस अर्थ में यह लोक-सभा के प्रश्नोत्तरकाल की स्थिति के बराबर आ जाती है कि सलाहकार के रूप में विशेषज्ञों का प्रयोग कर यह जो सूचना प्राप्त करती है वह समस्या के मूल तक पहुँचने में काफी सहायक सिद्ध हो सकती है" (लास्की)।

संविधान तथा निर्वाचन संबंधी कार्य

संविधान में संशोधन करने के लिये भी सिनेट की स्वीकृति आवश्यक होती है। यद्यपि संविधान में संशोधन करने का एकमात्र अधिकार इसे प्राप्त नहीं है, यह अधिकार सिनेट के साथ साथ प्रतिनिधि सभा और राज्यों के विधान मण्डलों या राज्य-सम्मेलनों में विभक्त है। कांग्रेस किसी भी स्थिति में स्वयं अपने ही संविधान में संशोधन नहीं कर सकती परन्तु बिना कांग्रेस कार्यवाई के भी संविधान में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। और इस क्षेत्र में सिनेट और प्रतिनिधि सभा दोनों को समान अधिकार प्राप्त हैं।

चुनाव संबंधी कार्य—राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव के सम्बन्ध में यह लिखा जा चुका है कि कांग्रेस ही राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित मतपत्रों की गणना करती है और चुनाव-फल घोषित करती है, और

यदि किसी भी उम्मेदवार को मतदाताओं का आवश्यक बहुमत प्राप्त न हो सका हो तो प्रतिनिधि सभा राष्ट्रपति का और सिनेट उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करते हैं।

अमेरिकी शासन प्रणाली में सिनेट का स्थान

सिनेट के सम्बन्ध में प्रोफेसर लास्की ने कहा है कि यह विश्व में सर्वाधिक सफल द्वितीय सदन है। ग्लैडस्टन का मत था कि आधुनिक राजनीति में जितने भी आविष्कार हुये हैं सिनेट उनमें सबसे अद्भुत है। सर हेनरी मेन का भी यह कथन था कि "जब से आधुनिक लोकतन्त्र का ज्वार चढ़ा है तब से जितनी भी संस्थाओं का निर्माण किया गया उनमें यही केवल एकमात्र पूर्णतया सफल संस्था रही है"। अमेरिका पर लिखने वाले यूरोपीय लेखकों में सिनेट को एक आदर्श के रूप में चित्रित करने की प्रवृति रही है। जैसे रोमन यह कहते हुये कभी थकते नहीं थे कि पीरूस के राजदूत (Ambassador of Pyrrhus) ने रोमन-सिनेट को राजाओं की सभा कहा था वैसे ही अधिकतर अमेरिकी भी अपनी सीनेट को राजनीतिज्ञों और सन्तों का ओलम्पियन निवास स्थान (Olympian dwelling place of statesmen and sages) मानते हैं। इन अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसाओं को भी यदि कुछ समय के लिये विस्मरण कर दिया जाय तब भी यह बात माननी ही पड़ेगी कि संयुक्त राज्य अमेरिका का द्वितीय सदन (सिनेट) दुनिया के द्वितीय सदनों में सर्वाधिक शक्ति-शाली है। अन्य सभी शासन प्रणालियों में द्वितीय सदन के अधिकार घटते गये हैं, उनका ह्रास होता गया है परन्तु सिनेट के प्रभाव तथा अधिकारों में निरन्तर वृद्धि होती गई है। और जैसा कि लिन्डसे रोजर ने लिखा है, सिनेट ही संसार में ऐसा द्वितीय सदन है जिसने अपने अधिकारों को सुरक्षित ही नहीं रखा है बल्कि प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा उनको बढ़ाया भी है।

प्रोफेसर लास्की के मतानुसार सिनेट अमेरिकी राजनीतिक प्रणाली की असाधारण सफलताओं में से एक है। विधान-निर्माता के रूप में यह कांग्रेस के निचले सदन से कम सक्रिय और शक्ति शाली नहीं है। वास्तव में संघीय शासन व्यवस्था में कानून-निर्माण के क्षेत्र में सिनेट का ही अधिक महत्व है और इसी की ओर अमेरिका जनता का ध्यान अधिक केन्द्रित रहता है। जहाँ तक इसके प्रशासन अधिकारों का सम्बन्ध है विश्व में यह अद्वितीय है। किसी भी यूरोपीय राज्य में या किसी भी ब्रिटिश उपनिवेश में एक निर्वाचित सदन को प्रशासन में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का अधिकार प्राप्त नहीं है जैसे कि अमेरिकी सिनेट को है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह संविधान निर्माताओं के इस मुख्य उद्देश्य को कार्यान्वित करने में सफल रही है कि सरकार में एक गुरुत्वाक

दण्ड केन्द्र (centre of gravity) का निर्माण किया जाय अर्थात् एक ऐसी अधिकार सम्पन्न संस्था को जन्म दिया जाय जो एक ओर तो राष्ट्रपति से निरंकुश शासक बनने की महत्वाकांक्षा पर रोक रखे और दूसरी ओर प्रतिनिधि सभा के लोकतन्त्री अनाचारों पर नियन्त्रण रखे। दोनों के मध्य में स्थित होने के कारण सिनेट सदैव दोनों की प्रतिद्वन्द्वी और बहुधा विरोधी होती है। प्रतिनिधि सभा बिना सिनेट की स्वीकृति के कुछ नहीं कर सकती और विरोध कर यह राष्ट्रपति के मार्ग में भी बाधक बन सकती है।

सिनेट अपने को प्रभावशाली और शक्तिशाली बनाने में सफल रही है। राजनीति की ओर राष्ट्र की जितनी भी योग्य प्रतिभायें आकर्षित हुई हैं उनको यह अपनी ओर आकर्षित करने में सफल रही है और इस प्रकार हाऊस पर बौद्धिक प्रभुत्व स्थापित कर सकी है और एक ऐसा मंच प्रस्तुत कर सकी है जहाँ से योग्य व्यक्ति अधिकार-स्वर में अपने साथी नागरिकों से अपनी बात कह सकें। ब्रोगन के मतानुसार राष्ट्रपति को छोड़ कर सिनेट अमेरिका में सर्वाधिक प्रभावशाली मंच है।

सिनेट की इस स्थिति के अनेक कारण हैं और निस्सन्देह यह कारण इसके संगठन और इसके अधिकारों तथा कार्यों में निहित हैं। परन्तु सब से महत्वपूर्ण बात यह है कि एक प्रकार से सिनेट अमेरिकी राजनीति दर्शन की विशेषताओं का सच्चा प्रतिबिम्ब है। वास्तव में यह अमेरिकी राजनीतिक गतिविधियों की निरन्तर सूचक है।

सिनेट की शक्ति तथा सफलता के कारण

(१) सर्वप्रथम यह बात ध्यान देने योग्य है कि सिनेट का संगठन सर्वाधिक चुनाव द्वारा होता है और फल स्वरूप यह जनता के प्रति उत्तरदायी है। इसमें वह दुर्बलताएँ और दोष नहीं हैं जो ब्रिटेन की लार्ड सभा अथवा भारत की राज्य सभा में पाये जाते हैं। यह उतनी ही लोकतन्त्री है जितनी कि प्रतिनिधि सभा और इसीलिये यह समान अधिकार और समान शक्ति से राष्ट्र से अपील कर सकती है। इसके अतिरिक्त चूँकि सिनेटर का निर्वाचन सारा राज्य करता है इसलिये इसका अर्थ केवल यही नहीं होता कि उसके कार्य में अधिक लोगों की अभिरुचि है बल्कि यह भी है कि वह प्रतिनिधि सभा के सदस्य की अपेक्षा अधिक व्यापक दृष्टिकोण से विचार करने की क्षमता रखता है।

(२) दूसरा कारण इसके छोटे आकार में निहित है। इसमें कुल ९८ सदस्य हैं जिससे यह बात निश्चित है कि सिनेट में विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व भी है और साथ ही पारस्परिक मित्रता एवम् घनिष्ठता का वही वातावरण है जो ब्रिटिश लोक सभा की प्रथम दो बेञ्चों पर बैठे हुये सदस्यों के बीच पाया जाता है।

छोटी संस्था होने के नाते यह बड़ी संस्थाओं की अपेक्षा अपने सदस्यों को अधिक अच्छी तरह शिक्षित कर सकती है क्योंकि (क) प्रत्येक सदस्य को अधिक काम करना पड़ता है, (ख) वह केवल अपनी ही समिति के कार्य में नहीं बल्कि सारी संस्था के कार्य में दक्ष हो जाता है, (ग) सामुहिक कार्रवाई में अपने कार्य के महत्व का अनुभव करता है, और (घ) अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने की स्थिति में कम होता है। इसके अतिरिक्त उन लोगों के साथ मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने की इच्छा से, जिनको चाहे वह कितना ही ना-पसन्द करता हो परन्तु जिनसे निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है, पार्टी की भावना कम हो जाती है, और साथ ही संस्था के अधिकारों की रक्षा के समान हित की भावना से भी पार्टी भावना का ह्रास होता है।

इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि सिनेटर का अपने साथियों से शीघ्र परिचय हो जाता है और वह एक दूसरे को जानने समझने लग जाते हैं, वह अपने साथियों की राय को विशेष महत्व देते हैं और जनता के सामने चाहे वह कितना ही बनने का प्रयत्न करें परन्तु अपने साथियों के समक्ष वास्तविकता को छिपाने या बढ़ाने चढ़ाने की उनकी प्रवृति कुण्ठित हो जाती है।

(३) प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा सिनेट के स्थायित्व और सदस्यता की लम्बी अवधि का भी अच्छा परिणाम निकला है। प्रत्येक दो वर्ष उपरान्त इसके केवल एक-तिहाई सदस्यों की अवधि समाप्त होती है (यद्यपि वह पुनः चुनाव लड़ सकते हैं) और वह अलग हो जाते हैं परन्तु इसी क्रम से रिक्त स्थानों की पूर्ति होती रहती है और सिनेट का जीवन क्रम अटूट बना रहता है। यह कभी भंग नहीं होती और इस प्रकार प्रत्येक सिनेटर का कार्य काल ६ वर्ष होता है जबकि प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की अवधि दो वर्ष और स्वयं राष्ट्रपति की अवधि ४ वर्ष होती है। सदस्यता की इतनी लम्बी अवधि होने से सिनेटर प्रतिनिधि सभा के सदस्य की अपेक्षा भिन्न स्थिति में हो जाता है। प्रतिनिधि सभा के सदस्य के विपरीत एक सिनेटर को एक ही अवधि (term) में अनुभव प्राप्त करने, अपना कार्य और अपने कर्तव्यों को अच्छी तरह समझने बूझने और निस्सन्देह कुछ अंश में नेतृत्व प्राप्त कर लेने का पर्याप्त समय तथा अवसर मिल जाता है। पुनर्निर्वाचन की चिन्ता से मुक्त होकर वह अपने को कई वर्ष तक जन सेवा में लगा सकता है। वह अपने निर्वाचकों से भी थोड़ा स्वतन्त्र रह सकता है जो अमेरिका में निस्सन्देह बहुत बड़ी बात है। इस प्रकार स्थायित्व के कारण सिनेट पर निरन्तर परिवर्तनशील जनमत का प्रभाव कम पड़ता है और इसके सदस्यों में प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के विपरीत अपने निर्वाचकों की स्वार्थ पूर्ति के हेतु झुकने की प्रवृति नहीं पाई जाती।

अधिकतर सिनेटर एक से अधिक बार चुने जाने के कारण ६ से १८ वर्ष

तक पदासीन रहते हैं, यहाँ तक कि २४ वर्ष तक पदासीन रहना भी अमेरिकी सिनेटरों के लिये असाधारण बात नहीं है। १६४४ में सिनेटर ई० डी० स्मिथ (साउथ कैरोलिना) पुन: मनोनीत न हो सकने के कारण सिनेट में ३६ वर्ष सदस्य रहने के पश्चात पद निवृत हुए। ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। इसीलिये लम्बी कार्यावधि के कारण सदस्यों के अधिक समय तक बने रहने से, अनेक पुनर्निर्वाचनों और सिनेट के स्थायी होने से सिनेट प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा ही नहीं बल्कि राष्ट्रपति की अपेक्षा भी अधिक प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण बन जाती है। प्रतिनिधि सभा प्रति दो वर्ष उपरान्त एक नयी संस्था बन जाती है, नव निर्वाचन से उसकी सदस्यता में बहुत परिवर्तन हो जाता है और पुन नीचे से ऊपर तक अपने को संगठित करना पड़ता है। इसके विपरीत किसी भी समय जाँच करने पर यह ज्ञात होगा कि सिनेट के दो तिहाई से अधिक सदस्य ऐसे हैं जो प्रतिनिधियों की अपेक्षा कम से कम दो वर्ष तक सिनेटर के रूप में सेवा कर चुके हैं, नेतृत्व का विकास धीरे-धीरे होता है और साधारणतया इसमें परिवर्तन भी धीरे धीरे होता है, और इसकी अनवरत प्रवाहित धारा अतीत की घटनाओं के प्रभाव और परम्पराओं को अपने साथ लिये रहती है (ऑग और रे)। यह निश्चित रूप से लाभदायक है। और इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि सिनेटर अपने को देश के ज्येष्ठ कानून निर्माता समझते हैं और प्रतिनिधियों को नूतनाभ्यासी (neophyles) समझते हैं। यहाँ तक कि राष्ट्रपति तक को, जैसा कि एक बार राष्ट्रपति विल्सन ने कहा था, यह अनुभवी सिनेटर नीची दृष्टि से देखते हैं।

इससे स्पष्ट है कि सिनेट एक सुसंहत (compact) संस्था है जो प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा अधिक सुसंगठित व सुव्यवस्थित है और जिसकी सदस्यता की अवधि भी लम्बी है, इसलिये सम्भवत यह निरन्तर परिवर्तनशील जनमत से भी कम प्रभावित होती है। राष्ट्रपति आते हैं और चले जाते हैं, प्रत्येक दो वर्ष बाद प्रतिनिधि सभा का पुराना रूप अतीत के गर्भ में विलीन हो जाता है परन्तु सिनेट का क्रम अटूट बना रहता है। राजनीतिक गुरुत्वाकर्षण (political gravitation) के नियमों का पालन करने वाली सिनेट जब कभी अवसर मिलता है नये अधिकार ग्रहण करने से नहीं चूकती चाहे वह अधिकार कितना ही क्षुद्र क्यों न हो।

(४) सिनेट को जो विशेष कार्यकारिणी-संबंधी अधिकार प्राप्त हैं उनसे औ आधुनिक काल में कार्यकारिणी के अधिकारों का जो असाधारण विकास हुआ और जिनके भोग में सिनेट का भी भाग रहता है उससे सिनेट एक अद्वितीय द्वितीय सदन बन गयी है। अन्य कोई द्वितीय सदन इसकी बराबरी नहीं कर सकता। और चूँकि सन्धि करने में राष्ट्रपति के साथ ही इसका भी हाथ होता है क्योंकि यदि राष्ट्रपति अपनी सन्धि को वैधानिक मान्यता प्रदान कराना चाहता है तो उसे

सिनेट के दो तिहाई बहुमत का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक होता है और राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली सभी मुख्य नियुक्तियों की, चाहे वह राजनीतिक हों, न्याय विभाग सम्बन्धी हों, राजदूतों से सम्बन्धित हो या प्रशासन सम्बन्धी हों, पुष्टि करने वाली संस्था सिनेट ही है, इससे यह ऐसा महत्व प्राप्त कर लेती है जिससे जनता की अभिरुची प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा इसमें अधिक बढ़ती जाती है।

(५) सिनेट के कार्य सचालन की विधि अत्यन्त सरल होने से यह राष्ट्र का मंच (forum) बन गयी है। वादविवाद की जो आश्चर्यजनक स्वतन्त्रता सिनेटरों को प्राप्त है उससे जनमत को प्रकट करने का पूरा अवसर मिल जाता है जब कि प्रतिनिधि सभा में ऐसा नहीं होता क्योंकि वहाँ जो वादविवाद होते हैं वह इसलिये प्रभावशाली नहीं होते क्योंकि प्रतिनिधि सभा की समिति उस विषय पर पहिले ही निर्णय कर चुकी होती है। इसमें सन्देह नहीं कि वाद विवाद के सम्बन्ध में यदि प्रतिनिधि सभा विश्व में सब से अधिक मर्यादित संस्था है तो सिनेट सबसे अधिक स्वतंत्र क्योंकि सिनेट की स्वतन्त्रता और उसकी हठवादिता पर किसी प्रकार का प्रभावशाली नियन्त्रण न होने में ही उसके प्रभाव व उसकी शक्ति का रहस्य निहित है। सिनेट के नियमों को संक्षिप्त में लुईस कैरल (Lewis Carol) के शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि "सिनेट में किसी भी प्रश्न पर वाद-विवाद किया जा सकता है और वास्तविक प्रश्न से कितनी ही दूरी से वाद-विवाद किया जा सकता है"। १९१७ से यह व्यवस्था की गई है कि दो तिहाई [illegible] चाहें तो समापन प्रस्ताव (closure motion) पास कर [illegible] सकते हैं। इस प्रकार अभिरोधक नीति (filibustering [illegible]) पर रोक लगा सकते हैं। परन्तु सिनेट इस बात से सदैव सचेत [illegible] है कि [illegible] को स्वीकार करने का उसके अधिकारों पर क्या [illegible] के समर्थन में चाहे कुछ भी तर्क क्यों न हों सिनेट [illegible] को स्वीकार नहीं कर सकती जिससे फलस्वरूप [illegible] निष्प्राण मशीन बन जाने का भय हो। [illegible] एक "टॉकिंग शाप" अवश्य कभी-कभी [illegible] महानता और विशेषता है। प्रतिनिधि [illegible] होता है जबकि सिनेट में मनोरंजक [illegible] बना देती है। इसमें साधारण [illegible] बड़े मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक [illegible] कारण अपने सदस्यों को पूर्ण [illegible] अपनी कार्रवाई उसी प्रकार [illegible] की विशेषता होती है [illegible]

है और यह सब वह इस प्रकार करती है जिससे वाद विवाद के स्तर ल प्रभाव नहीं पड़े और उसका स्तर उच्च कोटि का रहे।

(६) इनके अतिरिक्त सिनेट के असीम प्रभाव व प्रतिष्ठा का वास्तविक रहस्य उसकी उस आकर्षणशक्ति में निहित है जो राष्ट्र की योग्यतम तथा महत्वाकांक्षी प्रतिभाओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। एक सिनेटर को एक प्रतिनिधि की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त हैं, उसका सम्मान अधिक है और उसका कार्यकाल भी अधिक लम्बा है। इसके अतिरिक्त वह प्रतिनिध की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र है। इसलिये सिनेट में स्थान पाना संघ के प्रत्येक राजनीतिज्ञ की महत्वाकांक्षा होती है। और प्रतिनिधि सभा की सदस्यता को वह द्वितीय सदन तक पहुँचने की सीढ़ी मात्र समझता है। इसलिये इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि सिनेट की औसत क्षमता प्रतिनिधि सभा से कहीं अधिक होती है। इसी का परिणाम है कि सिनेट एक अत्यन्त सफल संस्था मानी गई है जिसमें किसी भी समय असाधारण योग्यता एवम् चरित्र के व्यक्तियों का मिलना प्राय निश्चित है। कदाचित ही कोई ऐसा राष्ट्रपति रहा हो जिसकी सिनेट के कम से कम कुछ सदस्य प्रभाव और अधिकार में बराबरी न कर सके हों। जब कि संयुक्त राज्य अमेरिका में कोई महत्वपूर्ण सार्वजनिक प्रश्न उठता है यह निश्चित है कि उसके हल करने में सिनेट की कार्यवाही का ही महत्वपूर्ण हाथ होगा। प्रोफेसर लास्की ने लिखा है कि यह सम्भव है कि सिनेट गलत कार्यवाई करे, उसकी कार्यवाई मूर्खतापूर्ण हो या वह अविश्वसनीय भूल कर दे, परन्तु इसको कुछ करना अवश्य होता है। वह क्या करती है इस पर सारे देश की दृष्टि रहती है। संघीय शासन प्रणाली में यही एक संस्था है जिसके सदस्य अपने को पूर्ण स्वतन्त्र अनुभव करते हैं।

(७) अन्त में यह बताना आवश्यक है कि सिनेट सदा से एक गतिशील संस्था रही है और इसने निरंतर अमेरिकी जीवन के प्राणभूत तत्वों को जिनमें वालस्ट्रीट प्रमुख है पूर्णतया प्रतिबिम्बित किया है और इस प्रकार यह जैसा कि इसके निर्माता चाहते थे संघीय शासन प्रणाली का मूलाधार बन गयी है। ब्रिटेन के द्वितीय सदन की तरह यह किसी एक वर्ग की संस्था नहीं है। इसका कभी भी 'राज्यों के संरक्षक' मात्र रूप नहीं रहा। १७वें संशोधन से पूर्व इसको 'धनवानों की प्रमोदगोष्ठी' (Richmen's club) कहा जा सकता था परन्तु अब जबकि इसका निर्वाचन जनता के द्वारा होता है ऐसा कहना अनुचित होगा। वास्तव में १७वें संशोधन से इसकी रूपरेखा ही बदल गई है। यहाँ तक कि प्रोफेसर लास्की भी यह स्वीकार करते हैं कि आज पूँजीपतियों का इसपर प्रभुत्व स्थापित कर सकना पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन हो गया है। इसीलिये सिनेट अपने गठन और वैधानिक आधार पर अमेरिकी समाज के प्राय सभी भागों का प्रतिनिधित्व करती

है। यद्यपि प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा इसकी पूँजीपतियों से अधिक सहानुभूति है परन्तु जनता पर निर्भर होने के कारण यह उनकी संरक्षक नहीं बन सकती।

कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि सिनेट एक ऐसी संस्था है जो अपनी दिशा में स्थिर तथापि उन्नतिशील रही है और 'अति' को रोक 'संयम' को लागू करता है। यूरोपीय राजनीति की भाषा में कोई नहीं कह सकता है कि इसने अभिजातवर्गीय सिद्धान्तों का या जन विरोधी, रूढ़िवादी या अनुदारवादी सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व किया है। ऐतिहासिक महत्व रखने वाली प्रत्येक पार्टी का अवसर आने पर इसमें महत्व रहा है। जनमत में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन का इस पर प्रभाव पड़ता है और प्रतिनिधि सभा की भाँति यह भी जनमत का विरोध करने का दुस्साहस नहीं कर सकती क्योंकि प्रतिनिधि सभा के समान ही इस पर भी पार्टियों का नियन्त्रण होता है जो कि जनमत की अवहेलना नहीं कर सकतीं और जिनको समय की गतिविधि के साथ चलना पड़ता है। परन्तु यह सच है कि जनमत में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव इस पर धीरे-धीरे आनुक्रमिक और मन्द गति से होता है क्योंकि इसकी संगठन प्रणाली ऐसी है कि प्रति दो वर्ष में इसके केवल एक तिहाई सदस्य ही बदलते हैं। परन्तु यह सभी मानते हैं कि सिनेट ने किसी भी सार्वजनिक समस्या पर राष्ट्र के आदेश या मनोभाव की अपेक्षा राष्ट्र के हित और निर्णय को अधिक उपयुक्त ढंग से व्यक्त किया है और इसी में इसकी शक्ति और इसका महत्व निहित है।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि सिनेट में कोई दोष नहीं है, निश्चय ही यह आलोचना से मुक्त नहीं। इस पर अनेकों आरोप लगाये गये हैं। यह कहा जाता है कि (१) सिनेट जितना समय नष्ट करती है उतना बहुत कम विधान सभायें करती हैं, (२) सिनेट में जो लाग-रोलिंग (जो एक पारस्परिक सहायता का भ्रष्ट व दूषित ढंग है) सम्भव हो जाता है वैसा कदाचित अन्यत्र नहीं हो सकता, (३) अधिकार होते हुए भी प्रशासन के सम्बन्ध में इसका कोई उत्तरदायित्व नहीं होता है (४) जब कभी नियुक्तियों का प्रश्न आता है तो सिनेट एक संगठित व संयुक्त रूप में कार्य करने का आदेश अपने सदस्यों को देती है जिसके कारण 'सिनेट के प्रति शिष्टाचार' जैसी प्रथा का जन्म हुआ जो कि वाञ्छित या न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता, (५) यह अनेक बार अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने को तैयार रही है और अपने विशेष अधिकारों के प्रति आवश्यकता से अधिक भावुक रहती है। इस के इतिहास में ऐसे अनेकों अवसर आये जबकि इसने संयुक्त राज्य अमेरिका के हित की अपेक्षा राष्ट्रपति की नीति का भग्न (wreck) करना ही अपना उद्देश्य व लक्ष्य समझा, (६) अपनी स्वतन्त्रता दिखाने के लिये यह कभी-कभी लापरवाही से

आलोचना

भी कार्य करने लगती है और बहुधा अपने सदस्यों को प्रसन्न करने के लिये यह देश के हित का भी ध्यान नहीं रखती।

परन्तु इन सब दोषों के होते हुये भी प्रोफेसर लास्की का यह दृढ़ मत है कि "सिनेट अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था की अद्भुत सफलताओं में से एक है। इसमें साधारण नागरिक में अपने प्रति अभिरुची पैदा करने की अद्भुत योग्यता है, साथ ही इसमें एक ऐसी महत्वकाँक्षा का लक्ष्य बनने का वशिष्ट गुण निहित है जिसका लोभ बहुत कम लोग संवरण कर सकते हैं। यदि सिनेट न हो तो एक आकाँक्षी राष्ट्रपति सरलता से निरंकुश बन सकता है। उसकी इस प्रवृत्ति के मार्ग में सिनेट ही सर्वाधिक प्रभावशाली बाधा है। इसमें कभी कभी संकीर्ण मनोवृत्ति के सदस्य प्रवेश पा जाते हैं परन्तु एक विधान निर्मात्री सभा के रूप में उस संकीर्णता पर जिससे प्रतिनिधि सभा का अंश अंश आच्छादित रहता है पूर्ण विजय प्राप्त कर लेती है। इसके कार्यों से असन्तुष्ट व क्रोधित होकर अधिकाँश राष्ट्रपति और उनके मन्त्रिमण्डल के साथी सिनेट के विरोधी हो जाते हैं परन्तु यह आश्चर्य-जनक है कि ऐसी स्थिति में अमेरिकी जनता बहुधा सिनेट का ही समर्थन करती है। इनके अतिरिक्त इसमें वाद विवाद का स्तर बड़ा श्रेष्ठ तथा उच्च रहता है और इसके अन्वेषण कार्य का प्रभाव ब्रिटिश लोक सभा की प्रवर समिति द्वारा किये गये जाँच कार्य से कम नहीं होता। यह अपने अल्पसंख्यकों का आदर करती है, स्वतन्त्रता का आदर करती है और प्रत्येक सदस्य को अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण अवसर देती है। अपने इस कार्य से यह अमेरिका में राजनीतिक जनतन्त्र को एक ऐसा वास्तविक रूप प्रदान करती है जो अन्य संस्थाओं के लिये असम्भव है"। इसके अतिरिक्त यह संघीय शासन में 'नियन्त्रण एवम् सन्तुलन' की आवश्यकता की पूर्ति करती है।

अध्याय ८ | # प्रतिनिधि सभा

प्रतिनिधि सभा (जिसे साधारणतया केवल 'हाउस' ही कहा जाता है) कांग्रेस का लोकप्रिय सदन है। नवम्बर १९५८ में हुये निर्वाचनों में इसमें ४३६ सदस्य निर्वाचित किये गये थे। यह लोकप्रिय केवल इसीलिये नहीं है कि इसका लोकतन्त्री आधार पर चुनाव होता है या जनता इसे चुनती है बल्कि इसका कारण यह है कि यह राज्यों की जनता का उनकी संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व करता है, इसका कार्य काल केवल दो वर्ष होने से इसके सदस्यों पर जनता की सम्मति की अधिक और तत्काल प्रतिक्रिया होती है और यह उसी के अनुरूप आचरण भी करते हैं और इस प्रकार यह राष्ट्रीय सरकार में जनमत को प्रतिबिम्ब करता है। आरम्भ में राष्ट्रीय सरकार की केवल यही एक ऐसी शाखा थी जो सीधे जनता से निर्देश प्राप्त करती थी परन्तु १९१३ में संविधान में १७ वाँ संशोधन स्वीकृत हो जाने के पश्चात् सिनेट भी सीधे जनता द्वारा ही चुनी जाने लगी, राज्य विधान मण्डलों द्वारा नहीं। और इस प्रकार तब से प्रतिनिधि सभा और सिनेट के संगठन के आधार में जो अन्तर था वह समाप्त हो गया। फिर भी प्रतिनिधि सभा ही कांग्रेस का ऐसा सदन है जो पूरे राष्ट्र और सारे अमेरिका की जनता का प्रतिनिधित्व करती है। पैटरसन का मत है कि प्रतिनिधि सभा वास्तव में राष्ट्र की एक लघु रूप है। यह अमेरिकी जीवन का एक ऐसा चित्र है जिसमें उसके उग्र, साधारण और विविधतापूर्ण तत्वों का दर्शन होता है चाहे यह तत्व सामाजिक हों, स्वभाव से सम्बन्धित हों, राजनीतिक हों या धार्मिक।

संगठन (Composition)

प्रतिनिधि सभा का अनेक राज्यों की जनता प्रति दो वर्ष पश्चात चुनाव करती है। फिलाडेल्फिया सम्मेलन में विभिन्न विरोधी विचारों में समझौता करने के लिये संविधान में यह व्यवस्था की गई कि (१) जनता का अर्थ उन सभी व्यक्तियों से है जो अपने राज्य के विधान मण्डल की लोकप्रिय सभा के लिये चुनाव लड़ने वाले सदस्यों को मतदान देने के अधिकारी हैं, (२) राज्य की जन संख्या का अनुमान लगाने में श्वेत जाति के लोगों को छोड़कर शेष को उनकी कुल संख्या का केवल $\frac{3}{5}$ माना जायगा अर्थात् नीग्रो-गुलामों की उनकी कुल संख्या का केवल ६०

प्रतिशत के बराबर ही माना जायगा, (३) सदन में किसी भी स्थिति में ३० हजार व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व के लिये एक से अधिक सदस्य नहीं होना चाहिये, और (४) प्रत्येक राज्य का चाहे उसकी जन संख्या कितनी ही कम क्यों न हो कम से कम एक प्रतिनिधि अवश्य होना चाहिये। इनमें से दूसरी व्यवस्था अब निरर्थक हो गयी है। क्योंकि १४ वें संशोधन से दास प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया है इसलिये अब संविधान की व्यवस्था केवल यह है कि प्रत्येक राज्य को अपनी जन संख्या के अनुपात में प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होगा जिसमें प्रत्येक राज्य की पूरी जनसंख्या की गणना की जायगी परन्तु इसमें वह इण्डियन शामिल नहीं हैं जिन पर किसी प्रकार का कर नहीं लगाया गया है। सुपरिन्टेन्डेन्ट बनाम कमिश्नर के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया कि सभी इण्डियनों पर संघीय कर लगाया जाना चाहिये, अतः १९४१ में जनसंख्या के आधार पर सीटों के पुनर्वितरण के समय सभी को सम्मिलित कर लिया गया।

संविधान में यह स्पष्ट निर्देश नहीं है कि प्रतिनिधि सभा में स्थानों (seats) का प्रत्येक १० वर्ष पश्चात की जन गणना के आधार पर राज्यों में पुनर्वितरण किया जायगा परन्तु उसका तात्पर्य यही था। ६५ से आरम्भ होकर सीटों का पुनर्वितरण १७९० की जनगणना के पश्चात प्रतिनिधियों की संख्या १०२ तक पहुँच गयी और आज यह संख्या ४३६ है। इस वृद्धि का आधार यह है कि संविधान की व्यवस्थानुसार प्रत्येक ३० हजार जन संख्या के पीछे सदन में एक प्रतिनिधि हो सकता है। देश की जन संख्या में तेजी से वृद्धि होने, नये राज्यों के प्रवेश पाने, तेजी से विकसित होने वाले राज्यों की बढ़ी हुई जन संख्या को प्रतिनिधित्व देने के लिये अन्य राज्यों का अपना कोटा कम कर दिये जाने के लिये अनइच्छुक होने और सदस्यों द्वारा स्वयं अपने को या अपने साथियों को सदस्यता से मुक्त करने के लिये कानूनी व्यवस्था करने की स्वाभाविक अनिच्छा इत्यादि के कारण इसके अतिरिक्त और कोई चारा ही न था कि सदस्यों की संख्या बढ़ाई जाये। सदन में सदस्यों की संख्या इतनी बढ़ती जा रही थी कि इस वृद्धि पर नियंत्रण रखने का उपाय खोजना आवश्यक था। इसका एक ही उपाय था कि कम जन संख्या वाले राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या घटा दी जाय जिससे सीटों का न्यायोचित ढंग से पुनर्वितरण हो सके और सदन का आकार भी ऐसा रहे जिसका सुविधा से संचालन किया जा सके। परन्तु जिन राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या घटाना अभीष्ट था उन्हें यह व्यवस्था मान्य न थी इसी अतः १९२० में गतिरोध पैदा हो गया जिसे १९२९ के कानून द्वारा ही दूर किया जा सका। इस कानून के अनुसार जिसमें १९४१ में संशोधन भी किया गया निम्न लिखित पुनर्वितरण व्यवस्था निर्धारित की गई

(१) सदन की सदस्य संख्या स्थायी रूप से ४३५ रहेगी,*

(२) प्रत्येक जन गणना के पश्चात वाणिज्य विभाग का जनगणना ब्यूरो राष्ट्रपति के लिये एक तालिका तैयार करेगा जिसमें प्रत्येक राज्य की जनसंख्या और उसके आधार पर प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या दिखाई जायगी,

(३) जनगणना के उपरान्त जैसे ही काँग्रेस का अगला अधिवेशन आरंभ होगा राष्ट्रपति उपरोक्त सूचना काँग्रेस को देगा, और

(४) यदि सूचना प्राप्त होने के पश्चात ६० दिन तक काँग्रेस कोई नया कानून बनाकर प्रतिनिधियों के पुनर्वितरण की कोई नयी व्यवस्था नहीं बनाती है तो जनगणना से पूर्व किये गये पुनर्वितरण में जो तरीका अपनाया गया था उसी के आधार पर सीटों का पुनर्वितरण कर दिया जायगा।

इस योजना के अन्तर्गत १९३० की जनगणना के अनुसार किये गये पुनर्वितरण में ११ राज्यों को १ से ९ सीटों तक का लाभ हुआ और २१ राज्यों को १ से ३ सीटों तक की हानि हुई। १९४१ की जनगणना के अनुसार जब फिर पुनर्वितरण हुआ तो आठ राज्यों को कुल १० सीटों का लाभ हुआ और १० अन्य राज्यों में से प्रत्येक को एक सीट की हानि हुई।

काँग्रेस के चुनाव में मतदान का अधिकार किसे होगा इसका संविधान के निर्माताओं ने स्पष्ट निश्चय नहीं किया। उन्होंने केवल यह निश्चय किया कि इस संबंध में प्रत्येक राज्य को अपने लिये स्वयं निर्णय करने का अधिकार होगा। चूँकि सरकार का निर्माण करने में मताधिकार एक मूल भूत तथ्य है इसलिये इस सम्बन्ध में इस प्रकार का अस्पष्ट निर्णय तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। मतदान की व्यवस्था एक ही चुनाव में विभिन्न स्थानों में विभिन्न प्रकार की नहीं होनी चाहिये। प्रत्येक राज्य को यह निश्चित करने का अधिकार दिया गया है कि काँग्रेस के चुनाव में कौन मतदान देने का अधिकारी है परन्तु यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि राज्य के विधान मण्डलों के लोक प्रिय भवन के चुनाव में जो लोग मतदान के योग्य तथा अधिकारी समझे जायें उनको प्रतिनिधि सभा के चुनाव के लिये भी मताधिकार योग्य समझा जाय। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि अमेरिका में राष्ट्रीय आधार पर कोई मताधिकार प्रणाली नहीं है। किसी भी

मतदाताओं की योग्यता

---

* १९५८ में अलास्का के संघ में प्रवेश हो जाने से यह संख्या ४३६ हो गई। १८ मार्च १९५९ को राष्ट्रपति ने एक विधेयक पर हस्ताक्षर कर हवाई को भी संयुक्त राज्य अमेरिका का ५० वां सदस्य बना दिया। इससे प्रतिनिधि सभा की सदस्यता में १ और सिनेट में २ सदस्यों की वृद्धि होगी।

राज्य में संघीय अधिकारी मतों को रजिस्टर नहीं करते, न मतदान केन्द्रों की व्यवस्था करते हैं और न मत पत्रों की छपाइ या गणना करते हैं। यह सब कार्य राज्य और स्थानीय अधिकारी ही सम्पन्न करते हैं। कांग्रेस के प्रतिनिधियों का चुनाव कराने की व्यवस्था राज्य सरकार करती है, वही उसका व्यय भार वहन करती है और उसका निरीक्षण भी करती है।

चुनाव का समय, स्थान और रीति निर्धारित करने का कार्य भी संविधान में राज्यों को ही सौंपा गया है। प्रत्येक राज्य अपनी इच्छा और सुविधानुसार इस बात को निश्चित कर सकता है। परन्तु इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय सरकार को ही सर्वोपरि स्थान दिया गया है क्योंकि केवल सिनेटरों के निर्वाचन स्थान सम्बन्धी नियमों को छोड़कर उसे किसी भी समय इस सम्बन्ध में कोई भी नियम बनाने या लागू नियमों में कोई भी संशोधन करने का अधिकार दिया गया है। लगभग आधी शताब्दी तक काँग्रेस ने इस क्षेत्र में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। कुछ राज्यों ने निर्वाचन क्षेत्रों (districts) की स्थापना की और यह व्यवस्था की कि प्रत्येक क्षेत्र के मतदाता एक एक प्रतिनिधि चुनेंगे। अन्य राज्यों ने राज्यव्यापी टिकट प्रणाली (General Ticket Plan) लागू की जिसके अनुसार राज्य के सब प्रतिनिधियों का चुनाव सपूर्ण मतदाताओं द्वारा होता है और प्रत्येक मतदाता को *उतने मत (votes) देने का अधिकार दिया गया जितने उस राज्य के प्रतिनिधि* होंगे। परन्तु १८४२ के सीटों के पुनर्वितरण कानून के अनुसार यह आवश्यक कर दिया गया कि जिस राज्य की जनसंख्या इतनी अधिक हो कि उसे एक से अधिक प्रतिनिधि प्राप्त हों उसको उस राज्य के विधानमण्डल द्वारा क्षेत्रों (districts) में विभक्त किया जाये। प्रत्येक क्षेत्र की भूमि सम्बद्ध (contiguous) हो और प्रत्येक क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाय। १६०१ और १६११ के सीटों के पुनर्वितरण कानून में क्षेत्र के सुसहत (compact) होने पर भी बल दिया गया। यह आश्चर्य की बात है कि १६२६ में स्वीकृत कानून में निर्वाचन क्षेत्र के सम्बन्ध में इनमें से कोई भी विशेषण प्रयुक्त नहीं किया गया और वुड बनाम ब्रूम के मामले में संघीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया कि चूँकि १६२६ के कानून में इन विशेषणों का प्रयोग नहीं हुआ है इसलिये इसका उपलक्षित अर्थ यह हुआ कि यह विशेषण रद्द कर दिये गये हैं। यहाँ तक कि १६४१ के कानून में भी इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पहिले जो आवश्यकताएँ निर्धारित की गई थीं वह अब लागू नहीं रहीं।

यद्यपि निर्वाचन क्षेत्र प्रणाली (Districts system) राज्यव्यापी टिकट प्रणाली की अपेक्षा अनेक बातों में अधिक उच्चकोटि की है परन्तु फिर भी इसमें बहुत सी कमियाँ हैं और इससे अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। पहली कठिनाई

यह है कि निर्वाचन क्षेत्रों को निष्पक्ष रूप से और न्याय संगत समान निर्धारित किया जाय। स्थानों के पुनर्वितरण के समय मण्डलों में जो पार्टी बहुमत में होती है वह प्रायः अधिक सीट प्राप्त करने के लोभ से राज्य को निर्वाचन क्षेत्रों में इस प्रकार विभक्त करती है कि विरोधी पार्टियों की अपेक्षा वह स्वयं अनुचित लाभ उठा सके। निर्वाचन क्षेत्र से एक नगर या काउंटी को निकाल कर और दूसरी को जोड़कर और निर्वाचन क्षेत्र का आकार जोड़ तोड़ कर बहुमत पार्टी अपने उम्मीदवार को चुनाव में विजयी करने की पूर्ण व्यवस्था व सम्भावना कर देती है। बहुधा इस प्रकार के विभाजन द्वारा यह प्रयत्न किया जाता है कि अपने दल के समर्थक इस प्रकार केन्द्रित व प्रसारित हों कि अधिक से अधिक क्षेत्रों में बहुमत प्राप्त हो सके और पार्टी के उम्मेदवार अधिक से अधिक संख्या में विजयी हो सकें। इसके विपरीत विरोधी मतदाताओं को कम से कम निर्वाचन क्षेत्रों में केन्द्रित करने का प्रयत्न किया जाता है ताकि उनकी कुल संख्या कम से कम उम्मेदवारों को सफल बनाने में ही प्रयोग में आ जाये और परिणामस्वरूप उनके कम से कम प्रतिनिधि निर्वाचन में सफल हो पायें। इस व्यवहार को गैरीमैंड्रिंग (Gerrymandering) कहते हैं। इसका सर्वप्रथम प्रयोग मैसाचुसेट राज्य के गवर्नर एल्ब्रिज गैरी ने १८१२ में अपने राज्य में निर्वाचन क्षेत्रों के निर्धारित करने में किया और उसी के नाम पर आज भी यह प्रथा गैरीमैन्ड्रिंग के नाम से प्रसिद्ध है। अमेरिकी राजनीति में गेरीमैन्डर एक दूषित तत्व है और जनमत धीरे-धीरे इसके विरुद्ध होता जा रहा है। आज यदि कोई पार्टी इस प्रकार की चेष्टा करती है तो उसका प्रभाव प्रतिकूल ही होता है, परन्तु फिर भी इसे प्राचीन अमेरिकी प्रथा मानकर अब भी कुछ लोग इसे सहर्ष स्वीकार करते हैं।

निर्वाचन क्षेत्र प्रणाली की त्रुटियाँ

निर्वाचन क्षेत्र प्रणाली में एक कठिनाई यह है कि किसी राज्य को पुनर्वितरण के परिणामस्वरूप अतिरिक्त सीट दिये जाने पर या उस राज्य के एक भाग की जनसंख्या दूसरे भाग में स्थानान्तरित हो जाने पर भी उस का विधान मण्डल निर्वाचन क्षेत्रों का पुनः विभाजन न करे तो उस से राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व में असन्तुलन उत्पन्न हो सकता है। उदाहरणार्थ १९१२ और १९१३ से तीन राज्यों ने अपने निर्वाचन क्षेत्रों का पुनः विभाजन नहीं किया, एक राज्य ने १९११ से, मेरीलैंड ने १९०२ से, अरकानास ने १९०१ से और हैम्पशायर ने १८८१ से अपने निर्वाचन क्षेत्रों का पुनःविभाजन नहीं किया। कांग्रेस की सीटों के पुनर्वितरण के इतिहास में इलिनोइस का अपना विशेष स्थान है। इस राज्य में १९०१ से सीटों का पुनर्वितरण नहीं किया गया था जबकि इसके क्षेत्रों की जनसंख्या में इतना अधिक अंतर हो गया था कि यदि एक क्षेत्र की जनसंख्या ११२,११६ थी

तो दूसरे क्षेत्र की ६१४,०५३ । इस दिशा में अनेक प्रयत्न किये गये परन्तु सब निष्फल रहे । यह स्थिति जून १९४७ तक रही जब कि निर्वाचन क्षेत्रों के पुन विभाजन का कानून पारित हुआ जिसके अन्तर्गत कुक काउन्टी (शिकागो और उसके समीपवर्ती भाग) को कांग्रेस की २६ सीटों में से १३ सीटें प्राप्त हुई और शेष राज्य को भी इतनी ही सीटें प्राप्त हुई ।

यदि सीटों की पुनर्वितरण व्यवस्था के परिणामस्वरूप किसी राज्य को अतिरिक्त सीटें प्राप्त होती हैं और वह उनके अनुसार अपने निर्वाचन क्षेत्रों का पुन विभाजन नहीं कर पाता है तो ऐसी सीटों के लिये राज्य भर की जनता चुनाव करती है । इस प्रकार मतदाता पहिले अपने निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधि को चुनते हैं और फिर समस्त राज्य के अतिरिक्त प्रतिनिधियों को जिनकी निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा व्यवस्था नहीं की गई है । यदि किसी राज्य की सीटें कम कर दी गई हैं तो इसके लिये यह अत्यावश्यक है कि तत्काल ही निर्वाचन क्षेत्रों का पुन विभाजन हो जाना चाहिये अन्यथा इसके अतिरिक्त कोई चारा न रहेगा कि राज्य के सभी प्रतिनिधि निर्वाचन क्षेत्रों से नहीं बल्कि पूरे राज्य के प्रतिनिधियों के रूप में चुने जायँ ।

राज्य भर के प्रतिनिधि

संविधान की व्यवस्था का लाभ उठाकर कांग्रेस ने अपने चुनाव के सम्बन्ध में कुछ और कानून बनाये हैं । इस प्रकार १८७२ में कांग्रेस ने यह कानून बनाया कि चुनाव गुप्त-मत पत्र द्वारा हो, १८७३ में यह निधारित किया कि चुनाव सारे देश में एक ही दिन हो अर्थात् जिस वर्ष चुनाव हो उसके नवम्बर महीने के प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार को मतदान किया जाय, १९१० ११ और १९२५ में यह निधारित किया गया कि एक उम्मेदवार का चुनाव व्यय २,५०० डालर से अधिक न हो या एक वैकल्पिक नियम (alternative rule) के अन्तर्गत ५,००० डालर से अधिक न हो ।

निर्वाचन सबन्धी नियम

प्रतिनिधि सभा के लिये उम्मेदवारों को मनोनीत करने के लिये प्रत्येक राज्य म पार्टी-संगठनों का विकास हो गया है । आरम्भ में उम्मेदवार पार्टियों के सम्मेलनों द्वारा मनोनीत किये जाते थे परन्तु अब अधिकतर राज्यों में इस कार्य के लिये प्रत्यक्ष प्राइमरी (Direct primaries) का प्रयोग किया जाता है । कुछ वर्ष तक यह अनुमान किया जाता था कि कांग्रेस के चुनाव सम्बन्धी अधिकारों के अन्तर्गत आरम्भिक समितियों (Primary) पर कांग्रेस का कोई नियन्त्रण नहीं हो सकता । गत कुछ वर्षों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से मनोनीत करने के लिये आवश्यक विधि निधारित करने का अधिकार भी कांग्रेस को मिल गया है ।

प्रतिनिधि सभा का सदस्य बनने के लिये यह आवश्यक है कि (१) उम्मेद

सदस्यों की योग्यता

वार की अवस्था कम से कम २५ वर्ष हो, (२) वह सात वर्ष से संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक रहा हो, (३) जिस राज्य का प्रतिनिधित्व करना चाहता है वह उसका निवासी हो, और (४) संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार के किसी पद पर कार्य न करता हो। परन्तु निवास के सम्बन्ध में परम्परा व प्रथाओं और राजनीति तथा जनमत के आधार पर यह आवश्यक समझा जाने लगा है कि उम्मेदवार उस राज्य का ही नहीं बल्कि जिस निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ता है उसी क्षेत्र का निवासी भी होना चाहिये। वैधानिक रूप से तो कोई निर्वाचन क्षेत्र कांग्रेस के लिये अपना प्रतिनिधि कोई ऐसा व्यक्ति भी चुन सकता है जो उस क्षेत्र का निवासी न हो और विशेषकर उन स्थानों से जो राजधानियाँ हैं बहुत ऐसे प्रतिनिधि चुने गये हैं परन्तु फिर भी 'बाहरवाले' का जनता स्वागत नहीं करती है। एक स्थानीय व्यक्ति की अपेक्षा जो उस क्षेत्र की आवश्यकताओं को अधिक अच्छी तरह समझता है जनता बाहरी उम्मेदवार का समर्थन करना उचित नहीं समझती।

साधारणतया यह माना जाता है कि इस प्रकार के स्थानीय प्रेम (local rule) का परिणाम बुरा होता है। प्रथम, चूंकि प्रकृति ने योग्यता का वितरण कांग्रेस निर्वाचन क्षेत्रों के अनुसार नहीं किया है इसलिये इस 'स्थानीय प्रेम' के कारण बहुधा योग्य व्यक्ति कांग्रेस के सदस्य नहीं हो पाते हैं। यदि एक निर्वाचन क्षेत्र में योग्य व्यक्ति नहीं हैं तो वह दूसरे क्षेत्र के योग्य व्यक्तियों में से अपने प्रतिनिधि चुनने की अपेक्षा अपने ही अयोग्य व्यक्तियों में से चुनाव करना अधिक उपयुक्त समझता है और इस प्रकार अयोग्य व्यक्तियों के लिये कांग्रेस का द्वार खुल जाता है। परन्तु यदि इस प्रकार का कोई नियम न हो तो समस्त राज्य के योग्य व्यक्तियों में से सब से अधिक कुशल तथा अनुभवी व्यक्तियों को प्रतिनिधि चुना जा सकता है। दूसरे, इस संकीर्णता के कारण एक पार्टी अपने सुयोग्य नेताओं को चुनाव के लिये मनोनीत नहीं कर पाती। तीसरे, इस पद्धति से उन क्षेत्रों में जहाँ रिपब्लिकनों का प्रभुत्व है डेमोक्रेटों के लिये राजनीतिक जीवन की सम्भावना नहीं रहती और जिन क्षेत्रों में डेमोक्रेटों का प्रभुत्व है वहाँ रिपब्लिकनों की भी यही स्थिति होती है। चतुर्थ, इस प्रथा के परिणामस्वरूप काँग्रेस में राजनीतिक-पार्टियों के वास्तविक नेताओं की खोज करना व्यर्थ सिद्ध होता है क्योंकि इच्छा होते हुये भी वे कभी काँग्रेस में प्रवेश नहीं कर पाते। पाँचवें, इससे कांग्रेस सदस्यों में स्थानीयता की भावना घर कर जाती है। वह अपने को राष्ट्रीय प्रतिनिधि नहीं बल्कि स्थानीय हितों के प्रवक्ता समझने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अमेरिकी प्रतिनिधि को अपने निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता जनता की प्रत्येक बात सुननी

पड़ती है, उसे निरन्तर उनसे सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है और इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि वह किसी बात को सुनने समझने से चूक न जाय।

प्राय यह कहा जाता है कि काँग्रेस की सदस्यता की अवधि अल्प होने के कारण ही ऐसा होता है। प्रतिनिधि को इतना अवसर नहीं कि वह इतना कार्य कर सके जिसके आधार पर उसकी योग्यता की सही जाँच की जा सके। उसके निर्वाचक उसको इस बात से परखते हैं कि वह काँग्रेस में मतदान किस प्रकार करता है, उसे क्या सफलता मिलती है या किस बात में वह असफल होता है, वह अपने निर्वाचन क्षेत्र को सरकार से क्या लाभ करवाता है, अपने कितने प्रमुख समर्थकों को वह सरकारी नौकरी दिला सकता है—मत दाता इसी प्रकार की अन्य स्वार्थ पूर्ण और सकीर्ण बातो के आधार पर अपने प्रतिनिधि की योग्यता तथा क्षमता को परखते हैं। इसलिये प्रतिनिधि कभी भी किसी भी कारण से अपने मतदाताओं को अप्रसन्न करने का साहस नहीं कर सकता क्योंकि उसे इतना अवसर ही नहीं मिलता कि वह अपने साहस पूर्ण तथा स्वतंत्र कार्य से जिसका परिणाम कुछ समय बाद स्पष्ट होगा असन्तुष्ट मतदाताओं को सन्तुष्ट कर सके और उनकी परिवेदनाओं को दूर कर सके। उसके लिये यह आवश्यक होता है कि वह अपने मतदाताओं को तत्काल ही प्रभावित करे और उसके पास इसके लिये अधिक समय नहीं होता है। इसका परिणाम स्पष्ट है। अमेरिकी काँग्रेस का सदस्य राष्ट्र का प्रतिनिधि न होकर अधिकाधिक अपने निर्वाचन क्षेत्र का प्रवक्ता बन जाता है।

प्रतिनिधि सभा भी सिनेट की भाँति अपने सदस्यों के चुनाव फल और योग्यताओं के प्रश्नों पर अंतिम निर्णायक होती है। इसलिये चुनाव सम्बन्धी झगड़े किसी न्यायालय को नहीं सौंपे जाते बल्कि प्रतिनिधि सभा ही उन पर निर्णय देती है। प्रतिनिधि सभा की तीन समितियाँ हैं जिनका एक मात्र कार्य चुनाव सम्बन्धी झगड़ों की जाँच करना होता है। अनेक बार यह प्रश्न उठा है कि क्या सविधान में दी गई योग्यताओं के अलावा भी अतिरिक्त-योग्यताओं को लागू किया जा सकता है। उदाहरणार्थ १६०० में प्रतिनिधि सभा ने उटाह (Utah) के ब्रिगम एच० राबर्ट को इस कारण सदस्यता से वंचित कर दिया कि उसकी एक से अधिक पत्नियाँ हैं। और इसी प्रकार १६१६ में विसकन्सिन के विक्टर एल० बरजर को इस कारण सदस्यता से वंचित कर दिया गया कि उनको एक न्यायालय द्वारा देशद्रोह तथा विश्वासघात के लिये अपराधी सिद्ध किया गया था। इन उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि प्रतिनिधि सभा इस सम्बन्ध में सिद्धान्त एवम् कानून की परवाह किये बिना सदस्यता प्राप्त करने की अपनी कसौटी लागू करती है जिसका सविधान में कहीं उल्लेख नहीं है। परन्तु अब भी प्रतिनिधि सभा के

सदस्यता पर अंतिम निर्णय

इन निर्णयों की वैधानिकता सन्देहजनक है। यह सुझाव दिया गया है कि इस दिशा में सर्वोत्तम उपाय यह हो सकता है कि निर्वाचन के पश्चात् विजयी उम्मेदवार को सदस्यता से वंचित न किया जाय परन्तु यदि उसके अपराध उसे सदन की प्रतिष्ठा के अयोग्य सिद्ध करते हों तो उसे सदन से निकाल दिया जाय। इस विधि में बचाव की बात यह है कि सदस्य को अयोग्य घोषित कर उसकी सदस्यता रद्द करने के लिये दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता पड़ती है।

विशेषाधिकार और विमुक्तियाँ

प्रतिनिधि सभा के सदस्यों को अन्य अनेक भत्तों के अतिरिक्त २२५०० डालर वार्षिक वेतन दिया जाता है। भत्तों में स्टेशनरी, यात्रा, सचिव का वेतन आदि प्रमुख हैं। सदस्यों को बहस के समय वादविवाद की स्वतन्त्रता होती है, सदन की कार्रवाई में भाग लेने जाते समय, सदन के अन्दर या सदन से वापस जाते समय उन्हें महा अपराध, देशद्रोह या शांति भंग करने के अपराध के अतिरिक्त किसी अन्य अपराध के लिये गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सदन के अन्दर अपने भाषण में या विवाद के समय कही गई किसी बात के लिये सदन के बाहर उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता और न ही इस सम्बंध में कोई न्यायालय आपत्ति कर सकता है।

अनुशासन

कांग्रेस के प्रत्येक सदन को अपने सदस्यों को अभद्र या अनुचित व्यवहार के लिये दण्ड देने का अधिकार प्राप्त है और दो-तिहाई बहुमत द्वारा वह सदस्य को निकाल भी सकते हैं। बहुधा सदन के अध्यक्ष सदस्य से अनुशासन का पालन करने को कहते हैं परन्तु सदस्य को 'सेंसर' करने के अवसर कम आते हैं और उसे सदन से निकाल देने के अवसर तो और भी कम। अपने सदस्यों को अनुशासन बद्ध करने के लिये कांग्रेस इन्हीं तीन साधनों का प्रयोग करती है।

कांग्रेस के अधिवेशन

संयुक्त राज्य में कांग्रेस का अधिवेशन संविधान में निर्धारित तिथियों के अनुसार आरम्भ होता है। संविधान में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की व्यवस्था दी गई है ताकि दो वर्ष की अवधि में कांग्रेस के कम से कम दो अधिवेशन हो जायें। इनके अतिरिक्त राष्ट्रपति असाधारण स्थिति में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन बुला सकते हैं। १९३३ में बीसवें संशोधन के लागू होने से पूर्व कांग्रेस अपना वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर के प्रथम सोमवार से आरंभ करती थी। इसलिये पहिला अधिवेशन बहुत लम्बा होता था और दूसरा अधिवेशन बहुत छोटा। परन्तु इस व्यवस्था में सब से गम्भीर दोष यह था कि नवम्बर में निर्वाचित कांग्रेस का अधि

वेशन अगले वर्ष दिसम्बर तक आरम्भ नहीं हो सकता था। इससे पूर्व भी राष्ट्रपति को कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाने का अधिकार था परन्तु यदि राष्ट्रपति ने विशेष अधिवेशन नहीं बुलाया तो नव निर्वाचित कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन निर्वाचन के १३ महीने उपरान्त ही सम्भव होता था। इसी बीच दिसम्बर में पुराने सदस्यों की बैठक (दूसरा अधिवेशन) आरम्भ हो जाती थी और मार्च तक उनका अधिवेशन जारी रहता था। इस अधिवेशन का उपनाम लेम डक अधिवेशन पड़ गया था क्योंकि इसमें अनेक ऐसे सदस्य होते थे जो नवम्बर के चुनाव में पराजित हो गये हों। इस असंगत और हास्यास्पद स्थिति को सुधारने के निमित्त १९३३ में संविधान में २० वाँ संशोधन किया गया। इस संशोधन में यह व्यवस्था की गई कि नवम्बर के चुनाव के उपरान्त कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन जनवरी की तीसरी तारीख से आरम्भ हो जायगा और सदस्यों की इच्छा पर्यन्त जारी रहेगा। इसी प्रकार दूसरा अधिवेशन अगले वर्ष ३ जनवरी से आरम्भ होगा और जब तक आवश्यकता होगी चालू रहेगा। इस प्रकार कांग्रेस के दोनों अधिवेशन बारह महीने के अन्दर जब तक आवश्यकता समझी जाय चालू रखे जा सकते हैं यद्यपि १९४६ के विधान निर्मात्री सभा पुनस्संगठन कानून में यह व्यवस्था की गई है कि यदि युद्ध का समय न हो, या राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय संकटकाल घोषित न किया गया हो या कांग्रेस ने कोई अन्य व्यवस्था न की हो तो दोनों सदनों की कार्रवाई प्रत्येक वर्ष जुलाई के अंत तक अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दी जायगी। यदि कांग्रेस के दोनों सदन अधिवेशन स्थगित करने की तिथि पर सहमत न हो सकें तो राष्ट्रपति हस्तक्षेप कर अपनी समझ से उचित समय तक के लिये उसे स्थगित कर सकता है। इस प्रकार 'लेम-डक' अधिवेशन अब अतीत में गर्भित हो गये हैं और विशेष अधिवेशनों की आवश्यकता भी बहुत कम हो गई है।

कांग्रेस को संगठन करने का भार बहुमत प्राप्त पार्टी वहन करती है। अन्य राष्ट्रों की भाँति अमेरिका भी दो पार्टी प्रणाली का ही अनुयायी रहा है। अमेरिकी संविधान में इसका तात्पर्य यह हुआ कि कांग्रेस में सदा एक दल का बहुमत रहा है और इस कारण कांग्रेस के संगठन इत्यादि में इस बहुमत प्राप्त दल का ही प्रमुत्व रहा है।

नयी कांग्रेस का अधिवेशन आरम्भ होने पर सिनेट को आमूल पुनर्संगठित नहीं किया जाता। आरम्भ में यही आवश्यक होता है कि नये सदस्य शपथ ग्रहण करें, रिक्त पदों की (यदि कोई है) पूर्ति की जाय और दलों के सदस्यों में हुए परिवर्तन के अनुसार समितियों की सूचियों में संशोधन किया जाय। परन्तु प्रतिनिधि सभा को आमूल पुनस्संगठित करने की आवश्यकता होती है। जब नवनिर्वाचित प्रतिनिधि सभा की प्रथम बैठक होती है तो पुराने सदन का क्लर्क अध्यक्षता

ग्रहण करता है और सदन की कार्रवाई आरम्भ करता है। सर्वप्रथम वह राज्यों के वर्ण-क्रमानुसार नवनिर्वाचित सदस्यों की सूची पढ़कर सुनाता है। इसके पश्चात् अधिकारियों का चुनाव होता है जो इस कार्यक्रम का महत्वपूर्ण कार्य होता है। स्पीकर, बहुमत और अल्पमत दलों के नेतागण, और पार्टी के सचेतक (whips) प्रतिनिधि सभा के मुख्य अधिकारी होते हैं। यह सब पक्षावलम्बी होते हैं। स्पीकर के चुनाव के पश्चात सदन अन्य अधिकारियों—क्लर्क, सदन-रक्षक (Sergeant-at arms), द्वार पाल (Door keeper), पोस्ट मास्टर और चेपलिन (Chaplain)—का चुनाव करता है। साधारणतया प्रतिनिधि सभा की स्वीकृति का केवल यह तात्पर्य होता है कि बहुमत प्राप्त पार्टी के अन्तरंग मंडल (caucus) द्वारा तैयार की गई इन पदाधिकारियों की सूची स्वीकार कर लेना। कानून के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि इन पदाधिकारियों में कोई भी सदन का सदस्य हो यद्यपि स्पीकर सदन का सदस्य होता है और अन्य सदस्य नहीं होते।

निर्वाचन के पश्चात स्पीकर को अध्यक्ष के चुनाव में पराजित उम्मेदवार आसन तक ले जाता है। तत्पश्चात स्पीकर को सदन का सबसे पुराना सदस्य शपथ ग्रहण कराता है और इसके उपरान्त केवल उन सदस्यों को छोड़ जिनकी योग्यता पर आपत्ति प्रकट की गई है स्पीकर शेष सभी सदस्यों को शपथ ग्रहण कराता है।

इसके पश्चात नियमावली स्वीकार की जाती है और समितियों का चुनाव किया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि सदन को अपनी इच्छानुसार संगठन करने, समितियाँ स्थापित करने, अधिकारी नियुक्त करने और नियमावली बनाने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। साधारणतया पुरानी नियमावली को ही पुनः स्वीकार कर लिया जाता है और यदि उसमें संशोधन प्रस्तावित किये गये हों तो उन्हें नियम समिति के विचारार्थ भेज दिया जाता है।

स्पीकर

प्रतिनिधि सभा में अध्यक्ष का पद विशेष महत्व का होता है। वास्तव में इस पद की सृष्टि अनेक शताब्दी पूर्व ब्रिटेन की लोक सभा में हुई थी और ब्रिटेन की वैधानिक प्रणाली की अनेक विशेषताओं की भाँति इसका भी उपनिवेशों के विधान मण्डलों में प्रतिरोपण किया गया था। अमेरिकी संविधान के निर्माताओं ने इसे राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा की व्यवस्था के लिए एक उपयुक्त व आवश्यक साधन समझा परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस और ब्रिटिश संसद की पारस्परिक भिन्नता के समानान्तर ही अमेरिकी स्पीकर भी कुछ बातों में ब्रिटेन की लोक सभा के स्पीकर से भिन्न है।

स्पीकर प्रतिनिधि सभा की अध्यक्षता करता है। यह आश्चर्यजनक लगता है कि "मिस्टर स्पीकर" (Mr. Speaker) कहलाते हुये भी उसकी सबसे बड़ी

विशेषता यह है कि वह बोलता बहुत कम है। स्पीकर उपाधि का उद्भव ब्रिटेन की लोक सभा के आरम्भिक काल के इतिहास में हुआ। उस समय लोक सभा के सदस्यों को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं था। केवल वह अपना प्रतिनिधि सम्राट के पास भेजते थे जो उनकी ओर से सम्राट से परिवेदनाओं को दूर करने, नये कानून बनाने या पुराने कानूनों में संशोधन करने का निवेदन किया करता था। स्पष्ट ही उन दिनों यह बहुत भारी व भयजनक कार्य था क्योंकि यदि प्रतिनिधि की किसी बात से राजा क्रुद्ध हो गया तो उस क्रोध का प्रहार प्रतिनिधि पर ही होता था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ब्रिटेन की लोक सभा में पुरानी स्थिति की स्मृति को जीवित रखने के लिए अब भी निर्वाचित हो जाने के उपरान्त अध्यक्ष को बलपूर्वक अध्यक्ष के आसन तक ले जाया जाता है और वह स्पीकर इस कार्य भार को सम्भालने के लिये तत्काल तैयार नहीं हो जाता बल्कि कृत्रिम रूप से इस ओर अपनी अनिच्छा प्रकट करता है और विरोध भी करता है। अब ब्रिटेन की लोक सभा एक विधान निर्माण सभा हो गई तब इस पद में भी काफी परिवर्तन हुआ परन्तु आज भी अध्यक्ष का पद ब्रिटेन में सम्मानित पदों में से एक है।

स्पीकर सर्वदा सदन का सदस्य होता है साथ ही अपनी पार्टी का एक पुराना (senior) प्रतिनिधि भी। परन्तु अमेरिका में अध्यक्ष-पद का विकास ब्रिटेन के अध्यक्ष पद के उद्भव और विकास से बहुत भिन्न दिशा में हुआ है। (१) ब्रिटेन की लोक सभा में स्पीकर का कदाचित ही कभी चुनाव लड़ा जाता हो, उसका निर्वाचन प्राय निर्विरोध अथवा सर्वसम्मति से होता है, परन्तु अमेरिका की प्रतिनिधि सभा में स्पीकर का निर्वाचन होता है। यद्यपि प्रतिनिधि सभा में बहुमत प्राप्त पार्टी के अन्तरग-मण्डल द्वारा यह पहिले ही निश्चित कर लिया जाता है कि कौन सदस्य अध्यक्ष बनाया जायगा परन्तु पूर्व निर्धारित होते हुए भी सदन उसका निर्वाचन करता है। (२) ब्रिटेन की लोक सभा का अध्यक्ष निर्वाचन के पश्चात पार्टी के प्रति पक्षपात का त्याग कर देता है और एक प्रकार से पार्टी के क्षेत्र से अलग हो जाता है। लोक सभा के अध्यक्ष की राजनीति से निष्पक्षता का ज्ञान इसी बात से लगाया जा सकता है कि एक बार अध्यक्ष चुन लिये जाने के पश्चात चाहे कोई भी पार्टी सत्तारूढ़ हो यदि पूर्व अध्यक्ष सहमत है और काम करने योग्य है तो उ ही बार-बार अध्यक्ष चुन लिया जाता है। इसका कारण यह है कि पदासीन होने के उपरान्त ब्रिटेन की लोक सभा का स्पीकर राजनीति का त्याग कर देता है जिस पार्टी का यह सदस्य होता है उससे अपने सभी प्रकार के सम्बन्ध विच्छे कर लेता है, पार्टी की किसी बैठक में वह भाग नहीं लेता है और न ही पार्टी

ब्रिटिश और अमेरिकी स्पीकर

किसी कोष में चन्दा देता है यहाँ तक कि वह किसी राजनीतिक-क्लब में भी कभी पैर नहीं रखता। परन्तु अमेरिका की प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष की स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। वह बहुमत प्राप्त पार्टी द्वारा चुना जाता है, अपने पद का वह अपनी पार्टी के हित के लिये खुलकर प्रयोग करता है, विशेषकर वह अपनी पार्टी के कानून सम्बन्धी कार्यक्रम को लागू कराने में भरसक प्रयत्न करता है, और जैसे ही अध्यक्ष की पार्टी का बहुमत नहीं रहता अन्य बहुमत प्राप्त पार्टी उसके स्थान पर अपना अध्यक्ष चुनती है। अध्यक्ष चुन लिये जाने के पश्चात पार्टी से सम्बन्ध विच्छेद करने की अपेक्षा उसके पार्टी से सम्बन्ध और भी दृढ़ व निकटतम हो जाते हैं और वह सदा कट्टर पक्षावलम्बी रहता है। इसलिये उसका प्रतिनिधि सभा के लिये निर्विरोध चुन लिये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता है। उसे भी सभा के अन्य सदस्यों की तरह हर प्रकार से अपने निर्वाचन-क्षेत्र की सेवा करनी पड़ती है। ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है कि अमेरिकी अध्यक्ष एक पक्षपाती (partisan) होता है, वह बहुमत प्राप्त पार्टी का घोषित प्रतिनिधि होता है, साथ ही अपनी पार्टी का एक महत्वपूर्ण नेता भी होता है। वह केवल अध्यक्षता करने वाला अधिकारी या निष्पक्ष सचालक ही नहीं बल्कि एक सक्रिय राजनीतिक होता है जो अपने पद का और अधिकार का प्रशासन सम्बन्धी और विधाननिर्माण सम्बन्धी नीतियों को अभिवर्द्धन करने में प्रयोग करता है। स्वर्गीय अध्यक्ष निकोलस लांग वर्थ ने एक बार घोषित किया कि "अपनी पार्टी के मच पर खड़े होकर जहाँ तक सम्भव हो उचित रीति से अपनी पार्टी के घोषित सिद्धान्तों और नीतियों के अनुकूल विधान निर्माण में सहायता करना और इसी प्रकार अपनी पार्टी के घोषित सिद्धान्तों और नीतियों के प्रतिकूल विधान-निर्माण को रोकना मैं प्रत्येक अध्यक्ष का कर्तव्य मानता हूँ।"

इससे अमेरिका के अध्यक्ष की स्थिति पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है। सदन के नियमों को सदभक्ति पूर्वक कार्यान्वित करते हुए भी वह अपने पद का अपनी पार्टी के हितों का अभिवर्द्धन करने में प्रयुक्त लाभ उठाता है इसलिये उसे केवल विधान निर्माण क्षेत्र में ही नहीं बल्कि राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रमुख स्थान प्रदान किया जाता है।

स्पीकर के अधिकार और कार्य

(१) प्रतिनिधि सभा के नियमों के अनुसार सदन की बैठक आरम्भ होने पर अध्यक्ष अपना आसन ग्रहण करता है और नित्य कार्यक्रम प्रारम्भ होने की घोषणा करता है। सभा का 'कोरम' (quorum) पूरा हो जाने पर पिछली बैठक की कारवाई की रिपोर्ट पढ़ने का आदेश देता है जिसका निरीक्षण वह पहिले ही कर लेता है।

(२) सदन का अध्यक्ष होने के कारण सदन में शांति व्यवस्था और

शिष्टाचार बनाये रखने का उत्तरदायित्व उसी पर होता है और यदि सदन में कोई भी उपद्रव या अव्यवस्था हो या अभद्र या अशिष्ठ व्यवहार हो तो वह दीर्घाओं (galleries) व सभाकक्षों (lobbies) को खाली कराने का आदेश दे सकता है।

(३) सदन में बोलने के लिये इच्छुक सदस्यों को अनुमति प्रदान करता है।

(४) वह सभी कानूनों, अभिभाषणों (addresses), संयुक्त प्रस्तावों, समादेशों (writs), वारन्टों और सदन के अन्य आदेशों पर हस्ताक्षर करता है।

(५) प्रत्येक प्रश्न पर मतदान लेता है और सदन का निर्णय घोषित करता है।

(६) सदन के नियमों की व्यवस्था करता है और उनको लागू करता है, निस्सदेह सदन में यह उसका दैनिक कार्य है।

(७) १९११ से पूर्व स्पीकर को सदन की सभी समितियों (स्थायी, विशेष और सम्मेलन) को उनके अध्यक्षों सहित नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त था। वह सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावशाली समिति—नियम समिति—को भी नियुक्त करता था और इस समिति का वह स्वय ही अध्यक्ष भी होता था। अन्य अधिकारों के साथ ही इस अधिकार के प्राप्त होने से महत्वाकांक्षी अध्यक्ष, जैसे १८६६ ७५ में जेम्स जी० ब्लेन, १८८६ ९१ और १८९५ ९९ में थामस रीड और १९०३ १० में जोजेफ कैनन वास्तव में ऐसे निरकुश शासक बन गये जिनकी स्वीकृति के बिना न कोई कानून बनाया जा सकता था और न किसी पर विचार ही किया जा सकता था। अध्यक्ष के इन व्यापक अधिकारों के प्रति इतना अधिक असन्तोष था कि अध्यक्ष रीड को बहुधा 'ज़ार' (czar) कहा जाता था। परन्तु १९१० ११ में अध्यक्ष से उसके सब से महत्वपूर्ण अधिकार छीन लिये गये। 'नियम समिति' से उसे हटा दिया गया और स्थायी समितियों के चुनाव का अधिकार उसके हाथों से लेकर सदन को दे दिया गया। अत अब अध्यक्ष केवल प्रवर समितियों (select committees) और सम्मेलन समितियों (conference committees) की ही नियुक्ति करता है। यह निस्सन्देह महत्वपूर्ण परिवर्तन था। प्राय अमेरिकी पाठ्य पुस्तक लेखक इसे '१९१० ११ की क्रान्ति' कहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह अमेरिकी अध्यक्ष के अधिकारों और उसके सम्मान पर भारी प्रहार था। परन्तु अब भी अध्यक्ष को अनेक महत्वपूर्ण विशेषाधिकार प्राप्त हैं जिनके कारण विधान निर्माण के कार्य में वह बड़ा महत्वपूर्ण व प्रभावशाली होता है।

(८) सदन का पूर्ण अधिकार प्राप्त सदस्य होने के कारण अध्यक्ष को अन्य सदस्यों की भाँति विवाद में भाग लेने और मतदान करने का अधिकार होता है परन्तु नियमानुसार वह तभी मतदान करता है जब उसका मत किसी भी प्रश्न पर निर्णायक सिद्ध हो, जैसे दो तिहाई बहुमत प्राप्त करने में या कोरम स्थापित करने

में। जब दोनों पक्ष किसी प्रश्न पर बराबर हों तब भी वह निर्णायक-मत देता है। वाद विवाद मे भाग लेना या न लेना अध्यक्ष की इच्छा पर निर्भर करता है। सभी अध्यक्ष बहुधा इस अधिकार का प्रयोग करते रहे हैं परन्तु सदा नहीं।

(६) इनके अतिरिक्त अध्यक्ष अपने स्थान पर किसी भी सदस्य को तीन दिन के लिये अध्यक्ष नियुक्त कर सकता है, और बीमारी की अवस्था में वह सदन की स्वीकृति से किसी अन्य व्यक्ति को अपने स्थान पर नियुक्त कर सकता है परन्तु केवल १० दिन के लिये। यदि अध्यक्ष अनुपस्थित है और उसने अपनी अनुपस्थिति मे काम करने के लिये किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त नहीं किया है तो सदन एक अस्थायी अध्यक्ष (Speaker pro tempore) चुन लेता है। जब सदन 'पूर्ण सदन की समिति' के रूप में बैठता है तब स्पीकर उसका अध्यक्ष न होकर उसके द्वारा नियुक्त किया गया व्यक्ति सभापतित्व करता है।

इससे यह स्पष्ट है कि अध्यक्ष ही सदन का केन्द्र बिन्दु होता है। यद्यपि १६१०-११ की तथा-कथित क्रांति के फलस्वरूप उसके बहुत से अधिकारों को छीन कर एक सभा या सिण्डीकेट को दे दिया गया है परन्तु अनुशासन, सदन की व्यवस्था और नियमों को लागू करने के अनेक अधिकार प्राप्त होने से अध्यक्ष ही इस सिन्डीकेट का प्रमुख सदस्य होता है। अध्यक्ष को प्राप्त अधिकारों में सदस्य को सदन में बोलने की अनुमति देने या न देने और कार्यवाही के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को तय करने के अधिकार सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त अध्यक्ष को कुछ सीमा तक नियुक्ति का भी अधिकार है और कभी कभी क्लर्क को सन्देह रहने पर वह यह भी निर्णय करता है कि अमुक विधेयक किस समिति को दिया जाय। फाइनर(Finer) ने अध्यक्ष के अधिकारों और उसकी शक्ति के कारणों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए अंत में लिखा है कि "अध्यक्ष अब भी अपने विचारों, उद्देश्यों और व्यवहार में पार्टी का प्रतिनिधि ही बना रहता है। वह अब भी कांग्रेस के उस नेतृमण्डल में अपना स्थान रखता है जिसका समर्थन शासन सम्बन्धी आवश्यक विधेयकों को पास कराने के लिये राष्ट्रपति आवश्यक समझता है और इसके लिये निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। उसकी पार्टी की सचालन समिति (steering committee) और सदन म बहुमत दल क नेता अब भी उससे परामर्श करते हैं और सचालन-समिति पर उसका बड़ा प्रभाव है। समितियों को काम सौंपने और कार्यक्रम में प्राथमिकता निर्धारित करने में अध्यक्ष का अब भी विशेष महत्व का स्थान होता है क्योंकि वह अपनी पार्टी का सबसे प्रमुख व्यक्ति होता है और इसीलिए तो वह सदन का अध्यक्ष चुना गया है। ४३६ सदस्यों के सदन में शांति और व्यवस्था स्थापित रखने के लिये और इसकी कार्य विधि के अनुसार चलाने के लिये यह आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में किसी न किसी का अधिकार रहे

सौंपा जाय। १६१० तक यह अधिकार अध्यक्ष और उनके मित्रों के हाथों में केन्द्रित था परन्तु अब यह अध्यक्ष के मित्रों और अध्यक्ष के हाथ में केन्द्रित है"।

प्रतिनिधि सभा में समिति-प्रणाली

आधुनिक लोकतन्त्री राज्यों में विधान निमाण का कार्य बहुत अधिक बढ़ गया है और साथ ही अधिक टेक्निकल और जटिल भी हो गया है। इस लिए विधान सभाएँ समय की बचत करने और अधिक कुशलता से कार्य सम्पन्न करने के लिये जो समस्याएँ उनके सामने प्रस्तुत होती हैं उनमें से अधिकतर को विचारार्थ और विवरण के हेतु समितिया को सौंप देना उपयुक्त समझती हैं। सदन का निर्णय इन समितियों की रिपोर्ट पर ही आधारित होता है और साधारणतया सदन का कार्य इन समितियों के निर्णय को केवल वैधानिक रूप प्रदान करना होता है। सम्पूर्ण अमेरिकी इतिहास में कांग्रेस की बढ़ती हुई जटिल व्यवस्था में समिति प्रणाली का प्रमुख स्थान रहा है। यही वह मुख्य माध्यम है जिसके द्वारा कांग्रेस अपना कार्य सम्पन्न कराती है और इस प्रकार समितियाँ विधान शक्ति का केन्द्र बन गई हैं। "अध्यक्ष के अधिकार बढ़ते घटते रहे और इसी प्रकार कांग्रेस पर राष्ट्रपति का अधिकार भी परिवर्तनशील रहा परन्तु स्थायी समितियों का स्थान सदैव ही महत्वपूर्ण रहा"।

जिस प्रकार कांग्रेस वास्तव में अमेरिकी भूमि पर ब्रिटेन की ससदीय प्रणाली द्वारा बोये गये बीज का ही विकसित रूप है उसी प्रकार समिति प्रणाली का उद्गम भी उपनिवेशी काल की संस्थाओं में ही निहित है। जैसे जैसे कार्य बढ़ता गया कुछ उपनिवेशों ने इस प्रणाली को अपना लिया और सघीय कांग्रेस ने तो जैसे ही संविधान के अन्तर्गत कार्य आरम्भ किया उसे पार्टी तथा विधान निमाण के दृष्टिकोण से समितियाँ अत्यन्त आवश्यक जान पड़ीं। यद्यपि स्थायी समितियों की संख्या आरम्भ में बहुत कम थी परन्तु शीघ्र ही उसमें वृद्धि होने लगी। १६०४ तक प्रतिनिधि सभा में ६० और सिनेट में ६५ स्थायी समितियाँ स्थापित हो गयी थीं। १६२७ में समितियों का पुनर्संगठन किया गया जिसके अनुसार प्रतिनिधि सभा में समितियों की संख्या ४७ हो गई परन्तु हरबर्ट हूवर (१६३०) के प्रशासन काल में यह संख्या गिरकर ४४ हो गई और सिनेट की समितियों की संख्या ४३। ट्रूमन के शासन काल की प्रथम कांग्रेस में समितियों की संख्या पुन १०० तक पहुँच गई। इनमें से बहुत सी समितियाँ तो ऐसी थीं जो बिल्कुल ही निरर्थक थीं। विधान निर्माण का महत्वपूर्ण क्षेत्र विरोधी समूहों में बँट गया, अत प्रत्येक के कार्य क्षेत्र का स्पष्ट विभाजन न था, समितियों की अध्यक्षता के लिये निरन्तर संघर्ष होता रहता था और इस प्रकार सम्पूर्ण प्रणाली अव्यवस्थित थी। १६४७ तक यह संघर्ष

न हो सका कि दोनों सदनों में समितियों के इस विकृत रूप को पुनरसगठित किया जा सके।

काँग्रेस की समितियों से हमारा तात्पर्य उन स्थायी समितियों से है जिनका प्रत्येक काँग्रेस के आरम्भ में पुनर्सगठन किया जाता है। इन स्थाइ समितियों के अतिरिक्त प्रवर समितियाँ (Select Committees) या विशेष समितियाँ भी होती हैं जिनका निर्माण कुछ विशेष प्रश्नों पर विचार करने के लिए अस्थाइ रूप से किया जाता है। गत कुछ वर्षों म प्रतिनिधि सभा ने जिन विशेष समितियों का निर्माण किया है उनमें से सब से अधिक प्रख्यात और आलोचना ग्रस्त समिति वह है जो अमेरिका विरोधी कार्यों का अन्वेषण करने के हेतु नियुक्त की गई थी (Committee to investigate un-American activities) परन्तु १९४६ में इस समिति को स्थायी समिति का रूप दिया गया।

सम्मेलन समितियाँ

यह एक विशेष प्रकार की प्रवर-समिति है जिसे सम्मेलन समिति (conference committee) कहते हैं। इसकी नियुक्ति अध्यक्ष करता है। इसके निर्माण का उद्देश्य यह है कि यदि किसी बात पर प्रतिनिधि सभा और सिनेट सहमत न हो सकें तो यह समिति सिनेट की इसी प्रकार की समिति से मिलती है और सम्मेलन कर समझौता कराने का प्रयत्न करती है। यह समिति दोनों सदनों द्वारा पृथक् रूप से स्वीकृत विधेयकों के रूप और विषय वस्तु के अन्तर को दूर कर उसे ऐसा रूप देने का प्रयत्न करती है जो हाउस और सिनेट दोनों को स्वीकार हो।

संयुक्त समितियाँ

हाउस और सिनेट की कुछ संयुक्त समितियाँ (joint committees) भी होती हैं, कुछ स्थाई और कुछ अस्थायी। इनका वर्तमान मे सब से अच्छा उदाहरण 'अणुशक्ति सम्बन्धी काँग्रेस की संयुक्त समिति' है। आरम्भ में इनकी स्थापना काग्रेस के दोनों भवनों द्वारा पारित सगामी-प्रस्ताव (concurrent resolution) द्वारा की जाती थी और इनके सदस्यों का चुनाव अन्य स्थायी समितियों की भाँति ही होता था परन्तु १९४७ से इनका चुनाव दोनों सदनों की कुछ स्थायी समितियों से किया जाता है।

सम्पूर्ण सदन समिति

प्रतिनिधि सभा बहुधा राजस्व, व्यय विनियोग और अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रस्ताव पास कर स्वय समिति के रूप में परिवर्तित हो जाती है। ऐसी स्थिति में समिति की कार्रवाई समाप्त होने तक अध्यक्ष का पद हट जाता है और सदन के औपचारिक नियम लागू नहीं रहते। सदन सदन न रहकर समिति बन जाता है।

इन विभिन्न प्रकार की समितियों में स्थायी समितियाँ निस्सन्देह सबसे

महत्वपूर्ण हैं। वास्तव में यह समितियाँ 'लघु विधान सभाएँ' समझी जाती हैं और इन्हें अपने दो वर्ष के कार्य-काल में विशेष प्रकार के प्रस्तावों अथवा विधेयकों पर विचार करने और उनपर अपनी रिपोर्ट देने का कार्य सौंपा जाता है, इसके अतिरिक्त इन समितियों को स्वय अपनी ओर से विधेयक तैयार करने और उसे सदन में प्रस्तुत करने का भी अधिकार होता है। १६४६ के *विधान सभा पुनर्संगठन कानून* के परिणाम स्वरूप स्थायी समितियों की सख्या घटाकर २० अर्थात आधे से कम कर दी गई है। इसके साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि पहिले समितियों की सदस्य सख्या २ से ४३ तक होती थी और अधिकांश समितियों की सदस्य संख्या २१ होती थी परन्तु अब यह सदस्य सख्या ६ से ४३ कर दी गई है और अधिकाश समितियों में २५ से २७ सदस्य तक होते हैं। इस समय प्रतिनिधि सभा में निम्नलिखित समितियाँ हैं —१) कृषि, (२) व्यय-विनियोग, (३) सेना, (४) बैंकिंग और करेंसी, (५) कोलम्बिया जिला, (६) शिक्षा और श्रम, (७) परराष्ट्र मामले, (८) सरकारी कार्य (Government operation), (६) प्रतिनिधि सभा प्रशासन, (१०) गृह और द्वीप सम्बन्धी समस्यायें (Interior and insular affairs), (११) अन्तराज्य और विदेशी वाणिज्य, (१२) न्याय, (१३) व्यापारिक पोत और मत्स्य (Merchant marine and fisheries), (१४) डाक खाना और सार्वजनिक सेवा, (१५) लोक निर्माण कार्य, (१६) नियम, (१७) छोटे व्यवसाय (small business), (१८) वयोवृद्ध सम्बन्धी मामले (veteran affairs), (१६) अमेरिका विरोधी कार्य, और (२०) उपाय और साधन (ways and means)।

समितियों का संगठन

समितियों का संगठन करना वास्तव में पार्टियों का कर्त्तव्य है। समिति में विभिन्न पार्टियों के सदस्यों की सख्या सदन में उनके सदस्यों के अनुपात के अनुसार होती है। अध्यक्ष की ही भाँति समितियों का चुनाव भी औपचारिक ढंग से पूरा सदन करता है, परन्तु व्यवहार में सदन का कार्य केवल पार्टियों द्वारा नियुक्त चुनाव समितियों द्वारा *तैयार की गई सूचियों की पुष्टि करना होता है। प्रत्येक* पार्टी एक 'समितियों की समिति' नियुक्त करती है जो विभिन्न समितियों के लिये अपनी पार्टी के सदस्यों की सूची तैयार करती है। इस सूची की पुष्टि पहिले पार्टी के सदस्य करते हैं और फिर बहुमत और अल्पमत पार्टियों द्वारा प्रस्तुत सूची (जिन्हें इन पार्टियों के अन्तरंग-मण्डल स्वीकृत कर चुके होते हैं) में से समितियों का विधिवत चुनाव करने में सदन का बहुत कम समय लगता है।

प्रोफेसर एलेन नेविन्स का कहना है कि जहाँ तक समितियों के चुनाव का सम्बन्ध है आज की स्थिति में उस समय की स्थिति से अधिक अन्तर नहीं है

जब 'अंकल जो' (Uncle Joe), कैनन और अन्य लोगों का प्रतिनिधि सभा पर नियन्त्रण था क्योंकि अंत में पार्टी का अन्तरंग-मण्डल (caucus) ही समितियों में पार्टी की सदस्यता निर्धारित करता है और पार्टी के अन्तरंग मण्डल में सदैव विशेष रूप से योग्य, अनुभवी और प्रभावशाली सदस्यों का प्रभुत्व रहता है। यही लोग अन्तरंग-मण्डल के संचालन और समितियों के सदस्यों के चुनाव करने में प्रधान होते हैं। विशेष उत्कृष्ट और प्रभावशाली समितियों की अध्यक्षता और सदस्यता उन लोगों को प्रदान की जाती है जो उसके योग्य व अधिकारी होते हैं। ये अधिकार उनकी ज्येष्ठता (seniority), विशेषज्ञता, कठिन परिश्रम शक्ति, नेताओं के रूप में सम्मान और वार्तालाप में कुशलता इत्यादि के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

ज्येष्ठता का सिद्धान्त

समितियों की सदस्यता और अध्यक्षता निर्धारित करने के लिये ज्येष्ठता (seniority) का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यदि सदस्य चाहे तो वह काँग्रेस के हर अधिवेशन में अपनी समिति-सदस्यता बिना परिवर्तन के बनाये रख सकता है। यह असाधारण बात नहीं, इसका कारण यह है कि नये सदस्यों या पुराने सदस्यों द्वारा अन्य समितियों में स्थानान्तरित कर दिये जाने के अनुरोध पर उनकी ज्येष्ठता, पार्टी अनुशासन, क्षेत्रीय विभाजन और कार्य के लिये उपयुक्तता के आधार पर विचार किया जाता है।

तथाकथित 'ज्येष्ठता का सिद्धान्त' साधारणतया समिति के अध्यक्षों के निर्वाचन में भी लागू होता है। रीति के अनुसार वह व्यक्ति अध्यक्ष बनाया जाता है जो बहुमत प्राप्त पार्टी का समिति में सबसे पुराना सदस्य हो अर्थात् जो समिति में सबसे अधिक काल से निरन्तर सदस्य चला आ रहा हो। यहाँ तक कि वृद्धावस्था भी इस दिशा में अयोग्यता नहीं मानी जाती। अर्नेस्ट ग्रिफिथ ने अपनी 'अमेरिकी शासन प्रणाली' (American System of Government) में लिखा है कि लगातार लम्बे समय तक एक ही कार्य करते रहने से दृष्टिकोण प्राय अनुदार होता जाता है। इस कारण काँग्रेस में राष्ट्रपति या प्रशासन विभाग की अपेक्षा अधिक अनुदारता के लक्षण पाये जाते हैं। ज्येष्ठता को विशेष महत्व दिये जाने से यही प्रभाव उन महत्वपूर्ण समितियों पर भी पड़ता है जिनकी सदस्यता में विशेष आकर्षण रहता है, जैसे व्यय विनियोग समिति, उपाय और साधन (ways and means) या अन्तर्राज्य वाणिज्य समिति आदि।

अध्यक्ष को समिति के कर्मचारी नियुक्त करने का, समिति का कार्यक्रम निर्धारित करने का, उपसमितियाँ नियुक्त करने का और सदन में वाद विवाद का समय निर्धारित करने का अधिकार होता है। वह समिति के निर्णयों पर

महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है, उसके निर्णयों की सूचना सदन को देता है और सदन में उन पर हुये विवादों में यही नेतृत्व करता है। प्राय अनेक महत्त्वपूर्ण कानून उसके ही नाम से हैं (जैसे मैकिनले टेरिफ एक्ट) या सिनेट की समान समिति के अध्यक्ष के साथ संयुक्त नामों मे प्रसिद्ध हो जाते हैं (जैसे टाफ्ट हार्टले कानून)। इससे स्पष्ट है कि अध्यक्ष का पद ईर्ष्याजनक है।

समिति सभापति के अधिकार

साधारणतया प्रतिनिधि केवल एक ही समित के सदस्य हो सकते हैं परन्तु कुछ समितियों के सदस्य (जैसे कोलम्बिया क्षेत्रीय समिति जिनमें काम अधिक नहीं है) एक अन्य (अधिक से अधिक कुल मिलाकर दो) समिति पर भी नियुक्त किये जा सकते हैं। १६४६ के कानून के अनुसार प्रत्येक समिति को अपनी नियमित साप्ताहिक, अर्ध मासिक या मासिक बैठकों के दिन निर्धारित करने पड़ते हैं। साधारणतया प्रत्येक समिति की साप्ताहिक बैठक होती है। नियम समिति को छोड़ कर बिना विशेष अनुमति प्राप्त किये कोई भी समिति प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन के अवकाश में अपनी बैठक नहीं कर सकती। यदि तीन या अधिक सदस्यों की माग पर भी अध्यक्ष समिति की विशेष बैठक नहीं बुलाता है तो ऐसी व्यवस्था की गई है कि वह स्वय बैठक बुला सकते हैं।

अन्त म यह भी ध्यान देने योग्य है कि अमेरिकी तथा ब्रिटिश समिति प्रणाली म महान अन्तर है। ब्रिटेन की लोक सभा में विधान सम्बन्धी स्थायी समिति विशेषज्ञ समिति नहीं होती यद्यपि विशेषज्ञों को सम्मिलित कर लिया जाता है। केवल कुछ प्रवर समितियाँ ही जिनमें अनुमान और लेखा-जोखा (estimate and account) की दो वित्तीय समितियाँ भी सम्मिलित हैं विशेषज्ञ समितियाँ समझी जा सकती हैं। यह समितियाँ वास्तव म विशेषज्ञों की नहीं होतीं बल्कि अपने कार्य की विशेषज्ञ होती हैं। परन्तु अमेरिकी काँग्रेस म ऐसा नहीं होता। वहाँ की समितियाँ अपने कार्य में विशेष दक्ष होती हैं।

समितियों का काम इतना अधिक हो गया है कि अधिकतर समितियाँ अपना बहुत सा कार्य उपसमितियों को सौंप देती हैं। अधिकारों का इस प्रकार और भी विकेन्द्रीकरण होता है और समितियों की दक्षता में और भी वृद्धि होती है। सदस्यों की ज्येष्ठता पर ध्यान दिये बिना उप समितियाँ प्रत्येक सदस्य को अधिक अवसर प्रदान करती हैं क्योंकि एक नया सदस्य (junior member) भी किसी महत्वपूर्ण उपसमिति का अध्यक्ष बनाया जा सकता है। इस व्यवस्था से ज्येष्ठता के नियम में जो त्रुटियाँ हैं उनकी क्षतिपूर्ति का अवसर मिल जाता है।

उपसमितियाँ

प्रत्येक समिति का कार्यालय होता है और प्रत्येक को सचिवों, लेखन-सामग्री (stationery), यात्रा तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए भत्ता मिलता है। समय के साथ-साथ पुस्तकों, पत्रों और विशेषज्ञ परामर्शदाताओं की उल्लेखनीय सुविधाएँ उपलब्ध होती गई हैं। उच्च शासनाधिकारी जिनमें मन्त्रि मण्डल के सदस्य भी शामिल हैं समितियों के सामने स्वयं उपस्थित होने और प्रश्नों के उत्तर देने लगे हैं, आवश्यकता पड़ने पर लिखित वक्तव्य भी देते हैं। यह उल्लेखनीय है कि इन समितियों में पार्टी अनुशासन कड़ा नहीं होता। अत इनके निर्णय एक-दलीय न होकर द्विदलीय या अपक्षीय (non partisan) होते हैं।

नियम समिति

प्रतिनिधि सभा की सब समितियों में नियम-समिति निश्चय ही सबसे अधिक अधिकार सम्पन्न और प्रभावशाली समिति है। इस समय इसमें १२ सदस्य हैं। प्रतिनिधि सभा के नियमों में जो कुछ संशोधन अभीष्ट होता है वह इसी समिति को विचारार्थ भेज दिया जाता है। ग्रिफिथ ने इस समिति को 'प्रतिनिधि सभा का यातायात प्रबन्धक' (Traffic manager for the House) कहा है क्योंकि यह विधान निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देती है, यह प्रतिनिधि सभा में किसी भी समय बहुमत प्राप्त पार्टी के अनुरोध पर विशेष नियम या आदेश प्रस्तुत कर सकती है और विचाराधीन कार्यों को निपटाने के लिए क्रमानुसार प्राथमिकता निर्धारित कर सकती है, किसी विषय पर विवाद के लिए निश्चित समय को सीमित कर सकती है, यह निश्चय करती है कि विधेयक की किन धाराओं मे संशोधन किया जा सकता है और किन में नहीं। संक्षेप में, यह समिति इस बात का निर्धारित करती है कि प्रस्तुत परिस्थिति में प्रतिनिधि सभा की कार्यवाही किस रूप में चलायी जानी चाहिए और अनुशासनबद्ध प्रतिनिधि सभा अधिकतर नियम-समिति के निर्णय को स्वीकार कर लेती है। सदन में अपनी बात कहने का नियम समिति को विशेषाधिकार प्राप्त है और समिति इस विशेषाधिकार के बल पर किसी भी समय कोई विशेष नया नियम प्रस्तुत कर वादविवाद में हस्तक्षेप कर सकती है, वह कोई नया विधेयक प्रस्तुत कर सकती है और विधेयक को 'विषय समिति' का निर्देश प्राप्त करने का अवसर दिये बिना ही सदन से स्वीकृत करा सकती है। इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि सदन के अल्प संख्यक सदस्य बराबर इस बात का विरोध करते रहते हैं कि 'गला घोटने वाले नियम' (Gag rules) लागू किये जा रहे हैं। सदन के कार्य को शीघ्रता से सम्पन्न करने के लिये और कार्यवाही पर नियन्त्रण रखने के लिये गत कुछ वर्षों से विशेष नियमों का अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है। उदाहरण के लिये नियम समिति ने राष्ट्रपति ट्रूमन के ६५ सेन्ट प्रति घण्टा न्यूनतम वेतन विधेयक को दबा दिया और नियम समिति की कार्यनीति के फलस्वरूप ही

३ जनवरी १९४९ को "You may stall only 21 days" रूपी नियम स्वीकार किया गया।

प्रतिनिधि सभा में पार्टियों की एजेन्सियाँ

अध्यक्ष और समितियों के अतिरिक्त प्रतिनिधि सभा में कुछ गैर सरकारी एजेन्सियाँ भी हैं जो दलों के साधन के रूप में सदन के वास्तविक सगठन में और उसके नित्य प्रति के कार्य सचालन में विशेष सहायक होती हैं। ऑग और रे के मतानुसार यह एजेन्सियाँ सदन की "अदृश्य सरकार" होती हैं। बहुमत और अल्प सख्यक पार्टियों के (१) अन्तरग मण्डल (caucus) या सम्मेलन, (२) सचालन समिति, (३) सदन के नेता, और (४) सचेतक ही यह एजेन्सियाँ हैं। यह पूर्णतया पार्टी-एजेन्सियाँ हैं चाहे बहुमत प्राप्त पार्टी की हों या अल्पमत प्राप्त पार्टी की और इनके द्वारा ही कोई पार्टी किसी समय सदन पर नियन्त्रण रखती है और उसका प्रबन्ध करती है।

अन्तरंग मण्डल या सम्मेलन

पार्टी के अन्तरग मण्डल (caucus) में [रिपब्लिकन कांग्रेस सदस्य इसे सम्मेलन (conference) कहना अधिक पसन्द करते हैं] दल के सब प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। बहुसख्यक और अल्पसख्यक दोनों दलों के अपने अलग-अलग अन्तरग मण्डल होते हैं। अन्तरंग मण्डल की बैठक तभी होती है जब या तो उसका अध्यक्ष बैठक बुलाये या पार्टी का नेता या मण्डल के सदस्यों का एक दल बैठक बुलाने का अनुरोध करे। अन्तरग मण्डल की प्रमुख बैठक नयी प्रतिनिधि सभा के सगठन के पूर्व होती है। यह मण्डल (१) उन अधिकारियों की सूची (जिनमें अध्यक्ष भी शामिल है) तैयार करता है जिसको सदन निश्चय ही स्वीकार कर लेता है, (२) सदन के नेता, सचालन समिति और सचेतकों को मनोनीत करता है, (३) अपनी 'समितियों की समिति' की सहायता से सभी स्थायी समितियों के बहुसख्यक सदस्यों और इनके अध्यक्षों को मनोनीत करता है, यद्यपि इनकी नियुक्ति सदन द्वारा निर्वाचित होने पर ही निर्भर करती है, (४) विचाराधीन विधेयकों पर पार्टी की नीति निर्धारित करता है, (५) यह विचार करता है कि सदन के नियमों में सशोधन वांछित है या नहीं, और (६) साधारण रूप से पार्टी में अनुशासन बनाये रखने का प्रयत्न करता है। वास्तव में महत्वपूर्ण समितियों के बहुसख्यक दल के सदस्यों को यह निर्देश दिया जा सकता है कि समितियों की रिपोर्ट सदन में प्रस्तुत होने के पूर्व वह बहुसख्यक पार्टी के अन्तरग मण्डल के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिये। इस बात पर पहिले ही निर्णय कर लिया जाता है कि किन प्रस्तावों का समर्थन करना है और किनका विरोध और किन प्रस्तावों को वाद विवाद के लिये प्रस्तुत ही न होने देना है।

यह सब कार्य गुप्त रूप से सम्पन्न किये जाते हैं क्योंकि अन्तरग मण्डल वैधानिक सरकार का अग नहीं है। परन्तु १६३३ से अन्तरग मण्डल के अधिकार और उनका प्रभाव घट रहा है, और सदन के नेता (floor leaders) तथा सचालन समिति उसका स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं।

अन्तरग मण्डल सचालन समिति (Steering Committee) और सदन के नेता की सहायता से कार्य करता है। सचालन समिति का पार्टी की नीति और पार्टी के महत्वपूर्ण कार्यक्रम से सम्बन्ध होता है। डेमोक्रेटिक-

सचालन समिति

समिति में साधारणतया सदन के ५ या ६ नेतागण और देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले १५ सदस्य होते हैं। रिपब्लिकन समिति का सगठन भी इस प्रकार का है यद्यपि नियम समिति के सभी रिपब्लिकन सदस्य संचालन समिति के भी सदस्य होते हैं। १६४७ में रिपब्लिकन सचालन समिति में (रिपब्लिकन) समितियों की समिति द्वारा चुने हुए १० सदस्य और नियम समिति के ८ रिपब्लिकन सदस्य शामिल थे। इनके अतिरिक्त चार पदेन (ex-officio) सदस्य थे। इस प्रकार इस समिति में कुल २२ सदस्य थे और सदन का नेता इसका अध्यक्ष था। वास्तव में सचालन समिति पार्टी के अन्तरंग मण्डल की कार्यकारिणी समिति होती है। यह पूर्णतया गैरसरकारी सस्था है, सदैव गुप्त रूप से कार्य करती है, कांग्रेस की स्थिति को सदा अपने नियन्त्रण में रखती है और अनेक उपायों से सदन का कार्यक्रम निर्धारित करने में अपना प्रभाव डालती है।

सदन में स्पीकर के उपरान्त दूसरा महत्वपूर्ण व्यक्ति सदन में बहुसख्यक पार्टी का नेता (Majority floor leader) होता है जिसका प्रभाव स्पीकर के प्रभाव से किसी प्रकार कम नहीं होता। यह पार्टी के अन्तरग मण्डल या सम्मेलन द्वारा चुना जाता है और संचालन समिति के निर्देशों के अन्तर्गत कार्य करता है जिसका कि यह स्वय अध्यक्ष होता है। इस व्यक्ति पर ही पार्टी के हितों की रक्षा करने का उत्तरदायित्व होता है इसलिये वह इस बात का प्रयत्न करता है कि बहुसंख्यक दल के सदस्यों की विचारधारा से निरन्तर सूचित रहे। वही सदन में वाद विवाद का अनुक्रम निर्धारित करता है, ससदीय समस्याओं को सुलझाने में अध्यक्ष की सहायता करता है, साथ ही सदन के कार्यक्रम को शीघ्रता से सम्पन्न कराने में और बहुसख्यक पार्टी के विधान निर्माण कार्यक्रम में किसी प्रकार के हस्तक्षेप को रोकने में अध्यक्ष की सहायता करता है। यह सचेतकों (Whips) के कार्यों का निर्देशन करता है, अल्पसख्यक दलों के सदन के नेताओं से कार्यविधि तथा अन्य

सदन में बहु सख्यक पार्टी का नेता

समस्याओं के सम्बन्ध में परामर्श करता है और आवश्यकता पड़ने पर अपनी पार्टी के सदस्यों के अन्तरंग मण्डल या सम्मेलन की बैठक बुलाता है।

प्रत्येक पार्टी का एक ऐसा सदस्य होता है जो सचेतक (Whip) कहलाता है। बहुसंख्यक पार्टी का सचेतक यदि रिपब्लिकन है तो उसकी नियुक्ति उसकी पार्टी की 'समितियों की समिति' करती है और यदि डेमोक्रेट है तो सदन का नेता उसकी नियुक्ति करता है। वह अपने सहायकों के रूप में एक दर्जन या उससे भी अधिक सहायक सचेतकों को नियुक्त कर सकता है। यह सब अपनी पार्टी की सेवा करते हैं। इनका मुख्य कार्य यह व्यवस्था करना होता है कि जब किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर मतदान लिया जा रहा हो उस समय पार्टी के सभी सदस्य उपस्थित रहें। यह सदन के नेता और अध्यक्ष के पथप्रदर्शन के लिये सदस्यों से विचार विमर्श कर समस्याओं तथा नीतियों पर उनका मत जानते रहते हैं।

सचेतक

प्रतिनिधि सभा के अधिकार और कार्य

आरम्भ में ही यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अधिकार विभाजन सिद्धान्त के फलस्वरूप ब्रिटेन की संसद और अमेरिकी कांग्रेस के अधिकारों और कार्यों में महान् अन्तर पाया जाता है। ब्रिटेन की संसद की भाँति अमेरिकी कांग्रेस न परिवेदनाओं को प्रकट करने की संस्था है और न मन्त्रिमण्डलों को बनाने बिगाड़ने की शक्ति उसको प्राप्त है, न शासन का उत्तरदायित्व ही यह वहन करती है। वास्तव में यह विचार ही अधिकारों के प्रथक्करण सिद्धान्त के विपरीत है जिसका अमेरिकी राष्ट्रपति प्रणाली प्रतिनिधित्व करती है।

इसलिए कांग्रेस मूलतः राष्ट्रीय सरकार) में विधान-निर्मात्री अंग है और कानून बनाने के इस कार्य में, जैसा पहिले कहा जा चुका है, उसके दोनों सदनों (प्रतिनिधि सभा और सिनेट) को बराबर अधिकार प्राप्त हैं और दोनों का बराबर उत्तरदायित्व है। परन्तु ब्रिटेन की संसद और अमेरिकी कांग्रेस में एक और भिन्नता है। ब्रिटेन की संसद एक सर्वप्रधान व सम्पूर्णसत्ताधारी संस्था है परन्तु अमेरिकी कांग्रेस एक प्रभुसत्ता प्राप्त विधान मण्डल नहीं है, उसके अधिकार सीमित हैं। वास्तव में उसे अनेक सीमाओं के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। उस पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हैं। एक प्रतिबन्ध तो संविधान के संघीय रूप के कारण लग गया है, वह केवल उन्हीं अधिकारों का उपयोग कर सकती है जिनका संविधान में स्पष्ट उल्लेख किया गया है और उनको लागू करने के लिये निर्धारित आवश्यक और उपयुक्त साधनों का ही उपयोग कर सकता है। मोगन ने लिखा है कि "बहुत कुछ सामग्री का तो राज्य ही उपयोग कर लेते हैं और मुख्यतः ऐसे

राजनीतिक कार्यक्रमों और कोलाहलपूर्ण सामग्री को संघीय सरकार द्वारा प्रयुक्त किये जाने के लिये छोड़ दिया जाता है जो आसानी से नहीं पचाई जा सकती। शिक्षा और कोमल भावनाओं पर उसके प्रभाव पर दीर्घ तथा उत्तेजक विवाद कांग्रेस के लिये नहीं होते और न ही मजदूरों के लिये साधारण कानूनों का निर्माण कार्य कांग्रेस के लिये छोड़ा जाता है"।

अमेरिकी संघीय संविधान की एक दूसरी विशेषता अर्थात् संविधान की सर्वोपरिता तथा न्याय विभाग की सर्वोच्चता से भी एक और प्रतिबन्ध की सृष्टि हुई है। वह यह कि कांग्रेस के व्यवस्थापिका अधिकार असीमित नहीं हैं, उसे केवल वही अधिकार प्राप्त हैं जो उसे संविधान के अन्तर्गत दिये गये हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कांग्रेस विधान निर्माण के जिस अधिकार का भी प्रयोग करती है वह संविधान की किसी न किसी धारा पर आधारित होना चाहिये अन्यथा जो भी कानून बनाया जायगा वह उच्चतम न्यायालय द्वारा उस सीमा तक अवैध घोषित कर दिया जा सकता है जिस सीमा तक वह संविधान की व्यवस्था का उल्लंघन करता है।

परन्तु सन्तोष का विषय है कि पहली धारा के आठवें अनुच्छेद में जिसमें संघीय विधान मण्डल के अधिकारों का वर्णन किया गया है उसमें वह सभी व्यापक अधिकार सम्मिलित हैं जिनकी एक आधुनिक विधान मण्डल को आवश्यकता हो सकती है और उनका वर्णन करने में जो भाषा प्रयुक्त की गई है वह उतनी लचीली है कि उसका कुछ भी अर्थ निकाला जा सकता है। इस सम्बन्ध में पहली धारा के आठवें अनुच्छेद की १८ वीं उपधारा विशेष महत्वपूर्ण है जिसके अन्तर्गत कांग्रेस को वह सभी कानून बनाने का अधिकार दिया गया है जो कांग्रेस के प्रदत्त अधिकारों अथवा संविधान द्वारा अमेरिकी सरकार को उसके किसी विभाग या किसी अधिकारी को दिये गये अधिकारों को लागू करने के लिये आवश्यक और उपयुक्त समझे जायें। इस उपधारा को प्रसिद्ध गर्भित शक्ति सिद्धांत की जननी माना गया है। और इसमें सन्देह नहीं कि चीफ जस्टिस मार्शल तथा अन्य न्यायाधीशों ने संविधान की "रचनात्मक व्याख्या" करके कांग्रेस के अधिकार क्षेत्र का विशाल रूप से विस्तार किया और साथ ही संघीय सरकार के कार्य क्षेत्र का प्रसार करने में भी सहायता की।

संविधान के अन्तर्गत कांग्रेस को जो अधिकार दिये गये हैं वह देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, लगभग सभी व्यापक क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं। उनका सम्बन्ध शासन-संगठन और शासन कार्य, संघीय न्यायालयों के संगठन और उनके अधिकार क्षेत्र, वित्त, वाणिज्य और व्यापार, श्रम, कृषि, संरक्षण,

स्वास्थ, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा, सामाजिक-सुरक्षा तथा अन्य अनेक विषयों से है। उनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है —

(१) कांग्रेस को कर (tax), चुंगी (duties), शुल्क (imposts) और अन्त शुल्क (excise) लगाने और वसूल करने, ऋण भुगतान करने, और संयुक्त राज्य अमेरिका की सुरक्षा और सार्वजनिक कल्याण की व्यवस्था करने का अधिकार है, परन्तु सभी चुंगी, शुल्क और अन्त शुल्क समस्त संयुक्त राज्य के लिये समान होंगे।

(२) संयुक्त राज्य की साख (credit) पर ऋण लेने का अधिकार।

(३) विदेशी राज्यों से, सघातरित राज्यों में परस्पर, तथा इंडियन आदिवासियों के साथ व्यापार सचालन का अधिकार।

(४) नागरिकता प्रदत्त करने वाला दिवालियेपन के सम्बन्ध में समस्त संयुक्त राज्य के लिये समान विधियों के निर्माण का अधिकार।

(५) मुद्रा ढालने, उसका मूल्य तथा विदेशी मुद्रा की विनिमय दर तथा माप और तौल के प्रमाणिक मापदण्ड को निर्धारित करने का अधिकार।

(६) संयुक्त राज्य की सीक्योरिटीज तथा प्रचलित मुद्रा को जाली ढंग से बनाने के अपराध में दण्ड की व्यवस्था करने का अधिकार।

(७) डाकखानों तथा मार्गों (Post Roads) की स्थापना का अधिकार।

(८) लेखकों और आविष्कारकों को नियत काल के लिये अपनी-अपनी कृतियों तथा आविष्कारों पर एकाधिकार देकर, विज्ञान और उपयोगी कलाओं की प्रगति को प्रोत्साहन देने का अधिकार।

(९) उच्चतम न्यायालय से निम्नतम श्रेणी के संघीय न्यायालयों की स्थापना का अधिकार।

(१०) खुले समुद्र (High seas) पर किये गये महा अपराधों (felonies) समुद्री डकैतियों (piracies) तथा अन्तराष्ट्रीय कानूनों के विरुद्ध किये गये अपराधों को निर्धारित तथा दण्डित करने का अधिकार।

(११) युद्ध की घोषणा करने, निजी जहाजों को समुद्र में अन्य राष्ट्रों के जहाजों से क्षतिपूर्ति करवाने के लिये आवश्यक प्रतिशोधपत्र (Letters of Marque and Reprisals) देना और भूमि तथा समुद्र पर परिग्रहण (captures) सम्बन्धी नियम बनाना।

(१२) सेना के संगठन तथा उसके भरण पोषण का प्रबन्ध करने का अधिकार। परन्तु इस सम्बन्ध में व्यय की कोई भी स्वीकृति दो साल से अधिक के लिये नहीं होगी।

(१३) नौ सेना की व्यवस्था तथा उसका भरण पोषण करना।

(१४) जल और स्थल सेना के सचालन तथा उसके प्रशासन के निमित्त नियम बनाने का अधिकार।

(१५) सघीय सरकार की विधियों को कार्यान्वित करने, आन्तरिक विद्रोहों का दमन करने तथा बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा करने के लिए नागरिक सेना (militia) की व्यवस्था करने का अधिकार।

(१६) नागरिक सेना का सगठन करने, उसको सशस्त्र करने तथा उसको अनुशासनबद्ध करने की व्यवस्था करना, साथ ही उसके उस भाग का नियन्त्रण भी करना जो सयुक्त राज्य अमेरिका की सेवा के लिए प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु इस सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति और सेना के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना विभिन्न राज्यों का कार्यक्षेत्र है यद्यपि यह कार्य उन्हें कांग्रेस द्वारा निर्धारित अनुशासन सहिता के अनुकूल ही करना पड़ता है।

(१७) ऐसे प्रदेश के लिए कानून बनाना (जिसका क्षेत्रफल १० वर्गमील से अधिक न हो) जो किसी राज्य द्वारा अभ्यर्पण (cession) कर देने से और कांग्रेस की स्वीकृति से सयुक्त राज्य सरकार की राजधानी बन जाये। इसके अतिरिक्त दुर्गों, शस्त्रागारों, बारूदखानों, जहाजी घाटों (dockyards) तथा अन्य आवश्यक इमारतों के निर्माण के लिए राज्य के विधान मडल की स्वीकृति से जो स्थान खरीदे जाते हैं उनके लिए कानून बनाना।

(१८) उपर्युक्त अधिकारों को, सविधान द्वारा सरकार को प्रदत्त अन्य अनेक अधिकारों को और सरकार के किसी भी विभाग या उसके किसी भी अधिकारी को दिये गये अधिकारों को लागू करने के लिये आवश्यक और उपयुक्त कानून बनाना।

इनके अतिरिक्त कांग्रेस प्रशासन पर भी कई प्रकार से नियन्त्रण रखती है और साथ ही परराष्ट्र नीति के संचालन में भी उसका हाथ होता है। कानूनों द्वारा (statutes) नये विभागों, कार्यालयों, आयोगों और एजेन्सियों का निर्माण कर और छोटी छोटी बातों तक में उनकी कार्रवाई को नियन्त्रित कर यह प्रशासन पर अपना प्रभुत्व रखती है। दूसरे, राज्य की अनेक कार्रवाइयों के लिए आवश्यक धन अनुदान की स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार होने के कारण इसका सरकार पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता है यहाँ तक कि प्रशासकीय नीतियों को निर्धारित करने में भी यह प्रभावशाली होती है। तीसरे, (यह अधिकार अन्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है) इसे किसी विभाग के लिए धन अनुदान स्वीकृत करने से पूर्व यह जाँच करने का पूरा अधिकार है कि गत वर्ष जो रुपया स्वीकृत हुआ था वह किस प्रकार व्यय किया गया। किसी नयी योजना के लिए रुपया स्वीकृत करने से पूर्व इसे यह निर्णय करने का भी अधिकार है कि उस योजना की

आवश्यकता भी है या नहीं। इस कार्य के लिए यह आंकडे एकत्रित करती है, अनेक प्रकार की रिपोर्टें प्राप्त करती है और यही इसके अन्वेषण अधिकार का आधार है। शासन विभागों की जाँच करने के लिए, नये कानून का निर्माण करने के हेतु आंकडे एकत्रित करने के लिए और अन्य किसी ऐसे कार्यों के लिए जिन्हे यह आवश्यक और वांछित समझती है कांग्रेस को समय समय पर आयोग की स्थापना करने का अधिकार है।

पूर्व अध्याय में यह बताया जा चुका है कि सिनेट का संयुक्त राज्य अमेरिका के परराष्ट्र सम्बन्धों का सचालन करने का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है क्योंकि यह राष्ट्रपति द्वारा की गई सभी नियुक्तियों की पुष्टि करती है और राष्ट्रपति द्वारा आयोजित सभी सधियों वार्तालाप को दो-तिहाई बहुमत द्वारा स्वीकार कर उनकी सपुष्टि करती है। परन्तु प्रतिनिधि सभा सिनेट के साथ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कुछ सीमा तक अमेरिका की परराष्ट्र नीति निर्धारित कर सकती है, विशेषकर युद्ध के लिए धन अनुदान स्वीकृत करने के अपने अधिकार के द्वारा यह निश्चित कर सकती है कि किसी समय अमेरिका युद्धरत होगा या नहीं। इसमें सदेह नहीं कि धन अनुदान स्वीकृत करने का अधिकार कांग्रेस के हाथ में सबसे महत्वपूर्ण शस्त्र है जिसके द्वारा यह घरेलू तथा विदेशी राजनीति को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस देशान्तर वास (Immigration) को नियमित कर सकती है, विदेशों में वाणिज्य दूतों और राजदूतों के पदों का स्थापना कर सकती है और अन्तर्राज्यिक तथा वैदेशिक व्यापार एवम् वाणिज्य नियमित करने के अपने अधिकार के द्वारा यह न केवल अमेरिका की वाणिज्य नीति बल्कि परराष्ट्र नीति को भी निर्धारित कर सकती है क्योंकि आधुनिक युग में वाणिज्य और राजनीति एक दूसरे से इतने सम्बन्धित हो गये हैं कि वह एक ही विषय के दो दृष्टिकोण प्रतीत होते हैं। सिनेट के विशेष शासनाधिकारों की चर्चा पहिले की जा चुकी है। सविधान में प्रतिनिधि सभा को भी सिनेट की भाँति तीन महत्वपूर्ण और विशेष कार्य सौंपे गये हैं

(१) राजस्व विधेयक केवल प्रतिनिधि सभा में ही प्रारम्भ हो सकते हैं।
(२) यदि चुनाव में राष्ट्रपति पद के लिए किसी उम्मेदवार को कुल निर्वाचक मतों का पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ तो प्रतिनिधि सभा ही राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है, और
(३) देशद्रोह, घूसखोरी, भ्रष्टाचार तथा अन्य अपराधों के आरोप में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और अन्य सार्वजनिक कर्मचारियों के विरुद्ध महाभियोग चलाने का अधिकार हाउस को ही है।

परन्तु इन सब के होते हुए भी सविधान द्वारा बनाये हुए कांग्रेस के

अधिकारों पर अनेकों प्रतिबन्ध हैं। (१) १८०८ के पूर्व ऐसे व्यक्तियों के देशान्तर गमन या आयात को जिनका कोई वर्तमान राज्य उचित समझता है कांग्रेस वर्जित नहीं कर सकती परन्तु इस प्रकार के प्रवेश पर एक कर लगाया जा सकता है जो प्रति व्यक्ति पर १० डालर से अधिक नहीं होना चाहिये।

कांग्रेस के अधिकारों पर प्रतिबन्ध

(२) बन्दी उपस्थापन (Habeas Corpus) के विशेषाधिकार से तब तक किसी को वंचित नहीं किया जा सकता जब तक कि विद्रोह या बाह्य आक्रमण की स्थिति में यह सार्वजनिक सुरक्षा के लिये आवश्यक न हो।

(३) कोई सर्वाहरण नियम (Bill of Attainder) तथा घटनोपरान्त कानून (Ex-post facto law) पारित नहीं किया जा सकता।

(४) कोई प्रतिशीर्ष (capitation) या अन्य प्रत्यक्ष कर नहीं लगाया जा सकता जब तक यह जन गणना के अनुपातानुसार न हो। परन्तु १६वें संशोधन द्वारा यह उपधारा रद्द कर दी गई।

(५) किसी अन्य राज्य से निर्यात किये गये माल पर कोई कर नहीं लगाया जा सकेगा।

(६) किसी राज्य के बन्दरगाह को अन्य राज्य के बन्दरगाह की अपेक्षा किसी वाणिज्य या राजस्व व्यवस्था के द्वारा कोई उत्कृष्टता नहीं दी जायेगी और किसी राज्य से जाने वाले या राज्य को आने वाले किसी भी जहाज को दूसरे राज्य के बन्दरगाह में जाने, माल उतारने या शुल्क चुकाने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा।

(७) कानून के द्वारा स्वीकृत व्यय विनियोग की व्यवस्था के अतिरिक्त कोष से कोई रुपया व्यय नहीं किया जा सकता, साथ ही आय और व्यय का नियमित विवरण और लेखा समय-समय पर प्रकाशित किया जायेगा।

(८) संयुक्त राज्य अमेरिका की ओर से कुलीनता सूचक कोई उपाधि नहीं दी जा सकती, और उसके अधीन विश्वसनीय तथा लाभप्रद पदों के अधिकारी कांग्रेस की अनुमति के बिना किसी राजा, या राजकुमार या विदेशी राज्य से न किसी प्रकार की कोई भेंट स्वीकार कर सकते हैं न वेतन ले सकते हैं और न कोई पद या उपाधि ही स्वीकार कर सकते हैं।

परन्तु इन सब प्रतिबन्धों के होते हुए भी कांग्रेस के अधिकार विशाल और व्यापक हैं जिनके कारण यह राष्ट्रीय इच्छा को प्रकट करने का साधन हो गई है। इसके अतिरिक्त रीति, रिवाज, परम्परा, कानूनों और न्यायालय के निर्णयों

से और सामाजिक प्रगति, राजनीतिक आवश्यकता, आर्थिक मागों, वैज्ञानिक खोज और आविष्कारों के प्रभाव से यह अधिकार इतने विस्तृत हो गये हैं कि केवल संविधान से ही कांग्रेस के अधिकार और इसके कार्य क्षेत्र का ठीक ठीक ज्ञान नहीं हो सकता है।

सदन की कार्य पद्धति

कांग्रेस का मुख्य कार्य ऐसे विधेयकों और प्रस्तावों को पारित करना है जिनका उद्देश्य नये कानून बनाना या वर्तमान नियमों में संशोधन करना, या उनका स्पष्टीकरण करना या उन्हें अधिक सुगठित बनाना या किसी कार्य के लिए व्यय विनियोग की स्वीकृति देना, अधिकार प्रदान करना, नियम बनाना, निर्देशन देना या केवल किसी प्रश्न पर मत या नीति घोषित करना होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि उस प्रक्रिया का विवरण किया जावे जिसके अनुसार कांग्रेस अपना कार्य करती है।

अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक कांग्रेस के दो वर्ष के कार्यकाल में लगभग १० हजार विधेयक तथा प्रस्ताव प्रस्तुत होते हैं। उदाहरणार्थ, ८२ वीं कांग्रेस (१६५१ १६५२) में हाउस में ८५६८ और सिनेट में ३४६४, कुल मिला कर १२,०६२ विधेयक तथा प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये। इनमें से लगभग दो हजार विधेयक ऐसे होते हैं जिनका सम्बन्ध सवसाधारण से न होकर किसी वर्ग विशेष अथवा स्थान विशेष से होता है। इसलिए इनको हम विशिष्ट विधेयक (Private Bills) कहते हैं। शेष विधेयक सार्वजनिक होते हैं अर्थात् यह सारे देश पर और सब व्यक्तियों पर लागू होते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि अमेरिका में ब्रिटेन की भाँति सरकारी विधेयक (Government Bill) और गैर सरकारी अथवा व्यक्तिगत सदस्यों के विधेयक (Private Member's Bill) में कोई अन्तर नहीं होता क्योंकि अमेरिका में मन्त्रिमण्डल के सदस्य कांग्रेस में स्वय कोई विधेयक प्रस्तुत नहीं कर सकते और न ही वह किसी विधेयक का सदन में उपस्थित होकर समर्थन या विरोध ही कर सकते हैं। अत अमेरिका में सभी विधेयक गैर सरकारी या व्यक्तिगत सदस्यों के विधेयक होते हैं, परन्तु इनको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) साधारण विधेयक, और (२) वित्तीय विधेयक। सब विधेयक सार्वजनिक होते हैं।

यदि कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में कोई विधेयक प्रस्तुत किया गया है तो फिर उसे दूसरे अधिवेशन में या विशेष अधिवेशन में पुन प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु एक नयी कांग्रेस के निर्वाचनोपरान्त यह सब विधेयक जो पहिली कांग्रेस में प्रस्तुत किये गये हों परन्तु कानून न बन पाये हों रद्द हो जाते

हैं। कांग्रेस के एक अधिवेशन में अनुमानत. २००० प्रस्ताव वास्तव में कानून का रूप धारण कर पाते हैं।

इनके अतिरिक्त कांग्रेस अनेक प्रकार के प्रस्तावों पर भी विचार करती है

(१) संयुक्त प्रस्ताव—यह अधिकतर किसी कानून की अवधि बढ़ाने के लिये उपयोग में लाये जाते हैं। यह लगभग विधेयक के समान ही होते हैं और स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं।

(२) सगामी प्रस्ताव (concurrent resolution)—इनका सम्बन्ध कांग्रेस के आन्तरिक संगठन से होता है या वह किसी प्रश्न पर सम्मति प्रकट करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। इनके लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है।

(३) प्रतिनिधि सभा या सिनेट के साधारण प्रस्ताव—इन प्रस्तावों का उद्देश्य एक सदन की नीति या उद्देश्यों की घोषणा करना होता है, इनकी विषय वस्तु भी सगामी प्रस्तावों के समान ही होती है।

इन विभिन्न प्रकार के प्रस्तावों को पारित करने में लगभग समान विधि का पालन किया जाता है जिस पर अब विचार किया जायेगा।

प्रतिनिधि सभा का कोरम पूरा हो जाने पर (जिसके लिये सदन के आधे से अधिक अर्थात कम से कम २१६ सदस्य होने चाहियें), प्रार्थना और पिछली कार्रवाई की रिपोर्ट पढ़े जाने के उपरान्त सदन की कारवाई आरम्भ होती है।

विधेयक का जीवन उसके "उपक्रमण" करने से (introduction in the House) आरम्भ होता है। विधेयक चाहे सार्वजनिक हो या विशेष (private)

विधेयक प्रस्तुत करना

प्रतिनिधि सभा में इस अवस्था में आवश्यकता केवल इस बात की होती है कि विधेयक की एक प्रति जिसमें प्रस्तुतकर्ता का नाम लिखा हो क्लर्क की मेज पर रखे सन्दूक में डाल दी जाय, सिनेट में इसके अतिरिक्त एक और रस्म अदा करनी पड़ती है। वहाँ विधेयक सचिव को देने से पहिले अध्यक्ष की स्वीकृति लेनी पड़ती है। अधिक विशद सार्वजनिक विधेयक तो साधारणतया सबधित समितियों द्वारा तय्यार व प्रस्तुत किये जाते हैं परन्तु अधिकांश विधेयकों का उद्गम व प्रेरणा स्रोत स्वय राष्ट्रपति या कोई प्रशासकीय विभाग होता है जो कभी कभी तो विधेयक का प्रारूप तक तैयार करते हैं। यह सत्य है कि शासन विभाग का कोई सदस्य स्वय सदन में विधेयक प्रस्तुत नहीं कर सकता है, परन्तु किसी सिनेटर, प्रतिनिधि सभा के सदस्य या समिति के द्वारा यह कार्य बड़ी सरलता से कराया जा सकता है। १६२६ में राबर्ट लूस ने, जो अनेक वर्षों तक प्रतिनिधि सभा के सदस्य रहे और जो सदन की कार्य विधि में प्रवीण थे, अनुमान लगाया कि कम से कम आधे विधेयक

सूत्रों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं और १९४० में श्री लूस ने घोषित किया कि प्रतिनिधि सभा में प्राय कोई भी ऐसा महत्वपूर्ण विधेयक पास नहीं किया जाता जो प्रशासन के निर्देशों के अनुसार न हो या जिसके लिये राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति प्राप्त न कर ली गई हो।

अन्य विधेयक साधारण काग्रेस सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं यद्यपि अनेक बार यह देखा गया है कि वह स्वयं इस विधेयक के रचयिता नहीं होते बल्कि किसी व्यक्ति, व्यापारिक मंडल, श्रम सगठन, फार्म सघास, सुधार समिति या अन्य निहित (vested) स्वार्थों की ओर से वह यह विधेयक प्रस्तुत करते हैं, इन मडलों, व्यक्तियों या सगठनों का सरकार से कोई सबध नहीं होता परन्तु ये अपने स्वार्थ पूर्ति के हेतु काग्रेसी सदस्यों से इच्छित विधेयकों को प्रस्तुत कराने मे सफल होते हैं। अपने निर्वाचकों, मित्रों, लॉबिस्ट (lobbyists) तथा महत्वपूर्ण व आकाक्षी व्यक्तियों व समुदायों को प्रसन्न करने की दृष्टि से और साथ ही समाचार पत्रों मे विधेयक के रचयिता के रूप में अपना नाम प्रकाशित देखने के लालच से बहुधा सिनेटर और विशेषकर प्रतिनिधि सभा के सदस्य तो प्राय कितने ही विधेयक प्रस्तुत करने को तैयार हो जाते हैं चाहे वह कितने ही हास्यास्पद और अनुचित क्यों न हों, या चाहे उन पर अच्छी तरह विचार भी न किया गया हो। यही कारण है कि काग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में प्रस्तुत होने वाले विधेयकों की सख्या इतनी अधिक बढ गई है यद्यपि १९४६ के ससदीय पुनस्सगठन कानून द्वारा विशेष-विधेयकों (private bills) पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं।

सदन में प्रस्तुत हो जाने पर प्रत्येक विधेयक को सदन की उपयुक्त स्थायी समिति को विचारार्थ भेज दिया जाता है। बहुधा इसी प्रकार का विधेयक काग्रेस के दूसरे सदन में भी प्रस्तुत कर दिया जाता है और प्रथम वाचन उपरान्त इसे भी उस सदन की उपयुक्त समिति के सुपुर्द कर दिया जाता है। साधारणतया यह कार्य एक अधिकारी करता है जिसे पार्लमेन्टेरियन कहते हैं परन्तु सदेह उत्पन्न होने पर सिनेट में प्रधान और हाउस में स्पीकर ही इस बात का निर्णय करता है कि कौन विधेयक किस समिति को सौंपा जाये। उनके निर्णय के विरुद्ध सदन से अपील की जा सकती है और साधारण बहुमत से निर्णय को रद्द किया जा सकता है। विशेष विधेयकों (Private bills) को स्वाभाविक ही उन समितियों को सौंप दिया जाता है जिनका नाम स्वय विधेयक का प्रस्तुतकर्ता विचारार्थ उपयुक्त समिति समझकर सुझाता है। कभी-कभी विधेयक को एक समिति के सुपुर्द करने के बाद भी वापस लिया जा सकता है और दूसरी समिति को सौंपा जा सकता है, परन्तु ऐसा बहुत कम होता है कि विधेयक को एक से अधिक समिति को सौंपा जाये। प्रस्तावित

समिति अवस्था

विधेयक को अनुकूल या विरोधी समिति के सुपुर्द करके उसके भाग्य का निर्णय किया जा सकता है और इस प्रकार स्पीकर उस विधेयक को जीवन दान भी दे सकता है और उसको समाप्त भी करा सकता है। यदि विधेयक किसी विरोधी समिति के विचाराधीन है जहाँ से उसके रिपोर्ट होने की आशा न हो तो विधेयक का रचयिता या प्रस्तुतकर्ता प्रयत्न करके उसे किसी अन्य समिति को हस्तांतरित करा सकता है। ऐसा करने के लिए कभी-कभी तो पूर्ण विधेयक को नये सिरे से लिखना पड़ता है। इस कपट-युक्ति का एक उदाहरण १६४३ में मिलता है जब कि विवादग्रस्त स्मिथ कोनेली विधेयक को प्रतिनिधि सभा की श्रम समिति ने और सिनेट की शिक्षा तथा श्रम समिति ने रोक लिया और उस पर कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई। अतः उसके प्रारूप को इस प्रकार परिवर्तित कर दिया गया कि वह सभा की सैनिक समिति (Committee on military affairs) और सिनेट का न्यायपालिका समिति को जो कि उसके अनुकूल थी सौंपा जा सके।

यद्यपि प्रस्तुतकर्ता विधेयक को प्रस्तुत करते समय उसके संबंध में संक्षिप्त में कुछ कह सकता है परन्तु इस प्रारम्भिक स्थिति में उस पर कोई वाद विवाद नहीं हो सकता और विधेयक को तत्काल उपयुक्त समिति को भेज दिया जाता है। यदि विधेयक ऐसा है कि उसका किसी भी स्थायी समिति से संबंध नहीं है तो उस पर विचार करने के लिये एक प्रवर-समिति नियुक्त की जा सकती है।

समितियों की कार्य विधि में अन्तर होते हुए भी कुछ समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। अधिवेशन के आरम्भ में प्रत्येक समिति की एक या अधिक बैठक होती है जिनमें वह आगामी वर्ष के सम्भाव्य कार्यक्रम पर विचार करती है। प्रस्तावित तथा प्रत्याशित (anticipated) विधेयकों पर विचार करने के अतिरिक्त इस कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग उन समस्याओं की जाँच करना होता है जिनमें सदस्यों की अभिरुची हो। अस्थायी तौर पर यह निर्णय भी कर लिया जाता है कि किन विधेयकों को रोक लिया जाये और किन पर तत्काल ही गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये। यदि एक ही विषय पर समिति के समक्ष अनेक विधेयक हों तो यह निर्णय किया जाता है कि उनमें से विचार के लिये किसको प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

विधेयक प्राप्त होने पर समिति विधेयक की प्रकृति, उसकी आवश्यकता तथा उसके विषय और गुणों की जांच करती है और तत्पश्चात यह निर्णय करती है कि उस पर क्या कार्यवाई की जानी चाहिए। अधिकांश विधेयकों पर तो केवल सरसरी दृष्टि ही पर्याप्त होती है क्योंकि इस से उनकी निरर्थकता सिद्ध हो जाती है और वे सदैव के लिए समिति की फाइलों में बन्द होकर समाप्त हो जाते हैं। जो विधेयक विचार करने योग्य समझे जाते हैं समिति उन पर और अधिक खोज कर

रती है कि विधेयक सम्बन्धी विषय पर कानून की आवश्यकता है या अगर है तो प्रस्तुत विधेयक उस आवश्यकता को कहाँ तक पूरी कर समिति के अधिकतर सदस्य पहिले से ही विधेयक के विषय में बहुत कुछ जानते हैं और अन्य अनेक सूत्रों से वह उसके बारे में सूचना प्राप्त कर सकते हैं। सदस्य समिति के पुस्तकालय, कांग्रेस के पुस्तकालय (जिसमें लेजिस लेटिव रिफरैन्स सर्विस भी सम्मिलित होती है), कार्यालय की फाइलों, अपने कर्मचारियों, अन्य समितियों की रिपोर्टों, शासन विभाग द्वारा भेजे गये लेखों (Documents) और स्वार्थी प्रभाव-समुदायों (Pressure groups) द्वारा दी गई सामग्री का पूरा लाभ उठा सकते हैं। १९४६ के संसदीय पुनस्संगठन कानून के अन्तर्गत कांग्रेस की लेजिस्लेटिव रिफरेंस सर्विस को समितियों और कांग्रेस के अन्य सदस्यों की सहायता के लिये अधिक लाभदायक बनाने के हेतु पर्याप्त धन और आवश्यक कर्मचारियों की व्यवस्था की गई थी। इसी कानून के अन्तर्गत सभी समितियों को अनुसन्धान कार्य में सहायतार्थ चार सहकारियों तक की सहायता लेने का अधिकार प्राप्त है। प्रमाण और सूचना देने के लिए वह प्रशासन विभाग के कर्मचारियों और विशेष कर उनके अध्यक्षों को समिति के समक्ष उपस्थित होने का अनुरोध कर सकती है। वे स्वयं भी समिति के समक्ष उपस्थित होकर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकते हैं और लॉबिस्टस (Lobbyists) तो इस प्रकार सूचना देने का अवसर ही खोजते रहते हैं यद्यपि उनकी सूचना निष्पक्ष न होकर एकांगी होती है। अधिकांश विधेयक, विशेषकर वह जिनमें प्रशासन की अभिरुची होती है, ऐसे होते हैं जिनपर सदन में प्रस्तुत होने से पूर्व ही कांग्रेस की किसी विशेष समिति या आयोग द्वारा या किसी प्रशासकीय अभिकरण (Executive Agency) द्वारा काफी छान बीन हो चुकी हो। कभी कभी इस कार्य के लिए विशेष रूप से आयोग तथा समिति की स्थापना की जाती है। महत्वपूर्ण विधेयकों जैसे व्यय विनियोग विधेयक के प्रथम खंडों को समिति विस्तृत अध्ययन व विवरण (Report) के लिये अपनी उपसमितियों को सौंप सकती है।

अन्तिम, यदि विधेयक का किसी अत्यन्त विवादग्रस्त विषय से सम्बन्ध हो या उसका जनता के एक बड़े भाग पर गम्भीर प्रभाव पड़ता हो तो समिति उस पर सार्वजनिक सुनवाई (public hearing) भी कर सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि सम्बंधित व्यक्तियों तथा ऐसे संगठनों अथवा वर्गों के प्रवक्ताओं को जो कि विधेयक से प्रभावित होते हों या जिनसे कुछ उपयोगी सूचना प्राप्त होने का अनुमान हो यह अवसर दिया जाता है कि समिति के समक्ष उपस्थित होकर प्रमाण दे सकें और अपने तर्क वितर्क विधेयक के पक्ष या विरुद्ध में प्रस्तुत कर सकें और उस विषय पर समिति के सदस्यों को यथासम्भव सूचना दे सकें। समिति की

कार्रवाइ वास्तव में व्यवस्थापिका क्षेत्र मे न्याय-पालिका का रूपान्तर है। समिति के समक्ष हजारों व्यक्ति विधेयक के पक्ष या विपक्ष में प्रमाण देने के लिए उपस्थित होते हैं। इनमें से अधिकांश तो आर्थिक या अन्य संगठनों के प्रतिनिधि होते हैं जिनकी विधेयक के पास होने या न होने म अभिरुची होती है। यह अपने आग्रह को केवल समितियों की बैठकों तक ही सीमित नहीं रखते बल्कि प्रकोष्ठों में या अन्यत्र काग्रेस क सदस्यों से भेंट कर अपना दृष्टिकोण उन्हें समझाते हैं और उन्हें अपना समर्थक बनाने की भरपूर चेष्टा करते हैं। इसलिये इनको लाबिस्टस (Lobbyists) भी कहा जाता है यहाँ तक कि किसी विधेयक का समर्थन करने या विरोध करने के लिए या उसकी किसी उपधारा का समर्थन या विरोध करने के लिये वैतनिक न्यायवादियों को भी सेवा युक्त किया जा सकता है। बहुधा प्रशासनाधिकारी समिति की इन सुनवाइयों में प्रमुख भाग लेते हैं।

वास्तव में सूचना प्राप्त करन के लिए कांग्रेस की समितियाँ केवल इन्ही सुनवाइयां (hearings) तक ही सीमित नहीं रहती। विशेषकर अब सहायकों की सख्या और अनुसधान कार्य के लिए अनेक प्रकार की सुविधाओं में वृद्धि हो जाने के कारण महत्वपूर्ण विधेयकों पर साधारणतया विस्तार स अध्ययन किया जाता है। जब समिति विधेयक पर सक्रिय रूप से विचार करने लगती है तब जिन बातों पर सदेह रहता है उनके स्पष्टीकरण के लिये अतिरिक्त व विशेष अध्ययन की व्यवस्था भी की जाती है। कभी कभी सूचना प्राप्त करने के लिए विदेश भ्रमण आवश्यक हो सकता है। मार्शल योजना पर विवाद आरम्भ होने से पूर्व २०० से अधिक सदस्यों ने गर्मियों में इस प्रकार के सार्वजनिक कार्य क लिये विशेष यात्रा की। अधिकाश समितियों में अब कार्य विधि का यह नित्यक्रम बन गया है कि सभी गम्भीर तथा महत्वपूर्ण विधेयक अथवा प्रस्तावों को टीका तथा आलोचना के लिए शासन विभाग की उपयुक्त एजेन्सी को भेज दिया जाता है। इसके उत्तर में बहुधा एजेन्सी क उच्चाधिकारी अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिये या प्रश्नों का उत्तर देने के लिए व्यक्तिगत रूप से समिति के सम्मुख उपस्थित होत हैं।

अध्ययन अन्वेषण और सुनवाइ समाप्त हो जाने के पश्चात् समिति प्राप्त सामग्री पर एकान्त में विचार आरम्भ करती है और किसी परिणाम तक पहुँचकर अपनी रिपोर्ट और सिफारिशें सदन को भेज देती है चाहे वह सिफारिशें अनुकूल हों या प्रतिकूल या कुछ शर्तों के साथ हों। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि (१) वह विधेयक को बिना किसी सशोधन क सदन के समक्ष अपनी सहमति तथा इस सिफारिश सहित प्रस्तुत कर सकती है कि उसको मूल स्वरूप म पारित कर दिया जाये, (२) वह विधेयक को उसकी कुछ धारायें निकाल कर या नई

धारायें जोड़कर या उसकी भाषा में परिवर्तन कर उसे संशोधित रूप में प्रस्तुत कर सकती है, (३) संशोधन करते करते यह सौंपे गये विधेयक को समाप्त कर उसके स्थान में एक नये ही विधेयक की रचना कर उसको प्रस्तुत कर सकती है, (४) यह प्रस्तुत विधेयक के संबंध में कोई रिपोर्ट ही न दे अर्थात् उसको फाइलों में दबा कर रख दे। वास्तव में प्रस्तुत विधेयकों में से तीन-चौथाई या अधिक का यही अन्त होता है। वह समिति अवस्था ही पार नहीं कर पाते, या (५) समिति विधेयक के सम्बन्ध में अपनी प्रतिकूल राय तथा असहमति भी प्रकट कर सकती है। प्रायः ऐसा बहुत कम होता है।

पहली तीन स्थितियों में साधारणतया समिति की रिपोर्ट पर सदन द्वारा अनुकूल कार्यवाई होने की सम्भावना रहती है विशेषकर तब जब कि समिति सर्वसम्मति से अपने परिणाम तक पहुँची हो। इस प्रकार विधान निर्माण वास्तव में समिति या अनेक पृथक समितियों द्वारा किया जाता है और सदन केवल उसके निर्णयों की पुष्टि मात्र करता है। यह कहना सही है यद्यपि व्यंग सा प्रतीत होता है कि यह समितियाँ ही वास्तव में 'लघु विधान मंडल' हैं।

चतुर्थ समिति में अर्थात् उस स्थिति में जब समिति किसी विधेयक को सदन को वापस न भेजकर फाइल में बन्द कर देती है (pigeonhole) ताकि यह समिति में ही समाप्त हो जाय तो सदन उसकी सहायता कर सकता है। सदन अपने एक नियम (Discharge Rule) के अन्तर्गत अपनी कुल संख्या के बहुमत अर्थात् कम से कम २१९ सदस्यों के बहुमत से एक प्रस्ताव पारित कर के समिति से उस विधेयक के ऊपर रिपोर्ट भेजने की मांग कर सकता है। इस प्रकार विधेयक समिति के अधिकार क्षेत्र से निकालकर सदन के आधीन किया जा सकता है।

समितियों द्वारा विचाराधीन होने के पश्चात् उनकी रिपोर्ट सहित विधेयकों को पुनः सदन को लौटा दिया जाता है। यहाँ उनको तीन सूचियों (calendars) में से किसी एक सूची में जिस क्रम से वह आते हैं उसी क्रम से अंकित कर दिया जाता है। राजस्व, व्यय विनियोग और सार्वजनिक सम्पत्ति सम्बन्धी विधेयकों को संघीय सूची (Calendar of the Whole House on the State of the Union) में अंकित किया जाता है जिसे संक्षेप में 'यूनियन कलेन्डर' कहते हैं। निजी अर्थात् विशिष्ट विधेयकों (private bills) को 'सम्पूर्ण सदन की समिति के कलन्डर' (Calendar of the Committee of the Whole House) में रखा जाता है जिसे अधिक सुविधा के लिए 'प्राइवेट कलेन्डर' कहते हैं। अन्य सभी सार्वजनिक विधेयक सदन सूची (house calendar) में अंकित किये जाते हैं। विधेयकों का सूची में जो

विधेयकों का क्रम निर्धारण

स्थान होता है उसी के क्रमानुसार उन पर विचार किया जाता है परन्तु विधेयकों की संख्या इतनी अधिक होती है कि उन सब पर विचार करना सम्भव नहीं होता इसलिए परिणाम स्वरूप आवश्यक विधेयकों या ऐसे विधेयक जिनकी माग अधिक है या व्यय विनियोग विधेयकों को कार्यक्रम में उनके क्रम का ध्यान रखे बिना विचार के लिए चुन लिया जाता है।

निर्विरोध विधेयकों को एक सूची में अंकित कर दिया जाता है जिसे स्वीकृत सूची (consent calendar) कहते हैं। विशेष निर्धारित दिन इन विधेयकों के केवल शीर्षक पढ़ दिये जाते हैं और उन पर आपत्ति करने का एक अवसर दिया जाता है। जिन पर कोई आपत्ति नहीं की जाती उनको सामूहिक रूप से पारित किया जाता है। इस सूची के अन्तर्गत कोई भी विधेयक तभी सम्मिलित किया जा सकता है जब कि समिति ने सर्व सम्मति से उस पर रिपोर्ट प्रस्तुत की हो अर्थात् या तो उसे सभी ने स्वीकार किया हो या दोनों पक्ष के बहुत कम सदस्यों ने आपत्ति की हो। विशिष्ट विधेयकों और कोलम्बिया जिले से सम्बन्धित विधेयकों के लिये भी अलग अलग विशेष सूचियाँ (calendars) हैं परन्तु सिनेट में इस प्रकार की विस्तृत सूची प्रणाली नहीं है। लगभग २० स्थायी समितियाँ विधेयकों पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती हैं इससे सूचियाँ इतनी भर जाती हैं कि प्रति वर्ष सैकड़ों विधेयक बिना सदन द्वारा विचार किये सूचियों में ही समाप्त हो जाते हैं। उनको स्वीकृति अस्वीकृति का अवसर ही नहीं मिलता है और वह विचार या मतदान अवस्था तक पहुँच ही नहीं पाते।

यद्यपि सदन की कार्यवाई के लिये नित्यप्रति का कार्यक्रम निर्धारित कर दिया जाता है परन्तु उसका बहुत कम पालन हो पाता है। सर्वप्रथम कुछ दिन तो कुछ विशेष प्रकार के प्रस्थापनाओं (measures) पर विचार करने के लिये अधिरक्षित (reserve) कर दिये जाते हैं। परन्तु किसी भी समय पिछली कार्यवाइ की रिपोर्ट पढे जाने के पश्चात् यह प्रस्ताव रखा जा सकता है कि सारा सदन समिति के रूप में राजस्व या सामान्य व्यय विनियोग विधेयकों पर विचार आरम्भ करे। अनेक स्थायी समितियों को यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि वह जब चाहें अपनी रिपोर्ट सदन में प्रस्तुत कर सकती हैं और सदन से उन रिपोर्टों पर तत्काल विचार करने की माग कर सकती हैं। राष्ट्रपति द्वारा प्रेरित विधेयकों को भी विचारार्थ बहुधा प्राथमिकता दी जाती है। नियम समिति से किसी भी समय ऐसे आदेश प्राप्त हो सकते हैं जिनको स्वीकार करने पर सदन की कार्यवाइ की दिशा ही बदल सकती है। अंतिम, किसी विशेष दिन सदन का दो-तिहाई बहुमत नियमों को स्थगित कर सकता है और सारी निर्धारित कार्य विधि की अपेक्षा कर एक सेकिन्ड में विधेयक को पारित कर सकता है।

सम्पूर्ण सदन की समितियाँ दो प्रकार की होती हैं प्रथम समिति निशिष्ट (Private) विधेयकों पर विचार करती है और दूसरी समिति (Committee of the whole house on the State of the Union) राजस्व तथा व्यय विनियोग सम्बन्धी वित्तीय विधेयकों (Money Bills) तथा अन्य अनेकों प्रकार के सार्वजनिक विधेयकों पर विचार करती है। दोनों ही स्थितियों में यह समितियाँ वास्तव में प्रतिनिधि सभा ही रहती है परन्तु एक नये रूप में जिसमें अन्तर यह होता है कि (१) प्रतिनिधि सभा का स्पीकर इन समितियों का अध्यक्ष नहीं रहता बल्कि अपने स्थान पर वह किसी अन्य सदस्य को मनोनीत कर देता है, (२) कोरम बहुमत (२१६) से घटाकर १०० कर दिया जाता है, (३) वाद विवाद बहुत अनुपचारिक ढग से होता है और प्रत्येक सदस्य को अपने विचार प्रकट करने के लिए ५ मिनट का समय दिया जाता है, जब तक कि सर्व सम्मति से अधिक समय देने का निर्णय न किया जाय; (४) संगमरमर की वेदी पर से मेस (Mace) हटा दिया जाता है, (५) सदस्यों की नामावलि नहीं पढ़ी जाती क्योंकि इसमें बहुत समय नष्ट हो जाता है और मत संग्रह भी केवल मौखिक ढग से या संख्या निवेदकों (tellers) द्वारा किया जाता है, और (६) विधेयक को किसी अन्य समिति के सुपुर्द करने या उस पर विचार स्थगित करने के प्रस्तावों को प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जाती।

सम्पूर्ण सदन की समिति

जब विचार विमर्श हो चुकता है तो समिति अपनी बैठक भंग करने का निर्णय करती है और समिति का अध्यक्ष विधेयक की रिपोर्ट सदन के समक्ष प्रस्तुत करता है। समिति के निर्णय को वैधानिक रूप देने के लिए सदन द्वारा स्वीकृति प्रदान करना आवश्यक होता है। इस प्रकार विधेयक दूसरी वाचन अवस्था पार करता है।

अंतिम रूप से स्वीकृति होने के लिए विधेयक या संयुक्त प्रस्ताव के तीन वाचन (readings) होने आवश्यक होते हैं। लेकिन यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ब्रिटेन की संसद में द्वितीय और तृतीय वाचन में जो अन्तर होता है वह अमेरिका में नहीं पाया जाता। पहले वाचन में तो केवल शीर्षक ही पढ़ा जाता है। इस अवस्था में भी विधेयक का वाचन होना भी आवश्यक नहीं क्योंकि कांग्रेस के रेकार्ड में और जर्नल में उसके शीर्षक का प्रकाशन ही पर्याप्त समझ लिया जाता है। इसके उपरान्त विधेयक किसी न किसी समिति को सौंप दिया जाता है और यदि वहाँ से वापिस लौट आता है तो द्वितीय वाचन के लिए सदन की सूचियों में से किसी एक में अंकित कर दिया जाता है। अधिकांश विधेयकों पर द्वितीय वाचन सम्पूर्ण सदन की समिति के सम्मुख होता है। शेष पर यह प्रक्रिया स्वयं सदन में ही सम्पन्न हो

विधेयक के तीन वाचन

जाती है। परन्तु दूसरा वाचन सदन में हो या समिति मे इस अवस्था में विधेयक शब्दश पढ़ा जाता है। उसके पक्ष विपक्ष में भाषण दिये जाते हैं और उसकी धाराओं पर विस्तृत विवाद होता है। इस अवस्था में सशोधन भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं। यदि यह अवस्था सफलतापूर्वक पार हो जाती है तो विधेयक तीसरे वाचन के लिए अपने नये सशोधित रूप में पुन प्रकाशित किया जाता है। इस अवस्था में विधेयक शब्दश नहीं पढ़ा जाता, साधारणतया उसका केवल शीर्षक ही पढ़ कर सुना दिया जाता है। परन्तु सदस्य यदि चाहे तो उसके सम्पूर्ण वाचन की माग भी कर सकते हैं।

इस प्रकार विधेयक की यात्रा की अन्तिम अवस्था आती है। अब उस पर अन्तिम रूप से मतदान किया जाता है और यदि मतसग्रह का परिणाम उसके पक्ष में है तो स्पीकर के हस्ताक्षर होने के पश्चात् उसे दूसरे सदन अथवा सिनेट की स्वीकृति के लिये भेज दिया जाता है। सिनेट में जाकर पारित होने के लिए विधेयक को उन सब अवस्थाओं को पार करना पड़ता है जिनको पार करके वह हाउस से आया है अर्थात सिनेट में भी विधेयक प्रस्तुत किया जाता है, और इस प्रथम वाचन के उपरान्त उसे किसी समिति के सुपुर्द कर दिया जाता है, फिर रिपोर्ट अवस्था आती है और सूची अकन, द्वितीय वाचन और तृतीय वाचन के पश्चात् विधेयक अन्त में सिनेट द्वारा पारित होता है। स्पीकर की भाँति सिनेट का प्रधान भी उस पर अपने हस्ताक्षर कर उसकी अन्तिम क्रिया सम्पन्न करता है।

अब विधेयक या प्रस्ताव को कानून बनने के लिए केवल राष्ट्रपति के हस्ताक्षर की आवश्यकता है। यदि राष्ट्रपति उसे स्वीकार कर लेता है या दस दिन तक उस पर न हस्ताक्षर करता है और न ही उसे सदन को पुनर्विचार के लिये वापस भेजता है, या इस प्रकार वापस भेजे जाने पर विधेयक पुन कांग्रेस के दोनों सदनों द्वारा दो-तिहाई बहुमत से पास हो जाता है, तो वह सयुक्त राज्य अमेरिका का कानून बन जाता है।

यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि दोनों सदन अल्प सख्यकों के भाषण स्वातन्त्र्य के अधिकारों की रक्षा के लिए सदा सतर्क रहते हैं। प्रतिनिधि सभा में साधारणतया किसी प्रस्ताव अथवा विधेयक पर विवाद
कांग्रेस में विवाद के समय पक्ष और विपक्ष में बोलने वालों को बराबर समय देने की व्यवस्था की जाती है और सिनेट में तो कोई भी सदस्य पक्ष या विपक्ष में जितनी देर चाहे बोल सकता है। प्राय सिनेट में विवाद और भाषण की लगभग असीमित स्वतन्त्रता है। दोनों सदनों म प्रस्तुत विधेयक पर सशोधन प्रस्तुत करने के लिये सदस्यों को अवसर दिया जाता है यद्यपि प्रतिनिधि सभा मे इस प्रकार के सशोधन प्रस्तुत करने वालों को अपने प्रस्ताव के समर्थन

में विचार प्रकट करने के लिये नियमानुसार केवल ५ मिनट का समय दिया जाता है। किन्तु अधिक महत्वपूर्ण विधेयकों पर ही गम्भीर तथा उग्र विवाद होते हैं। उदाहरणार्थ प्रतिनिधि सभा ने १६४८ में ११६१ विधेयक तथा प्रस्ताव पास किये परन्तु केवल ६८ को छोड़कर शेष सभी विधेयकों पर कोई वाद विवाद नहीं हुआ। उन सब पर जो वाद विवाद हुआ उसकी रिपोर्ट कुल मिला कर कांग्रेस अभिलेख (Congressional Record) के केवल तीन पृष्ठों में ही समा गई। इससे यह सिद्ध होता है कि अधिकतर विधेयक तथा प्रस्ताव पक्षभागी या कम से कम विवादग्रस्त नहीं होते। इस प्रकार केवल कुछ ही विधेयकों अथवा प्रस्तावों पर विशद वाद विवाद होता है परन्तु फिर भी सदन को अपना कार्य समाप्त करने के लिए भाषण अधिकार को सीमित करना पड़ता है अत विविध प्रकार के समापन प्रस्ताव (closure motions) का प्रयोग करना पड़ता है। दो तिहाई बहुमत से सभी नियमों को स्थगित किया जा सकता है, बहुमत नियम समिति के वाद विवाद के समय को सीमित करने के आदेश को स्वीकार कर सकता है, अध्यक्ष ऐसे प्रस्तावों को प्रस्तुत करने की अनुमति देने से इन्कार कर सकता है जिनका उद्देश्य विलम्ब करना हो और 'प्रीवियस क्वेश्चन' प्रस्ताव के द्वारा विधेयक पर तत्काल मतदान लिया जा सकता है। परन्तु सिनेट में वाद विवाद पर प्रतिबन्ध लगाने में इतनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है कि ऐसे प्रस्ताव बहुत कम प्रस्तुत किये जाते हैं और उनमें से भी बहुत कम स्वीकृत हो पाते हैं क्योंकि इनके पारित होने के लिये यह आवश्यक है कि दो तिहाई उपस्थित सदस्यों की सहमति प्राप्त हो। १६१७ तक तो वास्तव में सिनेट में भाषण की असीमित स्वतन्त्रता थी परन्तु टिलमैन जैसे सदस्यों ने जब इसका दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया तो १६१७ में सिनेट ने यह नियम बनाया कि किसी भी समय वाद विवाद को रोकने के लिए १६ सदस्य एक समापन प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते हैं जिसपर दो दिन पश्चात मतदान होगा और यदि कुल संख्या के दो तिहाई सिनेटर उसके पक्ष में हुए तो उस विधेयक या प्रस्ताव पर विवाद समाप्त करना पड़ेगा। १६४६ के संशोधन के अनुसार इस प्रकार के समापन प्रस्ताव को स्वीकृत होने के लिये कुल निर्वाचित व शपथ ग्रहण किये हुये सदस्यों के दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु १६५६ में यह संशोधन स्वीकार किया गया कि दो तिहाई का अर्थ उपस्थित सदस्यों का ही दो-तिहाई होगा। दो तिहाई बहुमत पाना सरल काम नहीं इसलिये यह नियम भी फिलिबस्टिंग को रोकने में अधिक सफल न हो सका। समापन प्रस्ताव पारित हो जाने पर भी प्रत्येक सिनेटर एक घंटे तक उस विषय पर बोल सकता है।

एक सदन द्वारा किसी विधेयक को स्वीकृत कर लिये जाने के पश्चात् उसे

दूसरे सदन को स्वीकृति के लिये भेज दिया जाता है क्योंकि कानून बनने के लिये दोनों सदनों की स्वीकृति आवश्यक है। दूसरे सदन में उसे पुन उपयुक्त समिति के सुपुर्द कर दिया जाता है और फिर वही पूर्ण विधि सम्पन्न की जाती है जो पहिले सदन में सम्पन्न हो चुकी है।

सदनों में समझौता

बहुधा ऐसा होता है कि दूसरे सदन में भी वह या उसी के समान अन्य विधेयक पहिले ही से प्रस्तुत कर दिया जाता है जहाँ उस पर विधिवत विचार विमर्श आरम्भ हो जाता है। इस कार्य में एक सदन दूसरे के काम को हल्का करने की यथा सम्भव चेष्टा करता है। द्वितीय सदन पहिले सदन की समिति के सम्मुख हुई सुनवाई की रिपोर्ट की प्रतिलिपि मगवा सकता है। समितियों के अध्यक्षों की संयुक्त बैठक हो सकती है जिसमें विधेयक को शीघ्रता से पारित करने की योजना बनाई जा सकती है।

यदि विधेयक दोनों सदनों द्वारा एक ही रूप और समान आकार में स्वीकार कर लिया जाता है तो वह फिर हस्ताक्षर के लिये राष्ट्रपति के पास भेजे जाने के लिये तैयार हो जाता है। परन्तु यदि एक सदन द्वारा स्वीकृत विधेयक म दूसरा सदन कुछ परिवर्तन या सशोधन कर देता है तो पहिला सदन जिसमे वह विधेयक मूल रूप में प्रस्तुत किया गया था इन परिवर्तनों और सशोधनों को स्वीकार कर पारस्परिक अन्तर मिटा सकता है। परन्तु यदि किसी विधेयक पर दोनों सदनों में मतभेद हो (अर्थात एक के द्वारा प्रस्तावित सशोधन दूसरे को स्वीकार न हो) तो उसको दूर करने के लिये सम्मेलन समितियों (conference committees) का प्रयोग किया जाता है। यह दोनों सदनों म एक विशेष प्रकार की समिति होती है जिसमें उस स्थायी समिति के जिसको विवादग्रस्त विधेयक विचारार्थ सौंपा गया था तीन से नौ तक प्रमुख सदस्य होते हैं। इनकी नियुक्ति सदन के अध्यक्ष द्वारा होती है। दोनों सदनों के इन प्रतिनिधियों (मैनेजर) की बैठक को 'सम्मेलन समिति' कहा जाता है। यह समिति मतभेदों को दूर कर एक निश्चित समझौता करने का प्रयत्न करती है। यदि यह समिति समझौता कर सकने में असफल रहती है तो विधेयक भी असफल और रद्द हो जाता है। यदि समितियाँ समझौता करने में सफल होती हैं तो वह अपनी रिपोर्ट अपने अपने सदन को प्रेषित करती हैं। दोनों सदन इस रिपोर्ट को बिना किसी सशोधन के मूल रूप में स्वीकृत कर सकते हैं या सम्पूर्ण रिपोर्ट को अस्वीकृत भी कर सकते हैं। वास्तव में समिति का निर्णय प्राय स्वीकार कर लिया जाता है, यदि ऐसा नहीं होता तो विधेयक रद्द हो जाता है।

सुझाव दिया गया है कि उपचार करने से यह कहीं उत्तम है कि रोग की पहिले से ही रोक थाम की जाय। यदि विधेयकों या प्रस्तावों को दोनों सदनों में

पृथक समितियों को न सौंपकर संयुक्त समितियों को सौंपा जाय और यह समितियाँ पृथक पृथक सुनवाई न कर संयुक्त रूप से एक ही बार सुनवाई करें और उस पर विचार विमर्श कर पारस्परिक सहमति से समान रिपोर्ट अपने अपने सदन में प्रस्तुत करें तो दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न होने की सम्भावना कम रह जायगी।

दोनों सदनों द्वारा एक ही रूप में विधेयक स्वीकृत कर लिये जाने पर उसको चर्म पत्र पर लिखा या प्रकाशित किया जाता है, उस पर स्पीकर व सिनेट के प्रधान के हस्ताक्षर होते हैं और तत्पश्चात् स्वीकृति के लिये

अन्तिम अवस्था वह राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो जाने पर वह कानून बन जाता है। यदि राष्ट्रपति अपने निषेधाधिकार का प्रयोग करता है और कांग्रेस इस निषेधाज्ञा को रद्द करने के लिये दो तिहाई बहुमत प्राप्त नहीं कर पाती या राष्ट्रपति दस दिन तक विधेयक पर हस्ताक्षर भी नहीं करता और सदनों को वापस भी नहीं लौटाता और इस बीच प्रतिनिधि सभा भंग हो जाती है तो विधेयक रद्द हो जाता है अन्यथा वह कानून बन जाता है।

सविधि पुस्तकें (Statute Books)—कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन के समाप्त हो जाने पर उसके सब कानून, प्रस्ताव, संधियाँ और राष्ट्रपति की घोषणायें एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिये जाते हैं। इस सविधि पुस्तक के दो खण्ड होते हैं। एक खण्ड में सभी सार्वजनिक कानून और संयुक्त प्रस्ताव अंकित होते हैं और दूसरे खण्ड में विशिष्ट कानून (Private Acts), सगामी (concurrent) प्रस्ताव, संधियाँ और राष्ट्रपति की घोषणायें (Proclamations) होती हैं।

संविधान के अनुसार कांग्रेस के प्रत्येक सदन का अपना एक जर्नल होता है जो समय समय पर प्रकाशित किया जाता है। इस जर्नल में प्रस्तुत विधेयकों, प्रस्तुत रिपोर्टों और मत-संग्रह का रेकार्ड रहता है, अर्थात् इसमें केवल वैधानिक कार्रवाई का विवरण रहता है विवादों का ब्योरा नहीं। १८७१ से दोनों सदनों की नित्य प्रति की कार्रवाई कांग्रेस के अभिलेख (record) में मूलरूप में यथावत् प्रकाशित की जाती है। यह प्रकाशन सरकार की ओर से किया जाता है और इसकी सामग्री कांग्रेस के अधिकारी संग्रहित करते हैं। वास्तव में इस रेकार्ड में सदनों में सम्पन्न हुई कार्रवाई के अतिरिक्त भी अन्य बहुत सी बातें सम्मिलित होती हैं क्योंकि प्रकाशित करने से पूर्व भाषणों को उनके वक्ताओं के पास दोहराने के लिए भेजा जाता है और इस प्रकार वे इसमें संशोधन कर सकते हैं। यद्यपि सदन में भाषण के केवल कुछ ही शब्द बोले गये हों परन्तु सदस्य को यह अनुमति होती है कि कांग्रेस अभिलेख में अपना पूरा भाषण प्रकाशित करा

सके। इतना ही नहीं बल्कि सदन के बाहर अन्यत्र सदस्यों द्वारा दिये गये भाषण, पत्र पत्रिकाओं में छपे उनके लेख और अन्य विविध प्रकार की सामग्री अभिलेख में छापी जा सकती है। प्रकाशन के लिए सदस्य अपने वक्तव्य का इस प्रकार सम्पादन कर सकता है कि उसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन हो सकता है। जो भाषण सदन में नहीं दिये गये उनको सिनेट अपने रेकार्ड में अंकित नहीं करने देती परन्तु सदस्यों को अपने पत्र व्यवहार, सम्पादकीय लेख, सार्वजनिक लेख (Public Documents) और पुस्तकों के उन उद्धरणों को जो विवाद में नहीं पढ़े गये हों रेकार्ड में सम्मिलित करने की अनुमति देने में सिनेट भी प्रतिनिधि सभा की तरह ही उदार है।

व्ययविनियोग विधेयक सम्बन्धी कार्रवाई (Passage of Appropriation Bills)—व्यय विनियोग विधेयकों के पारण में जिस विधि का अनुसरण करना होता है उसका उल्लेख करना भी आवश्यक है। निर्धारित विधि के अनुसार यह आवश्यक है कि किसी विशेष कार्य के लिये जो एजेन्सी उत्तरदायी है वह जुलाई से आरम्भ होने वाले आगामी वित्तीय वर्ष में अपने व्यय का अनुमान (estimate) तैयार कर १ अक्टूबर तक राष्ट्रपति के कार्यालय में बजट ब्यूरो के पास भेज दे। शासन विभाग में अन्त में जो कुछ निर्णय किया जाता है वह शासन के बजट (Executive Budget) के रूप में जनवरी में कांग्रेस में प्रस्तुत कर दिया जाता है। वहाँ यह व्यय विनियोग समितियों को सौंप दिया जाता है और ये समितियाँ इसकी विस्तार से जाँच पड़ताल करने के लिए इसे अपनी उपसमितियों को सौंप देती हैं जहाँ इस पर व्यापक सुनवाई आरम्भ होती है। प्रत्येक एजेन्सी के अधिकारी अपने अपने अनुमानों (estimates) की रक्षार्थ समिति में उपस्थित होकर उसके समर्थन में तर्क वितर्क करते हैं और प्रश्नों का उत्तर देते हैं। उपसमितियाँ अपने कर्मचारियों की सहायता से इस सम्बन्ध में स्वतन्त्र अध्ययन भी कर सकती हैं। कांग्रेस के अन्य सदस्य और कांग्रेस के बाहर भी अभिरुचि रखने वाले व्यक्ति और समुदाय अपने सुझाव समिति के समक्ष रख सकते हैं। पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् उपसमिति अपनी रिपोर्ट मुख्य समिति के समक्ष प्रस्तुत करती है और अन्त में विधेयक रिपोर्ट सहित सदन को वापस भेज दिया जाता है। विचारार्थ इस विधेयक को अन्य सभी प्रकार के विधेयकों में प्राथमिकता दी जाती है। प्रतिनिधि सभा में पारित हो जाने के पश्चात् यह सिनेट की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। प्रथानुसार व्यय विनियोग विधेयकों पर पहिले प्रतिनिधि सभा ही विचार करती है और तत्पश्चात् सिनेट। इसको पारित करने और दोनों सदनों के मतभेदों को दूर करने के लिए सम्मेलन समिति आदि की वही विधि इस पर भी लागू होती है जो अन्य साधारण विधेयकों

पर, परन्तु राष्ट्रपति किसी व्ययविनियोग विधेयक के एक भाग पर अपना निषेधाधिकार लागू नहीं कर सकता है। वह सम्पूर्ण विधेयक को अवश्य लौटा सकता है परन्तु शासनतन्त्र में गतिरोध उत्पन्न हो जाने के भय से वह ऐसा नहीं करता। परन्तु किसी कार्य के लिए जो धन नियोजित किया गया उसको व्यय करने या न करने में राष्ट्रपति पूर्णतया स्वतन्त्र है। वह किसी विभाग को यह आदेश भी दे सकता है कि निश्चित धन का एक अंश आपात कोष (Emergency fund) के रूप में सुरक्षित रखा जाय।

इस विवरण के साथ ही कांग्रेस के दोनों सदनों के गठन, अधिकार और कार्यों तथा कार्य विधि का अध्ययन पूरा हो जाता है। यदि ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली से अमेरिकी संसदीय प्रणाली की तुलना की जाय तो उपरोक्त विवरण पर विहंगम दृष्टि डालने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों राष्ट्रों के विधान निर्माण की विधि में जो अंतर है वह इनके उद्देश्यों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ, ब्रिटेन में अधिकांश सार्वजनिक विधेयक मन्त्रिमंडल के सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं और सदन का अधिकतर समय उनके विचार करने में व्यय होता है परन्तु संयुक्तराज्य में शासन विभाग के कर्मचारियों का सदन में कोई विधेयक या प्रस्ताव प्रस्तुत करना तो दूर रहा वे इसकी कारवाई में भाग तक नहीं ले सकते। वे संसद के सदस्य नहीं होते। ग्रेट ब्रिटेन में द्वितीय वाचन के पश्चात् ही विधेयकों को समितियों को सौंपा जाता है परन्तु अमेरिका में प्रथम वाचन के उपरान्त ही विधेयक समिति अवस्था में प्रवेश कर जाता है। ब्रिटेन में समितियों के अधिकार इतने विस्तृत और उनका महत्व इतना अधिक नहीं है जितना कि अमेरिका में है। संयुक्त राज्य में तो वास्तव में हाउस ने अपना वादविवाद और विचार विमर्श का कार्य वस्तुतः समितियों को ही हस्तांतरित कर दिया है परन्तु ब्रिटेन की लोक सभा के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। यहाँ होने वाले वाद विवाद अब भी जनमत को प्रशिक्षित करने के महत्वपूर्ण साधन हैं। *इसके अतिरिक्त कांग्रेस का विधि निर्माण कार्य अपेक्षतः असम्बद्ध व खंडित होता है,* वह किसी अटूट या संगठित नीति या कार्यक्रम का अनुसरण नहीं कर पाती। इसी प्रकार दोनों प्रणालियों की वित्तीय विधियों में भी अनेकों अन्तर पाये जाते हैं। ब्रिटेन में कोई वित्तीय विधेयक बिना सम्राट की प्रशंसा (Recommendation) के संसद में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता अर्थात वहाँ पर जितने भी व्यय और राजस्व संबंधी विधेयक होते हैं वह केवल मन्त्रिमंडल के सदस्यों द्वारा ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं लोक सभा के किसी साधारण सदस्य द्वारा नहीं, परन्तु इसके विपरीत अमेरिका में वित्तीय विधेयक किसी भी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किये जा सकते हैं। साधारणतया वहाँ पर सब राजस्व विधेयक "उपाय साधन समिति"

(Ways and Means Committee) के द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं और व्यय सम्बन्धी विधेयक राष्ट्रपति के बजट ब्यूरो द्वारा। कांग्रेस को पूरा अधिकार है कि आय व्यय के प्रस्तावों में इच्छानुसार परिवर्तन कर सके। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन में राजस्व और विनियोग सम्बन्धी समितियाँ वस्तुतः एक ही होती हैं क्योंकि वहाँ लोक सभा ही एक बार स्वयं 'वेज एण्ड मीन्स' और दूसरी बार पूर्ति समिति (Committee of Supplies) के रूप में बैठती है। परन्तु अमेरिका में इन दोनों समितियों के सदस्य पृथक पृथक होते हैं और आश्चर्य की बात तो यह है कि दोनों में परस्पर सहकार व परामर्श की कोई व्यवस्था नहीं है। संयुक्त राज्य में वित्तीय क्षेत्र में भी दोनों सदनों के अधिकार वस्तुतः बराबर हैं। यद्यपि संविधान की एक धारा के अनुसार राजस्व विधेयक केवल हाउस में ही आरम्भ किये जा सकते हैं परन्तु अपने संशोधन करने के अधिकार का प्रयोग कर सिनेट उस प्रतिबन्ध को निष्फल बनाने में सफल हुई है। जहाँ तक व्यय विनियोग विधेयकों का प्रश्न है वह किसी भी भवन में प्रस्तुत किये जा सकते हैं यद्यपि प्रथानुसार वह पहिले हाउस में ही प्रस्तुत किये जाते हैं। परन्तु ग्रेट ब्रिटेन में वित्तीय क्षेत्र में लार्ड सभा के अधिकार तो नगण्य से ही हैं। इस सभा में कोई वित्तीय विधेयक प्रारम्भ नहीं किया जा सकता और यदि वह किसी ऐसे विधेयक को अस्वीकृत भी कर देती है तो भी लोक सभा एक महीने के पश्चात् उसको अपने ही कानून का रूप दे सकता है। ग्रिफिथ ने लिखा है कि ब्रिटिश और अमेरिकी प्रणालियों में जो अन्तर हैं वह अधिकांश में दो मूलभूत संवैधानिक अन्तरों से उत्पन्न होते हैं। यह संवैधानिक अन्तर यह है कि अमेरिका में ऐसी प्रणाली है जिसमें दोनों सदनों के अधिकार वस्तुतः समान हैं, इसके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि विधान मण्डल कार्यपालिका से स्वतन्त्र है और इस स्वतन्त्रता का प्रयोग करने के लिये वह सदैव तैयार रहता है। इसके विपरीत ब्रिटेन में लोक सभा का लार्ड सभा पर पूर्ण और वैधानिक प्रभुत्व है और मन्त्रि मण्डल संसद तथा प्रशासन के मध्य सम्बन्ध तथा समरूपता स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करता है। इस प्रकार दोनों प्रणालियों के संचालन के लिये विभिन्न युक्तियों एवं विभिन्न रीतियों की आवश्यकता होती है और इस प्रकार दोनों शासन प्रणालियों में विभिन्नता दृष्टिगोचर होने लगती है।

प्रतिनिधि सभा की आलोचना और सुधार प्रस्ताव

कांग्रेस की कार्यप्रणाली की गत वर्षों से निरन्तर उत्कट आलोचना हो रही है। राजनीतिज्ञों, प्रोफेसरों, सम्पादकों, राजनीतिक समुदायों, यहाँ तक कि स्वयं अनेक कांग्रेस सदस्यों ने कांग्रेस की आलोचना की है, उसके कार्य पर

आपत्ति प्रकट की है और उसकी हँसी तक उड़ायी है। इसके संबंध में यह कहा गया है कि "दोनों सदन अकुशल, अनुत्तरदायी, विलम्बकारी (dilatory), अपव्ययी (extravagant), प्रान्तीयतावादी, निरुद्देश्य (aimless), अदूरदर्शी और बेमागीगी हैं" (ऑग और रे)। विशेषकर प्रतिनिधि सभा पर यह आरोप लगाया गया है कि यह एक शक्तिशाली और कुशल प्रधान प्रशासनाधिकारी के हाथों में खिलौना मात्र बनकर रह गयी है। प्रोफेसर लास्की का मत है कि "प्रतिनिधि सभा से जिन कार्यों के किये जाने की अपेक्षा की जा सकती है वह उन कार्यों को पूरा कर सकने में पूर्ण असफल रही है। राष्ट्र का जो वर्ग राजनीति में अभिरुचि रखता है यह उनको भी अपनी ओर आकर्षित करने में असफल रहती है। इसका कारण यह नहीं है कि प्रतिनिधि सभा के पास अधिकारों या शक्ति का अभाव है बल्कि इसका वास्तविक कारण यह है कि इसका कभी इस प्रकार संगठन ही नहीं किया जाता जिससे यह अपने अधिकारों को बड़े कार्यों की पूर्ति के लिये प्रयुक्त कर सके, समाचार पत्रों में जब कभी यह प्रमुख स्थान प्राप्त करता है तो अपनी किसी सफलता प्राप्ति के कारण नहीं बल्कि अपने अन्तर्द्वन्द के कारण ही। पिछली पीढ़ियों में इसके जो प्रसिद्ध प्रतिनिधि हो चुके हैं वह ऐसे व्यक्ति थे जिनमें से कदाचित ही किसी के प्रति सारे राष्ट्र की आदर भावना रही हो"। १९४१ में प्रोफेसर एफ० ए० ऑग ने, जो उस समय अमेरिकी राजनीति विज्ञान संघ (American Political Science Association) के अध्यक्ष थे, कांग्रेस की कार्य विधि और उसके संगठन का अध्ययन करने के लिये विद्वानों की एक समिति नियुक्त की। समिति ने १९४५ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उसने कांग्रेस की निम्नलिखित त्रुटियों पर प्रकाश डाला —

(१) कांग्रेस अपने निर्वाचकों की स्थानीय, व्यक्तिगत और विशिष्ट समस्याओं के अत्यधिक भार से इतनी दबी रहती है कि राष्ट्रीय नीति का निर्माण करने की ओर उसका ध्यान ही नहीं जा पाता। अनुमान लगाया गया है कि कांग्रेस सदस्य का ८० प्रतिशत समय ऐसे कार्यों में व्यतीत होता है जिनका कानून निर्माण से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं होता। कांग्रेस सदस्य को "अंकल सैम्स बैलबॉय" (Uncle Sam's bellboy) कहा जाता है क्योंकि वह सदैव अपने निर्वाचकों के किसी न किसी कार्य के लिये इधर उधर दौड़ता रहता है।

(२) विधान निर्माण के लिये आवश्यक पर्याप्त स्वतन्त्र और टेक्निकल परामर्श नहीं मिल पाता।

(३) संसद में आवश्यकता से कहीं अधिक समितियाँ हैं जिनका अपना अलग कार्य क्षेत्र स्पष्ट रूप से बंटा हुआ नहीं है और जो फलस्वरूप प्रायः एक दूसरे के कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप करती रहती हैं।

(४) शासन विभाग के साथ सम्पर्क के साधन उपयुक्त न होने के कारण दोनों भागों का सामूहिक तथा संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना से कार्य करना कठिन है।

(५) प्रशासन के कार्यों की निरन्तर जाँच करने और उसकी समालोचना करने की उपयुक्त सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं।

(६) महास्वार्थी समुदायों (vested interests) की कपट-युक्तियों व भ्रष्ट क्रियाओं का कांग्रेस पर बड़ा दूषित प्रभाव पड़ता है।

(७) कांग्रेस में और विशेषकर प्रतिनिधि सभा में अधिकारों के पुनर्वितरण की अत्यन्त आवश्यकता है।

(८) उसके कर्मचारियों को पर्याप्त वेतन नहीं मिलता।

यह सही है कि उक्तलिखित त्रुटियों में से कुछ को दूर कर दिया गया है परन्तु फिर भी कांग्रेस में अभी अनेक दोष व त्रुटियाँ विद्यमान हैं।

(१) सर्वप्रथम, साधारणतया यह आरोप लगाया जाता है कि हाउस में वाद विवाद पर अनेकों प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं अब उनका स्तर बहुत नीचा होता है। इसका एक कारण यह है कि प्रतिनिधि सभा की सदस्य संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है। परन्तु वास्तविक कठिनाई यह नहीं है कि सदन का आकार बढ़ गया है बल्कि यह है कि सदन का कार्यवाही चलाने के लिये आवश्यक कोरम की संख्या बहुत अधिक है। संविधान के अनुसार सदन की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए सदस्य संख्या का कम से कम बहुमत उपस्थित हो। यदि इसकी ग्रेट ब्रिटेन (४० सदस्य), कनाडा (२० सदस्य) आस्ट्रेलिया (एक तिहाई सदस्य) आदि से तुलना करें तो स्पष्ट ही यह मर्यादा अनुचित व अतिशय प्रतीत होती है। परिणाम यह होता है कि कोरम पूरा करने के लिये सदस्यगण अनिच्छा से या विवश होकर ही सदन में उपस्थित रहते हैं। सदन की कार्यवाही में उनकी कोई अभिरुचि नहीं होती अतः समय व्यतीत करने के लिये वे आपस में बातचीत करते रहते हैं और इस कोलाहल में वक्ता की भी आवाज विलीन हो जाती है। थामस रीड के अध्यक्ष बनने से पूर्व कोरम की इस अवस्था का कभी कभी बड़ा दुरुपयोग किया जाता था। जब सदन में दोनों पार्टियों की सदस्य संख्या लगभग बराबर होती थी तो एक पार्टी के लिए बहुमत में होना सम्भव नहीं होता था और फलस्वरूप वह कोरम पूरा नहीं कर सकती था। अल्प संख्यक ऐसी स्थिति में रोल काल (Roll call) के समय मौन रहकर सदन की कार्यवाही को रोक सकते थे। अध्यक्ष रीड ने क्लर्क को यह आदेश देकर कि मौन रहने वालों की भी गणना कर ली जाय इस युक्ति को निष्फल बना दिया। सदन ने भी अध्यक्ष के निर्णय को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सदस्यों के उपस्थित रहते हुए भी केवल रोल

काल के समय निरुत्तर रहकर कोरम पूरा होने से रोकने की इस कुप्रथा को समाप्त ही कर दिया गया।

(२) यह भी कहा जाता है कि भवन का आकार बड़ा होने के कारण और उसमें वक्ताओं की ध्वनि स्पष्ट सुनाई न देने के कारण भाषणों तथा वाद विवाद के स्तर पर प्रभाव पड़ता है। केवल वही वक्ता सदन के हर कोने तक अपना आवाज पहुँचा सकता है जिसके फेफड़ों में असाधारण शक्ति हो। प्राय यह देखा गया है कि एक सदस्य जिसे वास्तव में कोई महत्वपूर्ण या सारगर्भित बात करना होती है दुर्बल, धीमी और क्षीण आवाज के कारण वह अपनी बात सदस्यों तक पहुँचाने में असमर्थ रहता है परन्तु अपनी तीव्र और कर्ण भेदी आवाज से दूसरा सदस्य जिसे कोई विशेष बात नहीं कहनी है सदन को गुँजा सकता है।

(३) कुछ सीमा तक अच्छे भाषणों के अभाव का एक कारण यह भी है कि प्रतिनिधि को अपनी बात कहने के लिये जो समय दिया जाता है वह बहुत कम होता है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि सदस्य को बिना भाषण दिये ही काग्रेस अभिलेख में अपना भाषण छपाने की अनुमति दे दी जाती है।

इन सब कारणों से हाउस में उच्च वक्तृत्व (oratory) का अभाव पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सब से महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रति दिन सदन के सामने जो अतिमात्र नित्य कार्य (routine business) प्रस्तुत होता है वह सदन की कार्यक्षमता, योग्यता और वक्तृत्व (oratory) के मार्ग में सबसे अधिक बाधक होता है। सदन इतना व्यस्त रहता है कि उसे उच्चकोटि की भाषणकला का रसास्वादन करने का अवकाश नहीं होता और न ही वह सदस्यों को विस्तृत भाषण देने की अनुमति प्रदान कर सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि अधिकतर कार्य पर्याप्त वाद विवाद के बिना ही सम्पन्न कर दिया जाता है। अत सदस्यों को इस बात का अवसर नहीं मिलता कि वह मतदान करने से पूर्व विधेयक या प्रस्ताव के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकें और सदन की कारवाई से जनता को भी राष्ट्रीय समस्याओं पर कोई ज्ञान प्रकाश नहीं मिलता। सिनेट में निस्सन्देह वाद विवाद करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है परन्तु वहाँ भी फिलिबस्ट्रिंग, लाग रोलिंग, पोर्कबैरल इत्यादि अनेक दोष उत्पन्न हो गये हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिनिधि सभा के सम्मुख प्रस्तुत प्राय सभी महत्वपूर्ण विधेयकों का भविष्य पूर्व निर्धारित होता है। उन पर सदन में प्रस्तुत होने के पूर्व ही बहुमत के नेतागण अपने अन्तरंग मण्डल या नियम समिति की सहायता से आवश्यक निर्णय कर लेते हैं। इसलिये सदन में प्रस्तुत विधेयक पर केवल कृत्रिम वाद विवाद होता है यथार्थ नहीं। सभी सदस्य पार्टी नेताओं के निर्देशानुसार बिना सोचे विचारे ही

मतदान करते हैं। सदन में बहुत सा ऐसा कार्य होता है जिसे पारित करने में वाद विवाद का अवसर ही नहीं दिया जाता। इसलिये सदन मे केवल उन्हीं विधेयकों अथवा प्रस्तावों पर वास्तविक वाद विवाद होता है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हों और जिनके प्रति सदस्यों की विशेष अभिरुचि हो। दर्शकगण यह अनुभव करते हैं कि हाउस की अपेक्षा रोटरी क्लब के लंच समारोहों मे या कालेज की फुटबाल प्रतियोगिता समारोहों में कहीं अधिक अच्छे और रोमाचकारी भाषण सुने जा सकते हैं।

अमेरिकी शासन प्रणाली का एक और महत्वपूर्ण दोष यह है कि कांग्रेस में उस प्रकार के मान्यता प्राप्त नेतृत्व का अभाव है जैसा ब्रिटेन की लोक सभा में प्रधान मन्त्री में उपलब्ध होता है। किसी किसी प्रकार के नेतृत्व के प्रतिनिधि सभा या सिनेट जैसी बड़ी और विविध हितों के समर्थकों से पूरित संस्थायें सफलता पूर्वक कार्य नहीं कर सकतीं। इसका परिणाम यह होता है कि अमेरिकी कांग्रेस के दोनों सदनों में सगठित तथा मान्यता प्राप्त नेतृत्व के अभाव मे कारवाई चलाने का अधिकार और कार्यक्रम तथा कार्यविधि के ऊपर नियन्त्रण (१) अध्यक्ष, (२) नियम समिति, (३) समितियों के अध्यक्षगणों, (४) सदन के नेतागण, और (५) सचालन समितियों मे विभक्त हो जाता है परन्तु इनके कार्यक्षेत्रों मे कोई स्पष्ट तथा परिमित सीमा विभाजन नहीं होता जिससे एक निश्चित और संयुक्त नेतृत्व का विकास हो सकता। इसके परिणाम स्वरूप उत्तरदायित्व भी विकेन्द्रित और विभक्त होने के कारण अनिश्चित तथा अस्पष्ट रहता है। कैपिटल हिल (Capital Hill) में क्या किया गया और क्या नहीं किया गया इसका उत्तरदायित्व कांग्रेस और व्हाइट हाउस अर्थात् राष्ट्रपति मे बँटा हुआ है। इस उत्तरदायित्व में कांग्रेस के अनेक समितियों एवम् दलों में विभक्त दोनों सदनों का भी भाग होता है। इससे स्पष्ट है कि अमेरिका कांग्रेस में उत्तरदायित्व कहीं केन्द्रित नहीं।

नेतृत्व का अभाव

कांग्रेस वास्तव में राजनीतिज्ञों का समुदाय है उसम अनेक दल व हित सक्रिय रहते हैं। अतः कभी-कभी दलगत राजनीति इतनी प्रबल हो जाती है कि पार्टी की स्वार्थ पूर्ति के लिये राष्ट्रीय हित तक का त्याग कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति मे कांग्रेस पर आपसी झगड़ों, अनावश्यक विलम्ब, गतिरोध, भ्रष्टाचार इत्यादि के आरोप लगाये जाते हैं। उदाहरण के लिये १९४६ में ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ काल में कांग्रेस ने मूल्य नियन्त्रण और मुद्रास्फीति (price control and inflation), सैनिक भर्ती और भूतपूर्व सैनिकों के निवास इत्यादि महत्वपूर्ण समस्याओं पर विलम्बकारी

पार्टी की स्वार्थपरता और अन्तर्द्वन्द्व

तथा टाल टाल की नीति अपनानी प्रारम्भ कर दी। इसका एक मात्र कारण यह था कि डेमोक्रेट और रिपब्लिकन दोनों अगले चुनाव के लिए अपनी अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए आपस में लड़ झगड़ रहे थे। कांग्रेस के इस आचरण को समझाते हुए प्रोफेसर लास्की ने लिखा है कि "अमेरिका की कांग्रेस का जो रूप बन पाया है उसका एक अंश इसने उन परिस्थितियों से ग्रहण किया है जिनमें इसका जन्म हुआ और शेष इसके अतीत के इतिहास का परिणाम है। अमेरिका की राजनीतिक पार्टियों का चरित्र भी कांग्रेस के स्वभाव और उसकी प्रवृत्तियों में प्रतिबिम्बित होता है। चूंकि इनमें से प्रत्येक वर्गीय हितों का छद्मरूप है इसलिये केवल असाधारण संकट कालीन अवस्था को छोड़ इनसे सम्पूर्ण राष्ट्र के हित में कार्य करने की आशा करना या इन्हें ऐसे कार्य करने के लिये प्रेरित करना सरल काम नहीं है। दोनों सदनों में बहुत कम सदस्य ऐसे होते हैं जो राष्ट्रीय हित को भी उतना ही स्पष्ट देखते हैं जितना कि अपने वर्ग के हित को। अधिकतर इस बात को भली प्रकार समझते हैं और इससे चिन्तित भी हैं कि यदि अपने वर्ग के हितों के प्रति कुछ उदासीनता दिखाई तो पार्टी प्राइमरी के आगामी चुनाव में उनकी पराजय निश्चित है"।

ओग और रे ने अपनी पुस्तक 'अमेरिकी शासन प्रणाली का परिचय' (Introduction to American Government) में उन अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों का उल्लेख किया है जिनके अन्तर्गत कांग्रेस को कार्य करना पड़ता है जिनमें से कुछ के लिये वह स्वयं उत्तरदायी होती है परन्तु अन्य के लिये नहीं। जिन प्रतिकूल परिस्थितियों के लिये वह स्वयं उत्तरदायी नहीं कही जा सकती उनमें से महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं —

(१) देश के विशाल आकार और उसकी क्षेत्रीय विभिन्नता के कारण काँग्रेस का कार्यभार विशद हो जाने और कई गुना बढ़ जाने के साथ साथ जटिल भी हो जाता है।

(२) शासन प्रणाली का संघीय स्वरूप होने और अधिकार विभाजन के सिद्धान्त के कारण संवैधानिक कानून (constitutional law) और नीति सम्बन्धी अनेक गम्भीर समस्याएँ पैदा हो जाती हैं।

(३) ब्रिटेन और भारत में मन्त्रिमण्डलों द्वारा जिस प्रकार का निश्चित तथा संगठित नेतृत्व प्रदान किया जाता है उसके अभाव में सदन को अपने लिये नेतृत्व की खोज अन्यत्र करनी पड़ती है। और

(४) कभी कभी यह राष्ट्रपति के नेतृत्व के सामने आत्मसमर्पण कर देती है जिससे कांग्रेस एक रबर की मुहर के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता।

प्रतिनिधि सभा के संगठन में इनके अतिरिक्त भी अनेकों दोष हैं (१)

प्रतिनिधि की दो वर्ष की कार्यअवधि बहुत छोटी है, (२) सदस्य के अपने निर्वाचन क्षेत्र के ही निवासी होने की प्रथा के फलस्वरूप अनेकों अयोग्य व्यक्ति प्रतिनिधि सभा में पहुँच जाते हैं और अनेकों योग्य वहाँ पहुँचने से वंचित हो जाते हैं, अर्थात् निर्वाचन में "अधिकतम योग्यता" पर ध्यान न दिया जाकर "उपलब्ध योग्यता" पर ही ध्यान दिया जाता है और चूँकि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में "उपलब्ध योग्यता" समान नहीं होता इसलिये वहाँ से अयोग्य व्यक्तियों का ही निर्वाचित करना पड़ता है और कहीं पर योग्य व्यक्तियों में से भी कुछ को अवसर नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त निर्वाचन में ऐसे व्यक्ति के सफल होने की अधिक सम्भावना रहती है जिसके विचार चरम (extreme) न हों, जो अपने प्रवण (compromising) तथा सौम्य (moderate) व्यवहार से सब वर्गों तथा समुदायों को सन्तुष्ट रख सके। इसीलिए प्रोफेसर लास्की के शब्दों में "प्रतिनिधि सभा के अधिकतर सदस्य, चाहे वह पुरुष हों या स्त्री, सामान्य कोटि के व्यक्ति होते हैं, उनका एक दूसरे में विशेष मतभेद नहीं होता और वह स्थानीय निर्वाचकों को प्रसन्न रखने के लिये यथासम्भव छोटी छोटी सेवायें करने को उद्यत रहते हैं जिससे उनकी प्रतिष्ठा बनी रहे और उनका स्थान सुरक्षित रहे", (३) प्रतिनिधि सभा के कार्य में जन साधारण का अभिरुचि का अभाव है यहाँ तक कि राजधानी से प्रकाशित होने वाले पत्र भी काँग्रेस के विवादों का महत्त्वपूर्ण समाचार नहीं समझते, अतः उनका पूर्ण विवरण प्रकाशित करना लाभदायक नहीं समझते। इस उदासीनता के कारणों पर हम पहिले विचार कर चुके हैं। यह माना जाता है कि प्रतिनिधि सभा वाद विवाद करने का स्थान नहीं है। इसके अधिकांश महत्त्वपूर्ण निर्णय वास्तव में उसकी समितियों द्वारा अपने गुप्त अधिवेशनों में किये गये निर्णय होते हैं। जनता उनको समझने में असमर्थ रहती है क्योंकि सभा की कार्यवाई से उनके सम्बन्ध में कोई प्रकाश नहीं मिलता। प्रोफेसर लास्की का तो यहाँ तक कहना है कि सच तो यह है कि प्रतिनिधि सभा जो उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होना चाहिये (जनता को प्रशिक्षित करना) उसी की पूर्ति में असफल होने के लिए यथासम्भव सब साधनों का प्रयोग करती है। इनके अतिरिक्त प्रभावी गुट (Pressure groups) का सकार्य एवं भ्रष्ट प्रभाव और लाबीइङ्ग अमरिकी काँग्रेस के अन्य दोष हैं। ऐसे अनेक स्त्री पुरुष होते हैं जो संविधान में किसी प्रस्तावित संशोधन के असफल होने या उसके पारित होने में, किसी कानून के स्वीकृत या अस्वीकृत या संशोधित होने में, किसी कार्य के लिये धन अनुदान स्वीकृत होने में, या काँग्रेस के अन्य निर्णयों में विशेष रुचि रखते हैं और अनेक प्रकार से अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये काँग्रेस जनों पर दबाव डालने का प्रयत्न करते हैं। संयुक्त राज्य में इनको लाबिस्टस कहा जाता है और बहुधा यह बड़-

बड़े हितों अथवा संगठनों के वेतनभोगी व्यवसायिक एजेन्ट होते हैं जिनका कार्य ही यह होता है कि विधान सभाओं तथा सदस्यों के कार्यालयों में घूमकर अपने पक्ष (client) की लक्ष्य पूर्ति के हेतु निरन्तर चेष्टा करते रहें। इसके लिये वह परिस्थिति व अनुकूल साधारण अनुरोध से लेकर झूठे वायदों, धमकियों, घूस इत्यादि सब नैतिक अनैतिक अच्छे बुरे साधनों को काम में लाते हैं। अनुमान लगाया गया है कि इस समय ४०० से अधिक राष्ट्रीय सङ्गठन ऐसे हैं जिनके ८०० से लेकर एक हजार तक वेतन भोगी एजेन्ट राजधानी में स्थायी रूप से रहते हैं। और जब कभी ऐसे विधयकों पर विचार हो रहा हो जिनसे इन सङ्गठनों के व्यवसाय पर प्रभाव पड़ता हो तो ऐसे सैकड़ों एजेन्ट और राजधानी में भेज दिये जाते हैं। कानून निर्माण में अपने हितों की सुरक्षा के लिये यह धन की परवाह नहीं करते और इस प्रकार कांग्रेस सदस्य को पथभ्रष्ट कर देते हैं। कभी कभी कांग्रेस में अनेक ब्लाक (सदस्यों के समूह) सङ्गठित हो जाते हैं जैसे मजदूर ब्लाक या फार्म ब्लाक या ऐसी प्रशासन एजेन्सियाँ जो उसी प्रकार वर्गीय हितों और उद्देश्यों के लिये कार्य करती हैं। ऑग और रे के शब्दों में "परिणाम यह होता है कि इन महास्वार्थी गुटों (Pressure groups) द्वारा सचालित अर्थ-व्यवस्था या समाज ऐसी सरकार को जन्म देता है जो विशेष हितों के समूहों के भँवर में फँस जाती है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय हित के दृष्टि से ओझल हो जाने की सदैव आशङ्का रहती है"। लास्की के मतानुसार यह कहने में निस्सन्देह कुछ सत्य है कि "दबाव डालने वाले यह समूह वास्तव में कॉंग्रेस के पीछे पीछे सक्रिय स्वयं एक प्रकार की कॉंग्रेस बन जाते हैं। यह सदन के सदस्यों के लिये बहुत कुछ कर सकते हैं, महत्वहीन या नये सदस्य के लिये तो और भी अधिक। यह सदस्यों का भाषण तैयार करने में उनकी सहायता कर सकते हैं। उनके निर्वाचन क्षेत्र में या उनके राज्य में इनकी ख्याति प्रचार की ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं जैसी वह स्वयं नहीं कर सकते। वह इस बात का प्रबन्ध कर सकते हैं कि नित्य प्रति उसका मिलन महत्वपूर्ण व्यक्तियों से होता रहे। और चूँकि इन लाबिस्टस का बड़ी बड़ी प्रेस, एजेन्सियों (संवाद समितियों) और राजधानी में स्थित पत्र पत्रिकाओं के अनगिनत सम्वाददाताओं से घनिष्ठ व निकटतम सम्पर्क होता है इसलिये यदि कोई सदस्य उनको सहयोग दे तो सदन में यह उसको यथासम्भव राष्ट्रीय विभूति बनने में बड़ी सहायता कर सकते हैं। कम से कम यह उसके निर्वाचकों का यह तो अनुभव करा ही सकते हैं कि सदन में उनका प्रतिनिधि केवल उनका स्थानीय नेता मात्र नहीं है बल्कि उससे कहीं बड़ा हस्ती है। यदि उसको उपयुक्त समय पर उपयुक्त समूह (Right lobbyist) का समर्थन प्राप्त हो जाता है तो वह उसके राजनीतिक जीवन में निर्णायक सिद्ध हो सकता है"।

उपरोक्त विवरण से यह पता चलता है कि कांग्रेस की अनेकों दृष्टिकोणों से आलोचना की गई है। इसके संगठन पर आपत्तियाँ की गई हैं, इसकी कार्य-विधि की आलोचना की गई है, इसके अधिकारों की हँसी उड़ायी गई है और इसके व्यवहार के प्रति घृणा प्रकट की गई है। एक लेखक का मत है कि कांग्रेस में नाटकीय गुणों का अभाव है जिसके कारण संघीय सरकार में आकर्षण का केन्द्र राष्ट्रपति बन जाता है।

इन दोषों को दूर करने के लिये समय समय पर अनेक सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये हैं। कभी यह सुझाव दिया जाता है कि चुनाव आनु-पातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर किया जाना चाहिये जिससे सभी पार्टियों को उचित व यथा सदृश प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके और प्रतिनिधि सभा राष्ट्र का सही प्रतिबिम्ब बन सके।

सुधार के लिये सुझाव

परन्तु इस सुझाव को इसमें निहित दोषों के कारण स्वीकार नहीं किया जा सका। इससे प्रतिनिधि सभा में इतने अधिक छोटे बड़े गुट व समूह उत्पन्न हो जाने का भय है कि उसकी आधारभूत एकता व समरूपता नष्ट हो जायेगी।

यह भी सुझाया गया है कि शासन और विधान मण्डल अथवा कांग्रेस में अधिक सहयोग व सम्पर्क स्थापित करने के लिये कोई युक्ति निकाली जाय। वास्तव में इस सम्बन्ध में चार सुझाव दिये गये हैं (१) शासन विभागों के अध्यक्षों को यह अधिकार होना चाहिये कि वे कांग्रेस के दोनों सदनों में जाकर सूचना दे सकें, प्रश्नों का उत्तर दे सकें और वाद विवाद में भाग ले सकें, (२) कांग्रेस के सदस्यों में से ही विभागों के अध्यक्षों की नियुक्ति की जानी चाहिये। व्यवहारिक रूप में इसका अर्थ मन्त्री मण्डल शासन प्रणाली को अपनाना और अधिकारों के पृथक्करण के अमेरिका संविधान के ऐतिहासिक सिद्धान्त का परित्याग करना होगा, (३) दोनों सदनों के नियमों में यह संशोधन किया जाय कि विचारार्थ प्रशासन विधेयकों को प्राथमिकता प्राप्त हो। वास्तव में अक्तूबर १९४३ में टेनेसी के कांग्रेस सदस्य इस्टेस केफूवर (Estes Kefauver) ने सदन के नियमों में संशोधन करने के उद्देश्य से प्रतिनिधि सभा में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसमें यह मांग की गई थी कि अनुरोध करने पर दो सप्ताहों में कम से कम एक दिन विभागों के अध्यक्ष और अन्य स्वतन्त्र एजेन्सियाँ सदन में उपस्थित हों और सदस्यों द्वारा पूछे जाने वाले लिखित या मौखिक प्रश्नों का उत्तर दें। सेक्रेटरी हल के सिनेट और प्रतिनिधि सभा के एक संयुक्त अधिवेशन में उपस्थित होने से इस योजना के प्रति अभिरुचि और बढ़ गई। सेक्रेटरी हल को मास्को में हुए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन पर जिसमें उन्होंने भाग लिया था गुप्त रिपोर्ट देने के लिये निमंत्रित किया गया था। यह घटना निस्सन्देह महत्वपूर्ण थी क्योंकि सिवल

डेढ़ सो वर्षों में कभी मन्त्रिमण्डल के किसी सदस्य ने इस प्रकार कॉंग्रेस में भाषण नहीं दिया था। परन्तु कैफूवर का प्रस्ताव निष्फल रहा, (८) इसी सम्बन्ध में अन्तिम प्रस्ताव यह है कि विधान मंडल (काँग्रेस) और प्रशासन की एक संयुक्त परिषद् का निर्माण किया जाय। इस प्रस्ताव का उद्देश्य वास्तव में वर्तमान मन्त्रिमण्डल का इस प्रकार पुनस्संगठन करना है कि उसमें विभागों के अध्यक्षों के साथ साथ काँग्रेस के प्रभावशाली नेतागण, विशेषकर महत्वपूर्ण समितियों के अध्यक्ष और कुछ सामान्य प्रशासन ऐजेन्सियों के अध्यक्षों, को भी सम्मिलित किया जा सके। यह आशा की जाती है कि इस प्रकार के मन्त्रिमण्डल का इतना सम्मान होगा कि वह राष्ट्रपति को भी प्रभावित कर सके और साथ ही काँग्रेस का भी विश्वास पात्र बन सकें। यह संयुक्त संसदीय परिषद विधान निर्माण का कार्य क्रम तैयार करने के लिये सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी और नीति निर्धारित करने में इसका राष्ट्रपति से निरन्तर सम्पर्क रहेगा। इसका अपना एक पृथक सचिवालय होगा और इस प्रकार यह प्रशासन और विधान निर्माण विभागों को एक दूसरे के निकट लाकर उनको एक संयुक्त टीम (team) का रूप देने में सफल हो सकेगी जब कि वर्तमान में अधिकारों के पृथक्करण के फलस्वरूप सरकार के ये दोनों अंग एक दूसरे से पृथक, स्वतन्त्र और विरोधमय होने के कारण कार्य में विलम्ब करते हैं, गतिरोध पैदा करते हैं, अनैतिक समझौते करते हैं और इस प्रकार उत्तरदायित्व का भी बटवारा हो जाता है। कार्यकारिणी और विधान मण्डल के बीच पारस्परिक सहयोग की यह नयी योजना अपनाने के प्रस्ताव की प्रोफेसर ब्लिंकले (Blinkley), ऑग, ब्रोगन, जिंक (Zink) और फिनलेटर ने स्पष्ट चर्चा की है। स्वर्गीय प्रोफेसर लास्की, काँग्रेस सदस्य हर्टर और प्रोफेसर मोरगेन्थो ने भी इसकी ओर संकेत किया है।

परन्तु प्रशासन और कांग्रेस के बीच घनिष्ट सहयोग व सम्पर्क पैदा करने और अमेरिकी प्रणाली के अधिकारों के पृथक्करण सिद्धान्त में कुछ संशोधन करने के उद्देश्य से प्रस्तुत इन चारों प्रस्तावों में से एक भी कार्यान्वित नहीं किया जा सका है। इनका अपनाने की बात तो अलग रही यह प्रस्ताव विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों, आदर्शवादी राजनीतिज्ञों, कल्पना शील संविधान विशेषज्ञों और कल्पना प्रधान प्रचारकों के क्षेत्र के बाहर तो समर्थन प्राप्त कर सकने में भी असमर्थ रहे हैं यद्यपि प्राय सभी यह मानते हैं कि इस समय सरकार में दो ऐसे पृथक शक्तिशाली तथा अधिकार सम्पन्न अंगों का होना जो दोनों सदैव एक दूसरे के विरोधी और परस्पर संघर्षमय रहते हों अमेरिकी शासन प्रणाली के हित में वांछनीय नहीं हैं। और प्राय सभी यह स्वीकार करते हैं कि इस समय तत्काल आवश्यकता इस बात की है कि दो एक दूसरे के पूरक और परस्पर सामंजस्य

सहयोगी विभागों का विकास किया जाय जो संयुक्त रूप से योजनायें तैयार कर और उनको कार्यान्वित कर देश के कल्याण में योगदान कर सकें।

जून १९५० में शासन और कांग्रेस के सम्बन्धों और उनके परस्पर सहयोग की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया गया जब कि परराष्ट्र मन्त्री डीन एचीसन ने कांग्रेस के दोनों सदनों के एक संयुक्त अधिवेशन में भाषण दिया और कांग्रेस सदस्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का भी उत्तर दिया। राष्ट्रपति ट्रूमन ने भी कांग्रेस के नेतागणों के साथ साप्ताहिक सम्मेलनों का आयोजन किया। यह सब इस बात के प्रमाण हैं कि अधिकार विभाजन की वर्तमान स्थिति असंतोषजनक है और उसमें शीघ्रतम संशोधन किये जाने की आवश्यकता है।

१९४६ का विधान मण्डल (कांग्रेस) पुनर्संगठन कानून—७८ वीं कांग्रेस ने दो वर्ष के कार्य काल (१९४३-४५) में कांग्रेस में विशिष्ट और सामान्य दोनों प्रकार के सुधार करने के उद्देश्य से दोनों सदनों में ५० से अधिक प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये। इनमें से कोई भी प्रस्ताव पास न हो सका परन्तु १९४५ में कांग्रेस के संगठन के लिये एक संयुक्त समिति स्थापित की गई जिसमें कांग्रेस के प्रत्येक भवन से ६ सदस्य लिये गये। इस संयुक्त समिति ने १९४६ में अपनी महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसके आधार पर एक नया कानून पारित किया गया जिसे ला फोलेटे-मोनरोनी विधान मंडल पुनर्संगठन कानून (La Follette Monroney Legislative Reorganisation Act) कहते हैं और जिसका उपयोग १९४७ में कांग्रेस के दोनों सदनों के संगठन के लिये किया गया। इस कानून की महत्वपूर्ण विशेषतायें इस प्रकार हैं —

(१) प्रतिनिधि सभा में स्थायी समितियों की संख्या ४८ से घटाकर १९ कर दी गई और सिनेट में ३३ से घटाकर १५। (२) प्रत्येक समिति के कार्य क्षेत्र की स्पष्ट व्याख्या कर दी गई जिससे वह एक दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप न कर सके, एक ही काम एक से अधिक समिति को न करना पड़े और प्रत्येक समिति का कार्य क्षेत्र निश्चित् हो सके। (३) कुछ अपवादों को छोड़, प्रतिनिधि केवल एक और सिनेटर केवल दो समितियों के सदस्य बन सकते हैं। (४) प्रत्येक समिति को अपने कार्य के लिये क्लर्कों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया परन्तु साथ ही यह भी निधारित कर दिया गया कि प्रत्येक समिति ६ से अधिक क्लर्क नियुक्त नहीं कर सकता। इनके अतिरिक्त यह व्यवस्था की गई कि प्रत्येक समिति कर्मचारियों में से सम्बंधित कार्य में दक्ष चार सदस्यों तक की सेवाओं का उपयोग कर सकती है। (५) समितियों की प्रक्रिया में सुधार करने के लिए यह निश्चित किया गया कि उनकी नियमित रूप से साप्ताहिक, अर्धमासिक या मासिक बैठक होगी, वे अपनी कार्यवाई का पूरा रेकार्ड रखेंगी और समिति के अध्यक्ष को समिति द्वारा स्वीकृत सब निदे-

यर्गों को सदन में प्रस्तुत करना अनिवार्य होगा। इस सम्बन्ध में अब वह पहिले का तरह मनमानी नहीं कर सकेगा। (६) कांग्रेस को अनेक छोटे मोटे कामों से मुक्त कर दिया गया, विशेष कर उसके विशिष्ट विधेयकों (Private bills) से सम्बन्धित कार्यभार को कम कर दिया गया। (७) लाबिस्टस और दबाव डालने वाले गुटों को नियंत्रित करने के लिये नियम बनाये गये जिनके अनुसार यह आवश्यक कर दिया गया कि वह प्रतिनिधि सभा के क्लर्क या सिनेट के रजिस्ट्रार के कार्यालय म अपना नाम रजिस्टर करायें, साथ ही यह भी बतायें कि वह किसके हित म कार्य कर रहे हैं, या वह किसके एजेन्ट हैं, उनको कितना वेतन मिलता है और वेतन कौन देता है, प्रत्येक तीन महीने पश्चात् वह इस बात की विस्तृत रिपोर्ट दें और शपथ लेकर बतायें कि इस बीच कुल कितना धन उनको मिला और उसको उन्होंने किस प्रकार व्यय किया। इसके अतिरिक्त इसका भी हिसाब रखें कि उनको कुल मिला कर किस किस संगठन ने कितना कितना चन्दा दिया, इस धन को किस प्रकार व्यय किया गया और जिन व्यक्तियों को रुपया दिया गया उनके नाम और पते क्या हैं। इस सब विवरण की विस्तृत रिपोर्ट वह प्रतिनिधि सभा या सिनेट के अधिकारियों को दें। यदि यह कार्रवाई पूरी न की गई तो अपराधी को ५ हजार डालर जुर्माना या एक वर्ष का कारावास या दोनों दण्ड साथ साथ दिये जा सकते हैं और दण्ड सिद्धि के उपरान्त तीन वर्ष तक उन पर इस कार्य को न करने के लिये प्रतिबन्ध लगा दिया जायगा। (८) प्रशासन की क्रियाओं पर निरीक्षण रखने के लिये संसदीय समितियों को यह अधिकार दिया गया कि वे निरन्तर सतर्कता पूर्वक इस बात की देख भाल करती रहें कि प्रशासकीय विभाग नियमों का कुशलता पूर्वक कार्यान्वित कर रहे हैं या नहीं। (९) कांग्रेस सदस्यों के वेतन मान में वृद्धि और उनको पदनिवृत्ति के उपरान्त उपवेतन (Retirement allowance) दिये जाने की व्यवस्था की गयी। (१०) वित्तीय विधेयकों का पारण प्रक्रिया म संशोधन किया गया, विशेष कर राष्ट्रपति के बजट प्रस्तावों पर विचार करने की विधि में सुधार किया गया। उनके लिये दोनों सदनों की राजस्व और व्यय विनियोग समितियों द्वारा संयुक्त रूप से अध्ययन एवं विचार विमर्श व निर्णय करने की व्यवस्था की गई।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि १९४६ में कांग्रेस के पुनस्संगठन की जो व्यवस्था की गई वह बहुत व्यापक और दूरगामी थी। अपने १६५ वर्ष के गत इतिहास में कांग्रेस में कभी इतना भारी और महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया था। परन्तु संयुक्त समिति ने अपनी रिपोर्ट में उन सभी समस्याओं और सुधार प्रस्तावों पर विचार नहीं किया जिनका सुझाव दिया गया था और जिनपर विचार किया जाना चाहिये था। इसके अतिरिक्त मोनोरोनी विधेयक जिस रूप में प्रस्तुत किया

गया उसमें संयुक्त समिति की सभी सिफारिशों को सम्मिलित नहीं किया गया था और फिर कांग्रेस ने उसे पारित करते समय उसमें बहुत सी काट-छांट कर दी। इस प्रकार समिति की रिपोर्ट पूर्णतया विधि का रूप धारण नहीं कर सकी। कुछ आलोचकों को इससे बड़ी निराशा हुई कि संयुक्त समिति ने अनेक जटिल समस्याओं पर कोई सुझाव नहीं दिये जैसे (१) समिति के अध्यक्ष के चुनाव में ज्येष्ठता की प्रणाली का परित्याग, (२) कोलम्बिया जिले से सम्बन्धित विधान निर्माण का कार्य कांग्रेस के हाथों से लेकर कमिश्नरों का या एक स्वनिर्मित पारषद् को सौंप दिया जाय, केवल अतिमहत्वपूर्ण मामलों में कांग्रेस को निषेधाधिकार दिया जाय जिससे कांग्रेस का कार्यभार हल्का हो सके क्योंकि कांग्रेस को कोलम्बिया जिले से सम्बन्धित कार्य पर विचार करने में प्रत्येक अधिवेशन में १२ से लेकर २० दिन तक व्यय करने पड़ते हैं; (३) संसदीय कार्यविधि में सुधार जैसे सिनेट में फिलिबस्टिंग की युक्ति की समाप्ति या प्रतिनिधि सभा में नियम समिति के लगभग निरंकुश शासन को सीमित करने की व्यवस्था। वास्तव में दोनों सदनों की कार्य संचालन की विधि में अनेकों संशोधन किये जा सकते हैं, (४) एक ही कार्य को दो दो बार होने से बचाने के लिये और दोनों सदनों की समितियों के कार्य में एकरूपता लाने के लिये संयुक्त समिति प्रणाली का कार्यान्वयन। समिति ने उपरोक्त और अन्य बहुत से प्रश्नों पर अपने सुझाव नहीं दिये। इसलिये कांग्रेस के संगठन में अब भी बहुत सी कमियाँ रह गई हैं।

कुछ आलोचक चाहते हैं कि प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की वर्तमान संख्या घटा कर ३०० कर दी जाय, कुछ का मत है कि राष्ट्रपति प्रणाली समाप्त कर मंत्रीमण्डलीय प्रणाली अपनायी जाय और ऐसे आलोचकों की संख्या भी कम नहीं है जो इन दोनों प्रणालियों के बीच का कोई मार्ग अपनाना चाहते हैं। उनका सुझाव है कि एक संयुक्त लेजिसलेटिव-एक्जिक्यूटिव परिषद् या मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया जाय।

कुछ अन्य सुझाव

संयुक्त समिति ने चार नीति समितियाँ (प्रत्येक सदन में दो—एक बहुमत के लिये और एक अल्पमत के लिये) के निर्माण का सुझाव दिया था। उनका संगठन इस प्रकार किया जाय कि प्रत्येक में सात सदस्य हों और कार्य संचालन के लिये पर्याप्त कर्मचारी। सदस्यों की नियुक्ति प्रत्येक नया कांग्रेस का अधिवेशन आरम्भ होते ही पार्टी अन्तरंग मण्डल द्वारा की जाय। यह समितियाँ अपने अपने क्षेत्र में पार्टी की विधान मण्डलीय नीति निर्धारित करें। हाउस तथा सिनेट की दोनों बहुमत समितियाँ एक संयुक्त पारषद् के रूप में नियमित रूप से राष्ट्रपति या मंत्रिमण्डल के कुछ या सभी सदस्यों से मिल कर एक राष्ट्रीय नीति निर्धारित करने और उसको कार्यान्वित करने में सुविधाजनक हों और इस प्रकार विधान

मण्डल और प्रशासन के मध्य निकटतम सम्पर्क तथा घनिष्टतम सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक हों। प्रतिनिधि सभा ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और यह योजना रद्द हो गई। परन्तु सिनेट इससे विचलित नहीं हुई और उसने १९४७ में परीक्षण के लिये स्वेच्छा से अपने संगठन में ऐसी समितियों की व्यवस्था की।

१९५० में वित्तीय प्रस्थापनाओं (measures) पर विचार करने के लिये एक अधिक उपयुक्त तथा सङ्गठित प्रणाली का उद्घाटन किया गया। अभी तक यह व्यवस्था थी कि बजट को अनेक भागों में विभक्त कर प्रत्येक भाग को व्यय विनियोग समिति की उपसमितियों को विचारार्थ सौंप दिया जाता था। इन भागों को पुनः जोड़कर पूर्ण बजट पर संयुक्त रूप से विचार करने का कोई प्रबन्ध नहीं था। १९५० में हाउस ने यह निर्णय किया कि राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण बजट पर व्यय विनियोग समिति सामूहिक रूप में विचार करेगी। इस प्रकार वित्तीय प्रक्रिया का एक दोष दूर हुआ। इसके अतिरिक्त १९४९ के आरम्भ के दिनों में एक अन्य दिशा में सुधार हुआ। नियम समिति के निरकुंश अधिकारों को कम कर दिया गया क्योंकि १९४९ में प्रतिनिधि सभा के पुनस्संगठन के समय नियमों में संशोधन किया गया जिससे यह निश्चित हुआ कि यदि नियम समिति किसी विधेयक पर विचार करने की अनुमति नहीं देती तो उस स्थायी समिति का अध्यक्ष जिसको यह विधेयक सौंपा गया था अस्वीकृति के २१ दिन पश्चात् यह प्रस्ताव रख सकता है कि विधेयक आवश्यक कार्रवाई के लिये सदन में प्रस्तुत किया जाय। तब सदन ही बहुमत से यह निर्णय करता है कि समिति द्वारा प्रस्तुत विधेयक स्वीकृत किया जाय या अस्वीकृत।

प्रायः सभी क्षेत्रों से उत्कट आलोचना और निन्दा के प्रहार सहते हुए भी कांग्रेस विनम्रता से सदा अपना मस्तक ऊँचा उठाये रही है और संविधान के निर्माताओं ने इसे जो पदवी और शक्ति प्रदान की थी उसे यह पूर्ववत् सुरक्षित रख सकी है। यद्यपि इसके सङ्गठन में और कार्य विधि में अनेक संशोधन परिवर्तन हुए हैं परन्तु अब भी यह कार्यपालिका प्रतिद्वन्द्वी के रूप में अमेरिकी शासन प्रणाली के मूल सिद्धान्त (नियन्त्रण एवम् सन्तुलन) को कार्यान्वित करने के लिये मुख्य आधार बनी हुई है।

अध्याय ६ | राष्ट्रीय न्यायपालिका

कार्य पालिका और व्यवस्थापिका सभा, अमेरिकी शासन प्रणाली के इन दो अंगों पर विचार कर लेने के पश्चात् अब हम उसके तीसरे अंग अथवा राष्ट्रीय सरकार की त्रिमूर्ति के तीसरे सदस्य राष्ट्रीय न्यायपालिका पर विचार करेंगे। यह अंग भी देश की राजनीतिक व्यवस्था में अन्य दो के समान ही महत्वपूर्ण है।

एक संघात्मक शासन प्रणाली में एक शक्ति शाली और स्वतन्त्र न्याय पालिका का होना आवश्यक समझा जाता है। (१) संघीय व्यवस्था की एक मौलिक विशेषता यह होती है कि उसके अन्तर्गत वैधानिक अधिकारों का राष्ट्रीय सरकार तथा संघान्तरित राज्यों में विभाजन रहता है। इसके अतिरिक्त एक संघात्मक संविधान (इसके अन्तर्गत निर्मित कानून और संधियों सहित) केवल दुष्परिवर्तनशील और लिखित ही नहीं होता बल्कि अन्य सभी कानूनों और संस्थाओं से सर्वोपरि भी होता है। अत जब फिलाडेलफिया सम्मेलन के सदस्यों ने संयुक्त राज्य का संविधान बनाया तो उन झगड़ों एवम् विवादों को तय करने के लिये, जो राष्ट्रीय सरकार और संघान्तरित राज्यों के बीच अपने अपने अधिकार क्षेत्रों की निश्चित सीमाओं के सम्बन्ध में उत्पन्न होने स्वाभाविक थे, एक सर्वोच्च न्यायालय की भी व्यवस्था करनी पड़ी।

न्यायपालिका की आवश्यकता

(२) विभिन्न राज्यों और विभिन्न राज्यों के नागरिकों के बीच उठ खड़े होने वाले झगड़ों को तय करने के लिये भी राष्ट्रीय न्यायपालिका की आवश्यकता होती है क्योंकि ऐसे मामलों को निष्पक्षता से तय करने के लिये राज्य के न्याया-लयों की अपेक्षा राष्ट्रीय न्यायालयों पर अधिक विश्वास किया जा सकता है।

(३) संविधान और उसके अन्तर्गत बने कानूनों तथा की गई सन्धियों की समस्त संयुक्त राज्य में समान व्याख्या के लिये भी एक राष्ट्रीय न्यायपालिका की आवश्यकता होती है। चूँकि यह देश के सर्वोच्च कानून होते हैं और संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रत्येक नागरिक एवम् संस्थाओं पर बाध्य होते हैं इसलिये उन की समान रूप में व्याख्या होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि प्रत्येक राज्य के न्यायालय को संविधान एवम् उसके अन्तर्गत की गई सन्धियों तथा कानूनों की व्याख्या करने का अन्तिम अधिकार दे दिया जाय तो यह सम्भव है कि उनकी ५० प्रकार की व्याख्याएँ हों और इससे बहुत अस्तव्यस्तता तथा गड़बड़ी पैदा

हो जाय और कानून की स्थिति भी हास्यास्पद हो जाय। इसको रोकने के लिये यह आवश्यक था कि संविधान, कानूनों और सन्धियों की व्याख्या करने के लिये राष्ट्रीय न्यायालयों की स्थापना की जाये और इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय को सर्वोच्च अधिकार दिये जायें।

(४) कांग्रेस और मुख्य प्रशासनाधिकारी के निरंकुश तथा स्वच्छन्द कार्यों को रोकने और उनको सीमित करने के लिये और यह देखने के लिये कि कानून बनाने या इसे लागू करने में वह अपने संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों की सीमा का उल्लङ्घन न करें राष्ट्रीय न्यायपालिका की आवश्यकता होती है। इसलिये यह भी आवश्यक है कि यह न्यायालय कांग्रेस या राष्ट्रपति के नियंत्रण के बाहर अथवा पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हों।

(५) राष्ट्रीय न्यायपालिका की आवश्यकता ऐसे झगड़ों को तय करने के लिये भी होती है जिनका सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय कानून, जिसको अमेरिका ने स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से मान्यता प्रदान की है, या नावाधिकरणिक कानून (Admiralty Law) से हो। चूंकि पर-राष्ट्र सम्बन्धों पर एकमात्र राष्ट्रीय सरकार का नियन्त्रण होता है अतः यह आवश्यक है कि विदेशी राष्ट्रों के राजदूतों या अन्य प्रतिनिधियों की प्रतिष्ठा तथा उनके अधिकारों के सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार उन्हीं न्यायालयों को दिया जाय जो कि उस सरकार के अंग हों जिसे अन्तर्राष्ट्रीय कानून भंग होने पर विदेशी सरकारें उत्तरदायी ठहरा सकें (अर्थात् राष्ट्रीय सरकार) क्योंकि राज्यों की सरकार से विदेशी राष्ट्रों का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता।

(६) संविधान को व्यवहारिक क्षेत्र में अधिक लचीला बनाने या परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तनशील बनाने के लिये भी राष्ट्रीय न्यायपालिका की आवश्यकता होती है। अमेरिकी संविधान के लिये तो यह और भी आवश्यक है क्योंकि यह संविधान केवल ढाँचा मात्र है और हर पग पर इसे व्याख्या और विस्तार की आवश्यकता होती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने 'निहित अधिकारों के सिद्धान्त' के द्वारा और संविधान की क्रियात्मक तथा उदार व्याख्या करके एक प्रगतिशील समाज की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुकूल बनाने और उसका विकास करने में बहुमूल्य योगदान दिया है। वास्तव में यदि संविधान की व्याख्या करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय न होता और जान मार्शल जैसे न्यायाधीश न होते जिन्होंने कांग्रेस के अधिकारों की व्यापक और उदार व्याख्या की तो यह बहुत सम्भव है कि संविधान समाप्त हो गया होता, यह समय के साथ आगे बढ़ ही न पाता। कभी कभी इसने अपनी सामाजिक-आर्थिक विचारधारा और दृष्टिकोण के आधार पर कांग्रेस की

बुद्धिमानी पर सन्देह प्रकट कर उसके अनेक सामाजिक तथा आर्थिक कानूनों को अवैधानिक घोषित कर निश्चय ही सामाजिक प्रगति को रोका है परन्तु फिर भी इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि न्यायपालिका ने अभिभावक के रूप में संविधान के विकास में उतना ही विलम्ब तथा प्रतिरोध किया है जितना कि उसने उसकी प्रगति और प्रसार में सहायता। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि सर्वोच्च न्यायालय 'कांग्रेस का तीसरा सदन' बन गया है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संघीय न्यायपालिका नागरिकों और सरकार के बीच मध्यस्थता करती है, राजकीय तथा राष्ट्रीय अधिकार क्षेत्र में सीमा-विभाजन की रक्षा करती है, व्यक्ति का पृथक राज्यों से, ५० संघातरित राज्यों का एक दूसरे से, राज्यों का संघ से, और शासन के तीनों विभागों का परस्पर एक दूसरे से समुचित सम्बन्ध स्थापित करने का अन्तिम उत्तरदायित्व इसी पर होता है।

इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर संविधान के निर्माताओं ने तीसरे अनुच्छेद में यह व्यवस्था की थी कि "संयुक्त राज्य अमेरिका की न्याय शक्ति एक सर्वोच्च न्यायालय में और उन निम्न न्यायालयों में, जिनकी कांग्रेस समय समय पर कानून द्वारा स्थापना करेगी, निहित होगी"।

संविधान के न्यायपालिका से सम्बन्धित अनुच्छेद पर दृष्टिपात करने से ज्ञात हो जायगा कि संघीय न्यायाधिकार क्षेत्र निर्धारित करने के दो मान हैं (१) विचाराधीन मुकदमे या विवादग्रस्त प्रश्न की प्रकृति, और (२) सम्बन्धित वादियों का स्तर, पद अथवा निवास स्थान।

संघीय न्यायाधिकार क्षेत्र

पहले के अन्तर्गत निम्नलिखित सम्मिलित हैं —(अ) संयुक्त-राज्य के संविधान, विधियों और संधियों के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले कानूनों तथा न्याय सिद्धान्त (equity) सम्बन्धी सभी मामले और (ब) नौ-सेना (Admiralty) तथा सामुद्रिक व्यवस्था (Maritime) के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले मामले। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित मामले सम्मिलित हैं — (क) राजदूतों, मंत्रियों तथा अन्य राज्य प्रतिनिधियों से सम्बन्धित मामले, (ख) ऐसे विवाद जिनमें संयुक्त राज्य अमेरिका एक पक्ष हो, (ग) दो या अधिक राज्यों के बीच विवाद या झगड़े, (घ) विभिन्न राज्यों के नागरिकों के बीच झगड़े, (ङ) एक ही राज्य के नागरिकों में विभिन्न राज्यों द्वारा प्रदत्त दान पत्रों (Grants) के आधार भूमि पर स्वत्व का दावा करने के फलस्वरूप उत्पन्न विवाद, और (च) एक राज्य अथवा अमेरिकी नागरिकों और विदेशी राज्यों, उसके नागरिकों अथवा प्रजा के बीच पारस्परिक झगड़े। आरम्भ में संघीय न्यायाधिकार क्षेत्र उन सभी मुकदमों पर भी लागू होता था जो एक राज्य के विरुद्ध किसी अन्य राज्य के नागरिकों द्वारा चलाये गये हों। परन्तु १७६८ में ११ वाँ संशोधन स्वीकार हो जाने से संघीय

न्यायालय को ऐसे विषयों पर विचार करने का अधिकार नहीं रहा जो एक राज्य के नागरिकों द्वारा दूसरे राज्य के विरुद्ध या विदेशी राज्य के नागरिकों द्वारा किसी अमेरिकी राज्य के विरुद्ध चलाये गये हों।

एकमात्र और समवर्ती अधिकार क्षेत्र (Exclusive and concurrent jurisdiction)—संविधान में संघीय न्यायालयों को कोई एकमेव अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं किया गया है। हाँ, कांग्रेस को यह अधिकार अवश्य प्राप्त है कि वह संघीय न्यायिक शक्ति को स्वयं स्थापित न्यायालयों में ही निहित कर दे। कुछ विशेष प्रकार के मामलों में अधिकारों का यह निश्चित विभाजन तथा प्रतिस्थापन आवश्यक होता है और कुछ अन्य प्रकार के मामलों में वाञ्छनीय। वर्तमान राष्ट्रीय कानूनों के अन्तर्गत संघीय न्यायालयों को उन सभी नागरिक (civil) मामलों में एकमात्र अधिकार प्राप्त है जिनमें संयुक्त राज्य अमेरिका या कोई समातरित राज्य एक पक्ष होता है। परन्तु उनका ऐसे मामलों पर कोई अधिकार नहीं होता जो किसी राज्य और उसके नागरिकों के पारस्परिक झगड़ों से सम्बन्धित हों। इनके अतिरिक्त उन सभी मामलों पर जिनका संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध किये गये अपराधों से सम्बन्ध हो, या जो राष्ट्रीय संविधान तथा विधियों के अन्तर्गत नौ सेना, समुद्री व्यवस्था, पेटेन्ट के अधिकार, कापीराइट और दिवाले से सम्बन्धित मामले हों उन सब पर संघीय न्यायालय को एकमात्र अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार राजदूतों, मदूतों तथा अन्य राज्य प्रतिनिधियों के विरुद्ध सब मुकदमों पर भी विचार करने का संघीय न्यायालयों को ही एकमात्र अधिकार प्राप्त है क्योंकि यह सभी अधिकारी संयुक्त राज्य अमेरिका से ही अधिकार प्राप्त करते हैं। चूँकि युद्ध की घोषणा करने का अधिकार केवल राष्ट्रीय सरकार को है इसलिये नष्टप्राय जहाजों के अधिकार सम्बन्धी मामले (Prize cases) भी उसके न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के संघीय न्यायाधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले मामलों पर विचार करने का संघीय और राज्य के न्यायालयों को समानवर्ती अधिकार प्राप्त है।

मुकदमे प्रस्तुत करने की विधि

संघीय न्यायालयों में तीन विभिन्न रीतियों में से किसी एक के द्वारा मुकदमे प्रस्तुत किये जा सकते हैं —(१) कुछ ऐसे मामले होते हैं (जिनकी पहिले चर्चा की जा चुकी है) जो संघीय न्यायालयों के एकमात्र अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं राज्यों के न्यायालय इन पर विचार नहीं कर सकते हैं। अतः प्रथम संघीय न्यायालयों में ही उन पर विचार तथा निर्णय किया जा सकता है। (२) एक मामले भी होते हैं जिन पर कार्यवाही राजकीय न्यायालयों में आरम्भ होता है परन्तु प्रतिवादी के अनुरोध पर इनको अंतिम निर्णय के लिये संघीय न्यायालय को हस्तान्तरित कर

दिया जाता है। यह हस्तान्तरण तब ही हो सकता है जब (अ) मामले से सम्बन्धित पक्ष विभिन्न राज्यों के निवासी हों, अथवा (ब) उनके एक ही राज्य के निवासी होने पर भी विचाराधीन मामले में कोई संघात्मक प्रश्न निहित हो। दूसरे शब्दों में मामला ऐसा हो जिसमें किसी पक्ष द्वारा राष्ट्रीय संविधान, कानून और संधियों के अन्तर्गत किसी अधिकार या विमुक्ति की माग की गई हो। परन्तु यह हस्तान्तरण राजकीय न्यायालयों के अन्तिम निर्णय दे देने के पूर्व हो हो जाना चाहिये। (३) राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा (जहाँ मुकदमे की कार्यवाही आरम्भ हुई हो) दिये गये निर्णय के विरुद्ध अपील करके मामले को संघीय न्यायालय में ले जाया जा सकता है या सर्वोच्च न्यायालय स्वयं भी मामले पर पुनर्विचार करने का निश्चय कर सकता है। परन्तु किसी भी विवादक (litigant) को राजकीय न्यायालय से संघीय न्यायालय में अपील करने का तब तक कोई अधिकार नहीं होता है जब तक कि राजकीय उच्च न्यायालय (अ) किसी ऐसे राजकीय नियम को वैध घोषित नहीं कर देता जिस पर संघीय संविधान के या कांग्रेस द्वारा बनाये गये किसी कानून या संयुक्त राज्य द्वारा की गई किसी संधि के विरुद्ध होने का आरोप लगाया गया हो, या (ब) किसी संघीय कानून या सन्धि को अवैध घोषित नहीं कर देता।

१६१४ से सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह उत्पन्न समादेश (Writ of Certiorari) के द्वारा मामले की सुनवाई के लिये अपने समक्ष उपस्थित करने का आदेश दे सकता है और उचित समझने पर राजकीय न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय की समीक्षा कर सकता है यदि यह निर्णय संघीय व्यवस्था की उपेक्षा करते हुए राजकीय नियम की रक्षा करता हो।।

संघीय न्यायपालिका की रचना

संघीय न्याय प्रणाली में न्यायालयों की तीन श्रेणियाँ हैं। सबसे निम्न श्रेणी में प्रादेशिक न्यायालय आते हैं और सबसे ऊपर सर्वोच्च न्यायालय, इन दोनों श्रेणियों के मध्य मे पुनर्विचारक परिभ्रमण न्यायालय (Circuit Courts of Appeals) आते हैं। इनमें से केवल सर्वोच्च न्यायालय का ही संविधान में व्यवस्था की गई है। अन्य दो श्रेणियाँ कॉंग्रेस ने अपने १७८६ तथा १८६१ के न्याय-पालिका कानून (Judiciary Act) के द्वारा स्थापित की हैं और तभी से विभिन्न कानूनों द्वारा इनके अधिकार क्षेत्रों की व्याख्या गई है। १७८६ का न्यायपालिका कानून आज भी इस न्याय प्रणाली का मूलाधार बना हुआ है।

यह उल्लेखनीय है कि सभी संघीय न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति सिनेट के परामर्श एवम् स्वीकृति से करता है और कुछ विशेष वर्ग के न्यायालयों

(Legislative courts) के अन्तर्गत आने वाले न्यायाधीशों के अतिरिक्त (जिनकी चर्चा आगे की जायेगी) प्रायः सभी सदाचार पर्यन्त अपने पद पर आसीन रहते हैं। इनको केवल महाभियोग द्वारा ही पदच्युत किया जा सकता है।

संघीय न्यायालयों में सबसे निम्न श्रेणी प्रादेशिक न्यायालयों (district courts) की है। इस समय इनकी संख्या पूरे राष्ट्र में लगभग ६३ है। बहुधा एक राज्य (उदाहरणतया वेरमोन्ट या न्यू हैम्पशयर) एक ही प्रादेशिक न्यायालय के रूप में संगठित हो सकता है परन्तु विशाल और अधिक जनसंख्या वाले राज्यों को अनेक प्रदेशों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ प्रदेश ऐसे भी हो सकते हैं जिनमें दो या दो से अधिक राज्यों के क्षेत्र सम्मिलित हों। प्रत्येक राज्य में कम से कम एक प्रादेशिक न्यायालय अवश्य होता है। उनमें नियुक्त न्यायाधीशों की संख्या भी कार्य की गुरुता के आधार पर एक से लेकर अधिक से अधिक १६ तक हो सकती है। एक से अधिक न्यायाधीश होने पर न्यायालय की बैठकें (sessions) विभिन्न भागों (divisions) में विभक्त होकर एक साथ कार्य करती हैं। प्रत्येक विभाग में एक ही न्यायाधीश होता है। अलास्का, हवाई, प्यूरटो रिको, वर्जिन आइलैन्ड और पनामा नहर क्षेत्र जैसे समुद्र पार प्रदेशों के लिए भी प्रादेशिक न्यायालय स्थापित किये गए हैं। प्रत्येक प्रादेशिक न्यायालय में अभियोग प्रक्रिया सम्पन्न करने के लिए एक प्रादेशिक एटर्नी, समादेश (writs) सम्बन्धित व्यक्ति तक पहुँचाने और आदेशों तथा निर्णयों को लागू करने के लिए एक मार्शल और फौजदारी के मामलों में प्रारम्भिक सुनवाई करने के लिये एक कमिश्नर होता है। प्रादेशिक न्यायाधीश कभी कभी अपने प्रदेश का परिभ्रमण भी करते हैं और जब वह ऐसा करते हैं तो उनको प्रादेशिक परिभ्रमण न्यायालय कहा जाता है।

प्रादेशिक न्यायालय

अधिकार क्षेत्र (jurisdiction)—प्रादेशिक न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र प्रारम्भिक होता है अर्थात् उनमें मामले केवल मूल रूप में ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं, पुनरावेदन के लिए नहीं। यह कानून और न्यायता (equity) दोनों ही के न्यायालय होते हैं और दीवानी तथा फौजदारी दोनों प्रकार के मुकदमों पर इनको निर्णय करने का अधिकार होता है। सभी संघात्मक अपराध, ट्रस्ट विरोधी कानूनों के अन्तर्गत की गई कार्यवाइ, नाराहिनी के मामले, आंतरिक राजस्व, डाक, कापीराइट, पेटेन्ट और दिवाला सम्बन्धी कानूनों के अन्तर्गत उपस्थित मुकदमे, वाणिज्य नियम सम्बन्धी मुकदमे, अंतिम निर्णय से पूर्व ही राज्य के न्यायालयों से हस्तांतरित मुकदमे, विभिन्न राज्यों के नागरिकों के परस्पर मुकदमे, एक राज्य के नागरिकों और विदेशी राज्य या उसके नागरिकों के बीच के झगड़े (यदि विवादग्रस्त मामला ३ हजार डालर से अधिक का हो) इन न्यायालयों के

अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। संयुक्त राज्य के विरुद्ध अनुबन्ध सम्बन्धी मुकदमों में, जहां दावा १०,००० डालर से अधिक का न हो, इन न्यायालयों को क्लेम्स न्यायलयों (claims courts) के साथ समवर्ती अधिकार होता है।

१९४६ के सघीय टार्ट क्लेम्स एक्ट के अन्तर्गत प्रादेशिक न्यायालयों को संयुक्त राज्य के विरुद्ध उपस्थित किये गये दावों पर निर्णय करने का अधिकार भी मिल गया है। अपने कर्तव्य का पालन करते समय किसी सरकारी कर्मचारी की लापरवाही से या गलत कार्य से या भूल से किसी की सम्पत्ति को क्षति या विनाश हो जाय या किसी व्यक्ति को चोट लगी हो या मृत्यु हो जाय तो उसकी क्षति पूर्ति के लिये एक साधारण व्यक्ति की ही भांति अमेरिका की सरकार पर दावा दायर किया जा सकता है और इस प्रकार के दावों पर प्रादेशिक न्यायालयों को विचार करने का अधिकार प्राप्त है। अत स्पष्ट है कि अमेरिका के सविधान, कानून या किसी सधि के अन्तर्गत उठ खड़े होने वाले सभी मुकदमों पर विचार करने का मूल अधिकार प्रादेशिक न्यायालयों को प्राप्त है। इनके निर्णयों के विरुद्ध पहले सर्किट कोर्ट में अपील की जा सकती है यद्यपि कुछ अवस्थाओं में सीधे सर्वोच्च न्यायालय में भी अपील की जा सकती है।

पुनर्विचारक परिभ्रमण न्यायालय

प्रादेशिक न्यायालयों के पश्चात् दूसरी कोटि ११ पुनर्विचारक परिभ्रमण न्यायालयों (Circuit Courts of Appeals) की है। इनमें से एक न्यायालय जिला कोलम्बिया के लिये है और शेष १० न्यायालय उन दस क्षेत्रों (circuits) के लिए हैं जिनमें संयुक्त राज्य अमेरिका विभाजित है। प्रत्येक पुनर्विचारक परिभ्रमण न्यायालय में ३ से लेकर ६ तक न्यायाधीश होते हैं, साधारणतया सर्वोच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को विधिवत एक-एक क्षेत्र से सम्बद्ध कर दिया जाता है (परन्तु दो दृष्टान्त ऐसे हैं जिनमें एक न्यायाधीश के पास दो क्षेत्र हैं)। वास्तव में किसी भी न्यायाधीश को अपने नियत क्षेत्रीय न्यायालय की बैठक में सम्मिलित होने का समय नहीं मिलता यद्यपि कानून के अनुसार वह ऐसा कर सकते हैं। बहुत अधिक व्यस्त न होने पर प्रादेशिक न्यायाधीशों को भी परिभ्रमण न्यायालयों में सहायतार्थ बुलाया जा सकता है। प्रादेशिक न्यायालयों में केवल एक ही न्यायाधीश बैठता है परन्तु इसके विपरीत परिभ्रमण न्यायालयों में कम से कम दो (साधारणतया ३) न्यायाधीश विचाराधीन अभियोगों का निर्णय करते हैं और कुछ विशेष स्थितियों में मुकदमा निर्देश अथवा अन्तिम निर्णय के लिये सर्वोच्च न्यायालय के पास भेजा जा सकता है।

अधिकार क्षेत्र—इन परिभ्रमण न्यायालयों का मूलत कोई प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र नहीं है। यह वास्तव में पुनरावेदन करने के न्यायालय हैं और इनका

कार्य अपने सर्किट एवम् क्षेत्र के अन्तर्गत प्रादेशिक न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध की गई अपीलों को सुनने तक ही सीमित है। इनको अन्तर्राज्यिक वाणिज्य आयोग, संघीय सुरक्षा परिषद (Federal Reserve Board), संघीय व्यापार आयोग, राष्ट्रीय श्रम संबंधी परिषद और कुछ अन्य प्रशासन संस्थाओं द्वारा जारी किये गए कुछ आदेशों को लागू करने, रद्द करने या उनमें संशोधन करने का भी अधिकार प्राप्त है। अनेक प्रकार के मामलों में, जैसे विदेशियों और नागरिकों के पारस्परिक मामलों में, विभिन्न राज्यों के नागरिकों के पारस्परिक मामलों में जिनमें कोई संघीय प्रश्न विवाद ग्रस्त नहीं है, पेटेन्ट, कापीराइट, दिवाला और राजस्व के कानूनों के अन्तर्गत आने वाले मामलों में और नौ वाहिनिक कानून के अन्तर्गत आने वाले मामलों में, यदि विवादग्रस्त राशि एक हजार डालर से अधिक नहीं है तो साधारणतया इन न्यायालयों का निर्णय अंतिम होता है। तब भी यदि सम्बन्धित पक्ष चाहे और सर्वोच्च न्यायालय उसकी प्रार्थना को उचित समझे तो इनमें से किसी भी मामले को सर्वोच्च न्यायालय जाँच और समीक्षा के लिये अपने सम्मुख उपस्थित करवा सकता है। यदि किसी मामले में परिभ्रमण न्यायालय राज्य के किसी कानून को अवैधानिक घोषित कर देता है तो उस निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है, वास्तव में किसी भी निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती है यदि सर्वोच्च न्यायालय यह देखता है कि विवादग्रस्त मामलों में संविधान या किसी संघीय कानून के निर्माण का प्रश्न निहित है।

न्याय परिषद

१६२२ तक प्रादेशिक न्यायालय और पुनर्विचारक परिभ्रमण न्यायालय वस्तुत स्वतन्त्र थे। उनमें परस्पर समन्वय स्थापित करने या इनका निरीक्षण करने के लिये कोई व्यवस्था न थी। इस कमी की पूर्ति के लिये १६२२ में कांग्रेस ने एक कानून पारित किया जिसके द्वारा संयुक्त राज्य के मुख्य न्यायाधीश को पूरी संघीय न्याय प्रणाली का प्रधान निरीक्षक एवं निर्देशक बना दिया गया और एक संघीय न्याय परिषद (Judicial Council) या सम्मेलन की भी व्यवस्था की गई जिसके दसों क्षेत्रों के बड़े न्यायाधीश सदस्य बनाये गये। संयुक्त राज्य के प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता में इस परिषद की वार्षिक बैठक की आयोजना की गई जिसमें समय समय पर अन्य संघीय न्यायाधीश तथा अधिकारी भी सम्मिलित होते हैं। यह नियम बनाया गया है कि प्रत्येक प्रादेशिक न्यायालय का ज्येष्ठ प्रादेशिक (circuit) न्यायाधीश अपने क्षेत्र के ज्येष्ठ क्षेत्रीय न्यायाधीश के द्वारा सम्मेलन में एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। इस रिपोर्ट में प्रदेश में न्याय कार्य की स्थिति का उल्लेख होता है जिसके अन्तर्गत दर्ज किये गये अभियोगों की संख्या एवं उनकी प्रकृति, शेष विचारा

कार्य, तथा इसी प्रकार की अन्य सूचनाएं होती हैं। इन रिपोर्टों के आधार पर सम्मेलन को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये हैं।

(१) संघीय न्यायालयों में कार्य का विस्तृत निरीक्षण करना,

(२) परिस्थितिनुसार प्रदेशों एवं क्षेत्रों में न्यायाधीशों की नियुक्ति एवं उनके स्थानांतरन की नियोजना,

(३) कार्य को शीघ्रता से सम्पन्न करने और सर्वत्र समानता लाने के उद्देश्य से विभिन्न न्यायालयों को सुझाव प्रेषित करना, और

(४) दोष तथा त्रुटियों को दूर करने के लिये कांग्रेस से आवश्यक कार्रवाई करने की सिफारिश करना।

न्यायालयों का प्रशासन कार्यालय

कांग्रेस ने ७ अगस्त १९३९ को एक कानून स्वीकार कर संघीय न्यायालयों के एकीकरण और उनको नियमित रूप से संगठित करने की इस योजना को और आगे बढ़ाया। कांग्रेस ने इस कानून के द्वारा एक नयी संस्था अमेरिकी न्यायालयों का प्रशासन कार्यालय (Administrative office of the U S courts) को जन्म दिया जिसका प्रधान एक संचालक (director) बनाया गया जिसकी नियुक्ति का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया, साथ ही यह भी स्वीकार किया गया कि इसका कार्यकाल सर्वोच्च न्यायालय की इच्छा पर निर्भर करेगा। ज्येष्ठ सर्किट न्यायाधीश सम्मेलन (conference of senior circuit judges) की देखरेख और उसके निर्देशन में संचालक को अन्य न्यायालयों के कार्य से संबंधित अनेक प्रशासन सम्बन्धी कार्य सौंपे गये और यह भी निश्चित किया गया कि प्रशासन विभाग का यह संचालक सभी न्यायालयों के कार्य की स्थिति और उनकी भौतिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में इस सम्मेलन के सामने अपनी वार्षिक रिपोर्ट उपस्थित करेगा। उसके कर्तव्यों में यह बातें सम्मिलित की गई (१) न्यायालयों के क्लर्कों तथा अन्य प्रशासनाधिकारियों के कार्यों का निरीक्षण करना, (२) न्यायालयों के डाकेट (dockets) की जाँच करना और यह सूचना प्राप्त करना कि उनको किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता है या नहीं और न्यायालय द्वारा सम्पन्न किये गये कार्यों के आंकड़े और उनकी रिपोर्ट तैयार करना, (३) आवश्यक सामग्री का क्रय, हस्तांतरण और वितरण करना, (४) हिसाब की जाँच करना, (५) सर्वोच्च न्यायालय के बजट को छोड़कर अन्य सभी न्यायालयों के बजट को तैयार करना और स्वीकृति के लिये योजना करना, (६) न्यायालयों के उपयोग के लिये भवनों आदि की व्यवस्था करना, तथा (७) अन्य ऐसे कार्य करना जो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा या ज्येष्ठ सर्किट न्यायाधीश सम्मेलन द्वारा सौंपे जायें।

सर्वोच्च न्यायालय

संयुक्त राज्य की सम्पूर्ण न्यायप्रणाली के संगठन में सबसे उच्च स्थान सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है। यह संयुक्त राज्य में न्याय का सर्वोपरि एवम् अंतिम न्यायालय है और संसार में सबसे अधिक शक्तिशाली, सम्मानित और प्रतिष्ठित संस्था है। जेम्स बैक के शब्दों में यह संविधान का 'सन्तुलन चक्र' (balance-wheel) है और विलियम बर्ट का कथन है कि "यदि शासन व्यवस्था से न्यायपालिका को निकाल दिया जाय तो कुछ भी अवशेष न रहेगा क्योंकि सरकार बिना इसके चल ही नहीं सकती। इसके बिना शासन व्यवस्था की स्थिति ठीक उसी प्रकार होगी जैसे सूर्य के बिना नक्षत्र मण्डल (solar system) की"। विलियम बर्ट ने न्यायपालिका के लिये जो कुछ कहा वह सर्वोच्च न्यायालय पर भी लागू किया जा सकता है। जैसा कि लास्की ने कहा है "अपने इतिहास की पहली पीढ़ी में मुख्य न्यायाधीश मार्शल से लेकर वर्तमान युग में मुख्य न्यायाधीश विन्सन (और अब वारेन) तक यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि (सर्वोच्च) न्यायालय का जो प्रभाव रहा है वह अमेरिका की किसी अन्य संस्था का नहीं रहा'।

संघीय न्यायप्रणाली स्थापित करने की योजना मुख्य रूप से ओलीवर एल्सवर्थ ने तैयार की जो स्वयं इसके भावी मुख्य न्यायाधीश थे। यह योजना २४ सितम्बर १७८९ को कानून बन गई और १ फरवरी १७९० सर्वोच्च न्यायालय के संगठन का दिन निश्चित किया गया।

संगठन

इस समय सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और आठ सहयोगी न्यायाधीश (कुल नौ न्यायाधीश) हैं। ६ न्यायाधीश गण पूर्ति (quorum) के लिये पर्याप्त होते हैं और किसी निर्णय के लिये इनके बहुमत की स्वीकृति होना आवश्यक होता है। इन सभी न्यायाधीशों की नियुक्ति सिनेट की स्वीकृति से राष्ट्रपति द्वारा होती है और सदाचार पर्यन्त यह पदासीन रहते हैं। इनको महाभियोग के अतिरिक्त अन्य किसी रीति से पदच्युत नहीं किया जा सकता है। निम्न संघीय न्यायालयों के न्यायाधीशों की भाँति इनको भी कांग्रेस द्वारा समय समय पर निर्धारित निश्चित वेतन मिलता है। परन्तु किसी न्यायाधीश का वेतन उस के कार्य काल में घटाया नहीं जा सकता और जिन्होंने कम से कम १० वर्ष कार्य कर लिया है वे ७० वर्ष की आयु में पद निवृत्त हो सकते हैं। वृद्धावस्था की दुर्बलता का अनुभव करने के पूर्व ही पद-निवृत्ति की ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से पेन्शन की उदार प्रणाली की व्यवस्था की गई है और मिचिम का मत है कि 'इससे इस दिशा में पर्याप्त सफलता मिली है'।

सर्वोच्च न्यायालय का अध्यक्ष मुख्य न्यायाधीश होता है। इसका सम्मान

अन्य सहयोगी यायाधीशों से कुछ ही अधिक होता है। इसके अधिकार और कर्तव्य भी उनके अधिकारों और कर्तव्यों से भिन्न होते हैं (यद्यपि मुख्य न्यायाधीश यह भिन्नता अधिक नहीं होती) क्योंकि यह न्यायालय का प्रतिष्ठित प्रधान होता है और इसके कुछ शासन प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों का निर्देशन करता है। मर्ले जे पुसी (Merle J Pusey) ने 'सण्डे स्टैण्डर्ड' के १५ नवम्बर १९५३ के अंक में इस सम्बन्ध में यहाँ तक लिखा है कि "अमेरिका का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्र की वैधानिक व्यवस्था का अब भी प्रधान सरक्षक है। जनता के हृदय में राष्ट्रपति के पश्चात मुख्य न्यायाधीश का ही स्थान होता है यद्यपि वह उनके द्वारा निर्वाचित नहीं होता, बहुत कम बोलता है, पत्रकार सम्मेलनों में भेंट नहीं करता और उसके अधीन कोई विशेष कर्मचारी नहीं होते। अमेरिका की कांग्रेस निस्सन्देह सर्वोच्च न्यायालय से कहीं अधिक अधिकार सम्पन्न संस्था है परन्तु सम्मान एवम् प्रतिष्ठा में कांग्रेस के किसी सदन—सिनेट या प्रतिनिधि सभा—का कोई भी नेता मुख्य न्यायाधीश की बराबरी नहीं कर सकता"।

आरम्भ में ही यह बता देना अनुचित न होगा कि मुख्य न्यायाधीश भी सर्वोच्च न्यायालय के अपने अन्य सहयोगियों के बराबर ही होता है। वह उन्हीं में से एक होता है जिनकी नियुक्ति भी उसी प्रकार होती है जैसे स्वयं उसकी और जो उसके द्वारा पदच्युत नहीं किये जा सकते वरन् जब तक समर्थ रहते हैं कार्य करते रहते हैं। परन्तु मुख्य न्यायाधीश को ५ ऐसे विशेष कार्य करने पड़ते हैं जिनसे सर्वोच्च न्यायालय में उसका स्थान सर्वश्रेष्ठ हो जाता है —

(१) वह सर्वोच्च न्यायालय के अधिवेशनों की अध्यक्षता करता है और इस स्थिति में वह न्यायालय की सारी कार्यवाइयों का प्रवेग एवम् उनकी दिशा निर्धारित करता है। मर्ले पुसी का कथन है कि मुख्य न्यायाधीश का मत स्वत ही अन्य न्यायाधीशों के कार्यों में और उन वकीलों के व्यवहार में भी जो न्यायालय के समक्ष वाद विवाद करते हैं प्रतिबिम्बित होता है।

(२) वह न्यायाधीशों के सम्मेलन (Conference of Judges) में जिसमें निर्णय किये जाते हैं एक संशोधक अथवा निरीक्षक (moderator) का कार्य करता है। सम्मेलन की गुप्त बैठक (जब न्यायालय का अधिवेशन चालू रहता है) प्रत्येक शनिवार को होती है। सम्मेलन में यह निश्चित किया जाता है कि न्यायालय आगे किन मामलों पर विचार करेगा और जिन मामलों पर पहिले विचार हो चुका होता है उन पर निर्णय किया जाता है। एक शक्तिशाली और कुशल मुख्य न्यायाधीश को इन सम्मेलनों में अपना प्रभाव प्रदर्शित करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है। सम्मेलन के नियमों के अन्तर्गत भी उसके दृष्टिकोण को

विशेष महत्व प्रदान किया गया है। निर्णय करने में मुख्य न्यायाधीश को ही सबसे पहिले अपना मत प्रकट करने का अधिकार प्राप्त है, यह दूसरी बात है कि वह अपने इस अधिकार का प्रयोग न करे। जब मुख्य न्यायाधीश मतदान की माँग करता है तो सबसे छोटा (जूनियर) न्यायाधीश सबसे पहिले अपना मत प्रकट करता है, तदोपरांत इसी क्रम से न्यायाधीश मतदान करते हैं। अर्थात् सर्वप्रथम सबसे छोटा न्यायाधीश और सबसे अन्त में मुख्य न्यायाधीश मतदान करता है। इस प्रकार अपना मत देने से पूर्व मुख्य न्यायाधीश को यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक मामले पर अन्य न्यायाधीशों का मत क्या है। उसको सबसे बड़ा लाभ यह है कि विचार विमर्श में वही नेतृत्व करता है जिसका तात्पर्य यह होता है कि अधिकांश मामलों में मतदान मुख्य न्यायाधीश द्वारा प्रस्तुत किये गये विचारों के पक्ष या विपक्ष में ही होता है। और फिर मुख्य न्यायाधीश इस सम्मान का अधिकारी होता है जो विवेक पूर्वक अपनी बौद्धिक-शक्ति का प्रयोग करने वाले को सदैव प्राप्त होता है।

(३) वह न्यायालय के सदस्यों को उन समितियों पर नियुक्त करता है जो बहुधा इक्विटी (equity), काय विधि और वकालत के नियमों में संशोधन परिवर्द्धन करती रहती हैं और जिन्होंने दंड विधि संग्रह का प्रारूप भी तैयार किया।

(४) मुख्य न्यायाधीश का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह विचाराधीन मामलों पर निर्णय लिखने के लिये उनको विभिन्न न्यायाधीशों को सौंपता है। यह अधिकार उसको प्रभावशाली बनाने में विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है। परन्तु यह कार्य अत्यन्त सुकोमल भी है क्योंकि मामलों का वितरण इस प्रकार होना चाहिये कि प्रत्येक न्यायाधीश को केवल अपना नियत भाग ही नहीं वरन् विशेष महत्वपूर्ण मामलों का उचित अनुपात भी प्राप्त हो सके।

(५) अन्त में इस पद को विशेष महत्व प्रदान करने वाला एक और कारण यह है कि मुख्य न्यायाधीश अमेरिका के न्यायपालिका सम्मेलन का अध्यक्ष भी होता है और यह सम्मेलन एक प्रकार से अमेरिका की सम्पूर्ण संघीय न्याय प्रणाली के अभिभावक के रूप में कार्य करता है। इस कार्य का सर्वोच्च न्यायालय से कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु फिर भी इससे उसके पद को प्रतिष्ठा मिलती है और उसका प्रभाव बढ़ता है।

यहाँ य भी बता देना उचित होगा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में अब तक १४ मुख्य न्यायाधीश हो चुके हैं। विद्यमान मुख्य न्यायाधीश अर्ल वारेन मुख्य न्यायाधीश फ्रेड एम० विन्सन के देहान्त हो जाने पर सितम्बर १९५३ में नियुक्त किये गये थे। मुख्य न्यायाधीश को ३५,५०० डालर प्रति वर्ष वेतन मिलता है और उसके सहयोगियों को ३५,००० डालर प्रति वर्ष मिलता है।

सर्वोच्च न्यायालय एक मार्शल, एक क्लर्क, एक ग्रन्थागारिक (Librarian) और एक रिपोर्टर नियुक्त करता है और इन अधिकारियों के आवश्यक सहकारियों की भी या तो स्वयं नियुक्ति करता है या नियुक्त करने का अधिकार दे देता है। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रत्येक न्यायाधीश को एक विधानलिपिक (law clerk) रखने की अनुमति दी गई है। न्यायाधीश स्वयं निश्चित करता है कि वकील समुदाय (bar) के कौन से सदस्य इसके समक्ष पैरवी कर सकते हैं। यह अपनी कार्य विधि के नियम भी स्वयं निर्धारित करता है।

अन्य अधिकारी

जब विचाराधीन मामलों पर जिरह समाप्त हो जाती है तब न्यायाधीश शनिवार को अपने सम्मेलन कक्ष में इन मामलों पर अब तक हुई कारवाइयों की समीक्षा करते हैं, उन पर विचार विमर्श करते हैं, साथ ही सम्बन्धित कागजातों या लेख्यों का अध्ययन करते हैं और तब प्रत्येक मामले पर किसी निर्णय पर पहुँचते हैं। इन निर्णयों को ६ न्यायाधीशों के कोरम के कम ४ से कम सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होता है। कम से कम ४ न्यायाधीशों की सहमति प्राप्त करने पर मुख्य न्यायाधीश का यह कर्तव्य होता है कि वह बहुमत पक्ष के किसी एक सदस्य को—कभी कभी स्वयं—न्यायालय की सम्मति लिखने के लिये नियुक्त करे। जब इस प्रलेख पर विमर्श कर लिया जाता है और उसको अन्तिम रूप प्रदान कर दिया जाता है तब आगामी सोमवार को न्यायालय की बैठक में इस निर्णय को पढ़ कर सुना दिया जाता है। यदि किसी मामले में न्यायाधीश बराबर विभक्त हैं या उनमें इतना मतभेद है कि आवश्यक बहुमत प्राप्त नहीं हो सकता है तो मामले पर फिर से सुनवाई आरम्भ करने का आदेश दिया जाता है परन्तु यदि किसी निम्न न्यायालय के निर्णय से सम्बन्धित किसी मामले में न्यायाधीश उसके पक्ष विपक्ष में बराबर विभक्त हैं तो निर्णय मान्य समझा जाता है। कोई भी न्यायाधीश जो बहुमत की सम्मति से सहमत न हो निर्णय में अपनी असहमति का उल्लेख कर सकता है, वह अपनी राय अलग से उसमें शामिल कर सकता है। परन्तु यदि कोई न्यायाधीश बहुमत के निर्णय से सहमत हो परन्तु उन कारणों से सहमत न हो जो बहुमत ने निर्णय के समर्थन में दिये हैं तो वह अपनी सहवर्ती राय भी लिख सकता है।

निर्णय

सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक (Original) तथा पुनर्विचारक (Appellate) दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। इसके प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र पर संविधान में कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। सर्वोच्च न्यायालय केवल (१) राजदूतों, प्रदूतों और अन्य राज्य प्रतिनिधियों से सम्बन्धित मामलों और (२) ऐसे मामलों पर जिनमें

अधिकार क्षेत्र

एक पक्ष कोई राज्य हो और दूसरा पक्ष संयुक्त राज्य या कोई विदेशी राज्य या अन्य संघान्तरित राज्य हो, मूल रूप में विचार करने का अधिकारी है। कांग्रेस भी उक्त प्रकार के मामलों के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय को अन्य किसी प्रकार के मामलों पर प्रारम्भिक अधिकार नहीं प्रदान कर सकती। इसके विपरीत कांग्रेस ने निम्न संघीय न्यायालयों को इस प्रकार के कुछ मामलों पर मौलिक रूप में विचार करने का समवर्ती अधिकार प्रदान करने में तनिक भी संकोच नहीं किया है, उदाहरणार्थ एक राज्य के नागरिकों और किसी अन्य राज्य के बीच के मामले महत्वपूर्ण होते हुए भी प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय में अपेक्षाकृत कम आते हैं।

पुनर्विचारक अधिकार क्षेत्र

सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का अधिकांश भाग पुनरावेदन सम्बन्धी (Appellate) है। दूसरे शब्दों में राज्यों के उच्च न्यायालयों और निम्न संघीय न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध की गई अपीलों पर विचार करना ही सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य कार्य है। कनाडा, आस्ट्रेलिया और भारत की प्रणाली के विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय के आधीन कुछ निम्न श्रेणी के संघीय न्यायालयों (जिनका पहिले वर्णन किया जा चुका है) की व्यवस्था भी की गई है। राज्यों के उच्च न्यायालयों से सर्वोच्च न्यायालय में केवल वही मामले पुनर्विचार के लिये आते हैं जिनका सम्बन्ध राष्ट्रीय संविधान या संघीय विधियों से हो। परन्तु निम्न संघीय न्यायालयों से सर्वोच्च न्यायालय में ऐसे मामलों की सरिता बहती रहती है जिनका संघीय संविधान या संघीय विधियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है बल्कि उनमें सैकड़ों ऐसी समस्याएँ उलझी रहती हैं जिनका सम्बन्ध प्रचलित कानून (Common Law) और संघान्तरित राज्यों के संविधानों तथा विधियों से होता है। इसमें संदेह नहीं कि जब मामले में कोई संघीय प्रश्न विवादग्रस्त नहीं होता तो उस पर राज्य के उच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम होता है। सर्वोच्च न्यायालय में अपील तभी की जा सकती है जब राज्य के उच्च न्यायालय ने (१) राज्य के किसी ऐसे कानून को वैध घोषित कर दिया है जिस पर संघीय संविधान के विरुद्ध होने का आरोप लगाया गया है या किसी संघीय कानून या संधि के प्रतिकूल होने का आरोप लगाया गया है, या (२) उसने किसी संघीय कानून अथवा संधि को अवैध घोषित कर दिया हो।

वास्तव में अपील केवल उन मामलों में होती है जिनमें राज्य के न्यायालय संघीय कानून के अन्तर्गत प्रदत्त अधिकारों के विरुद्ध निर्णय करते हैं। ऐसे मामलों को जिनमें राज्य के न्यायालय संघीय कानून के अन्तर्गत प्रदत्त अधिकारों की मांग स्वीकार कर लेते हैं सर्वोच्च न्यायालय स्वयं अपनी इच्छा से उत्प्रेषण-समादेश (writ

of certiorari) द्वारा समीक्षा कर सकता है, विवादकों को ऐसे मामलों में स्वत अपील का अधिकार नहीं होता है। उन्नयन समादेश एक ऐसा आदेश-पत्र होता है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय निम्न न्यायालयों को किसी भी मामले को जिसका निर्णय उनके द्वारा किया जा चुका है रिकार्ड प्रमाणित करने का निर्देश देता है। सर्वोच्च न्यायालय ऐसे आदेश अपनी इच्छानुसार जारी कर सकता है।

न्यायिक-समीक्षा का कार्य
(Function of Judicial Review)

सर्वोच्च न्यायालय के पुनरावेदन क्षेत्र (Appellate jurisdiction) की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसे संघातरित राज्यों की सवैधानिक व्यवस्थाओं एवम् राज्य तथा संघीय कानूनों की वैधता का निर्णय करने का अधिकार है। ऐसा करने में वह (१) राष्ट्रीय कानून की प्रभुता को सुरक्षित रखता है, (२) राज्यों के विशिष्ट अधिकारों की रक्षा करता है, और (३) सामान्य रूप में सवैधानिक प्रणाली के अभिभावक का रूप धारण कर लेता है। इसे पारिभाषिक शब्दों में न्यायिक-समीक्षा (Judicial Review) का कार्य कहते हैं। राजनीति-विज्ञान को यह अमेरिका का असाधारण और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसी शक्ति के कारण सर्वोच्च न्यायालय को अमेरिकी शासन प्रणाली में अन्य किसी देश के सर्वोच्च न्यायालय की अपेक्षा अधिक महत्व और प्रभाव प्राप्त है और व्यवहार में यह निश्चय ही पूरी व्यवस्था का "सन्तुलन चक्र" बन जाता है। इसी शक्ति के आधार पर योग्य पर्यवेक्षकों (जिनमें लास्की भी सम्मिलित हैं) ने इसे कांग्रेस का 'तीसरा सदन' और 'अटूट संविधान सभा' कहा है।

न्यायिक समीक्षा का वैधानिक आधार

न्यायिक समीक्षा का वैधानिक आधार सामान्यत संविधान के छठे अनुच्छेद की दूसरी उपधारा बतायी जाती है जिसमें कहा गया है कि "यह संविधान और इसके अन्तर्गत निर्मित संयुक्त राज्य की समस्त विधियाँ तथा संयुक्त राज्य की ओर से की गई या की जानेवाली समस्त सन्धियाँ इस देश की सर्वोच्च विधियाँ होंगी। राज्यों के संविधान और विधियों से असंगत होने पर भी राज्यों के न्यायाधीश उक्त सर्वोच्च विधियों द्वारा बाध्य होंगे"। इसलिये यदि किसी राज्य की विधान [illegible] ऐसा कानून बनाती है जो किसी संघीय कानून, संघीय संविधान या [illegible] द्वारा की गई किसी सन्धि के प्रतिकूल हो तो न्यायालय का [illegible] कि वह उसे अवैध घोषित कर दे। इसी प्रकार यदि [illegible] कोई कानून संघीय संविधान के प्रतिकूल हो तो [illegible] कर सकता है। इसी बात को कुछ भिन्न रूप में [illegible] सकते हैं

कि संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार और अनेक राज्यों की सरकारें सीमित अधिकार प्राप्त सरकारें हैं, कानून बनाने और उनको लागू करने में वह अपने प्रदत्त अधिकारों की सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकती हैं। यदि न्यायालय में प्रसंग आने पर न्यायाधीश इस परिणाम पर पहुँचता है कि विधान मण्डल ने एक ऐसा कानून बनाया है जिसे बनाने का उसे संविधान द्वारा अधिकार नहीं था तो वह उसे लागू करने से अस्वीकृत कर सकता है।

न्यायिक समीक्षा एक ऐसा अधिकार माना जाता है जिसका सर्वोच्च न्यायालय ने बलाद्-ग्रहण कर लिया है क्योंकि संविधान की किसी धारा के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को यह स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं किया गया है। कुछ भी हो संविधान की उक्तलिखित उपधारा का यही अर्थ होता है। मारबरी बनाम मेडिसन (१८०३) के प्रसिद्ध मामले में मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने इसकी स्पष्ट रूप से व्याख्या की थी। तब से इस असाधारण अधिकार पर असन्तोष व्यक्त किया गया है, इसकी उपेक्षा करने का प्रयत्न किया गया है और इसकी कटु आलोचना की गई है परन्तु इससे कभी छुटकारा न मिल सका। मुख्य न्यायाधीश मार्शल के सिद्धान्त का आधार यह था कि संविधान सर्वोपरि है और उसकी लिखित धाराओं द्वारा सरकार के अधिकार सीमित हैं। अतः विधान मण्डल के अधिकार भी सीमित हैं और यह सीमा निर्धारित करना न्यायालयों का कर्तव्य है। मार्शल का कहना था कि "संविधान सर्वोच्च है, सर्वशक्ति सम्पन्न है और साधारण रीति से परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यदि विधान मण्डल द्वारा बनाया गया कानून संविधान की व्यवस्था के प्रतिकूल है तो वह अवैध है। तब क्या अवैध होने पर भी न्यायालयों के लिये उसको लागू करना अनिवार्य है?" मार्शल इस परिणाम पर पहुँचे कि न्यायालयों के लिये यह आवश्यक है कि वह कानून की वैधनिकता की जाँच करें और यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कानून वैधानिक है तो उसे लागू करने से अस्वीकृत कर दें। न्यायालयों द्वारा कांग्रेस के कानून को अवैध घोषित करने के प्रश्न पर मार्शल के विचारों का सारांश यह है कि (१) संविधान सर्वोच्च कानून है, (२) इस लिये इसकी व्यवस्था के प्रतिकूल बनाया गया कोई कानून वैध नहीं है, (३) दो परस्पर विरोधी कानूनों पर निर्णय करना न्यायालय का कर्तव्य है, (४) यदि विधान मण्डल द्वारा पारित कोई कानून सर्वोच्च कानून अर्थात संविधान के विरुद्ध है तो यह न्यायालय का कर्तव्य हो जाता है कि वह विधान मण्डल द्वारा पारित कानून को लागू करने से अस्वीकृत करदे, और (५) यदि न्यायालय इस प्रकार के कानून को लागू करने से अस्वीकृत नहीं करता है तो लिखित संविधान का आधार ही नष्ट हो जाता है। राज्य संविधान और कानून पर भी

जो राष्ट्रीय संविधान या उसके अन्तर्गत बनाये गये कानूनों या संयुक्त राज्य द्वारा की गई सन्धियों के विरुद्ध पड़ते हैं वहीं सिद्धान्त लागू होते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि न्यायाधीशों के लिये यह आदेश होता है कि वह संविधान को मूलभूत तथा सर्वोपरि कानून समझें। उनका अर्थ निश्चित करना तथा राज्य या संघीय सरकार द्वारा बनाए गये किसी विशेष कानून का अर्थ निश्चित करना न्यायाधीशों का ही कर्तव्य है। यदि दोनों में परस्पर विरोध है हैं तो ऐसी स्थिति म उनके लिये यह आवश्यक है कि वह संविधान को मानें और कानून अवैध घोषित कर दें।

जैसा कि भ्रान्त धारणा है सर्वोच्च न्यायालय को ही अकेले समीक्षा का अधिकार प्राप्त नहीं है प्रत्येक राज्य के उच्च न्यायालय को इस प्रश्न पर अंतिम निर्णय देने का अधिकार होता है कि राज्य का अमुक कानून संविधान के अनुकूल है या नहीं और संघीय प्रादेशिक न्यायालय और अपील न्यायालय दोनों किसी संघीय कानून, राज्य कानून या राज्य के संविधान की किसी भी व्यवस्था को संघीय संविधान के प्रतिकूल घोषित कर उसे लागू करने से अस्वीकृत कर सकते हैं। परन्तु संघीय संविधान के विरुद्ध होने के सब अभियोगों का अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही किया जाता है। यद्यपि ऐसे मामले संघीय निम्न न्यायालयों और राज्य के उच्च न्यायालयों में भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं, परन्तु उनका निर्णय अन्तिम नहीं होता। उनके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है जहाँ पर अन्तिम निर्णय होता है।

यह नियम है कि कानून केवल विवादग्रस्त होने पर ही अवैध घोषित जा सकता है अन्यथा नहीं परन्तु इसके अतिरिक्त न्यायिक समीक्षा के अधिकार पर और भी अनेकों प्रतिबन्ध हैं—(१) कानून की अवैधानिकता में रचमात्र भी सदेह नहीं रहना चाहिये, (२) विधान का केवल वही अंश रद्द किया जाता है जो अवैध है, जब तक कि उसके सब अंश एक दूसरे पर इतने आश्रित न हों कि एक को बिना दूसरे अंश को क्षति पहुचाये रद्द नहीं किया जा सकता हो, (३) न्यायालय राजनैतिक प्रश्नों पर विचार नहीं करता अर्थात वे प्रश्न उसकी सीमा के बाहर हैं। उदाहरणार्थ न्यायालय ने इस सम्बन्ध में अपनी कोई सम्मति नहीं दी कि वयूबा पर सैनाधिपत्य की वैध अवधि कितनी हो सकती है, उनके विचार में इस प्रश्न का उत्तर देना शासन प्रणाली के राजनैतिक (न कि वैधानिक) अंगों का कार्य है। राजनीतिक प्रश्न कौन से हैं यह निर्धारित करना या उनकी निश्चित तालिका बनाना असम्भव है। अन्य विषयों की भाँति न्यायालय स्वय ही इन प्रश्नों की भी सीमाएँ निर्धारित करता है। इसमें सन्देह नहीं कि सिद्धान्त

न्यायिक समीक्षा की सीमायें

और व्यवहार में बड़ा अन्तर होता है। महत्वपूर्ण मामलों का भार कभी कभी न्यायालयों के आत्मनियंत्रण के लिये असहनीय होता है, अत सर्वोच्च न्यायालय के इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब वह अपनी मर्यादा भूल गया।

(४) इनके अतिरिक्त न्यायालय ऐसे कानून को अवैध घोषित नहीं कर सकता जो संविधान की व्यवस्थाओं का उल्लघन नहीं करता परन्तु जो न्यायालय के मत में अनुचित और दमनकारी (repressive) हैं। फिर भी यह आरोप लगाया जाता है कि कभी कभी न्यायाधीश संविधान की रक्षा या वैधानिकता की आड़ में ऐसे कानूनों को भी अवैध घोषित कर देते हैं जब वास्तव में व" कानून संविधान की व्यवस्थाओं का नहीं बल्कि केवल न्यायाधीश के अप आर्थिक या सामाजिक सिद्धान्तों का खण्डन करते हैं, कभी कभी उनके निर्ण उनके अपनी कानूनी दर्शन की अभिव्यक्ति मात्र होते हैं जिसे वह अपने सम की परिस्थितियों पर लागू करने का प्रयत्न करते हैं। मैक्स लर्नर का मत कि "न्यायालयों के निर्णय संविधान द्वारा उत्पन्न किये गये शिशु नहीं वर आर्थिक परिस्थितियों के परिणाम होते हैं"।

(५) सर्वोच्च न्यायालय ने अपने इतिहास के आरम्भ काल में ही केवल परामर्शदात्री मत देने से इनकार कर दिया था अत यह न्यायालय केवल काल्पनि मामलों पर अर्थात् जब कोई मामला वास्तविक रूप में इसके सम्मुख उपस्थित न किया जाये उस पर अपना मत प्रकट नहीं करता।

न्यायिक समीक्षा संविधान की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था और सर्वोच्च न्यायालय के हाथ में एक प्रभावशाली अधिकार सिद्ध हुआ और साधारणतया यह स्वीकृत किया जाता है कि इस अधिकार का प्रयोग संयुक्त राज्य की शासन व्यवस्था के लिये बड़ा लाभदायक रहा है। वास्तव में यदि न्यायालय ने अपने समीक्षा कार्य द्वारा संविधान कार्यान्वित करने में एकरूपता प्रदान न की होती तो आज अमेरिकी शासन प्रणाली ५१ (५० राज्य तथा राजकीय सरकार) प्रभुसत्ता प्राप्त प्रतिद्वंदी इकाइयों के मध्य प्रतिस्पर्धा तथा संघर्ष का क्षेत्र बन जाती, उसे कभी भी वह शक्ति प्राप्त न हो पाती और न वैसी नियमबद्ध कार्य प्रणाली का विकास हो पाता जैसा कि आज है।

न्यायिक समीक्षा का महत्व

अमेरिकी संविधान की दो विशेषताओं के कारण न्यायिक समीक्षा का महत्व और भी बढ़ गया है —(१) उसकी दुष्परिवर्तनशीलता, और (२) संविधान का अत्यन्त संक्षिप्त रूप। जब ऐसे अवसर उत्पन्न होते हैं जो संविधान की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत नहीं आते तो संविधान की उपधाराओं का प्रसार करने और उन्हें आवश्यकतानुकूल बनाने की आवश्यकता होती है। इसे 'रचनात्मक व्याख्या' कहते हैं, अर्थात् ऐसे मामलों पर 'संविधान के भाव' और 'निर्माताओं

के उद्देश्यों' के प्रकाश में विचार किया जाता है। इसी आधार पर निहित अधिकारों का सिद्धान्त संविधान के शस्त्रागार में प्रसार का एक प्रमुख साधन बन गया। मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने १८१९ में मैक कुलोच बनाम मेरी लैंड (Mc Culloch vs Maryland) के मामले में इसकी स्पष्टपूर्वक व्याख्या की। अपने निर्णय में उन्होंने कहा कि "सभी यह जानते हैं कि इस सरकार को केवल समर्पित अधिकार प्राप्त हैं। यह सिद्धान्त भी सर्वमान्य है कि वह केवल उन्हीं अधिकारों का प्रयोग कर सकती है जो उसे प्रदान किये गये हैं, परन्तु वास्तव में प्रदत्त अधिकारों की सीमा क्या है यह सदैव एक विवादग्रस्त प्रश्न रहा है और जब तक हमारी यह प्रणाली लागू रहेगी तब तक स्थिति ऐसी ही रहेगी सरकार के अधिकार सीमित हैं और उनमें वृद्धि नहीं की जा सकती है। परन्तु हमारा विचार है कि संविधान के स्वस्थ निर्माण में यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय विधान मण्डल को उन साधनों के निश्चित करने का अधिकार होना चाहिये जिनके द्वारा समर्पित अधिकारों के सम्बन्ध में वह अपने कर्तव्यों का पालन जनता की अधिक से अधिक भलाई के लिये कर सके और इस प्रकार अपना महान उत्तरदायित्व पूरा करने में समर्थ हो सके। उद्देश्य उचित एवं संविधान के अन्तर्गत होने चाहियें। फिर जो उनकी पूर्ति के लिये जो उपाय सोचे गये हों, यदि वे संविधानानुकूल हों, उसके द्वारा वर्जित न हों एवम् संविधान से अक्षरशः तथा भाव में असंगत न हों, तो वे संवैधानिक हैं"।

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय केवल संविधान की व्याख्या करने, उसकी प्रतिरक्षा करने और उसका संरक्षण देने में ही सफल नहीं हुआ है बल्कि वह उसको प्रगतिशील देश की बदलती आर्थिक तथा सामाजिक स्थितियों के अनुकूल बना सका है। अपने निर्णयों के द्वारा इसने उन अधिकारों की व्याख्या की है तथा उनका प्रसार किया जो संविधान में उल्लिखित हैं। इस प्रकार इसने महान फिलाडेल्फिया सम्मेलन के कार्य को जारी रखा है। अनेक लेखकों का कहना है कि "अमेरिकी जनता एक संविधान के अन्तर्गत अवश्य रहती है परन्तु संविधान वही है जो न्यायाधीश घोषित करते हैं"। न्यायाधीश [illegible] ने इस बात को कुछ अधिक जटिल रूप में इस प्रकार कहा है कि "सर्वोच्च न्यायालय ही संविधान है"। कुछ अश्रद्धालु आलोचकों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि "संविधान सर्वोच्च न्यायालय का अन्तिम अनुमान मात्र है"।

इसके अतिरिक्त अपने न्यायिक [illegible] द्वारा सर्वोच्च न्यायालय ने न केवल संविधान की रक्षा और उसका [illegible] किया है बल्कि इसने [illegible] और शासित के बीच मध्यस्था का [illegible] है अर्थात् इसने [illegible] अधिकारों तथा उसकी स्वतंत्रता की रक्षा की है। [illegible]

शक्ति पृथक्करण तथा संघीय और राज्य सरकारों के बीच अधिकार विभाजन को लागू करने और व्यक्ति स्वातन्त्र्य की रक्षा करने के लिये एक ऐसे मध्यस्थ की आवश्यकता होती है जो अधिकार क्षेत्र संबंधी झगड़ों का समाधान करा सके और सरकार तथा नागरिकों के बीच भी मध्यस्थ बन सके। संविधान के शब्द कभी इतने स्पष्ट नहीं होते जिससे झगड़ों की सम्भावना ही न रहे, उनकी अंतिम व्याख्या करने के लिये कोई अधिकारी अवश्य होना चाहिये। विल्सन के शब्दों में सर्वोच्च न्यायालय ही एक ऐसी संस्था है जो व्यक्ति के विशेषाधिकारों और शासन के परमाधिकारों (prerogatives) की रक्षा करती है। इस रूप में सर्वोच्च न्यायालय लार्ड ब्रायस के शब्दों में संविधान की सजीव ध्वनी अर्थात् जनता की उस इच्छा का, जिसे उन्होंने संविधान बनाकर अभिव्यक्ति दी है, सजीव प्रवक्ता बन गया है।

न्यायिक समीक्षा की आलोचना

(१) न्यायाधीशों के व्यवहार पर आपत्ति प्रकट करते हुए उनकी आलोचना की गई है। यह कहा गया है कि न्यायाधीश कोई वैधानिक यन्त्र नहीं हैं, वे भी मनुष्य हैं और इसलिये यह सम्भव है कि अपने वैधानिक निर्णयों में वे अपने राजनीतिक दर्शन और सामाजिक सिद्धान्तों से प्रभावित होते हों और इस प्रकार न्यायिक समीक्षा का प्रयोग सामाजिक एवम् राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक या बाधक बन सकता है। लास्की ने लिखा है" इस अधिकार के प्रयोग में वह सभी स्वभाव, विचार और अनुभव सम्मिलित हो जाते हैं जिनके न्यायाधीश प्रतीक हैं। अर्थात् प्रत्येक न्यायाधीश किसी समस्या का वही अर्थ लगाता है जिसे विशेष अर्थ में वह अपने स्वभाव, विचार और अनुभव के आधार पर समझता है। चूँकि निर्णय एक न्यायालय द्वारा किया जाता है इसलिये हम उसे एक वैधानिक निर्णय संज्ञा देते हैं। परन्तु यह वैधानिक निर्णय उन तमाम सामाजिक तथा आर्थिक शक्तियों से पृथक नहीं किया जा सकता जो कि अमेरिकी समाज से सक्रिय हैं"। सौभाग्य से निम्नलिखित कारणों से इस अधिकार का दुरुपयोग बहुत कम हुआ है —(अ) सर्वोच्च न्यायालय ने कभी भी अमूर्त प्रश्नों पर अपना निर्णय देना अर्थात् परामर्श दात्री मत देना स्वीकार नहीं किया, (ब) इसके सदस्यों ने व्यक्तिगत रूप से राजनैतिक दलदल से दूर रहने का प्रयत्न किया है, अर्थात पार्टियों से तथा पार्टी भावना से अपने को पृथक रखा है, और (स) इसने सदैव यह नीति अपनायी है कि शुद्ध राजनतिक प्रश्नों पर या कानून के उद्देश्यों पर वह विचार या निर्णय नहीं करेगा।

परन्तु जब हम इस बात को व्यापक दृष्टिकोण से देखते हैं कि 'राजनैतिक' प्रश्न है क्या तो पता चलता है कि सर्वोच्च न्यायालय अनेकों ऐसे प्रश्नों पर

निर्णय करता रहता है। साधारणतया श्रमिकों, आयकर, व्यापार वाणिज्य नियमन, मुद्रा, सामाजिक सुरक्षा, बालश्रम इत्यादि विषयों से सम्बन्धित कानून सभी राजनैतिक प्रश्नों की परिधि में आते हैं। यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इनकी समीक्षा करने का कार्य वैधानिक अथवा न्यायिक समझा जाता है वास्तव में *यह कार्य न्यायिक होने की अपेक्षा राजनैतिक अधिक होता है। संविधान* की व्याख्या करने में निश्चित नीति का प्रतिपादन अथवा अनुसरण करना स्वाभाविक ही है क्योंकि कांग्रेस और राष्ट्रपति द्वारा कोई कानून स्वीकृत हो जाने पर यदि सर्वोच्च न्यायालय इस सम्बन्ध में विवाद होने पर उसे अमान्य घोषित कर देता है तो उसका परिणाम यह होता है कि कानून में जो नीति निहित है वह देश की नीति नहीं हो सकती। इस प्रकार के हस्तक्षेप का कारण यह दिया जाता है कि न्यायालय के मत में संविधान का वह अर्थ नहीं है जो अर्थ कांग्रेस और राष्ट्रपति ने समझा। इस प्रकार न्यायालय नीति का निर्माता बन जाता है और यह निस्सन्देह न्यायालय को अपार अधिकार प्रदान करना है।

न्यायालय के समक्ष जितने भी मामले आते हैं उनमें से अधिकांश में न्यायालय को इस प्रकार के वाक्यांशों का अर्थ निर्धारित करना होता है, जैसे "कानून की निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार", "अनुचित तलाशियाँ और ज़ब्तियाँ", "वाणिज्य का नियमन", "आवश्यक एवं उचित" इत्यादि। जो समस्याएँ उठती हैं वह वैधानिक हो सकती हैं परन्तु व्यवहार में वे राजनैतिक प्रश्नों का स्वरूप ले लेती हैं। कारण यह है कि इस प्रकार के वाक्यांशों की न्यायाधीश अपनी प्रवृत्ति और दृष्टिकोण के आधार पर विभिन्न व्याख्या कर सकते हैं। इस प्रकार व्याख्या में व्याख्या करने वाले न्यायाधीश का व्यक्तिगत मत और उसका दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित होता है, न कि कोई निष्पक्ष वैधानिक सिद्धांत। ब्रोगन ने लिखा है कि "इस प्रकार के निर्णयों को चाहे कैसा ही वैधानिक वस्त्र पहिनाया जाय यह वास्तव में राजनैतिक निर्णय ही होते हैं"। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने १९३७ में *सर्वोच्च न्यायालय के पुनस्संगठन की अपनी योजना पर बोलते हुए कहा था* कि "अपने उपयुक्त न्याय कार्य के अतिरिक्त इस न्यायालय ने अनुचित रीति से अपने को कांग्रेस के तीसरे सदन के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है—और एक न्यायाधीश के कथनानुसार इसने एक *सर्वोच्च विधान मंडल का रूप ले लिया है*"। १९०८ में थियोडोर रूजवेल्ट ने कांग्रेस को दिये गये अपने एक सन्देश में कहा था कि "हमारे देश में मुख्य कानून निर्माता न्यायाधीश हो सकते हैं और प्रायः यह ही होते हैं क्योंकि उन्हीं को इस सम्बन्ध में अंतिम अधिकार प्राप्त है"। तथ्य यह है कि प्रत्येक बार जब वह ठेके (contract), सम्पत्ति, व्यस्त अधिकार (vested rights), निर्धारित प्रक्रिया, स्वतन्त्रता, इत्यादि की व्याख्या करते हैं वास्तव में

वह अपने सामाजिक दर्शन के अंशों को कानून का रूप देते हैं और चूंकि इस प्रकार की गई व्याख्या मूल मानी जाती है इसलिये वह सभी प्रकार के कानून निर्माण के लिये दिशा निर्देश करते हैं। इस प्रकार न्यायिक समीक्षा का वास्तविक प्रभाव विधियों के औचित्य पर, उनके न्याय-तत्व पर और उनके तर्कसंगत होने पर निर्णय देना होता है।

(२) एक बहुत प्रचलित परन्तु सर्वोच्च-न्यायालय के न्यायिक समीक्षा कार्य सम्बन्धी भ्रान्त धारणा यह है कि सर्वोच्च न्यायालय कांग्रेस के अधिकतर कानूनों को अवैध घोषित कर देता है। यह धारणा वास्तव में मिथ्या है। अपने पूरे इतिहास में सर्वोच्च न्यायालय ने कांग्रेस द्वारा स्वीकृत केवल लगभग ८० कानूनों को अवैध घोषित किया है और इनमें से अधिकांश विशेष महत्वपूर्ण नहीं थे। इसके लगभग पाँच या छः गुने अधिक कानूनों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई परन्तु न्यायालय ने उनकी वैधानिकता की पुष्टि ही की। राज्यों द्वारा पारित लगभग एक हजार से अधिक कानूनों की वैधता को चुनौती दी गई जिनमें से न्यायालय ने केवल एक चौथाई को रद्द किया। चूँकि कांग्रेस एक वर्ष में सैकड़ों और राज्य विधान मण्डल हजारों कानून बनाते हैं, इससे स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से न केवल अवैध घोषित किये जाने वाले कानूनों की संख्या ही नगण्य है बल्कि अपेक्षाकृत बहुत कम कानून ऐसे होते हैं जो वैधानिकता के प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख भेजे जाते हैं।

(३) रद्द किये गये कानूनों की संख्या की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जिन कानूनों को रद्द किया गया वह एक विशेष प्रकृति के कानून थे, उनका एक विशेष प्रकार का उद्देश्य तथा महत्व था, जैसे १८६४ का संघीय आयकर कानून, १९१६ और १९१६ के बालश्रम कानून और १९३३-३५ के बीच पारित अनेक नव निर्माण नीति (New Deal Policy) सम्बन्धी कानून। कोलम्बिया जिले के "महिलाओं और बच्चों के न्यूनतम वेतन कानून" को पाँचवें संशोधन से निःसृत अधिकार 'अनुबन्ध की स्वतन्त्रता' के विरुद्ध घोषित कर दिया गया। ५वें संशोधन में कहा गया है कि "बिना समुचित वैधानिक प्रक्रिया के जीवन, सम्पत्ति और स्वतन्त्रता से किसी को वंचित नहीं किया जा सकेगा।" राज्यों के भी अनेक कानून न्यायालय ने १४वें संशोधन की इसी प्रकार की व्यवस्था के आधार पर रद्द कर दिये, जैसे न्यूयार्क राज्य का वह कानून जिसमें बेकरीज़ (नाव रोटी बनाने के कारखानों) में काम करने के घण्टे निर्धारित किये गये थे और इसी राज्य का महिलाओं तथा बच्चों के लिये न्यूनतम वेतन कानून। जब इस प्रकार के कानूनों को रद्द कर दिया गया तो जनता में बड़ा असन्तोष फैला। उन्होंने न्यायालय के कार्य और उसके अधिकारों की बड़ी आलोचना की, उस

दृष्टिकोण और दर्शन की निन्दा की जिससे प्रेरित तथा प्रभावित होकर ही न्यायाधीश अपना निर्णय देते हैं और ऐसे न्यायाधीशों की नियुक्ति करने के लिये राष्ट्रपति के उद्देश्यों और उसकी बुद्धिमानी पर भी छींटे कसे गये।

(३) इसका एक घातक परिणाम यह हुआ है—और यह न्यायिक समीक्षा के अधिकार के विरुद्ध सबसे भयकर आलोचना है—कि संविधान सम्बन्धी प्रश्नों पर न्यायालय ने जो निर्णय दिये हैं उन्होंने सामाजिक प्रगति का विरोध किया और उनसे आर्थिक तथा सामाजिक सुधार के हेतु आवश्यक विधियों के निर्माण में बाधा पहुँची है। अत सर्वोच्च न्यायालय सदैव महा-स्वार्थी हितों (vested interests) का पोषक अथवा संरक्षक रहा है। एक न्यायाधीश का कहना था कि सर्वोच्च न्यायालय एक अच्छे समाज में अनर्थकारी परिवर्तनों का रोकता है परन्तु यह कहकर उन्होंने अपने कथन को पूरा नहीं किया कि न्यायाधीश विधान मण्डल द्वारा बनाये गये कानूनों को रद्द करके उसकी नीति के स्थान पर अपनी व्यक्तिगत सामाजिक दर्शन की विचार धारा को लागू करने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार एक न्यायाधीश की अपेक्षा वह एक विधायक का रूप धारण कर लेते हैं। इस बात पर प्रचुर प्रकाश डालने के लिए यह कहा जा सकता है कि न्यायाधीश अपने पिछले वातावरण, संस्कार, अपनी शिक्षा एवं अपनी विचार धारा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकते, जैसा कि एक बार गवनर जान जेकर ने कहा था। "केवल काला चोगा पहिन लेने से ही कोई व्यक्ति अपने आर्थिक और सामाजिक वातावरण के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता है"। इससे स्पष्ट है कि जब न्यायालय यह निर्णय देता है कि बेकरी में काम करने वाले कर्मचारियों के काम की अवधि १० घंटे निर्धारित करने वाला कानून अवैध है, या जब वह अन्य आर्थिक एवम् सामाजिक कानूनों पर अपना निर्णय देता है तो उसकी केवल यही आलोचना नहीं होती है कि वह पुरानी कानूनी रूढ़ियों और अपरिवर्तनशीलता का संरक्षक है बल्कि यह भी कहा जाता है कि न्यायाधीश अनुदार हैं, वे केवल सम्पन्न वर्ग तथा पुरातन विचारधारा के ही प्रतिनिधि हैं, वे नये दृष्टिकोणों को, नये परिवर्तनों को, नये उद्देश्यों को एवं नयी महत्त्वाकांक्षाओं को समझ सकने में असमर्थ हैं और इस प्रकार अपने सङ्कीर्ण, प्राचीन रूढ़ीवादी, दृष्टिकोण द्वारा वे संविधान के सजीव होने में अर्थात् उसके जन-कल्याण के लिये सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को हल कर सकने के हेतु यथासम्भव विकसित होने में बाधक हैं।

प्रोफेसर लास्की ने तो यहाँ तक कहा है कि न्यायिक समीक्षा के सिद्धान्त का महत्व इससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण इस तथ्य से प्रकट होता है कि अपने डेढ़ शताब्दी के इतिहास में इसकी सहायता से न्यायालय ने बहुमत की शक्ति में,

चाहे कांग्रेस में हो या राज्य विधान मण्डलों में, सम्पत्ति के अधिकारों को कुछ भी क्षति होने से बचाये रखा है। यह स्मरणीय है कि सर्वोच्च न्यायालय और उसके सिद्धान्त अमेरिकी इतिहास के एक ऐसे काल की अभिव्यक्ति हैं जब कि अमेरिका में व्यक्तिवाद का ही बोल बाला था, अर्थात् देश का प्रसार हो रहा था, व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों में साधारण विश्वास था और साथ ही यह विश्वास था कि राज्य के अधिकार (विशेषकर सम्पत्ति के क्षेत्र में) जितने ही सीमित होंगे उतनी ही सामाजिक सम्पन्नता की सम्भावना रहेगी। अत अमेरिकी संविधान के इस वैधानिक दर्शन के प्रति भक्त न्यायाधीश अपने न्याय समीक्षा के अधिकार को लास्की के शब्दों में 'मार्ग नहीं बल्कि प्रवेशद्वार' समझते थे और इस द्वार से जिस बात पर प्रतिबन्ध लगाया गया वह था अमेरिकी राजनैतिक जनतन्त्र का सामाजिक जनतन्त्र म परिवर्तन।

(४) केवल इसी बात की आलोचना नहीं की गई है कि सर्वोच्च न्यायालय ने कितने और किस प्रकार के कानूनों को रद्द किया बल्कि जिस ढङ्ग से वह अपने इस अधिकार का प्रयोग करता है उसकी भी आलोचना की गई है। आलोचकों का सबसे प्रिय एवं प्रभावशाली अस्त्र जिसका वह सदैव प्रयोग करते रहते हैं "चार के विरुद्ध पाँच का निर्णय" रहा है अर्थात् ऐसे निर्णय जिनमें पाँच न्यायाधीश एक कानून को अवैध घोषित करते हैं और चार यह घोषित करते हैं कि कानून वैध है। अत यह कहा जाता है कि एक न्यायाधीश जो जीवन भर न्यायाधीश के पद पर आसीन रहता है और जो मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी भी नहीं है कांग्रेस और राष्ट्रपति दोनों की योजना को रद्द कर सकता है यद्यपि यह दोनों जनता के प्रतिनिधि हैं। न्यायालय के यह आलोचक बराबर इसी 'एक व्यक्ति की निरंकुशता' पर प्रहार करते रहते हैं और इसे अलोकतन्त्री व्यवस्था कह कर तत्काल इसे समाप्त करने की माँग करते हैं। यह सुझाव भी दिया गया है कि किसी राष्ट्रीय कानून को अवैध घोषित करने के लिये दो तिहाई बहुमत की स्वीकृति या सर्वसम्मति का निर्णय अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए।

चार के विरुद्ध पाँच के बहुमत के निर्णय के साधारणतया और कम से कम कुछ समय के लिये न्यायालय के प्रति जनता के विश्वास और सम्मान पर बड़ा आघात पहुँचता है विशेषकर उस स्थिति में जब यह निर्णय एक ऐसे विषय से सम्बन्धित हो जो कि समकालीन राजनीति में विवाद का विषय हो। सौभाग्य से इन तथाकथित "एक व्यक्ति के निर्णयों" की संख्या बहुत नहीं रही परन्तु फिर भी इनसे न्यायालय के सम्मान को क्षति पहुँची है। इसी प्रकार निर्णय में असहमति (dissenting) तथा समानवर्ती मतों (concurring opinion) के उल्लेख के कारण भी न्यायालय के दोष रहित होने की मान्यता के प्रति सन्देह बढ़ता है।

विरोधी मतों और बहुमत के निर्णयों के कारण अर्थात् न्यायाधीशों का निर्णय पर एकमत न होने से न्यायिक समीक्षा के समर्थक विचित्र आकुलता में पड़ गये हैं। यह दुविधा दो गम्भीर अशान्तिजनक प्रश्न उठाती है (१) या तो यह स्वीकार किया जाये कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश सभी निष्पक्ष नहीं हैं या विद्वान नहीं हैं या ईमानदार नहीं हैं। यदि यह मान लिया जाये तो न्यायालय पर विश्वास का जो मनोवैज्ञानिक आधार है वही नष्ट हो जाता है, या (२) यह स्वीकार किया जाये कि विधान कोई ऐसा स्थिर या निश्चित विधान नहीं होता जिसका केवल एक ही रूप या अर्थ हो, जिसकी एक ही प्रकार से व्याख्या हो सके और जिससे वैधानिकता के प्रश्न स्वत निश्चित हो सकें। यह तर्क भी न्यायिक समीक्षा के लिये घातक है। इस प्रकार न्यायाधीशों के मतभेद को लेकर बहुमत द्वारा दिये गये निर्णयों की आलोचना की जाती है और न्यायिक समीक्षा के अधिकार पर प्रहार किया जाता है जैसा कि दास प्रथा के विरोधियों ने ड्रेड स्काट के मामले में १८५७ में किया। इसी प्रकार लोचनर के मामले में न्यायाधीश होम्स (Justice Homes) और मैकिन्तोश के मामले में न्यायाधीश ह्यूज (Houghes) के असहमत मतों का प्रयोग किया गया। यह कहा जाता है कि एक कानून या तो वैध है या नहीं, यह एक तथ्य (fact) की बात है जिस पर कोई मतभेद नहीं हो सकता। आश्चर्य और सन्देह तब उत्पन्न होता है जब कुछ न्यायाधीश इसको वैध मानते हैं कुछ नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि यह निश्चय किया ही नहीं जा सकता कि वह वैध है या नहीं और यदि ऐसी बात है तो कोई कारण नहीं कि केवल बहुमत के आधार पर एक ऐसे कानून को रद्द कर दिया जाय जिसको कांग्रेस तथा राष्ट्रपति दोनों की स्वीकृति प्राप्त है।

(५) प्रो० ओगन के मतानुसार न्यायिक समीक्षा का एक राजनैतिक दुष्परिणाम यह होता है कि इससे कानून निर्माण में असावधानी तथा अनुत्तर दायित्व को प्रोत्साहन मिलता है। कांग्रेस के सदस्य सदा यह सोचते हैं कि यदि उनके द्वारा बनाई गई विधि में कोई दोष होगा तो न्यायपालिका उसे दूर कर देगी। अत कानूनों के निर्माण में उसे दोष रहित बनाने के लिये वह कोई प्रयास नहीं करते। परिणाम स्वरूप अमेरिकी कांग्रेस द्वारा बनाई गई विधियों का स्तर अन्य देशों की अपेक्षाकृत कहीं नीचा होता है।

संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि न्यायिक समीक्षा का व्यवस्थापिका सभा पर जो प्रभाव होता है वह बड़ा हानिकारक है क्योंकि उससे विधायकों में यह भ्रांत धारणा हो जाती है कि अनुचित कानून बनाने से विशेष हानि नहीं है क्योंकि यदि वह अवैधानिक होगा तो उसे रद्द कर दिया जायेगा और यदि वैधानिक होगा तो वह बुरा या अनुचित हो ही नहीं सकता।

(६) न्यायिक समीक्षा का एक दुष्प्रभाव यह होता है कि इसके कारण राजनैतिक उद्देश्य निश्चित नहीं किये जा सकते, उनकी प्राप्ति अनिश्चित रहती है क्योंकि किसी भी समय न्यायाधीश राजनीतिज्ञों के कार्य में बाधा डाल सकते हैं। राजनीतिज्ञ अपनी नीति तथा कार्यक्रम को निधारित करने या लागू करने में स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं कर सकते और न ही जनता स्वयं अपनी इच्छा की स्वामिनी हो सकती है। ब्रोगन के शब्दों में "अमेरिकी राजनीतिज्ञों को संविधान (जैसी उसकी समय-समय पर व्याख्या की जाय) की सीमाओं से मर्यादित होकर काम करना पड़ता है। अतः उनके कार्य में एक प्रकार की कृत्रिमता एवं शिथिलता पाई जाती है, वे कोई व्यापक सुधार योजना लागू करने में असमर्थ हैं अतः यत्र तत्र किंचित परिवर्तन एवं परिवर्द्धन करके ही उन्हें सतोष करना पड़ता है। वास्तव में संयुक्त राज्य विचित्र राजनैतिक अन्धविश्वासों से भरा एक नूतन देश है। इसके संकीर्ण पथ में राजनीतिज्ञों को सदा भय बना रहता है कि कहीं अचानक ही मार्ग बन्द न हो जाय क्योंकि पथ प्रदर्शन करने वाले सिद्धान्त निश्चय ही बहुत निर्बल हैं विधान निर्माण की दौड़ में विजेता को सदा यह आशंका रहती है कि कहीं उसे किसी ऐसे नियम के उल्लङ्घन के अपराध में अयोग्य घोषित न कर दिया जाय जिसका दौड़ के समय किसी को भी कोई ज्ञान न था"।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि न्यायिक समीक्षा के सिद्धान्त को अमेरिकी संवैधानिक इतिहास के प्रथम १२५ वर्षों में सफलता पूर्वक लागू किया जा सकने का मुख्य कारण यह था कि यह काल अमेरिकी इतिहास में व्यक्तिवादी परम्परा का काल था। साधारणतया यह विश्वास किया जाता था कि न्यायालयों का यह परम कर्तव्य है कि वे राज्य को व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करने से रोकें, अर्थात् राज्य का विरोध कर व्यक्ति स्वातन्त्र्य और उसके अधिकारों (विशेषकर सम्पत्ति के अधिकार) की रक्षा करें और राज्य की क्रियाओं को अधिकाधिक सीमित करें। ऐसे वातावरण में न्यायिक समीक्षा की व्यवस्था का एक और विशेष महत्व पूर्ण स्थान था। यही कारण है कि इस काल में न्यायाधीशों ने सदैव दृढ़तापूर्वक बहुमत की प्रगति को रोक कर सम्पत्ति के दुर्ग की रक्षा की और निरन्तर इस सिद्धान्त का अनुसरण किया कि व्यक्तिगत-सम्पत्ति एवं व्यापारिक हितों की रक्षा में ही सामाजिक कल्याण एवं आर्थिक उन्नति निहित है। परन्तु प्रथम महायुद्ध के उपरान्त जैसे ही सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ बदलने लगीं अमेरिकी संविधान के मूल सिद्धान्त भी असंगतिपूर्ण प्रतीत होने लगे क्योंकि यह सिद्धान्त एक नकारात्मक राज्य-व्यवस्था में ही सफलतापूर्वक कार्यान्वित किये जा सकते थे। परन्तु अब परिस्थिति इस बात की मांग करती है कि राज्य सामाजिक व्यवस्था में तटस्थ न रह कर उसका एक सक्रिय निर्देशक एवं संचालक बन जाय अर्थात

राज्य अपनी सामूहिक शक्ति का जन कल्याण के लिये प्रयोग करे न कि केवल व्यापारिक हितों के लिये ही। वह अधिकाधिक व्यक्ति के जीवन को नियमित करे, विशेष कर देश की आर्थिक प्रणाली को। परन्तु सर्वोच्च न्यायालय अपने समीक्षाधिकार द्वारा आज भी १९ वीं शताब्दी के उस व्यक्तिवादी दर्शन को लागू करने का प्रयत्न करता है जो अब परिस्थितियों के बिल्कुल प्रतिकूल हो गया है। अतः सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति और आधुनिक राज्य के उद्देश्य एक दूसरे के अनुकूल न रह कर परस्पर विरोधी हो गये हैं। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह है कि १९ वीं शताब्दी में अमेरिका निरन्तर प्रसार व उन्नति कर रहा था इसलिये इस विकास शील वातावरण में प्रत्येक साहसी और उद्यागी व्यक्ति के लिये सम्पत्ति और समृद्धि का द्वार खुला हुआ था। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति अपने विकास के लिये स्वय अपने पर निर्भर रह सकता था। इस प्रगति में राज्य को एक विरोधी संस्था माना जा सकता था और इस विरोध में व्यक्ति का संरक्षक सर्वोच्च न्यायालय को बनाया जा सकता था। परन्तु आज की परिस्थिति में यह सम्भावना नहीं रही है। अतः व्यक्ति का कल्याण राज्य पर ही निर्भर है। व्यक्ति स्वातन्त्र्य राज्य द्वारा नियमित जीवन—विशेष कर आर्थिक प्रणाली—में ही प्राप्त हो सकता है न कि "मर्यादाओं के अभाव में"। १९२९-३३ का विश्व व्यापी आर्थिक संकट (world economic crisis) और उसका सामना करने के लिये राष्ट्रपति रुजवेल्ट की 'नव निर्माण नीति' (New Deal Policy) इस नये वातावरण की प्रतीक हैं। इस वातावरण में न्यायिक समीक्षा जैसे सिद्धान्त असंगतिपूर्ण एवं अनुपयुक्त हो गये हैं क्योंकि यह सिद्धान्त राज्य को अब भी उन्नीसवीं शताब्दी के संकुचित दृष्टिकोण से बाँधना चाहता है, साथ ही व्यक्तिवाद का भी संरक्षण करता है। और जैसा कि प्रो० लास्की का मत है, आज के विश्व में कोई भी आधुनिक राज्य ऐसी जटिल प्रक्रियाओं पर निर्भर नहीं कर सकता जैसी कि न्यायिक समीक्षा और संविधान में संशोधन की अमेरिकी पद्धति है।

इस पृष्ठ भूमि को देखते हुये १९३७ में सर्वोच्च न्यायालय पर जो अभूतपूर्व प्रहार किया गया उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। १९३७ में जब सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों द्वारा राष्ट्रपति रुजवेल्ट की नव निर्माण नीति (New Deal Policy) सम्बन्धी कुछ कानूनों, जैसे १९३३ का राष्ट्रीय औद्योगिक पुनर्स्थापना कानून (National Industrial Recovery Act), इसी वर्ष का कृषि व्यवस्थापन कानून (Agricultural Adjustment Act), १९३४ का रेलरोड पद निवृत्ति कानून (Rail Road Retirement Act), १९३५ का बिटूमिनस कोयला संरक्षण कानून (Bituminous Coal Conservation Act) इत्यादि

१९३७ का न्यायालय पुनस्संगठन विवाद

को अवैध घोषित कर दिया तो सर्वोच्च न्यायालय पर अनुदार और प्रतिगामी होने का आरोप लगा कर उसकी बड़ी उत्कट आलोचना की गई। जिस न्यायालय का सब से छोटा न्यायाधीश ६१ वर्ष का था और सब से बड़ा ८० वर्ष का (जिसके न्यायाधीश मण्डल की औसत आयु ७२ वर्ष थी), जिसके पाँच न्यायाधीश उस विचारधारा के समर्थक थे जिसके यदृभाव्य नीति (Laissez faire), व्यक्तिवाद और उन्मुक्त प्रतियोगिता मूल आधार थे वह निश्चय ही सरकार द्वारा सामाजिक तथा आर्थिक शक्तियों पर नियन्त्रण स्थापित करने के प्रयत्नों की ओर सहानुभूति की दृष्टि से देख नहीं सकता था। अतः जब रूजवेल्ट ने देश व्यापी आर्थिक संकट का सामना करने के लिये अपना राष्ट्रोद्धार सम्बन्धी कार्य क्रम (National Recovery Programme) लागू करना चाहा तो सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों ने एक गतिरोध उत्पन्न कर दिया। स्वभाविक ही न्यायालय के निर्णयों से समस्त देश में खलबली मच गई, उसकी आलोचना की गई और पूरे राष्ट्र का ध्यान इस ओर आकर्षित हो गया। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने भी परिस्थिति का दृढ़तापूर्वक सामना किया। उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय पर प्रत्याक्रमण किया और उसके पुनस्संगठन के लिये प्रयत्नशील हो गये। इस उद्देश्य से १६३७ में कांग्रेस में एक विधेयक प्रस्तुत किया गया जिसकी एक धारा के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया कि वह सर्वोच्च न्यायालय के जिस न्यायाधीश की आयु ७० वर्ष हो चुकी है उसकी पदनिवृत्ति के बिना ही उसके स्थान पर (सिनेट की स्वीकृति से) एक अतिरिक्त न्यायाधीश नियुक्त कर सकेंगे। इस प्रकार से नियुक्त अतिरिक्त न्यायाधीशों की संख्या ६ से अधिक नहीं होनी चाहिए। परन्तु इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया गया और राष्ट्रपति पर यह आरोप लगाया गया कि वह न्यायालय को अपने समर्थकों से भर देना चाहते हैं। इस विरोध में राष्ट्रपति की पराजय हुई और अन्त में न्यायालय के पुनस्संगठन की योजना असफल हो गई, कांग्रेस में प्रस्तुत विधेयक स्वीकृत न हो सका। परन्तु इसके कुछ समय उपरान्त ही कुछ न्यायाधीशों की मृत्यु और कुछ के पद निवृत हो जाने से और इसके साथ ही शेष न्यायाधीशों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाने से रूजवेल्ट अपना उद्देश्य पूरा कर सकने में सफल हो गये। अब उनके "न्यू डील" सम्बन्धी कानूनों को सर्वोच्च न्यायालय का समर्थन प्राप्त था अतः उनके कार्यान्वित होने में कोई बाधा न रह गई। अपना उद्देश्य पूरा हो जाने पर सर्वोच्च न्यायालय का पुनस्संगठन करने में राष्ट्रपति की रुचि समाप्त हो गई। इस लिये इस प्रश्न पर सारा विवाद ही अतीत का इतिहास मात्र बन कर विलीन हो गया।

राष्ट्रपति ट्रूमन द्वारा इस्पात के कारखानों की जब्ति—परन्तु यह कोई प्रथम या अन्तिम अवसर नहीं था जब कि सर्वोच्च न्यायालय पर प्रहार किया गया।

१८०३ से ही न्यायिक समीक्षा के विरुद्ध असन्तोष व्यक्त किया गया और उन पक्षों द्वारा इस असाधारण अधिकार की कटु आलोचना की गई है जिनके प्रिय कानून समय समय पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवैध घोषित कर दिये गये। वास्तव में जब भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों ने किसी लोकप्रिय योजना का विरोध किया तभी न्यायालय के अधिकारों पर नियन्त्रण लगाने के लिये आन्दोलन चल पड़े। अभी हाल ही में यंगस्टाउन कम्पनी बनाम सौयर (Youngstown Co vs Sawyer) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बहुत थोड़े बहुमत से राष्ट्रपति ट्रूमन द्वारा इस्पात के कारखानों की जब्ति अवैध घोषित कर दी। न्यायालय के इस निर्णय से पुन देश में हल चल मच गई और उस पर यह आरोप लगाया गया कि वह राष्ट्रपति द्वारा सयुक्त राज्य अमेरिका के सविधान की रक्षा करने एवम् उसे सरक्षण प्रदान करने के मार्ग में बाधक है। राष्ट्रपति के समर्थकों का यह तर्क था कि मुख्य प्रशासनाधिकारी के रूप में राष्ट्रपति को संकटकालीन अवस्था के उत्पन्न होने पर स्वय सविधान द्वारा यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह देश हित में आवश्यकतानुसार कोई भी कार्य कर सकता है और ऐसी परिस्थितियों म और इन उद्देश्यों से प्रेरित राष्ट्रपति को कानून से विचलित होने की भी स्वतनता दी जा सकती है। यह उल्लेखनीय है कि इस मामले में स्वयं मुख्य न्यायाधीश विन्सन, न्यायाधीश रीड और मिन्टन और न्यायाधीश क्लार्क (जो न्यायालय के निर्णय से सहमत थे परन्तु उसकी राय से नहीं) ने ट्रूमन का समर्थन करते हुए यह स्वीकार किया कि कोई राष्ट्रीय सकट उपस्थित होने पर राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह सविधान में निहित सब अवशिष्ट अधिकारों का भी प्रयोग कर सके। न्यायाधीश क्लार्क ने कहा कि "मेरी दृष्टि में गम्भीर राष्ट्रीय विपत्ति की अवस्था में सविधान द्वारा निश्चित ही राष्ट्रपति को व्यापक अधिकार दिये गये हैं। वास्तव में मेरे विचार से स्वय सविधान के अस्तित्व के लिये इस प्रकार का अधिकार प्रदान करना आवश्यक है"।

परन्तु सर्वोच्च न्यायालय का बहुमत इस प्रकार के तर्क सुनने को तैयार नहीं था। इसकी दृष्टि में इस्पात के कारखानों पर कब्जा करना अवैधानिक था क्योंकि यह कार्य उन सभी प्रक्रियाओं के प्रतिकूल था जो काग्रेस ने इस प्रकार की सकट कालीन स्थितियों का सामना करने के लिए निर्धारित की हैं। वास्तव में काग्रेस को पहले ही से इस बात की शका थी कि श्रम विवादों से उन वस्तुओं के उत्पादन में बाधा पहुँच सकती है जो राष्ट्र के अस्तित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। अत इस शंका को दूर करने के लिए उसने तीन विशिष्ट उपाय निर्धारित कर दिये थे जिनके द्वारा इस प्रकार के झगड़ों को निपटाया जा सके। परन्तु राष्ट्रपति ट्रूमन ने इन तीनों ही की उपेक्षा कर एक ऐसा मार्ग अपनाया जो कानून के

विरुद्ध था। परन्तु साधारण जनता इस प्रकार के वैधानिक तर्कों को नहीं समझती और अपने भावावेश में वह सर्वोच्च न्यायालय को ही दोषी ठहराती है।

सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों को कम करने के लिए अनेक प्रस्ताव उपस्थित किये गये हैं —(१) आरम्भ में १७८९ के न्यायपालिका कानून की २५ वीं धारा को रद्द करने के हेतु प्रस्ताव रखे गये जिसके अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को राज्य-न्यायालयों के उन निर्णयों की समीक्षा करने का अधिकार प्राप्त था जिनमें संघीय अधिकारों का खण्डन किया गया हो। (२) एक दूसरा प्रस्ताव यह है कि वैधानिकता के प्रश्नों पर निर्णय बहुमत द्वारा न होकर कम से कम ७ न्यायाधीशों की सहमति से होना चाहिये। इस प्रकार का एक सुझाव १९२४ में सिनेटर ला फोलेट (Senator La Follette) ने प्रस्तुत किया था। (३) १९१२ में राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने यह प्रस्ताव रखा कि यदि किसी राज्य द्वारा बनाये गए कानून को अवैध घोषित कर दिया जाता है तो उस पर राज्य की जनमतगणना कर ली जाय और यदि जनमतगणना कानून को लागू करने के पक्ष में है तो सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय निषिद्ध समझा जाये। (४) यह भी सुझाव दिया गया है कि कांग्रेस को यह अधिकार दिया जाय कि वह संविधान सम्बन्धी मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को विशेष बहुमत से (उदाहरण के लिए दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत से) निषेध कर सके। परन्तु अन्य प्रस्तावों की भाँति इस सुझाव की भी कड़ी आलोचना की गई है। यह कहा गया कि (अ) इससे कांग्रेस अपने द्वारा बनाये गए कानूनों की वैधानिकता की स्वयं ही निर्णायक हो जायगी और वह संविधान का स्वतन्त्रतापूर्वक उल्लंघन कर सकेगी, (ब) यह सुझाव न्यायपालिका की प्रभुता के उस सिद्धान्त पर आक्रमण करता है जिसपर अमेरिकी संघात्मक शासन प्रणाली आधारित है। (५) वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय कोई परामर्शात्मक मत नहीं देता है और इसीलिए अनेक मामलों में वर्षों तक यह मालूम नहीं होता है कि कानून वैधानिक है या नहीं। इसलिए यह सुझाव रखा गया है कि राष्ट्रपति या कांग्रेस के अनुरोध करने पर सर्वोच्च न्यायालय को संवैधानिक प्रश्नों पर अपना परामर्श आत्मक मत देने का भी अधिकार होना चाहिए ताकि विधि व्यवस्था उसी प्रकार की जा सके। परन्तु यह सुझाव भी दोष रहित नहीं है क्योंकि परामर्श देने में भय यह है कि न्यायाधीश, जिनका कार्य केवल वैधानिक निर्णय देना है, राजनैतिक विवादों में उलझ जायेंगे और वह अपना कार्य उस निष्पक्षता से न कर सकेंगे जो एक न्यायालय के अस्तित्व और उसके सम्मान के लिये अनिवार्य होती है।

सुधार के लिए सुझाव

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों को कम करने के उद्देश्य से प्रस्तुत कोई भी प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जा सका क्योंकि साधारणतया यह

अनुभव किया जाता है कि किसी भी वैधानिक युक्ति द्वारा इन अधिकारों के दुरुपयोग पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता। वास्तव में इनका सदोपयोग तो न्यायाधीशों की योग्यता, उनकी क्षमता, उनके चरित्र और उनके समक्ष वकील-समुदाय द्वारा किये गये वाद विवादों के स्तर पर निर्भर करता है। केवल कुछ अपवादों को छोड़ इसमें सन्देह नहीं कि अपने लम्बे इतिहास में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने को देश की मानसिक स्थिति के अनुकूल बनाये रखने का प्रयत्न किया है और यही कारण है कि अपने मित्रों की आशंका और अपने शत्रुओं के आक्रमण को सहन करते हुये आज भी सर्वोच्च न्यायालय अमेरिकी राजनैतिक व्यवस्था का महान प्रहरी बना हुआ है।

विशेष न्यायालय (Special Courts)

अमेरिकी न्यायपालिका के इस अध्ययन का अन्त करने से पूर्व उन न्यायालयों का वर्णन करना आवश्यक है जिनको "विधान मण्डल कृत" न्यायालय (Legislative Courts) कहा जाता है, यह न्यायालय उन वैधानिक न्यायालयों से भिन्न होते हैं जिनकी पहिले चर्चा की जा चुकी है। इनका यह नामकरण करने का भी विशेष कारण है और वह यह है कि इन न्यायालयों की स्थापना संविधान के न्यायपालिका सम्बन्धी अनुच्छेद के अन्तर्गत न हो कर कांग्रेस की विधियों द्वारा हुई है और इनका कार्यक्षेत्र भी विशिष्ट होता है। कोलम्बिया जिले के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका का अपील न्यायालय जिला कोलम्बिया के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रदेशिक न्यायालय, अन्य क्षेत्रीय न्यायालय, या चीन के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका का न्यायालय (जो १९४६ में भंग कर दिया गया) इस प्रकार के विशिष्ट संघीय न्यायालयों के अच्छे उदाहरण हैं। परन्तु इनमें विशेष महत्व के न्यायलय वह हैं जिनको कांग्रेस ने विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु स्थापित किया है, जैसे संघीय सरकार के विरुद्ध दावे के मामलों की सुनवाई के लिए १८५५ में स्थापित दावों का संघीय न्यायालय (Federal Court of Claims) या चुंगी (customs) और पेटेन्ट सम्बन्धी अपीलों का न्यायालय (Court of Customs and Patent Appeals), कर न्यायालय और सैनिक न्यायालय (Military Court Martial) के निर्णय के विरुद्ध की गई अपीलों को सुनने के लिये असैनिक न्यायालय (Civilian Court of Military Appeals)। इनके अतिरिक्त विभिन्न नियन्त्रण आयोगों (Regulatory Commissions) और विभिन्न विभागों तथा एजेन्सियों के अन्तर्गत स्थापित प्रशासकीय न्यायालय (Tribunals) का भी संघीय न्याय व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है।

अन्त में राष्ट्रीय न्याय प्रणाली में एक एटर्नी जनरल की भी व्यवस्था की गई है जो न्याय विभाग का अध्यक्ष होता है। उसकी सहायतार्थ सहायक एटार्नी जनरल होते हैं। इन अधिकारियों का मुख्य कार्य राष्ट्रपति एवम् विभिन्न विभागों के अध्यक्षों को वैधानिक प्रश्नों पर परामर्श देना होता है। इनके अतिरिक्त एक सालीसीटर जनरल भी होता है जो सर्वोच्च न्यायालय में संघीय पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है और अन्त में अपराधियों की खोज के लिये एक संघीय अन्वेषण ब्यूरो (Federal Bureau of Investigation) की भी व्यवस्था की गई है।

अध्याय १० | राजनैतिक दल

अब तक हमने संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली की वर्तमान वैधानिक स्थिति पर ही विचार किया है। जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, यह प्रणाली १७८७ के फिलाडेल्फिया सम्मेलन द्वारा निर्मित संविधान पर आधारित है। परन्तु इस संविधान की परिधि के परे भी इस शासन प्रणाली के संचालन में एक शक्ति सक्रिय रहती है जिसकी संविधान के निर्माताओं ने तो कल्पना तक न की थी परन्तु जो आज शासन संचालन में वैधानिक संस्थाओं से भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। वास्तव में यही शक्ति वैधानिक संस्थाओं को आकार प्रकार एवम् सजीवता प्रदान करती है। इस शक्ति से हमारा अभिप्राय राजनैतिक दलों से है।

आधुनिक प्रजातन्त्रवादी युग में राजनैतिक दलों का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। लार्ड ब्राइस जैसे विद्वानों का विचार है कि बिना इन दलों के प्रजातन्त्रात्मक सरकार सफलतापूर्वक संगठित की ही नहीं जा सकती। अतः राजनैतिक दलों को संविधान का "संचालक चक्र" कहना अनुचित न होगा। वास्तव में राजनैतिक दलों के कार्यक्रम, इनके पारस्परिक प्रतिद्वन्दों तथा मतभेदों द्वारा ही संविधान की व्याख्या होती है, उसका प्रसार होता है और अन्त में संविधान व्यवहार में एक ऐसा रूप धारण कर लेता है जिसकी आरम्भ में कल्पना भी न की जा सकती थी।

आरम्भ में ही यह विलक्षण प्रतीत होता है कि अमेरिका में पार्टी की कल्पना इंगलैण्ड या यूरोप की परम्परागत विचारधारा से बहुत भिन्न है। यूरोप और इंगलैण्ड में पार्टी के सारांश को बर्क के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि "राजनैतिक पार्टी ऐसे व्यक्तियों की समुदाय होती है जो कुछ विशेष सिद्धान्तों के आधार पर जिनसे वह सभी सहमत हों राष्ट्रीय हित की उन्नति के हेतु संयुक्त हुये हैं"। परन्तु अमेरिका में राजनैतिक दल न तो राष्ट्रीय हित की उन्नति के हेतु ही संगठित होते हैं और न ही इनकी एकता का सम्बन्ध किन्हीं विशेष सिद्धान्तों से होता है। यदि अमेरिकी राजनैतिक दलों की परिभाषा करने का प्रयत्न किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि अमेरिकी राजनैतिक पार्टी "ऐसे पुरुषों (तथा १९ वें संशोधन के पश्चात् से स्त्रियों) का समुदाय है जो

शासन यन्त्र पर आधिपत्य स्थापित करने के लिये संगठित हुए हैं"। राजनैतिक पार्टियों की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि का परीक्षण करने पर उनकी यह परिभाषा स्पष्ट हो जाती है।

राजनैतिक पार्टियों का इतिहास

लार्ड ब्राइस का कथन है कि अमेरिका की राजनैतिक पार्टियाँ शुद्ध रूप से स्वदेश की ही उपज हैं और राष्ट्र की परिस्थितियों के अनुसार ही इनका विकास हुआ है। उनका यह कथन पूर्णतया सही है। यह उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ से अन्त तक अमेरिका के इतिहास में सब सार्वजनिक प्रश्नों पर दो व्यापक मतभेद रहे हैं और इस कारण वहाँ पर बहु-पार्टी प्रणाली की अपेक्षा द्वि-पार्टी प्रणाली को ही प्रश्रय मिला है। स्पष्टतया ही अमेरिकी पार्टियों के प्रसंग में 'प्रणाली' शब्द का विशेष सकुचित अर्थ में ही प्रयोग किया जा सकता है। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पूर्व भी क्रांति के समय अमेरिका में दो पृथक गुटों का उद्भव हो गया था जिन्हें देश भक्त और स्वामी भक्त (Loyalists) के नाम से पुकारा जाता था। इन ही में हमें आगामी दलों का प्रारूप दिखाई देता है। इसी प्रकार फिलाडेलफिया सम्मेलन में संविधान की रचना करते समय वाद विवाद एवं विचार विमर्श में दो विरोधी प्रवृत्तियां विद्यमान थीं जो शीघ्र ही उन राज्य सम्मेलनों में और भी उग्र एवम विस्तृत रूप में प्रकट हुईं जिनको नए संविधान का प्रारूप स्वीकृति के लिये भेजा गया था। यह प्रवृत्तियाँ थीं संघीय और संघ विरोधी या केन्द्रापसारी (centrifugal) और केन्द्रोपसारी (centripetal)। इनमें से एक प्रवृत्ति यह थी कि वैयक्तिक स्वातन्त्र्य सुरक्षित रहे और कानून निर्माण में, प्रशासन में, अपने निर्धारित अधिकार क्षेत्र में और प्राय परराष्ट्र नीति और राष्ट्रीय प्रतिरक्षा को छोड़ अन्य सभी विषयों में संघातरित राज्यों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो। इसके विरुद्ध यह प्रवृत्ति थी कि राज्यों को पूर्णतया राष्ट्र के आधीन किया जाय और केन्द्रीय सरकार को व्यापक अधिकार प्रदान किये जायें। साराश यह है कि वाशिंगटन के द्वितीय प्रशासनकाल तक *अमेरिका में राजनैतिक पार्टियों का स्पष्ट प्रस्फुटन हो गया। एलेक्जेन्डर हैमिल्टन* के अधीन एक दल, नाममात्र को जिसका नेतृत्व स्वयं वाशिंगटन के हाथ में था, ऐसी कार्य-नीति का समर्थक था जिसमें यह माना गया था कि संघीय सरकार शक्तिशाली हो और राष्ट्र के आर्थिक विकास एवं उन्नति के लिए वह व्यापक अधिकारों का प्रयोग करे। इनको 'फैडूलिस्ट' या 'संघवादी' कहा जाने लगा। दूसरी ओर वह लोग थे जिनको शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार पर विश्वास नहीं था, राज्य की सरकारों पर ही उनकी अधिक श्रद्धा थी और मुख्य रूप से कृषि में ही उनकी अभिरुचि थी। थामस जेफरसन के नेतृत्व में इन्होंने अपने को रिपब्लिकन या डेमोक्रेटिक-रिपब्लिकन कहना आरम्भ कर दिया। यही वर्तमान की

डेमोक्रेटिक पार्टी के पूर्वज थे। फैड्रलिस्ट एकता और 'व्यवस्था' (order) पर अधिक जोर देते थे परन्तु जेफरसन के अनुयायी राज्यीय, स्थानीय और वैयक्तिक स्वतन्त्रता को अधिक प्रिय समझते थे और इसीलिए वह स्वतन्त्रता के पुजारी होने का दावा करते थे। फैड्रलिस्ट पार्टी का व्यापारिक, औद्योगिक और वित्तीय हितों का समर्थन प्राप्त था और इसकी शक्ति प्रधानतया उत्तरी राज्यों में केन्द्रित थी। इसके विपरीत डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन पार्टी आन्तरिक करों एवं आयात निर्यात करों को घटाने के पक्ष में थी, अतः खेतिहर वर्ग ने इसका समर्थन किया और इसकी शक्ति प्रधानतया दक्षिण के राज्यों में थी। इन दलों में केवल परराष्ट्र नीति या कानून निर्माण के प्रश्नों पर ही नहीं बल्कि संविधान की व्याख्या करने में भी परस्पर मतभेद था। फैड्रलिस्ट पार्टी संविधान की अक्षरशः व्याख्या करने के पक्ष में न थी। उसका मत था कि संविधान की व्याख्या उदारतापूर्वक की जाये ताकि संघीय सरकार को उल्लिखित शक्तियों के अतिरिक्त अन्तर्निहित अधिकारों से भी विभूषित किया जा सके। परन्तु इसके विपरीत डेमोक्रेटिक रिपब्लिकन पार्टी संविधान की अक्षरशः व्याख्या करके संघीय सरकार को अधिकाधिक सीमित करना चाहती थी। वह राज्य सरकारों को अधिकतम स्वाधीनता देने के पक्ष में थी। इस प्रकार दो भिन्न पार्टियों का जन्म हुआ जिनके अपने अपने नेतागण थे और जिनके सिद्धान्तों, सहानुभूतियों तथा विचारधाराओं में परस्पर विरोध था। फिर भी यह कहा जा सकता है कि जब तक वाशिंगटन राष्ट्रपति पद पर रहे पार्टियों का स्पष्ट विभाजन एक प्रकार से अनिर्णित स्थिति में रहा। वाशिंगटन का दल बन्दी के विरुद्ध गहरा अविश्वास था और अपने विदाई सन्देश में उन्होंने इसको प्रश्रय न देने की गम्भीर चेतावनी दी परन्तु शीघ्र ही १७९६ के राष्ट्रपति के चुनाव के समय ही दल बन्दी स्पष्ट उभर आयी थी जिसमें 'फेडलिस्टों'—'बुद्धिमान, धनवान और सज्जनों की पार्टी'—ने राष्ट्रपति भवन (White House) में प्रवेश किया। परन्तु १८०१ तक प्रकाशन तथा विचार स्वातंत्र्य, किसानों पर लगे अधिक करों को कम करने, राज्यों के वैधानिक अधिकारों की रक्षा करने और पूंजीपति वर्ग के बढ़ते अधिकारों को सीमित करने की मांगों पर चलाये गये आन्दोलन के फलस्वरूप जेफरसन के अनुयायियों के हाथ में सत्ता पहुँच गई और तब से लगभग आधी शताब्दी तक राजनैतिक क्षेत्र में उनका प्रभुत्व रहा। १८०० के चुनाव में फैडलिस्टों को जो कड़ा आघात पहुँचा उससे वह फिर कभी सम्भल नहीं पाये और १८१५ के पश्चात् वह धीरे-धीरे राजनैतिक रंगमंच से लुप्त हो गये। प्रोफेसर हैनरी स्टील कोमैगर ने "आस्पेक्टस आव अमेरिकन गवर्नमेन्ट" (Aspects of American Government) में फैड्रलिस्टों के इस पतन के ३ मुख्य कारण बताये हैं —(१) यह पार्टी निश्चय ही अभिजात वर्गीय

(aristocratic) थी और अमेरिका जैसे लोकतन्त्रीय समाज में कोई अभिजात वर्गीय पार्टी अधिक दिना तक नहीं ठहर सकती थी, (२) पार्टी ने कभी भी अपने सगठन की ओर ध्यान नहीं दिया, वह केवल अपने प्रतिभाशाली सदस्यों तथा नेताओं पर ही निर्भर करती रही। १८०३ में हैमिल्टन की मृत्यु हो जाने से पार्टी को बड़ी हानि हुई क्योंकि वह फैडूलिस्ट पार्टी का सबसे योग्य नेता था, और (३) फैडूलिस्टों द्वारा फ्रांस के साथ युद्ध का समर्थन किये जाने से और फलस्वरूप अधिक कर लगाये जाने के साथ ही विदेशियों तथा देशद्रोह सम्बन्धी कानूनों से जनता का बहुत बड़ा भाग इनका विरोधी हो गया जिसका परिणाम यह हुआ कि १८१५ में इगलैण्ड से दूसरी शांति सधि होने पर फैडूलिस्ट पार्टी सदैव के लिये राजनैतिक मञ्च से लुप्त हो गई। इस प्रकार अमेरिकी दलों के इतिहास के नाटक का पहला दृश्य समाप्त होता है।

डेमोक्रेट और ह्विग (१८१५-१८५६)—१८१५ और १८२० के बीच फैडूलिस्ट पार्टी के लुप्त हो जाने के पश्चात् राजनैतिक क्षेत्र में रिपब्लिकन डेमाक्रेटिक पार्टी का एकमेव प्रभुत्व स्थापित हो गया। इसे अब आगे सुविधा के लिये केवल डेमोक्रेटिक पार्टी कहा जायगा। यह स्मरणीय है कि यह पार्टी राज्यों के अधिकारों की रक्षा करने वाली और सविधान के सकुचित निर्माण की पक्षपाती थी। यह अधिकतर दक्षिण के राज्यों पर निर्भर थी और विशेषकर खेतिहर वर्ग के प्रति इसकी सहानुभूति थी। यह व्यापार को आयात निर्यात कर से भी मुक्त करने के पक्ष में थी परन्तु इसी बीच डेमोक्रेटिक पार्टी के विरोधी हेनरी क्ले और डेनियल वैब्सटर के नेतृत्व में एक नये राजनैतिक दल के रूप में सगठित हो गये। यह नया दल ह्विग (whig) पार्टी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसने फैडूलिस्ट पार्टी के बहुत से विचारों जैसे उत्पादकों को सरक्षण प्रदान करने के लिये आयात निर्यात कर की व्यवस्था, आन्तरिक सुधार के लिये सार्वजनिक धन का व्यय, राष्ट्रीय बैंक का निर्माण, उत्पादकों को सहायता देना इत्यादि को अपना लिया। समाज के अधिक समृद्ध लोग ही अधिकतर इसके सदस्य थे क्योंकि इसके सिद्धान्त उद्योगपतियों, वित्तपतियों तथा भूमिपतियों के हित में थे। अत देश के व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्रों में ही इसका मुख्य समर्थन प्राप्त हुआ अर्थात् ह्विग पार्टी के गढ़ न्यू इंगलैण्ड और मध्यस्थ राज्य रहे। १८३७ और फिर १८४८ में ह्विग राष्ट्रपति का चुनाव भी जीत गए यद्यपि दोनों ही निर्वाचन के पश्चात् शीघ्र ही उनके राष्ट्रपति हैरिसन और टेलर की मृत्यु हो गयी।

१८१६ से ही दास प्रथा का प्रश्न अमेरिकी राजनीति में गम्भीर होता जा रहा था। इस वर्ष जब मिसौरी (Missauri) राज्य ने संघ की सदस्यता प्राप्त करने के लिये प्रार्थना की तो यह प्रश्न अत्यन्त उग्र रूप में उपस्थित हो गया,

सारे देश में इससे उत्तेजना फैल गई। दास रहित राज्यों और दास वाले राज्यों अर्थात् उत्तर और दक्षिण के राज्यों के बीच भीषण विवाद उठ खड़ा हुआ जिसका पार्टियों पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। दक्षिण के डेमाक्रेटों ने उत्तर के उन डेमोक्रेटों से सम्बन्ध विच्छेद करने में हिचकिचाहट प्रकट की जो दास प्रथा को सीमित करना चाहते थे। परन्तु उत्तर के ह्विग दक्षिणी राज्यों का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से दास प्रथा से समझौता करने के लिये तैयार हो गये जो कि दास प्रथा के हित में सहायक सिद्ध हुआ। वास्तव में १८५२ तक डेमोक्रेटिक पार्टी पर भी दासपतियों का आधिपत्य हो गया था और वह यह मानने लगी थी कि कांग्रेस को संविधान के अन्तर्गत दास प्रथा को निषेध करने का अधिकार नहीं है और इस प्रकार इसने १८२० के मिसोरी समझौते का खण्डन कर दिया। परन्तु ह्विग नेताओं ने १८५० की हैनरी क्ले की समझौता योजना से अपनी ख्याति धूल में मिला दी। इस समझौते द्वारा दास-रहित कैलिफोर्निया राज्य को संघ में सम्मिलित करना स्वीकार किया गया और इसके बदले में दक्षिणी राज्यों को सन्तुष्ट करने के लिये फ्युजिटिव स्लेव लॉ (Fugitive Slave Law) पारित किया गया। परन्तु इस समझौते से दास रहित और दास वाले दोनों ही राज्य ह्विग पार्टी से अप्रसन्न हो गये। फल यह हुआ कि १८५२ के राष्ट्रपति चुनाव में उनको कड़ी पराजय सहनी पड़ी। इसी वर्ष उनके दो बड़े नेता क्ले और वैब्सटर्स की मृत्यु हो गई, कैलहून (Calhoun) की दो वर्ष पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। पार्टी में जो कुछ रहा-सहा था वह भी १८५४ में छिन्न भिन्न हो गया जब कि कनसास को एक क्षेत्र के रूप में संगठित करने का विधेयक पास हुआ जिसमें दास प्रथा हो या न हो इस प्रश्न का निर्णय जनता पर छोड़ दिया गया। इस प्रकार १८५२ से १८५६ तक ह्विग पार्टी का पूर्ण विघटन हो गया और इसके साथ ही अमेरिकी पार्टियों के इतिहास का दूसरा युग समाप्त होता है।

लार्ड ब्राइस के मतानुसार राजनीति को लोकतन्त्री बनाने के अतिरिक्त इस काल के परिणामों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रायः यूरोप के मामलों से सम्बन्ध विच्छेद हो गया, (२) अमेरिका में, विशेषकर उत्तरी और पश्चिमी राज्यों में, एक राष्ट्रीय जीवन की भावना का उदय हुआ परन्तु साथ ही दास प्रथा के पोषण से राज्यों में पृथक होने की भावना जोर पकड़ने लगी, और (३) पार्टी संगठन का विकास हुआ और वह जटिल हो गया। राष्ट्रपतियों ने अपने नियुक्ति अधिकार का भरपूर लाभ उठाया, अतः यह धारणा सर्वमान्य हो गई कि केवल तत्कालीन राष्ट्रपति के समर्थकों को ही सरकारी पदों की प्राप्ति का अवसर मिल सकता है।

रिपब्लिकन्स और डेमोक्रेट (१८५६-१८७६)—ह्विग पार्टी के पतन के उप

रान्त उसके भग्नावशेष में से १८५६ में एक नयी पार्टी का जन्म हुआ जिसका नाम रिपब्लिकन पार्टी रखा गया। अब अमेरिकी राजनैतिक पार्टियों के इतिहास का तीसरा युग आरम्भ होता है। रिपब्लिकन पार्टी ने आते ही ड्रैडस्काट (Dred Scott) निर्णय की निन्दा की जिसमें यह कहा गया था कि कांग्रेस को कहीं भी दास प्रथा का निषेध करने का अधिकार नहीं है और दासों का स्वामी अपनी इच्छानुसार अपने दासों को कहीं भी ले जा सकता है। इधर दास प्रथा के प्रश्न पर डेमोक्रेटिक पार्टी में फूट पड़ गई थी। रिपब्लिकन्स ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया। उत्तर के डेमोक्रेट, जैसे ओहियो के चेज ने इस प्रश्न पर दक्षिण का नेतृत्व स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इलिनोय के डगलस ने इस विषय में किसी समझौते पर पहुँच कर डेमोक्रेटों को स्पष्ट रूप से दास प्रथा का अग्रणी समर्थक होने से बचाने का प्रयत्न किया। पर इसमें वह असफल रहे। १८५८ तक डेमोक्रेट पार्टी के दक्षिणी पक्ष ने पूरी पार्टी पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और वह दक्षिणी राज्यों को संघ से पृथक करने तथा युद्ध की दिशा में अग्रसर हुआ। अपने विरोधियों में मतभेद होने के कारण रिपब्लिकन अब्राहम लिंकन राष्ट्रपति के चुनाव में सफल हो गये और वह युद्ध में संघ के रक्षक एवं संघीय अधिकारों के समर्थक बन गये। जैसा कि अवश्यम्भावी था, वह युद्ध काल में संघीय अधिकारों में अपूर्व प्रसार हुआ। संघ से अलग होने के आन्दोलन, गृह-युद्ध और पुनर्निर्माण समस्या का अमेरिका राजनैतिक पार्टी इतिहास पर भारी प्रभाव पड़ा। युद्ध के कारण रिपब्लिकनों के लिये यह दावा कर सकना सम्भव हो गया कि केवल वही संविधान और संघ के संरक्षक हैं और राष्ट्रीय एकता के पोषक। साथ ही वे डेमोक्रेटों पर यह लाञ्छन लगा सकते थे कि वे संघ एवं एकता के विरोधी हैं। परिणाम यह हुआ कि रिपब्लिकन पार्टी दिन पर दिन बढ़ती गई और १८७६ के चुनाव में यह अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच गई।

पर ड युद्ध और नीग्रो जाति के प्रश्न अब समाप्त हो गये थे और ऐसा प्रतीत होने लगा कि दोनों पार्टियों के उद्देश्यों की पूर्ति हो चुकी है। रिपब्लिकन पार्टी दास प्रथा का विरोध करने के लिये निर्मित हुई थी। आगे चलकर इसने उसका विध्वंस किया और साथ ही परिस्थितियों से बाध्य होकर केन्द्रीय सरकार के अधिकार क्षेत्र का भी अकल्पित प्रसार किया। इस प्रकार दासता के प्रश्न की समाप्ति से रिपब्लिकन पार्टी के मूल उद्देश्य की पूर्ति हो गयी और उसके पास कोई कार्यक्रम नहीं रह गया। इसी प्रकार डेमोक्रेटिक पार्टी भी राज्यों के अधिकारों की रक्षा कर तथा प्रशासन के अनुचित कार्यों की आलोचना कर अपना कार्य पूरा कर चुकी थी।

रिपब्लिकन्स और डेमोक्रेट (१८७६-१९२९)—अमेरिकी इतिहास में अब

एक नये युग का उद्घाटन हो रहा था। अतः अब यह आवश्यकता थी कि या तो नयी पार्टियों का विकास हो या नये युग की आवश्यकताओं के अनुकूल विचारों और सिद्धान्तों को अंगीकार कर पुरानी पार्टियों में ही समयोचित परिवर्तन हो। रिपब्लिकन और डैमोक्रेट दोनों दल सत्ता एवं शक्ति के लिए संघर्ष करते रहे। कांग्रेस में दोनों पार्टियों की शक्ति लगभग सन्तुलित रही—उदाहरण के लिए १८७६ से १६०० तक २४ में से १४ वर्ष तक प्रतिनिधि सभा पर डेमोक्रेटिक पार्टी का अधिपत्य रहा और दस वर्ष तक रिपब्लिकन्स का। यद्यपि १८६१ और १६०१ के बीच केवल ८ वर्षों को छोड़ शेष काल में राष्ट्रपति पद रिपब्लिकनों के हाथ में रहा परन्तु १८७६, १८८४, १८८८ और १८६२ में डेमोक्रेट पार्टी ने ही वास्तव में अधिक मत प्राप्त किये यद्यपि निर्वाचन-मण्डल की अद्भुत प्रणाली के कारण इनमें से दो बार वह राष्ट्रपति पद प्राप्त करने में असफल रहे।

अब दोनों प्रमुख पार्टियों को विभक्त करने वाला मुख्य प्रश्न आयात निर्यात कर (tariff) था। १८८० में गारफील्ड और हैनकाक के बीच निर्वाचन संग्राम में ही इस प्रश्न पर मतभेद दिखाई देने लगा था। १८८८ में यह मतभेद निश्चित रूप से स्पष्ट हो गया। कुछ भी हो इस बीच दोनों बड़ी पार्टियों में बहुत कम अन्तर रह गया था और दोनों ही पार्टियों में अनुदार और उदार दोनों प्रकार के तत्व उपस्थित थे। १८६२ में रिपब्लिकन कार्यक्रम में २० उद्देश्यों अथवा सिद्धान्तों की घोषणा की गई थी और डेमोक्रैटिक पार्टी के कार्यक्रम में २२ की। इन दोनों के बीच मतभेद का केवल एक ही विषय था और वह था आयात-निर्यात कर। अन्य घोषणाएं प्रायः समान थीं—उदाहरणार्थ ट्रस्टों का विरोध, स्वर्ण और चांदी आधारित मुद्रा का रक्षण, सार्वजनिक सेवा सुधार, रूसी जार का विरोध, आयरलैंड के प्रति मैत्री भाव, पैन्शन की एक उदार प्रणाली की स्थापना, जलमार्गों का दूर तक विकास, निकारागुआ नहर, विश्व मेला, नये राज्यों का संघ में प्रवेश तथा रेलवे कर्मचारियों के संरक्षण सम्बन्धी विषयों पर। परन्तु रिपब्लिकनों ने विदेशी वाणिज्य के प्रसार, विचार एवं भाषण स्वातन्त्र्य, डाक महसूल उन्मुक्ति, मद्य निषेध और क्षेत्रों के संघीय अधिकारियों का उन्हीं क्षेत्रों के निवासियों में से निर्वाचन करने का समर्थन किया जब कि डेमोक्रैटिक दल ने विदेशों से आकर बसने वालों के लिये कठोर नियमों तथा निःशुल्क शिक्षा की मांग की, अतिश्रम प्रथा (sweating system) की निन्दा की और व्यय सम्बन्धी विधान (sumptuary laws) का विरोध किया। मुद्रा के प्रश्न पर दोनों दलों में समान रूप से ही मतभेद था। डेमोक्रैटिक दल के एक भाग ने क्लीवलैंड का साथ देकर स्वर्ण मान का समर्थन किया जब कि दूसरे और अपेक्षाकृत अधिक संख्या

में दूसरे भाग ने डब्ल्यू० जे० ब्रायँ का समर्थन किया, इसी प्रकार रिपब्लिकनों में भी मुद्रा के प्रश्न पर मतभेद था परन्तु इतना तीव्र नहीं।

१८९६ के चुनाव से अमेरिकी राजनीति में एक नये युग का आरम्भ होता है क्योंकि इसने रिपब्लिकन दल को निश्चित रूप से सत्तारूढ़ कर दिया। १९१२ में आन्तरिक मतभेदों तथा १९३२ की मन्दी के पश्चात् ही रिपब्लिकन सत्ताच्युत किये जा सके। इस समय डेमोक्रैटिक पार्टी में सब से प्रभावशाली व्यक्ति डब्ल्यू० जे० ब्रायँ था। वह एक मधुर वक्ता था परन्तु कुछ लोग उससे घृणा करते थे। तीन बार राष्ट्रपति पद के लिये उसका नाम प्रस्तावित किये जाने पर भी चुनाव जीतना उसके भाग्य में नहीं था फिर भी जैक्सन और एफ० डी० रूजवेल्ट की टक्कर के नेताओं के समान ही इसने डेमोक्रैटों को अत्यधिक प्रभावित किया। आय कर संशोधन, सिनेटरों के प्रत्यक्ष चुनाव, महिलाओं के मताधिकार और मद्यनिषेध आदि व्यवस्थाओं के पीछे ब्रायँ की प्रभावशाली वैयक्तिक शक्ति थी। दल में नेतिहरों के समर्थक पक्ष का यह अन्तिम प्रतिनिधि था अर्थात् वह दक्षिण व पश्चिम के उन तत्वों का अन्तिम प्रतिनिधि था जो बड़े उद्योगों (Big Business) को घृणा और प्रतिस्पर्द्धा की दृष्टि से देखते थे और वाल-स्ट्रीट को अन्याय व अनर्थ का अड्डा समझते थे। परन्तु अमेरिकी अर्थ व्यवस्था के कृषि से औद्योगिक हो जाने, ऋणी राष्ट्र के बजाय ऋण दाता राष्ट्र के रूप में परिणत हो जाने और अन्तराष्ट्रीय आर्थिक स्वार्थों का विकास हो जाने से प्राचीन कृषि अर्थ व्यवस्था की पराजय होना स्वाभाविक ही था।

थियोडोर रूजवेल्ट (जो १९०१ से १९०९ तक दो बार राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित हुए) के अधीन रिपब्लिकन पार्टी ने डेमोक्रैट दल की अनुदार के विपरीत उदारता की नीति का अनुसरण किया। परन्तु राजनैतिक दृष्टि से क्रान्तिकारी रूजवेल्ट आर्थिक दृष्टि से अनुदार ही थे इस लिये १९१२ में उनकी नीति को स्वयं उनकी पार्टी ने ही अस्वीकार कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि यह दल विभक्त हो गया और इसमें एक प्रोग्रेसिव पार्टी का जन्म हुआ जो कुछ ही समय तक जीवित रही। इस प्रकार रिपब्लिकन दल में फूट पड़ जाने के कारण चुनाव में विल्सन की विजय हुई। विल्सन बहुमत से राष्ट्रपति चुन लिये गए और इस रूप में उन्होंने एक व्यापक एवं प्रभावशाली विधान निर्माण का कार्यक्रम अपनाया जिसमें संघीय अधिरक्षित कानून (Federal Reserve Act), आयकर संशोधन, आयात निर्यात कर संशोधन, ग्राम्य ऋणी व्यवस्था कानून और संघीय व्यापार आयोग कानून सम्मिलित थे। १९१६ में डेमोक्रैटिक दल ने अपने पिछले कार्यों के आधार पर चुनाव लड़ा और विल्सन ने एक महान व्यक्तिगत विजय प्राप्त की। रिपब्लिकन दल द्वारा थियोडोर रूजवेल्ट के उदार कार्यक्रम की नीति अनधिकार

हो जाने और विल्सन के द्वारा नूतन स्वतन्त्रता की नीति का समर्थन होने से दोनों दलों के बीच की विभाजन रेखा स्पष्ट हो गयी। अतः डेमोक्रैटिक पार्टी 'उदारवादी' बन गई और रिपब्लिकन पार्टी उसके विरुद्ध "अनुदारवादी"। परन्तु अमेरिका ने प्रथम युद्ध में सम्मिलित हो जाने पर विल्सन के प्रगतिशील कार्यक्रम का अन्त हो गया और जातीय, राष्ट्रीय तथा वर्गीय भावनाओं के एक विचित्र सम्मिश्रण से रिपब्लिकन दल फिर से शक्तिशाली बन गया। इधर १९२४ में मद्यनिषेध और धार्मिक तथा जातीय सहिष्णुता के प्रश्न पर डेमोक्रैटिक दल में जो फूट पड़ी उससे वह अपने पूरे इतिहास में पतन की निम्नतर दशा पर पहुँच गया। १९३३ तक फिर राष्ट्रपति पद पर उसका अधिकार न हो सका।

१९२० का रिपब्लिकन दल सामान्य स्थिति बनाये रखने (normalcy) और पृथक्तावाद की नीति का अनुयायी था और जो प्रतिक्रियावादी रूप उसने अब ग्रहण किया वह अपने इतिहास में पहिले कभी नहीं किया था। स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह बड़े उद्योगपतियों एवं व्यापारियों के हाथ की कठपुतली बन गया परन्तु एक अपूर्व समृद्धशाली युग—कम से कम व्यापारी वर्ग के लिये—होने के कारण रिपब्लिकन १९२०, १९२४ और १९२८ में क्रमशः हार्डिंग, कूलिज और हूवर को राष्ट्रपति पद पर आसीन करने में सफल हो सके।

न्यू डील, डेमोक्रेट और रिपब्लिकन—परन्तु १९२९ के आतंक और उसके पश्चात् आने वाली गम्भीर मंदी ने रिपब्लिकनों की क्षमता का भण्डाफोड़ कर दिया। पुनः उद्योग एवं व्यापार को समृद्धशाली बनाने के (और यह आशा करते रहने के कि इसका कुछ अंश समाज तक पहुँच जायेगा) परम्परागत सिद्धान्त के अतिरिक्त इस संकट का सामना करने के लिये रिपब्लिकनों के पास और कोई साधन नहीं था। अतः इस प्राचीन महान दल से निराश होकर देश १९३० में पुनः डेमोक्रैटों की ओर पलटा और १९३२ में रूजवेल्ट के राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाने से न केवल संयुक्त राज्य की राजनीति में ही नहीं बल्कि स्वयं डेमोक्रैटिक दल के इतिहास में एक नये युग का उद्घाटन हुआ। जैसा कि प्रोफेसर [illegible] ने लिखा है, "फ्रैंकलिन रूजवेल्ट में विश्व की परिस्थिति का सही ज्ञान, प्रबुद्ध [illegible]वाद, राजनैतिक चतुराई एवं कौशल दृढ़ता, कल्पना एवं [illegible] आकर्षण का जैसा सम्मिश्रण था वैसा अमेरिका के इतिहास में अन्य किसी [illegible] में नहीं मिलता"। उनकी अपनी असाधारण योग्यता के [illegible] व्यापक संकट को दूर करने में उनके दल की नीति की [illegible] और [illegible] नीति के परिणामों से डेमोक्रैटों को यह विश्वास हो गया कि राष्ट्र [illegible] अब उनका ही [illegible] रहेगा। उनका विश्वास निराधार भी नहीं [illegible] के बाद दूसरी [illegible] रूजवेल्ट राष्ट्रपति पद पर चुने गये। [illegible] पश्चात् [illegible]

शक्ति युक्त एवं लोकप्रिय जनरल आइजनहावर को खड़ा करके ही डेमोक्रेट सत्ताच्युत किये जा सके। अतः १९५२ में राष्ट्रपति पद के लिये आइजनहावर को चुनने में रिपब्लिकन पार्टी ने निश्चय ही बड़ी सूझ और बुद्धिमानी का परिचय दिया। १९३३ से १९४५ तक जब रूजवेल्ट राष्ट्रपति पद पर रहे वह देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक धाराओं को पूर्णतया नयी दिशाओं में प्रवाहित कर ले गये और देश ने भी हृदय से उनकी नीतियों और कार्यक्रमों का समर्थन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने प्रथम बार (और अंतिम बार) 'दो बार राष्ट्रपति चुने जा सकने' की परम्परा को भंग कर दिया और न केवल तीसरी बार बल्कि चौथी बार भी वही राष्ट्रपति चुने गये। उनकी मृत्यु के पश्चात् एक प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक ही था और १९४६ में रिपब्लिकनों का प्रतिनिधि सभा पर अधिकार हो गया परन्तु १९४८ में हैरी एस० ट्रूमन के राष्ट्रपति चुने जाने के कारण रिपब्लिकन सत्तारूढ़ न हो सके। परन्तु जैसा पहले ही कहा जा चुका है, १९५२ में रिपब्लिकन दल ने अमेरिकी जनता के बीच अत्यंत लोकप्रिय व्यक्ति आईक या आइजनहावर को अपना राष्ट्रपति पद का उम्मेदवार चुनकर बड़ी बुद्धिमानी की, इसके साथ ही दल ने ट्रूमन प्रशासन की भूलों तथा निन्दाओं का तीव्र प्रचार एवं तिरस्कार किया। फलस्वरूप व्हाइट हाउस पुनः उनके हाथ में आ गया।

यद्यपि व्हाइट हाउस पर रिपब्लिकनों का आधिपत्य है और १९५४ के उपरान्त काँग्रेस उनके हाथों से निकल गई, परन्तु गत चुनावों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि दोनों दलों की शक्ति लगभग समान रूप से सन्तुलित है। ४ नवम्बर, १९५२ को हुए राष्ट्रपति के चुनाव में कुल जितने मत पड़े उनमें से रिपब्लिकन आइजनहावर को ३३,९३८,२८५ (५५.१%) (४४२ निर्वाचक मण्डल के) मत मिले और डेमोक्रैटिक उम्मेदवार अदलाई स्टीवेंसन को २७,३१२,२१७ (४४.४%) मत और निर्वाचक मण्डल के केवल ८९ मत मिले। प्रोग्रेसिव पार्टी (विन्सेन्ट हैलिनन) को २८ राज्यों में केवल १४०,१३८ मत प्राप्त हुये तथा अन्य छोटी पार्टियों को २४७,३११ अर्थात् कुल के ०.५% मत मिले। अलबामा, अर्कांसस, जोर्जिया, केंटुकी, लुइसियाना, मिसिसिपी, उत्तर कैरोलिना, दक्षिण व उत्तरी कैरोलिना और पश्चिमी वर्जीनिया में स्टीवेंसन का समर्थन रहा, शेष में आइजनहावर का। ६ नवम्बर १९५६ को हुये राष्ट्रपति निर्वाचन में रिपब्लिकन उम्मेदवार राष्ट्रपति आइजनहावर को ३५,५८२,२३६ सार्वजनिक मत (popular votes) अथवा ५७.२८% मत प्राप्त हुये और डेमोक्रेट उम्मेदवार स्टीवेंसन को २६,०२८,८८७ सार्वजनिक मत अथवा कुल सार्वजनिक मतों के ४१.९०% मत प्राप्त हुये। शेष मतों और उम्मेदवारों को सार्वजनिक मतों के केवल

० ८२% मत प्राप्त हुए। आइजनहावर को निर्वाचक मण्डल के ४५७ तथा स्टीवेंसन को ७३ तथा वाल्टर बी० जोन्स (Walter B Jones) को एक मत प्राप्त हुये। अलबामा, अरकसास, जार्जिया, मिसिसिपी, मिसौरी, उत्तरी कैरोलिना, दक्षिणी कैरोलिना, इन सात राज्यों म स्टीवेंसन का बहुमत रहा, शेष में आइजनहावर का। इसी प्रकार ८३वीं कांग्रेस (१९५३-५५) की सिनेट में ४८ रिपब्लिकन, ४७ डेमोक्रैट और एक स्वतन्त्र थे जब कि प्रतिनिधि सभा में २२१ रिपब्लिकन, २११ डेमोक्रैट, १ स्वतन्त्र और रिक्त स्थान थे। परन्तु नवम्बर १९५४ में हुये निर्वाचन के फलस्वरूप ८४वीं (१९५५-५७) कांग्रेस के दोनों सदनों में डेमोक्रैटिक पार्टी का बहुमत हो गया है। १९५२, १९५४, १९५६ तथा १९५८ में दोनों दलों की कांग्रेस में स्थिति निम्न तालिका में दी गई है।

	१९५२		१९५४		१९५६		१९५८	
	हाउस	सिनेट	हाउस	सिनेट	हाउस	सिनेट	हाउस	सिनेट
रिपब्लिकन	२२१	४८	२०३	४७	२००	४७	१५३	३४
डेमोक्रेट	२१३	४७	२१२	४९	२३५	४९	२८३	६४
स्वतन्त्र	२	१						

अमेरिकी दलों के मतानुसार यह उपर्युक्त इतिहास चार मुख्य बातों पर प्रकाश डालता है—(१) अमेरिकी देश की राजनैतिक घटनाओं में कुछ भी परिवर्तन हुये हों परन्तु अमेरिकी जनता सदैव दो दलों में से एक या दूसरे का निरंतर समर्थन करती रही जिसके परिणाम स्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका में सदैव द्वि-दलीय प्रणाली स्थिर रही। इसमें सन्देह नहीं कि १९वीं शताब्दी से प्रारम्भ से ही असंतुष्ट जनों द्वारा "स्वतन्त्र" या "तीसरे" दलों की स्थापना करने के अनेकों प्रयत्न किये गये परन्तु ऐसा कोई भी दल अपने अस्तित्व को अधिक समय तक स्थिर न रख सका और न ही अमेरिकी राजनीति पर उनका कोई विशेष प्रभाव पड़ सका। ऐसे दलों के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे १८२६ में मैसन्स विरोधी दल (Anti-Masons) संगठित हुआ, फिर १८४० में लिबर्टी दल राजनैतिक रंगमंच पर कुछ समय के लिये प्रकाश में आया, फिर फ्री सॉयल (Free soil) पार्टी ने १८४८ के चुनाव में विशेष [illegible], फिर [illegible] अमेरिकन [illegible]

नथिंग' दल आया जो १८५० के लगभग तक रहा, १८७२ से प्रौहीबीशन दल सामने आया, १८७० से १८७६ के आसपास ग्रीन बैक (Green back), पार्टी १८६० ६६ के बीच जनवादी या पापुलिस्ट (Populist) दल, १८६७ में समाजवादी दल, १६१२ में नेशनल प्रोग्रेसिव दल तथा १६२० में किसान, मजदूर और कम्युनिस्ट दलों की स्थापना हुई, अन्य छोटे छोटे अल्पकालीन दल जिनकी स्थापना बीसवीं शताब्दी में हुई निम्नलिखित थे। १६३४ से १६४६ तक विसकन्सिन राज्य में क्रियाशील प्रोग्रेसिव पार्टी, मिनेसोटा में किसान मजदूर दल जिसने १६४४ में डेमोक्रेटिक पार्टी में सम्मिलित हो कर वर्तमान डेमोक्रेटिक किसान मजदूर पार्टी को जन्म दिया, हाल ही में संगठित अमेरिकी लेबर पार्टी और लिबरल पार्टी जो न्यूयार्क राज्य की स्थानीय पार्टी है और मुख्य रूप से न्यूयार्क नगर में ही इसका जोर है।

इन दलों के अतिरिक्त अमेरिकी राजनैतिक क्षेत्र में अनेक संघ, क्लब, गुट, समुदाय, समितियाँ, संगठन और अन्य प्रकार की संस्थायें आदि समय समय पर उद्भव होती रहती हैं जो यथा शक्ति समकालीन राजनीति में प्रभावशाली बनने का प्रयत्न करती हैं तथा प्रस्तावित कानून या सरकार की नीति का समर्थन या विरोध करती हैं। इस प्रकार के छोटे समूहों या गुटों के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जैसे अमेरिकन मेडिकल ऐसोसियेशन, अमेरिकन बैंकर्स ऐसोसियेशन, नागरिक स्वतन्त्रता संघ (Civil Liberties Union), अश्वेत जाति की उन्नति के लिए राष्ट्रीय समाज, अमेरिकी वाणिज्य मण्डल, राष्ट्रीय महिला मतदाता संघ, अमेरिकी मतदान महिला लीग, नेशनल ग्रेञ्ज, अमेरिकन फार्म ब्यूरो फेडरेशन, फार्म सहकारी समितियों की राष्ट्रीय परिषद, अमेरिकी मजदूर संघ, औद्योगिक संगठनों का संघ (Industrial Organisation Congress), अमेरिका के संयुक्त खदान मजदूर और राजनैतिक संघर्ष समिति (Political Action Committee)। ये और अन्य अनेक दल और गुट जो सभी स्वेच्छाकृत होते हैं अपने अपने ढंग से जनता को संगठित करने का प्रयत्न करते हैं। यद्यपि यह संगठन कदाचित ही कभी अपने को राजनैतिक कहते हों परन्तु यदि यह देखते हैं कि राजनैतिक शक्ति से इनके हितों की उन्नति हो सकती है तो निस्संकोच किसी भी सीमा तक राजनैतिक शक्ति का प्रयोग करने के लिये यह तैयार रहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अमेरिकी राजनैतिक क्षेत्र दो मुख्य दलों, विविध छोटे छोटे दलों और अनेक छोटे छोटे राजनैतिक तथा अराजनैतिक गुटों तथा समुदायों से परिपूर्ण है। यह उल्लेखनीय है कि इनमें से अब तक केवल दो प्रमुख दलों में से ही एक न एक का अमेरिकी राजनीति तथा शासन प्रणाली पर प्रभुत्व रहा है।

इसमें संदेह नहीं कि कभी कभी कुछ काल के लिए कुछ छोटे दलों ने भी इतनी शक्ति का संचय कर लिया कि वह राष्ट्रपति चुनाव के परिणाम पर भी प्रभाव डाल सके हैं परन्तु १९२४ के उपरान्त इन्हें राष्ट्रपति के चुनाव में कभी भी कुल मतदान के ½ से २½ प्रतिशत तक से अधिक मत नहीं मिले हैं (१९४० में ०.५ प्रतिशत, १९४४ में ०.४ प्रतिशत और १९५२ में ०.५ प्रतिशत, १९५६ में ०.८२% मत प्राप्त हुये) फिर भी इनका प्रधान महत्व यह रहा है कि राष्ट्रीय समस्याओं, विशेषकर सामाजिक एवं आर्थिक प्रश्नों, पर विरोधी मतों को प्रकट एवं संगठित करने में यह दल तथा गुट आश्चर्यजनक रूप से सक्रिय रहे हैं। और साथ ही समय समय पर इन्होंने दोनों प्रमुख दलों को (जिनकी स्थिति परस्पर समान रूप से सन्तुलित थी) उन प्रश्नों तथा विषयों पर विचार करने के लिये विवश किया है जिनको लेकर एक तीसरे दल को संगठित करने का आन्दोलन चलने लगा हो।

(२) अमेरिकी पार्टी के इतिहास के कालक्रमानुसार सर्वेक्षण से दूसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि अमेरिका के दोनों प्रमुख राजनैतिक दलों—रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक—के बीच अन्तर की कोई स्पष्ट रेखा नहीं है। वास्तव में यह ज्ञात कर पाना असम्भव सा है कि "एक दल की सीमा कहाँ पर समाप्त होती है और दूसरे की कहाँ से आरम्भ होती है"। दोनों में भेद कर पाने के लिये उनमें परस्पर कोई सैद्धान्तिक विरोध नहीं दिखाई देता। जैसा प्रोफेसर लास्की का कथन है, "यह अधिक प्रभावशाली रूप में स्थानीय संगठन हैं जिनमें विचारों की अपेक्षा व्यक्तियों की प्रधानता होती है। और न ही ये किन्हीं निश्चित स्वार्थों (interests का ही प्रतिनिधित्व करती हैं जिससे इनके परस्पर उद्देश्यों में विभेद किया जा सके। वास्तव में कोई ऐसा मापदण्ड स्थिर करना अत्यन्त कठिन है जिसके द्वारा रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक विचारधारा में सीमा विभाजन किया जा सके। कोई सिद्धान्त-बद्ध प्रणाली होने की अपेक्षा वे विभिन्न स्वार्थों के गुट स्वरूप हैं। उनका केवल एक ही अपरिवर्तनशील उद्देश्य होता है और वह है पद की प्राप्ति और फलस्वरूप सत्तारूढ़ होने की अभिलाषा"। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों ही दलों में एक सिरे से दूसरे सिरे (चरम वामपक्षीय से लेकर अति दक्षिण पन्थी) तक की विचारधारा रखने वाले सदस्य मिल सकते हैं और जैसा कि ब्रोगन का मत है "रिपब्लिकन दल के अतिवादी (Radicals) उतने ही अतिवादी हैं जितने डेमोक्रैटिक पार्टी के और उनके अनुदार भी उतने ही अनुदार हैं जितने डेमोक्रेटिक दल के"। फाइनर के विचारानुसार "ब्रिटेन के अनुदार तथा मजदूर (Labour) दलों की स्पष्ट भिन्नता के समान विभिन्न आदर्शों की साधना के आधार पर रिपब्लिकन और डेमोक्रैटिक दलों के बीच अन्तर की कोई रेखा नहीं खींची जा

सकती। वास्तव में इन्हें एक ही दल के दो अंग कहना अधिक उचित होगा जिनको रिपब्लिकन और डेमोक्रेट दो विभिन्न नामों से पुकारा जाता है"। एक लेखक ने इनकी तुलना एक ही मार्ग से एक ही दिशा में जाने वाली दो मोटर गाड़ियों से की है जो दोनों एक दूसरे पर कीचड़ उछालती जा रही हों। लार्ड ब्राइस ने उनकी तुलना दो खाली बोतलों से की जिनमें लगे लेबिल से यह ज्ञात होता है कि इन बोतलों में क्या था।

(३) अमेरिकी दलों की एक और विशेषता यह है कि वे एकांगीय (sectional) हैं। यह दल न तो स्वभाव के अन्तर पर आधारित हैं न धार्मिक तथा जातीय भेद भाव पर और न ही राजनैतिक मतभेदों या विरोधी आर्थिक सिद्धान्तों पर। बियर्ड के शब्दों में यह उन स्थायी संकीर्ण स्वार्थों पर आधारित हैं जिनका उद्देश्य मुख्यता आर्थिक लाभ होता है। रिपब्लिकनों की शक्ति का मुख्य स्रोत औद्योगिक हित है जब कि डेमोक्रेटिक पार्टी का श्रमिक वर्ग है। परन्तु फिर भी दोनों में कोई स्पष्ट वर्गीय भेद नहीं किया जा सकता है जैसे मेन और वेरमोन्ट दोनों पूर्णतया रिपब्लिकन हैं परन्तु वह कृषि प्रधान राज्य हैं। इसी प्रकार वित्त पूंजीवाद पर डेमोक्रेटिक पार्टी की अपेक्षा रिपब्लिकन पार्टी का अधिकतर प्रभुत्व है। परन्तु फिर भी समय-समय पर डेमोक्रेटों ने पूंजीवादी वर्ग की उच्चतम श्रेणी का समर्थन प्राप्त किया है। वास्तव में दोनों पार्टियों के कार्य क्रम में निर्वाचन इतिहास के दृष्टिकोण को छोड़कर विभेद कर सकना सरल नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि अमेरिकी पार्टियों में स्थायी नेतृत्व का अभाव है। उदाहरणार्थ विन्डेल विल्की जो १९४० में राष्ट्रपति पद के लिये रिपब्लिकन उम्मेदवार थे १९३२ में भी रूजवेल्ट के परम समर्थकों में से थे जब कि १९३२ के उपरान्त श्री रूजवेल्ट के मन्त्रिमण्डल में गृह मन्त्री हेरल्ड आइक्स १९१२ में प्रगतिशील रिपब्लिकन थे और इस प्रकार के अनेकों उदाहरणों की कमी नहीं है।

(४) अन्त में, अमेरिकी दलों की एक विशेषता यह भी है कि यह चुनाव के समय ही राष्ट्रीय रूप धारण कर लेते हैं अन्यथा वस्तुतः स्थानीय और राज्य संगठन होते हैं। इस बात को सिद्ध करने के लिए हमें अमेरिकी राजनैतिक पार्टियों के संगठन पर विचार करना पड़ेगा।

अमेरिकी राजनैतिक पार्टियों का संगठन

यह बात विशेष मनोरंजक है कि प्रायः सभी देशों में पार्टियों ने बिना किसी वैधानिक मान्यता या सरकारी स्वीकृति के ही इतना अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। प्रत्येक पार्टी का सभी स्तरों पर—राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय—अपना पृथक संगठन होता है और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह संगठन

जितना ही अधिक कुशल, एकतावद्ध एवम् सुदृढ होगा उसका राष्ट्र की राजनीति पर उतना ही अधिक प्रभाव होगा। श्रॉग और रे ने अपनी 'इन्ट्रोडक्शन टू अमेरिकन गवर्नमेन्ट' में बताया है कि दलों की सदस्यता अनेक सकेन्द्र चक्रों के द्वारा प्रतीत होती है। केन्द्र में दल के अधिकारियों, संगठन कर्ताओं, स्वयंसेवकों और वेतन भोगी कार्यकर्ताओं, सरकारी पदाधिकारी पद की खोज करने वाले पार्टी के विरुद्धी समाचार पत्रों व सम्पादक पार्टी के कृपा पात्र या सम्भावित कृपा पात्रों का समूह होता है अर्थात् वह सभी लोग होते हैं जो केवल डेमोक्रेट या रिपब्लिकन ही नहीं होते बल्कि उसके लिये कार्य करते हैं। इसके बाहर उन लोगों का कहीं वृहद चक्र होता है जो यद्यपि पूरे समय दल का काम करने वाले सक्रिय कार्यकर्ता तो नहीं होते हैं परन्तु दल के नियमित सदस्य होते हैं और निरन्तर उसका अनुसरण करते हैं, उसके उमेदवारों का ही मतदान करते हैं, उसके समर्थक क्लबों में सम्मिलित होते हैं और समुदाय में यथासम्भव अपने प्रभाव एवं प्रतिष्ठा को दल के हितों में प्रयोग करते हैं। इसके बाहर भी एक और चक्र होता है जिसमें वह लोग आते हैं जो कभी पार्टी के अन्दर होते हैं और कभी बाहर अर्थात् जो साधारणतया पार्टी के अनुयायी होते हैं परन्तु कभी कभी पार्टी की नीति से असहमति प्रकट करते हैं, उनकी आलोचना करते हैं, विरोधी उम्मेदवार को मतदान करते हैं और उन पर किसी भी प्रकार निर्भर नहीं रहा जा सकता। इसके पश्चात अन्त में उन अनेक मतदाताओं का क्रम आता है जो यद्यपि बहुधा दल के अत्यन्त सक्रिय समर्थक सिद्ध होते हैं परन्तु दल का मान स्वीकार नहीं करते, इनको हम स्वतन्त्र (independents) की ही श्रेणी में रख सकते हैं।

पार्टी संगठन का कार्य यह होता है कि वह उक्त वर्णित सकेन्द्र चक्रों में से बाहरी चक्र के लोगों को अधिक से अधिक संख्या में अन्दर के चक्र की ओर भेजने का प्रयत्न करता रहे। अपनी सदस्य संख्या अधिक से अधिक बढ़ाने के लिये उनके केवल राष्ट्रीय संगठन ही नहीं होते बल्कि देश भर में राज्यों, नगरों और ग्रामों में उनकी संस्थायें होती हैं। दूसरे शब्दों में, राज्य की पार्टियाँ संघातरित होकर एक राष्ट्रीय पार्टी के रूप में परिणित हो जाती हैं और अपने क्षेत्रों में उनका नीचे की ओर स्थानीय पार्टियों में विभाजन रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनैतिक दलों का हस्तक्षेप रहता है।

राष्ट्रीय धरातल पर पार्टी संगठन

प्रारम्भिक काल में दलों का संगठन इतना महत्वपूर्ण नहीं था परन्तु मताधिकार के प्रसार से सरकार की बढ़ती जटिलताओं से निरन्तर अधिक दे

की उत्तरोत्तर वृद्धि होने से और सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में महान परिवर्तन होने से दलों ने भी सभी स्तरों पर अपने संगठनों को अधिक सुदृढ़ और नियमित करने की आवश्यकता का अनुभव किया है। संयुक्त राज्य में दलों की दो प्रमुख संस्थायें होती हैं—सम्मेलन और समितियाँ।

राष्ट्रीय पार्टी का सर्वोच्च अंग राष्ट्रीय सम्मेलन होता है। विभिन्न विधियों से निर्वाचित एक विशाल प्रतिनिधि संस्था होती है जिसमें राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं। जिस वर्ष राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है उसी वर्ष

राष्ट्रीय सम्मेलन

इसका अधिवेशन होता है। इसे केवल राष्ट्रपति और उप राष्ट्रपति पदों के लिये उम्मेदवारों के मनोनीत करने और चुनाव आन्दोलन के लिये पार्टी का कार्यक्रम निर्धारित करने का ही नहीं बल्कि पार्टी के मूलभूत संगठन और नियमों के 'विधान' को भी नियन्त्रित करने का अधिकार होता है। यह संघीय आधार पर निर्मित संस्था होती है जिसमें देश के विभिन्न भागों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिनिधि मण्डल होते हैं।

राष्ट्रीय सम्मेलन का अधिवेशन चार वर्ष में केवल एक बार होता है इसलिए इस लम्बी अवधि में पार्टी के कार्य संचालन के लिए प्रत्येक पार्टी की एक स्थायी कार्यकारिणी समिति होती है जिसे राष्ट्रीय समिति

राष्ट्रीय समिति

कहते हैं। रिपब्लिकन पार्टी की राष्ट्रीय समिति में प्रत्येक राज्य और प्रत्येक क्षेत्र के दो प्रतिनिधि होते हैं—एक पुरुष और एक महिला। डेमोक्रेटिक पार्टी में भी यही व्यवस्था है केवल अन्तर यह है कि उसमें पनामा नहर क्षेत्र और वर्जीनिया आइलैंड के भी प्रतिनिधि होते हैं। यह प्रतिनिधि चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं, इनको साधारणतया राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए राज्यों से चुने गये प्रतिनिधि मण्डल निर्वाचित करते हैं परन्तु कभी कभी इनका निर्वाचन प्रत्यक्ष प्राइमरी (primary) द्वारा या राज्य सम्मेलन द्वारा या राज्य समिति द्वारा भी होता है। परन्तु इस प्रकार चुने हुए लोगों की भी राष्ट्रीय सम्मेलन ही पुष्टि करता है। राष्ट्रीय समिति का प्रधान जो चुनाव युद्ध में पार्टी के प्रधान सेनापति के रूप में कार्य करता है राष्ट्रीय अध्यक्ष होता है जिसको औपचारिक रूप से समिति चुनती है परन्तु वस्तुतः राष्ट्रपति पद का उम्मेदवार ही उसकी नियुक्ति करता है। इसके अतिरिक्त एक अध्यक्ष और अनेक सहायक अधिकारी जैसे सचिव, सहयोगी सचिव और कोषाध्यक्ष की भी नियुक्ति की जाती है और राष्ट्रीय समिति के तत्वावधान में पार्टी का कार्य एक दर्जन से भी अधिक ब्यूरो, विभागों या डिवीजनों द्वारा चलाया जाता है।

राष्ट्रीय समिति के मुख्य कार्य हैं राष्ट्रीय सम्मेलन का बुलाना, उसका प्रबन्ध करना, राष्ट्रपति का चुनाव आन्दोलन चलाना और इसके लिए आवश्यक लाखों

डालरों की सख्या में धन सचय करना। समिति ही सम्मेलन की तिथि और स्थान निश्चित करती है, विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों का कोटा निर्धारित करती है, प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये विधिवत् आदेश जारी करती है, सम्मेलन की प्रारम्भिक तैयारियों के लिए स्थानीय समितियाँ नियुक्त करती है, सम्मेलन की अस्थायी नामावली (roll) तैयार करती है, पार्टी के सगठन में सबधित मूलभूत प्रश्नों पर सुझाव दे सकती है, और सम्मेलन के स्थगित हो जाने पर राष्ट्रीय अध्यक्ष को चुनती है (यह चुनाव राष्ट्रपति के पद के उम्मेदवार के परामर्श से होता है, वास्तव में राष्ट्रीय अध्यक्ष वही चुनता है)। अगले राष्ट्रीय सम्मेलन तक बीच के चार वर्षों में समिति यथाशक्ति पार्टी के हित के लिये क्रियाशील रहती है, जैसे असन्तुष्ट सदस्यों को शात करना, पार्टी के लिये अधिक धन सचय करना, काग्रेस के चुनाव में सहायता देना और प्रतिद्वन्द्वी पार्टी की दुर्बलताओं तथा त्रुटियों का पता लगाते रहना।

राष्ट्रीय समिति का कार्य

कांग्रेस और सिनेट समितियाँ (Congressional and Senatorial Campaign Committees) यद्यपि राष्ट्रपति के चुनाव आन्दोलन में निष्क्रिय रहती हैं परन्तु राष्ट्रपति के दो चुनावों के बीच होने वाले कांग्रेस तथा सिनेट के चुनावों में यह प्रमुख रूप से सक्रिय भाग लेती हैं। यह समितियाँ काग्रेस का चुनाव लड़ने वाले अपनी पार्टी के उम्मेदवारों के चुनाव आन्दोलन में सहायता पहुँचाती हैं। रिपब्लिकन कांग्रेसी चुनाव आन्दोलन समिति को प्रत्येक कांग्रेस के आरम्भ में सदन के रिपब्लिकन सदस्यों के सम्मेलन द्वारा चुना जाता है। समिति में उस प्रत्येक राज्य का एक सदस्य होता है जिसके हाउस में रिपब्लिकन प्रतिनिधि हों। यह सदस्य उस मत के रिपब्लिकन सदस्यों द्वारा मनोनीत किया जाता है और रिपब्लिकन प्रतिनिधियों के अन्तरग मण्डल द्वारा विधिवत चुना जाता है। डेमोक्रेटिक पार्टी की समिति की रचना भी इसी प्रकार होती है केवल अन्तर यह है कि इसमें समिति अध्यक्ष को प्रत्येक राज्य से एक महिला सदस्य को नियुक्त करने और किसी ऐसे राज्य से भी जिसका सदन में डेमोक्रेटिक प्रतिनिधित्व नहीं है एक सदस्य नियुक्त करने का अधिकार होता है। ये दोनों पार्टियाँ अपनी सिनेट समितियों की भी इसी प्रकार रचना करती हैं, डेमोक्रेटिक पार्टी की छ और रिपब्लिकन पार्टी की सात सिनेट समितियाँ होती हैं। यद्यपि प्रत्येक दो वर्ष पश्चात् इनका पुनस्सगठन किया जाता है परन्तु इनके सदस्यों में अधिक हेर-फेर नहीं किया जाता है, प्राय वह सब सदस्य जब तक वह कांग्रेस के सदस्य रहते हैं और समिति की सेवा करना चाहते हैं तब तक वह चाहें समिति के सदस्य रह सकते हैं। परन्तु यदि कोई सदस्य

चुनाव आन्दोलन समितियाँ

स्वयं पुनः चुनाव के लिये खड़ा होता है तो ऐसी दशा में वह चुनाव आन्दोलन के समय समिति की सदस्यता त्याग देता है।

कांग्रेस और सिनेट समितियों का कार्य निस्सन्देह पार्टी की स्थिति की जाँच करते रहना और इस प्रकार से चुनाव आन्दोलन का सचालन करना होता है जिससे पार्टी को बहुमत प्राप्त हो सके। इन समितियों की घोषणायें ही वास्तव में पार्टी का कार्यक्रम समझा जाता है परन्तु जिस वर्ष राष्ट्रपति का चुनाव होने वाला होता है उस वर्ष राष्ट्रपति पद के उम्मेदवार का अपेक्षा इनका महत्त्व लुप्त हो जाता है। अन्य वर्षों में भी यह सम्भव है कि राष्ट्रपति या पार्टी का नेता इतना प्रभुताशाली बन जाये कि इनका कोई महत्त्व ही न रहे। चुनावों के बीच के समय में यह प्रत्येक राज्य की राज्य एवम् स्थानीय समितियों से अपना सम्पर्क बनाये रखती हैं और हर प्रकार से पार्टी के हित के लिए प्रयत्न करती रहती हैं।

राष्ट्रीय समिति से इन समितियों का क्या सम्बन्ध है इसकी निश्चित व्याख्या नहीं की गई है। यद्यपि दोनों में कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं है परन्तु पार्टी उद्देश्यों एव हितों की एकरूपता के कारण यह राष्ट्रीय समिति से सम्बद्ध होती हैं। उसकी सहायता की (विशेषकर वित्तीय सहायता की) अपेक्षा करती हैं, और राष्ट्रपति का चुनाव होने पर अपने सारे साधन एवम् शक्ति स्रोत राष्ट्रीय समिति की सेवा में अर्पित कर उसकी घनिष्ट सहयोगी बन जाती हैं।

राज्य और स्थानीय पार्टी सङ्गठन

राष्ट्रीय पार्टी सगठन के प्रमुख होने पर भी पार्टियों के राज्य सङ्गठन ही वास्तव में प्रारम्भिक और आधारभूत सङ्गठन होते हैं। अनेक राज्यों में इनका सङ्गठन स्वतन्त्र होता है और इनका सचालन पूर्णतया राज्य के ही कानूनों द्वारा किया जाता है। ब्रिटिश पार्टी प्रणाली के विपरीत अमेरिका में राष्ट्रीय सङ्गठन का राज्य तथा स्थानीय पार्टी सङ्गठनों पर कोई विशेष प्रभुत्व नहीं होता यहाँ तक कि यदि यह सङ्गठन विद्रोही भी हो जाये तब भी राष्ट्रीय सङ्गठन को अपनी बात मनवाने का अधिकार प्राप्त नहीं है। वास्तव में राष्ट्रीय सङ्गठन को राज्य सङ्गठनों को (चाहे वह जैसी भी स्थिति में हों) सहन करना पड़ता है और उनके साथ मिलकर कार्य करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्रीय धरातल पर कोष सग्रह करना अपेक्षाकृत सरल होता है और राष्ट्रीय सङ्गठन के हाथ में सरकारी पदों के रूप में अधिक सख्या में और अधिक आकर्षक पुरस्कार होते हैं। अत पार्टी का राष्ट्रीय सङ्गठन विद्रोही और अवज्ञा करने वाले राज्य सङ्गठनों की धन सहायता बन्द करके या सङ्घीय पदों की नियुक्ति में उनकी उपेक्षा करके उनको दण्डित कर सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि राज्य सङ्गठन राष्ट्रीय सङ्गठन का

विरोध करने का साहस नहीं करते और साधारणतया वे राष्ट्रीय सङ्गठन के आदेशानुसार ही कार्य करते हैं। इस प्रकार व्यवहार में वे राष्ट्रीय सङ्गठन के अधीन रहते हैं। परन्तु राष्ट्रीय सङ्गठन का निम्न धरातल वाले सङ्गठन पर वह नियन्त्रण नहीं होता है जैसा कि ब्रिटेन की पार्टियों में पाया जाता है। वास्तव में संयुक्त राज्य में विभिन्न स्तरों पर सङ्गठित पार्टी सङ्गठन अपने प्राय स्वायत्त (Autonomous) होते हैं। अमेरिकी पार्टियों की यह विशेषता वहाँ की विचित्र शासन प्रणाली, अधिकारों के पृथक्करण, राज्यों की सङ्घीय व्यवस्था और चुनाव से प्राप्त होने वाले स्थानीय पदों की सख्या में निरन्तर वृद्धि का ही परिणाम है।

उम्मेदवारों को मनोनीत करने के लिए प्रत्यक्ष प्राइमरी की व्यवस्था के विकास के पूर्व राज्यों में पार्टी की सर्वोच्च सस्था राज्य सम्मेलन होती थी जिसके प्रतिनिधियों का चुनाव काउन्टी म या अन्य प्रदेशों (Districts) म या तो पार्टी के मतदाता करते थे या स्थानीय सम्मेलनों द्वारा यह चुनाव किया जाता था। यह राज्य सम्मेलन पार्टी की सबसे महत्वपूर्ण सस्था होती थी क्योंकि राज्य के पदों के लिए यही उम्मेदवार मनोनीत करती थी, पार्टी का चुनाव घोषणा पत्र तैयार करती थी और सब प्रकार से पार्टी के कार्यों को नियमित किया करती थी। परन्तु कुछ राज्यों में प्रत्यक्ष प्राइमरी व्यवस्था को अपना लेने से और अन्य म पार्टी के कार्यों का अधिकाधिक सञ्चालन एवम् नियमन कानूनों द्वारा किये जाने से राज्य सम्मेलन के अधिकारों म क्रमश ह्रास होता गया यद्यपि कुछ राज्यों में राज्य सम्मेलनों का अब भी महत्व है।

राज्य सम्मेलन

यही वास्तव में राज्य के पार्टी सङ्गठन का प्रधान होती है। पार्टी का विविध क्षेत्रों में फैला सङ्गठन इस समिति मे पहुँचकर पूर्ण हो जाता है और यह पार्टी-सङ्गठन का एक महत्वपूर्ण अङ्ग होती है। दोनों प्रमुख पार्टियाँ प्रत्येक राज्य में और कुछ राज्यों में छोटी पार्टियाँ भी अपनी अपनी केन्द्रीय समितियों की व्यवस्था करती हैं। इसके सदस्यों को प्रत्यक्ष प्राइमरी द्वारा या राज्य के विभिन्न जिलों की समितियों द्वारा या राज्य सम्मेलनों द्वारा चुना जाता है और इनकी सदस्य सख्या कुछ राज्यों मे १० या १२ से लेकर अन्य में कई सौ तक होती है। यदि समिति बहुत बड़ी हो जाती है तो वास्तविक कार्य कार्यकारिणी समिति पर ही आ पड़ता है। केन्द्रीय समिति के सदस्य साधारणतया काउन्टी या विधान सभा तथा कांग्रेस के निर्वाचन क्षेत्र प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करते हैं और प्राय सभी राज्यों की महिलाओं का भी इसमें पुरुषों के बराबर ही भाग होता है।

राज्य की केन्द्रीय समिति

राज्य समिति के अधिकारियों में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव, और कोषाध्यक्ष होते हैं जिनको स्वय समिति चुनती है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि यह समिति

के सदस्य हों। राज्य की केन्द्रीय समिति के अधिकारों की पार्टी के लिखित या अलिखित नियमों द्वारा कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई है। प्रत्यक्ष प्राइमरी के विकास के पूर्व राज्य समिति प्राय उम्मेदवारों के निर्वाचन में राज्य सम्मेलन पर अपना निश्चित प्रभाव डालती थीं परन्तु अब इस कार्य में इन समितियों का प्रभाव क्रमश: घट गया है। आज कल तो अपनी पार्टी के उम्मेदवारों को चुनाव (राष्ट्रीय या राज्यीय) में सफल बनाना ही इन समितियों का मुख्य कर्तव्य हो गया है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह धन एकत्र करती हैं, सार्वजनिक सभाओं का आयोजन करती हैं, पार्टी साहित्य का वितरण करती हैं, आपस में एकता और सुसम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न करती रहती हैं, आन्दोलन के दाँव पेंचों और कार्यनीति को निर्धारित करती हैं और उनको लागू करती हैं। संक्षेप में यह पार्टी के उम्मेदवार को चुनाव में जिताने के लिए उन सभी उपलब्ध कलाओं का प्रयोग करती हैं जो कि इस सम्बन्ध में उपयोगी हो सकते हैं। राज्य की समिति को एक ओर राष्ट्रीय एवम् कांग्रेस समितियों तथा उम्मेदवारों से सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है और दूसरी ओर काउन्टी तथा अन्य स्थानीय समितियों से। परन्तु दोनों में से किसी से भी इसके सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई है। सभी राज्यों में केन्द्रीय पार्टी समिति का एक महत्वपूर्ण अधिकार यह होता है कि उम्मेदवार की मृत्यु हो जाने के कारण या उसके द्वारा नाम वापस ले लिए जाने से जो स्थान रिक्त हो जाता है उसकी पूर्ति कर। कभी कभी राज्य समिति के सदस्यों को अपने जिलों में सरकारी पदों पर नियुक्ति करने का अधिकार भी होता है या कम से कम इस सम्बन्ध में उनसे परामर्श लिया जाता है। परन्तु जैसा कि मरियम और गासनेल ने अपनी पुस्तक 'दि अमेरिकन पार्टी सिस्टम' में लिखा है, "समिति के सदस्यों को जो यह अधिकार प्राप्त है इसका आधार समिति की सदस्यता की अपेक्षा उनका स्थानीय राजनैतिक प्रभाव ही अधिक होता है"। कभी कभी यह समिति राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए पार्टी के प्रतिनिधियों को भी चुनती है और प्राय यह पार्टी का चुनाव घोषणा पत्र तैयार करती है।

इन राज्य समितियों के नीचे अनेक स्थानीय समितियाँ होती हैं जिनमें विभिन्न राज्यों में बहुत अन्तर होता है। साधारणतया स्थानीय समितियाँ चार प्रकार की होती हैं (१) काउन्टी समिति, (२) वार्ड समिति, (३) उपनगर (Township) या नगर समिति, और (४) प्रिसिंक्ट समिति (Precinct Committee)। कांग्रेसी विधान मण्डलीय या सिनेटोरियल निर्वाचन क्षेत्रों में भी पृथक पृथक समितियाँ संगठित की जाती हैं। इनका कार्य अपने क्षेत्र तक ही सीमित रहता है। काउन्टी समिति के नगरों, उपनगरों या वार्डों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं और कभी कभी

ये पूरी काउन्टी द्वारा चुने जाते हैं। इन प्रतिनिधियों को प्रत्यक्ष प्राइमरी द्वारा या पार्टी के स्थानीय अन्तरग मण्डल द्वारा या काउन्टी सम्मेलन द्वारा चुना जाता है। विभिन्न राज्यों में भिन्न पद्धतियाँ अपनायी गई हैं, परन्तु पार्टी के सदस्यों (voters) द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन किये जाने की प्रकृति अधिक प्रबल है। प्रत्येक काउन्टी समिति का एक अध्यक्ष होता है जो स्थानीय राजनीति में विशेष महत्व एवम् प्रभाव रखने वाला व्यक्ति होता है।

इसके अतिरिक्त प्राय सभी नगरों में नगर केन्द्रीय समितियाँ होती हैं जो कि बड़े एवम् प्रमुख नगरों में विशेष रूप से प्रभावशाली होती हैं। लगभग प्रत्येक वार्ड और प्रिसिंक्ट (voting precinct) में दो या तीन प्रकार की पार्टी समितियाँ होती हैं और प्रत्येक वार्ड और प्रिसिंक्ट म एक नेता या कप्तान होता है। इसी प्रकार की व्यवस्था प्रत्येक गाँव और उपनगर में होती है। पार्टी सगठन में प्रिसिंक्ट प्रारम्भिक इकाई होता है और आज कल इनकी सख्या लगभग १३५,००० है।

विभिन्न स्तरों पे यह स्थानीय सगठन सम्मेलन बुलाकर, प्राइमरी का सचालन करके, सरकारी पदों का वितरण कर और राष्ट्रीय या राज्य समितियों की अपेक्षा मतदाताओं की आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति करने की चेष्टा करके (जो राष्ट्रीय तथा राज्य समितियों के लिए सभव नहीं है) अपनी पार्टी की सेवा करते हैं। जैसा पहिले कहा जा चुका है, राज्य समितियों का स्थानीय समितियों पर कोई निश्चित नियत्रण नहीं होता है और इसी प्रकार उच्च स्थानीय समितियों का भी निम्न स्थानीय समितियों पर बहुत कम अधिकार होता है।

पार्टी के नियमित सगठन से बिल्कुल पृथक और भिन्न बहुधा कुछ राज्यों या बड़े नगरों में एक विचित्र प्रकार की राजनैतिक सस्था का विकास हो जाता है जिसको राजनैतिक मशीन कहते हैं, इसका एक अफसर भी होता है जो बॉस (Boss) कहलाता है। यह नियमित पार्टी सगठन से बिल्कुल स्वतन्त्र हो कर कार्य करती है परन्तु कभी कभी यह पार्टी के नियमित सगठन को भी अपने अधीन कर लेती है। यह सम्भव है कि यह पार्टी के सगठन के एक रूप ही हो जायें या हर विषय में इनका पार्टी के सगठन पर पूर्ण नियत्रण अथवा प्रभुत्व हो। कभी-कभी यह सस्थायें पार्टी सगठन पर बहुत अनर्थकारी और भ्रष्ट प्रभाव डालती हैं। विशेष कर यह धारणा प्रचलित है कि उनके अफसर (Bosses) विभिन्न चालों और हिंसक उपायों का प्रयोग करते हैं, गुप्त और भ्रष्ट साधनों का काम मे लाने से नहीं हिचकिचाते, केवल शक्तिशाली बनने के लिये या द्रव्य-लाभ के लिए सत्ता हथियाने का प्रयत्न करते हैं और मतदाताओं पर किसी प्रकार का नैतिक या बौद्धिक प्रभाव नहीं

राजनैतिक नियन्त्रण रखने वाली संस्थायें

डालते। इस प्रकार की राजनैतिक संस्थाओं के अनेक उदाहरण हैं, जैसे न्यूयार्क काउन्टी में टमेनी संस्था (डेमोक्रैटिक संगठन), न्यूयार्क में डेमोक्रैटिक राज्य संगठन पर नियंत्रण रखने वाली हिल-संस्था (Hill machine), पेनसिलवानिया में रिपब्लिकन राज्य संगठन पर हावी क्वे संस्था और पनरोज संस्था (Penrose machine)। इसी प्रकार स्थानीय संस्थाओं के (जिनका राज्य की राजनीति से महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है) उदाहरणों में कुक काउन्टी (शिकागो) में नाश केली संगठन, कान नगर में पेन्डरगास्ट संस्था और शेल्बी काउन्टी (टेनेसी) में क्रम्प संस्था का उल्लेख किया जा सकता है। अफसरों में सबसे अधिक कुख्यात टेमनी हाल के श्री विलियम एम० ट्वीड रहे हैं जिनके विषय में यह कहा गया है कि वह "व्यवसाय से बढ़ई (कुर्सी बनाने वाला), स्वभाव से अशिष्ट, परिस्थिति वश राजनीतिज्ञ, क्रमशः प्रगति कर बॉस और स्वेच्छा से घूसखोर हो गये थे"। अन्य प्रमुख नामों में सिनेटर बोइस पेनरोज (Boies Penrose), सिनेटर हैरी एफ० बियर्ड, जार्ज ब्रेनन, चार्ल्स मर्फी, जर्सी नगर व हेग, आदि सम्मिलित हैं। यह नाम इतने हैं कि सूची का कहीं अंत ही नहीं हो सकता।

पार्टी धननिधि व्यवस्था

प्रत्येक पार्टी को चुनाव आन्दोलन चलाने में जिनमें हजारों मतदाताओं से अपील की जाती है बहुत अधिक मात्रा में धन व्यय करना पड़ता है। वास्तव में प्रायः धन का दुरुपयोग किया जाता है और इससे जो भ्रष्टाचार फैलता है वह स्वस्थ लोकतन्त्रीय राज्य के लिये विनाशकारी होता है। विशेषकर औद्योगिक देशों में—जिनमें से संयुक्त राज्य अमेरिका भी एक है—उद्योगपति और कार्पोरेशन पार्टी के सदस्यों को एक प्रकार से मोल ले लेते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी एक 'अदृश्य सरकार' की स्थापना हो जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रीय चुनाव आन्दोलन में किये गये व्यय का कोई सरकारी लेख्य (Record) १९०८ तक कभी प्रकाशित नहीं किया गया परन्तु १९१० से कानून द्वारा यह अनिवार्य कर दिया गया है कि आय और व्यय का लेखा प्रकाशित किया जाय। सरकारी लेखे के अनुसार १९२८ के हूवर स्मिथ चुनाव आन्दोलन में रिपब्लिकनों ने १०,०००,००० डालर और उनके प्रमुख प्रतिद्वन्द्वियों ने लगभग ७,२००,००० डालर व्यय किये। १९३६ में जितना धन व्यय किया गया वह अभूतपूर्व था, इसमें रिपब्लिकनों ने १४,१९८,२०२ डालर खर्च किया और डेमोक्रैटिक पार्टी ने ९,२२८,४०६ डालर खर्च किया।

१९४० में द्वितीय हैच कानून पास हुआ जिसके अनुसार यह निश्चित कर दिया गया कि एक वर्ष में एक पार्टी ३० लाख डालर से अधिक व्यय नहीं कर सकती है। परन्तु १९४४ में रिपब्लिकनों और डेमोक्रैटिक पार्टी द्वारा किया गया कुल वास्तविक खर्च क्रमशः १३,१९९,३७७ और ७,४४१,८०० डालर बताया

गया जबकि १९४८ में डेमोक्रैटिक और रिपब्लिकन राष्ट्रीय समितियों ने ही अकेले क्रमश २,१२७,००० और २,७३६,००० डालर खर्च किया। यह एक समस्या बन गयी है कि चुनावों में व्यय की जाने वाली मात्रा को किस प्रकार सीमित किया जाय क्योंकि इस सम्बन्ध में अभी तक कानून द्वारा जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं वह निष्फल रहे हैं। प्राय सभी राज्यों ने कानून बनाकर जिनका 'भ्रष्टाचार निरोधक कानून' कहा जाता है, और आन्दोलन के लिये प्राप्त धन और उसके व्यय पर नियन्त्रण लगाकर पार्टियों के कार्यों को नियमित करने का भरसक प्रयत्न किया है। इसम सन्देह नहीं कि प्रत्येक राज्य क कानून परस्पर भिन्न हैं, परन्तु इन सभी के चार मुख्य उद्देश्य रहे हैं (१) धन प्राप्त होने वाले खातों और उसकी मात्रा पर प्रतिबन्ध लगाना, (२) प्राइमरी और चुनावों में किये जाने वाले व्यय को सीमित करना, (३) घूसखोरी, डराना-धमकाना, जाली मतदान, इत्यादि अन्य प्रकार के भ्रष्ट व्यवहारों को रोकना, और (४) आय (Contribution) या व्यय का या दोनों का समुचित प्रकाशन कराना।

चुनाव कोष को नियमित करने के हेतु सबसे पहला प्रतिबन्ध यह लगाया गया है कि आय के कुछ खाता को निषिद्ध घोषित कर दिया गया है। १९०७ में काँग्रेस ने एक कानून द्वारा यह व्यवस्था की कि राष्ट्रीय कार्पोरेशन और राष्ट्रीय बैंक किसी चुनाव आन्दोलन के लिए कोई अनुदान नहीं दे सकेंगे। इसके साथ ही यह भी घोषित कर दिया गया कि किसी भी राष्ट्रीयपद के चुनाव आन्दोलन में कोई भी कार्पोरेशन धन की सहायता नहीं कर सकेगा। सघीय सार्वजनिक सेवा कानून में भी यह व्यवस्था कर दी गई कि सघीय कर्मचारियों से राजनैतिक उद्देश्य के लिए कोई भी अधिकारी या सरकारी कर्मचारी चन्दा देने के लिये अनुरोध नहीं कर सकेगा। १९४३ के युद्ध कालीन श्रम विवाद (स्मिथ कोनेली) कानून के द्वारा कार्पोरेशनों पर लगाये गये प्रतिबन्धों को श्रम सगठनों पर भी लागू कर दिया गया। ३० जून, १९४७ से कुछ दिन पहले ही जब कि इस कानून की अवधि समाप्त होने वाली थी श्रम प्रबन्धक (टाफ्ट हार्टले) कानून (Labour Management Relations Act) द्वारा इस दिशा में सम्भावित शिथिलता को रोकने के लिये यह स्पष्ट कर दिया गया कि यदि कोई श्रमिक सघ या अन्य सगठन (जिनमें बैंक और कार्पोरेशन सम्मिलित हैं) केवल सघीय चुनावों के लिए नहीं बल्कि उनमें सबधित प्राइमरी, अन्तरग-मण्डलों या सम्मेलनों के लिए भी चन्दा देंगे तो उन्हें कड़ा दण्ड दिया जायगा। इनके अतिरिक्त हैच राजनैतिक कार्यकलाप कानून (Hatch Political Activities Act) के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि सघीय चुनाव के लिए रिलीफ वर्कर्स से कोई अनुदान लेना अवैध होगा और कोई भी व्यक्ति, समिति

निषिद्ध स्रोत

या संस्था किसी एक वर्ष में संघीय चुनाव के लिए ५ हजार डालर से अधिक चन्दा नहीं दे सकेगी (इसमें राज्य या स्थानीय समितियों को दिये जाने वाले चन्दे की मात्रा सम्मिलित नहीं है)।

इस सम्बन्ध में राज्यों द्वारा बनाये गये कानून पर्याप्त हैं यद्यपि संघीय कानूनों द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध इस सबंध में अधिक व्यापक नहीं हैं। वे केवल स्पष्ट भ्रष्टाचार के निषेध तक ही सीमित हैं। लगभग सभी राज्यों में जिन उद्देश्यों के लिये धन का व्यय निषिद्ध कर दिया गया है उनके कुछ प्रमुख उदाहरण यह हैं—वोट खरीदना, चुनाव आन्दोलन काल में मतदाताओं को मांस और शराब खिलाना पिलाना, या उनके मनोरंजन की व्यवस्था करना, मतदाताओं को निर्वाचन केन्द्र तक लाने और वापस ले जाने के लिये गाड़ियों का प्रयोग करना, मतदान के दिन निर्धारित कर्मचारियों के अतिरिक्त भाड़े पर अन्य सहकारियों की नियुक्ति करना, मतदाता का प्रति व्यक्ति कर (Poll tax) अदा करना और उम्मेदवार का समर्थन करने के लिये समाचार पत्रों को रुपया देना।

व्यय के उद्देश्यों पर प्रतिबन्ध

चुनाव आन्दोलन-कोष पर एक तीसरे प्रकार का प्रतिबन्ध यह लगाया गया है कि उम्मेदवार द्वारा या उसकी ओर से आन्दोलन में किये जाने वाले व्यय की मात्रा सीमित कर दी गई है। १९२५ के संघीय भ्रष्टाचार निरोधक कानून के अन्तर्गत यह निर्धारित कर दिया गया है कि यदि उम्मेदवार के राज्य द्वारा निर्धारित अधिकतम व्यय की मात्रा संघ द्वारा निर्धारित मात्रा से कम नहीं है तो सिनेट की सदस्यता के लिए उम्मेदवार अधिक से अधिक १०,००० डालर और प्रतिनिधि सभा की सदस्यता के लिए २,५०० डालर खर्च कर सकता है। कानून में एक दूसरी व्यवस्था भी की गई है। इसके अनुसार उम्मेदवार जिस पद का चुनाव लड़ रहा है उसके पिछले चुनाव में जितने मतदाताओं ने मतदान किया उसके आधार पर वह तीन सेन्ट प्रति मतदाता के हिसाब से खर्च कर सकता है परन्तु यह आवश्यक है कि सिनेट की सीट के लिये कुल व्यय २५,००० डालर और प्रतिनिधि सभा की सीट के लिए ५,००० डालर से अधिक न हो।

व्यय की मात्रा पर प्रतिबन्ध

१९४० के हैच कानून के अनुसार एक और प्रतिबन्ध लगाया गया है कि राष्ट्रीय धरातल पर कार्य करने वाली कोई भी 'राजनैतिक समिति' प्रतिवर्ष न ३० लाख डालर से अधिक की आय प्राप्त कर सकती है और न इतने से अधिक धन व्यय ही कर सकती है और कोई भी व्यक्ति इस प्रकार की समितियों को ५ हजार डालर से अधिक चन्दा नहीं दे सकता है।

चुनाव आन्दोलन कोष पर नियंत्रण रखने का चौथा साधन यह है कि

लेखा प्रकाशन की आवश्यकता

प्रत्येक पार्टी को अपनी आय व्यय का लेखा (Record) प्रकाशित करना पड़ता है। इस भय से कि कोई बात छिपी न रह सकेगी पार्टी के मैनेजर वर्जित स्रोतों से निधि सहायता के लिये अनुरोध करने से डरते हैं। राष्ट्रीय और प्राय सभी राज्यों के कानूनों के अन्तर्गत आय-व्यय का लेखा प्रकाशित करना आवश्यक कर दिया गया है। राष्ट्रीय कानून के अनुसार चुनाव के पहिले भी और चुनाव के उपरान्त आय-व्यय का प्रकाशन करना पड़ता है और राज्यों की वर्तमान प्रवृत्ति भी इसी दिशा की ओर दिखाई देती है।

राजनैतिक पार्टियों के कार्य और उनका महत्व

अमेरिकी राजनैति विज्ञान संघ (१९५०) की राजनैतिक पार्टियों से सम्बन्धित समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि "राजनैतिक पार्टियाँ सरकार संचालन के अनिवार्य साधन हैं" और निस्सन्देह आधुनिक जनतन्त्रों को चलाने और संगठित करने में राजनैतिक पार्टियों का जो महत्व रहा है उसका पर्याप्त वर्णन किया ही नहीं जा सकता। टी० वी० स्मिथ ने लिखा है कि "पार्टियाँ निस्सन्देह जनतन्त्र की सन्देश वाहक होती हैं"।

वाशिंगटन के शब्दों में नेतृत्व के अभाव में जनता की शक्ति निष्क्रिय तथा प्रभावहीन रहती है। ६१,६३७,९५१ मतदाता—१९५२ के राष्ट्रपति के चुनाव में मतदाताओं की इतनी ही संख्या थी—शक्ति का अमर भण्डार हैं परन्तु बिना नेतृत्व के और बिना निर्देश के लोक सत्ता का यह विशाल जलाशय अनेक धाराओं में बँट कर बिल्कुल व्यर्थ हो जायगा और सरकार में अव्यवस्था एवं अराजकता आ जायगी। इसीलिए संयुक्त और दृढ़ नेतृत्व पर जो जोर दिया जाता है यह वास्तव में जन शक्ति के असंगठित दशा में प्रभावहीन होने की ही प्रतिक्रिया है। जनता को अपनी राजनैतिक शक्ति का सदोपयोग करने में उचित नेतृत्व प्रदान करने में, उनको प्रभावशाली ढंग से संगठित करने में, उनको राजनैतिक दृष्टि से शिक्षित करने में, सार्वजनिक तथा राजनैतिक प्रश्नों पर उनको सजग अथवा चेतन करने में और अंत में "जनता की सरकार जनता द्वारा, जनता के लिए" का आदर्श प्राप्त करने में राजनैतिक पार्टियों का विशेष महत्व होता है। वास्तव में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो स्वतन्त्र राजनैतिक पार्टियों द्वारा संचालित सरकार को जनतन्त्री सरकार का ही दूसरा नाम समझते हैं। आधुनिक राज्य में पार्टियों के महत्वपूर्ण कार्यों का परीक्षण करने पर यह कथन सर्वथा सत्य सिद्ध होता है। यही बात अमेरिकी राजनैतिक दलों पर भी लागू होती है, अत अब हम उनके महत्वपूर्ण कार्यों का अध्ययन करेंगे।

राजनैतिक पार्टियों के महत्वपूर्ण कार्य निम्नलिखित हैं :—(१) सार्वजनिक नीतियों को निर्धारित करना—अपने कार्यक्रम और नीतियों द्वारा राजनैतिक पार्टियाँ जनता के समक्ष अपने मत एवं विचार रखती हैं और इस प्रकार सार्वजनिक नीतियों का विकास करती हैं। (२) सरकारी कर्मचारियों का चुनाव—प्रत्येक पार्टी का मुख्य उद्देश्य यह रहता है कि उसके अधिक से अधिक उम्मेदवार सरकारी पदों पर चुन लिये जायें या नियुक्त कर लिये जायें जिससे वह उन नीतियों को लागू कर सकें जो पार्टी कार्यक्रम में निर्धारित की गई हैं। इसलिये वह सरकारी पदों के लिये अपने उम्मेदवार मनोनीत करती है, चुनाव आन्दोलन चलाती है, और उनको जिताकर अपनी नीतियों को लागू करने की भरपूर चेष्टा करती है।

पार्टियों के कार्य

(३) सरकार का संचालन और उसकी आलोचना—सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि बहुमत प्राप्त पार्टी सरकार चलाती है जबकि दूसरी पार्टी मुख्य रूप से सत्तारूढ़ पार्टी की आलोचक होती है। पहली पार्टी का कार्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना दूसरी का क्योंकि एक ओर जहाँ सत्तारूढ़ पार्टी सरकार चलाती है और इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय विकास के कार्य करती है और 'जनता की इच्छा' को व्यवहारिक रूप प्रदान करती है वहाँ विरोधी पार्टी अपनी प्रतिद्वन्दी पार्टी के कार्यों की निरन्तर जाँच पड़ताल छान बीन एवं सूक्ष्म परीक्षण करती है और इस प्रकार उसको सतर्क एवं सावधान रखती है।

(४) जनता की राजनैतिक शिक्षा में योगदान—पार्टियाँ जनता को सार्वजनिक प्रश्नों से सूचित करती रहती हैं और मतदाताओं को अनेक सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं के विभिन्न पक्षों पर विभिन्न विचार सुनने का अवसर प्रदान करती हैं जिससे वह उन समस्याओं पर अपना निर्णय कर सकें। वह अपने वक्तव्यों, विरोधी वक्तव्यों, अपने उपदेशों और प्रचार सामग्री से समाचार पत्रों को भर कर जनता को वाद विवाद तथा विचार विमर्श के लिये उत्तेजित करती हैं, अपनी रैलियों, रेडियो घोषणाओं, परेड और प्रदर्शनों से जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं और मतदाताओं पर अपने परिपत्रों तथा प्रचार साहित्य की बौछार कर उनके मत को प्रभावित करने का प्रयत्न करती हैं। इस प्रकार तथा अन्य अनेक रीतियों से ईमानदार और साहसी नेतागण जनता को नागरिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं से परिचित कराते हैं और उनको अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान करा उनको आदर्श नागरिक बनने में सहायता करते हैं।

(५) सरकार तथा नागरिकों के बीच मध्यस्थ का कार्य—सार्वजनिक समस्याओं को अपने कार्यक्रम में सम्मिलित कर और उनके लिये आन्दोलन कर

यह नागरिकों और सरकार के बीच मध्यस्थ का काम करती है और अपनी आलोचनाओं, प्रचार, दबाव और अन्य अनेक साधनों से जनता की आवश्यकताओं तथा उनके दुखों को सरकार तक पहुँचाती है और उनको दूर कराने की चेष्टा करती है। पार्टी वास्तव में व्यक्ति का उसके समुदाय और राज्य से सम्बद्ध करने का काम करती है। मैरियम का भी यही कथन है कि पार्टी समाज और व्यक्ति के बीच समुचित सम्बन्ध स्थापित कराने का साधन है। इसके अतिरिक्त जनता को सरकार की नीति की विशेषता और उसके गुण तथा दोष समझा कर और सरकार के कार्यों को जन साधारण के लिये व्याख्या करके भी यह सरकार और व्यक्ति के बीच मध्यस्थ का काम करती है।

(६) सरकार के विभिन्न अंगों में एकता तथा सामंजस्य स्थापित करना—संयुक्त राज्य जैसी संघीय प्रणाली में यह कार्य विशेष महत्व का है। वहाँ इसका महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि यह संघीय व्यवस्था शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त पर आधारित है। पार्टी के बन्धन केवल राष्ट्रीय सरकार के तीनों विभागों (विधान मण्डल, प्रशासन और न्यायपालिका) को ही एकता के सूत्र में नहीं बाँधते बल्कि राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों में भी परस्पर एकरूपता एवं समन्वय स्थापित करते हैं। निस्सन्देह जब राष्ट्रपति एक पार्टी का होता है और कांग्रेस पर दूसरी पार्टी का प्रभुत्व होता है तो प्राय वह गतिरोध उत्पन्न करने की भी चेष्टा करती है। परन्तु जब, जैसा कि बहुधा होता है, राष्ट्रपति की और कांग्रेस के दोनों सदनों में बहुमत प्राप्त पार्टी एक ही होती है तब एक ही पार्टी के प्रतिनिधि होने के कारण प्रशासन और कांग्रेस दोनों एक ही उद्देश्य से प्रेरित होते हैं, दोनों का हित एक ही कार्यक्रम को लागू करने में होता है। और इस प्रकार पार्टी संगठन दोनों विभागों का संयुक्त होकर काम करने की प्रेरणा देता है। परिणाम स्वरूप शासन संचालन सरलता पूर्वक बिना किसी विलम्ब या विरोध के प्रभाव शाली ढंग से किया जा सकता है।

(७) राष्ट्र का एकीकरण—एक अमेरिकी लेखक का कथन है कि 'यह विशाल और महान देश राजनैतिक पार्टियों की ही रचना है, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पार्टियाँ एक देश की विभिन्न जातियों, धर्मों, संस्कृतियों और व्यवसाय के लोगों में तार तम्य स्थापित कर उनको एकता के सूत्र में बाँधती हैं और इस प्रकार यह समस्त राष्ट्र का एकीकरण करने में महत्वपूर्ण सहायता पहुँचाती है। पार्टी की अपीलें जिनका क्षेत्र राष्ट्रीय होता है देश के विभिन्न भागों में (जिनके आर्थिक और सामाजिक हितों में भारी अन्तर होता है) एकता की भावना पैदा करती हैं और उनमें परस्पर सामन्जस्य स्थापित करती हैं।

(८) सामूहिक और अटूट उत्तरदायित्व—केवल प्रत्येक पदाधिकारी का

व्यक्तिगत रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी होना ही उत्तरदायी सरकार के लिये पर्याप्त नहीं है। राष्ट्र के प्रति उनका सामूहिक उत्तरदायित्व होना चाहिये और इसके लिये कोई ऐसा संगठन या दल होना चाहिए जो सरकारी पदों के लिये अपने उम्मेदवार खड़े करे, उनका निर्देशन करे और उनके कार्यों के लिये सामूहिक रूप से स्वयं उत्तरदायी हो। अकुशलता के लिये किसी अधिकारी को उसका कार्यकाल समाप्त हो जाने पर अलग कर देना ही पर्याप्त नहीं है। दण्ड प्रभावकारी हो इसके लिये यह आवश्यक है कि उस दण्ड के भागी उसके अन्य साथी भी बनें अर्थात् वह राजनैतिक पार्टी भी दण्ड की भागी बने जिसने उस अधिकारी को मनोनीत करके उसकी योग्यता का प्रमाण दिया था। अतः पार्टी सरकारी पदों के लिये जिन व्यक्तियों को मनोनीत कर जनता के सामने प्रस्तुत करती है उनकी योग्यता और ईमानदारी के लिये उत्तरदायी होती है। यदि यह चुन लिये जाते हैं तो इनकी कुशलता और सफलता पर पूरी पार्टी की प्रतिष्ठा और उसका भविष्य निर्भर करता है क्योंकि जो भी यश या अपयश यह अधिकारी कमाते हैं यह केवल इन्हीं का नहीं बल्कि पूरी पार्टी का यश अथवा अपयश होता है। और यह यश या अपयश पीढ़ियों तक इसके भाग्य और भविष्य को प्रभावित करता है। इस प्रकार राजनैतिक पार्टियाँ प्रशासन में व्यक्तिक उत्तरदायित्व के साथ-साथ सामूहिक तथा अटूट उत्तरदायित्व की स्थापना करती हैं।

(६) उपयोगी सामाजिक और मानव सेवा कार्य—जनता की सहानुभूति और उसका समर्थन प्राप्त करने के लिये पार्टियाँ उपयोगी सामाजिक और मानव सेवा कार्य की ओर भी प्रवृत्त होती हैं।

इस प्रकार पार्टियाँ केवल लाभदायक ही नहीं बल्कि महत्वपूर्ण कार्य करती हैं और यह सब कार्य ऐसे हैं कि यदि पार्टी इन कार्यों को अपने हाथ में न ले तो यह कार्य सम्भवतः किये ही नहीं जा सकते। तब यह प्रत्येक व्यक्ति के कार्य हो जायेंगे अर्थात् कोई भी विशिष्ट व्यक्ति इन्हें अपना कार्य नहीं समझेगा और जैसा कि उक्त लिखित सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है पार्टियाँ जनतन्त्रीय शासन व्यवस्था के लिये अति आवश्यक होती हैं। अतः इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि संसार में जहाँ कहीं जनतंत्र का प्रवेश हुआ है वहाँ पार्टियाँ उत्पन्न हो गई हैं। वास्तव में उनका मुख्य तथा अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य अर्थात् नीति निर्धारण का कार्य उनको जनतन्त्र के स्वस्थ विकास के लिए अनिवार्य बना देता है क्योंकि इसके द्वारा, जैसा बर्क ने कहा है, वह सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप प्रदान करती हैं। संक्षेप में, पार्टियों ने सफलतापूर्वक शासन संचालन किया है, संघीय प्रणाली के कृत्रिम अवरोधों को नष्ट किया है, साथ ही पृथक्करण व्यवस्था से उत्पन्न कृत्रिम

बाधाओं को भी दूर किया है, राष्ट्रीय भावना सुदृढ़ बनायी है, गुटों तथा वर्गों के संघर्षों को कम किया है और जनतंत्र का विकास किया है।

अमेरिकी पार्टी प्रणाली की आलोचना

विदेशी पर्यवेक्षकों द्वारा सामान्यतः यह मत व्यक्त किया गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन-प्रणाली में पार्टी-प्रणाली से अधिक उलझन में डालनेवाली और कोई संस्था नहीं है। पार्टी संगठनों में 'स्थानीयवाद' और 'गुटवाद' (sectionalism) की भावना, पार्टियों में निश्चित, स्पष्ट और सीमाविभाजक कार्यक्रम, नीतियों और सिद्धान्तों का अभाव, कांग्रेस में पार्टी के नेतृमण्डल द्वारा निर्धारित किये हुए प्रस्तावों के समर्थन के लिये सदस्यों में पार्टी के प्रति निष्ठा का अभाव, सदस्यों में पार्टी अनुशासन का अभाव (अमेरिका में एक तिहाई मतदाता अपने को 'स्वतंत्र' श्रेणी में रखते हैं और ऐसे सदस्यों की संख्या भी कम नहीं है जो अपनी पार्टी को छोड़ कर अन्य पार्टी के उम्मेदवारों को मत देने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते), और इसी प्रकार की अनेक विशेषतायें अमेरिकी राजनैतिक पार्टियों को निश्चित सिद्धान्तों का पालन करनेवाली "एक प्रणाली के बजाय 'स्वार्थों का एक गुट' बना देती हैं एक अस्थायी नेता के चारों ओर समर्थकों का एक दल एकत्रित हो जाता है जो उनपर यथाशक्ति प्रभाव डालने का प्रयत्न करता है"।

इन अद्भुत विशेषताओं की पृष्ठभूमि में अनेकों तथ्य हैं जैसे अमेरिकी राष्ट्र में विद्यमान प्रचुर विविधता, बिना किसी समान आधार के विविध समस्याएँ, निश्चित कार्यकाल के लिए निर्वाचित प्रशासनाधिकारी जिससे वह कांग्रेस से बिल्कुल स्वतंत्र रहता है और उसकी सरकार के पतन की कोई आशंका नहीं रहती जैसा ब्रिटेन की संसद में होता है और जिसके कारण कांग्रेस सदस्य पार्टी निष्ठा से स्वतंत्र होकर कार्य कर सकते हैं और समाज तथा सभ्यता का वह रूप जो राजनैतिक तथा भौतिक दृष्टि से प्रसारोन्मुख रहा है और जिसके अन्तर्गत राजनैतिक पार्टियों को कार्य करना पड़ा है। लास्की ने लिखा है कि वास्तव में संयुक्त राज्य की राजनैतिक पार्टियाँ एक महाद्वीप की पार्टियाँ होने के कारण यूरोपीय अर्थ में संगठित अथवा एकीकृत नहीं हो सकतीं विशाल देश होने के कारण प्रायः सभी पार्टियाँ स्वार्थों का संघ बन जाती हैं और उनसे ऐसे समझौते संभव हो सकते हैं जो या तो स्वार्थों के अनुकूल हों या उनकी प्राप्ति में सहायक हों और महाद्वीप के प्रत्येक भाग में पार्टी अपने को जिस क्षेत्र में वह कार्य करती है उसकी ऐतिहासिक तथा आर्थिक स्थितियों के अनुकूल बना लेता है"। प्रत्येक पार्टी को अनेक विभिन्न हितों पर विचार करना पड़ता है जैसे कभी जातीय, कभी धार्मिक और

कभी आर्थिक। इन सबको एक प्रतिरूप प्रदान करना कठिन है। पार्टी के प्रति निष्ठा का कांग्रेस में ही नहीं बल्कि प्राय मतदाताओं में भी अभाव मिलता है जो अधिकाधिक 'स्वतन्त्र' होते जा रहे हैं और जिनमें 'एक पार्टी' की अपेक्षा 'एक व्यक्ति' पर अधिक विश्वास करने की प्रवृत्ति जड़ पकड़ती जा रही है। विविध समस्याओं के वातावरण में और किसी एक ऐसे निश्चित पार्टी के अभाव में जिसकी नीति (यदि उसकी कोई नीति है) उसके (मतदाता के) अपने विचारों से मेल खाती हो मतदाता यह अनुभव करता है कि यदि वह किसी एक पार्टी के उम्मेदवार को अपेक्षा किसी अधिक ईमानदार और सुयोग्य (जिसका वह स्वय ही निर्णय करता है) व्यक्ति को चुनता है तो वह पहिले से अच्छा रहेगा।

पार्टियों के स्थानीयवाद का मुख्य कारण यह है कि संविधान में चुनाव सम्बन्धी कानून राज्यों के अधिकार क्षेत्र में छोड़ दिये गये थे। इसलिये जब पार्टियों का उद्‌भव हुआ तो स्वाभाविक ही वह राष्ट्रीय नियमों के बजाय राज्य के नियमों के अन्तर्गत ही संगठित हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिका में पार्टियों का विकास स्थानीय इकाई के रूप में राज्य के धरातल और फिर राष्ट्रीय धरातल पर हुआ है, अन्य देशों की भाँति राष्ट्रीय धरातल से स्थानीय धरातल की दिशा में नहीं हुआ है। प्रतिनिधियों, सिनेटरों और यहाँ तक कि राष्ट्रपति के चुनावों में स्थानीय पार्टी संगठनों की अभिरूची राष्ट्रीय हित की अपेक्षा स्थानीय हित में अधिक होती है। पार्टी द्वारा इन राष्ट्रीय पदों के लिये स्थानीय व्यक्ति मनोनीत किये जाने से पार्टी के उम्मेदवार को कुछ अतिरिक्त मत मिल जाने की सम्भावना रहती है और ऐसा न होने पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसलिये आरम्भ से ही यह भावना निहित रहती है कि इन राष्ट्रीय पदों के लिये ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत न किया जाय जिनका दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण स्थानीय मामलों पर स्थानीय भावना के प्रतिकूल हो। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि राष्ट्रीय राजनीति राज्य तथा स्थानीय मामलों पर आधारित हो जाती है और यह स्थिति नितान्त दूषित तथा अवांछनीय है। ऐसा कोई साधन नहीं जिसके द्वारा राष्ट्रीय पार्टी संगठन स्थानीय विद्रोही भावना का दमन कर सके। इसीलिये ग्रिफिथ ने लिखा है कि "प्रत्यक्ष प्राइमरी व्यवस्था और राज्य तथा स्थानीय पार्टी नियन्त्रण की प्रणाली का एक परिणाम यह होता है कि कांग्रेस में किसी समस्या पर एक ही पार्टी के सदस्यों में मतभेद रहता है और वह क्षेत्रीय हितों के आधार पर मतदान करते हैं दोनों पार्टियों के प्रतिनिधियों के बीच समानता का यही 'स्थानीयता' आधार है और इसी कारण राष्ट्रीय प्रश्नों पर कभी कभी पार्टी के सदस्य विचलित अथवा पथभ्रष्ट हो जाते हैं"। चुनाव घोषणायें ऐसी की जाती हैं जिनसे कोई अप्रसन्न न हो जाय और इन घोषणाओं की अस्पष्टता राज्यों और स्थानीय संगठनों के

बाच गठबन्धन करा देने में सुविधाजनक सिद्ध होती हैं। इससे प्रकट है कि अमेरिका में किसी स्पष्ट समस्या पर पार्टियाँ राष्ट्रीय धरातल पर एकता-बद्ध नहीं हो पाती हैं और इसीलिये कॉंग्रेस पर पार्टी के प्रति अनुत्तरदायी होने का आरोप लगाया जाता है। अमेरिकी राजनीति विज्ञान सघ द्वारा १६५० में स्थापित राजनैतिक पार्टियों का अध्ययन करने वाली समिति ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि "अमेरिका में कुछ ऐतिहासिक और अन्य कारणों से द्वि-पार्टी प्रणाली दो स्थानीय तथा राज्यीय गुटों क सघों के रूप में कार्य करती है। इनका सगठन बहुत ढीला होता है। इनके ऊपर राष्ट्रीय पार्टी सस्थायें अधिक प्रभावशाली नहीं होतीं और साथ ही इनमें परस्पर एक राष्ट्रीय एकता की भावना भी प्राय नगण्य ही होती है। अत किसी भी बहुमत प्राप्त पार्टी के पास सत्तारूढ़ होने के पश्चात इतने साधन नहीं होते कि वह विधान मण्डल (कॉंग्रेस) और शासन विभाग में अपने सदस्यों को सगठित कर और उनको एकताबद्ध कर पार्टी के कार्यक्रम के आधार पर उनका दिशा-निर्देशन कर सके"।

इसके अतिरिक्त (क) नेतृत्व की अनिश्चितता और (ख) सदस्यता की अस्पष्टता दो अन्य आधार भूत समस्याएँ हैं। पार्टी और उसके सदस्यों के बीच समुचित सम्बन्ध स्थापित करने के साधनों पर बहुत कम विचार किया गया है। समिति की रिपोर्ट (जिसका ऊपर वर्णन किया गया है) में यह सुझाव दिया गया है कि पार्टियों का मतदाताओं के प्रति "बाह्य उत्तरदायित्व" के साथ ही आन्तरिक उत्तरदायित्व भी होना चाहिए जिसका अर्थ यह है कि पार्टी के नेताओं को प्राइमरी अन्तरंग मण्डलों और सम्मेलनों में पार्टी के सदस्यों के प्रति भी उत्तरदायी होना चाहिये। इस प्रकार स्थापित, "पार्टी के अन्दर जनतन्त्री व्यवस्था" (Intra-party Democracy) के तीन अर्थ होते हैं (१) पार्टियों की आन्तरिक प्रक्रियायें जनतन्त्रीय होनी चाहिएं, (२) पार्टी के सदस्यों को आन्तरिक कार्यवाहियों में भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए, और (३) नेताओं को पार्टी के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये। यह "आन्तरिक उत्तरदायित्व" उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि पार्टियों का अपने मतदाताओं के प्रति 'बाह्य उत्तरदायित्व'। वास्तव में रिपोट के सुझाव के अनुसार 'आन्तरिक उत्तरदायित्व' से पार्टी के नेताओं और उसके साधारण सदस्यों में घनिष्टतम सम्बन्ध स्थापित होगा इससे वह अपने 'बाह्य उत्तरदायित्व' को भी अधिक कुशलता पूर्वक एव सुचारू रूप से पूरा कर सकेंगे।

रिपोर्ट ने अपनी सिफारिशों में यह प्रस्ताव रखा है कि ५० सदस्यों की एक "पार्टी परिषद" का सगठन किया जाना चाहिए। इस प्रकार की "पार्टी परिषद" (१) राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्दर पार्टी व्यवस्था की समस्याओं पर विचार करेगी और उनका समाधान करेगी, (२) पार्टी के कार्य-क्रम का

प्रारम्भिक प्रारूप तैयार करके राष्ट्रीय सम्मेलन के विचाराधीन प्रस्तुत करेगी, (३) समकालीन प्रश्नों पर पार्टी नीति एवं कार्यक्रम की व्याख्या करेगी, (४) पार्टी संगठन के बाहर से राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए पार्टी नेताओं को चुनेगी, (५) कांग्रेस की सदस्यता के उम्मेदवारों के सम्बन्ध में विचार करेगी और पार्टी के सम्बन्धित संगठनों के सामने अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगी, (६) राज्य या स्थानीय पार्टी संगठनों द्वारा पार्टी के निर्णयों की अवहेलना किए जाने के सम्बन्ध में राष्ट्रीय सम्मेलन, राष्ट्रीय समिति और अन्य उपयुक्त संगठनों को सूचित कर आवश्यक कार्यवाई करने की सिफारिश करेगी, और (७) राष्ट्रपति के चुनाव के वर्षों में परिषद स्वाभाविक ही राष्ट्रपति के उम्मेदवार के सम्बन्ध में विचार विमर्श का केन्द्र बन जायेगी और प्रारम्भिक रूप से उम्मेदवारों के परीक्षण का लाभदायक कार्य सम्पन्न कर सकती है। इस पार्टी परिषद के अन्दर पार्टी के मुख्य परामर्शदाताओं का एक छोटा गुट हो सकता है जो पार्टी के मन्त्रिमण्डल के रूप में कार्य कर सकता है।

लास्की के विचार

१९४६ में प्रकाशित अपनी रचना 'अमेरिकन डेमोक्रेसी' में प्रोफेसर हेरल्ड लास्की ने यह मत व्यक्त किया है कि आज अमेरिकी पार्टियों के सामने गम्भीर प्रश्न यह है कि वे किस प्रकार अपने को द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न तथा नयी सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल बनायें। लास्की का कहना है कि "न्यूडील ने पहिले ही बहुत सी पुरानी परम्पराओं को धूल में मिला दिया है। इनमें सब से महत्वपूर्ण व्यक्तिवाद था। आज सुधार अधिकारों के प्रसार का चाहे कितना ही विरोध किया जाय दोनों पार्टियां इस बात को जानती हैं कि अमेरिकी जनतन्त्रीय व्यवस्था १९२९ के समान दूसरा भारी मन्दी का सामना न कर सकेगी। अतः यह परिणाम निश्चित है कि अगली पीढ़ी के अमेरिका को, चाहे रिपब्लिकन सत्तारूढ़ हो या डेमोक्रेट, अपनी पार्टी की रूपरेखा एक ऐसी 'आशय प्रजातन्त्रवाद' (positive democracy) के अनुकूल बनानी पड़ेगी जैसी व्यवस्था का उससे अब तक परिचय नहीं हुआ है अथवा संयुक्त राज्य में एक सुसंस्थित राज्य (corporate state) का विकास होने लगेगा जो अमेरिका की राजनैतिक जनतन्त्र की परम्पराओं के अनुकूल नहीं होगा"।

प्रोफेसर लास्की का तात्पर्य यह है कि आज तक संयुक्त राज्य में दोनों पार्टियों के मौलिक सिद्धान्त एक ही रहे हैं क्योंकि दोनों पार्टियाँ इससे सहमत हैं कि सम्पत्तिहीन वर्ग (Under privileged) के प्रहारों से पूँजीपतियों तथा बड़े उद्योगपतियों के हितों की रक्षा करने के लिए ही राज्य शक्ति का उपयोग किया जाना चाहिये। १९२९ तक सीमाओं के प्रसार तथा औद्योगिक क्षेत्र में व्यापक

आन्तरिक विकास, और इनके द्वारा जन साधारण की क्रय-शक्ति को निरन्तर बनाये रखने की व्यवस्था से उस चेतना के विकास को रोकना सम्भव था जो राज्य के मूलभूत सिद्धान्तों पर आपत्ति प्रकट कर सकती थी। परन्तु १६२६ से स्थिति बदलने लगी है क्योंकि आधुनिक आर्थिक सिद्धान्तों में उस उन्मुक्त उद्योग (Free enterprise) की मान्यता को अस्वीकृत एवम् रद्द कर दिया गया है जिस पर अमेरिकी पार्टियाँ मूलतः निर्भर करती थीं। इसके विपरीत आधुनिक आर्थिक सिद्धान्तों में उद्योग एवम् कृषि के क्षेत्र में व्यापक सभीय स्वामित्व और नियन्त्रण को मान्यता प्रदान की गई है और इससे उस आर्थिक विशेषाधिकार में आमूल परिवर्तन हो जाता है जिसका अमेरिकी उद्योगपति अब तक लाभ उठाते रहे। इसके साथ ही आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त की इस मान्यता में पार्टियों की रूपरेखा और उनके उद्देश्यों में भी आवश्यक परिवर्तन की माँग निहित है। प्रोफेसर लास्की का कहना है कि "इससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि राजनैतिक पार्टियाँ उद्योग तथा पूँजीपतियों के विरुद्ध हो जायेंगी, अर्थात् उद्योग-पति वर्ग पार्टी सगठन के उन नये सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं कर सकता जिनकी ओर बहुमत प्राप्त करने की इच्छुक राजनैतिक पार्टियों का आकर्षित होना और जिनको अपनाना उनके लिए अनिवार्य सा है"। इसके फलस्वरूप अमेरिकी राजनैतिक पार्टी प्रणाली में गम्भीर सकट पैदा हो जाता है क्योंकि जब आर्थिक प्रसार एवम् विकास अपनी चरम सीमा को छू लेता है तब 'अवसरों में असमानता' भी उत्पन्न हो जाती है जिसके फलस्वरूप 'हितों में विरोध' या 'हितों में सघर्ष' उत्पन्न हो जाता है, चाहे वह तत्काल उत्पन्न हो या कुछ कालावरान्त परन्तु उसका उत्पन्न होना अनिवार्य सा ही है। और जब यह 'हितों का विरोधभाव' चेतना प्राप्त करने लगता है तो सदैव इसका यह परिणाम होता है कि जो लोग अपने को सकट में समझने लगते हैं या अपने हितों को खतरे में समझते हैं वह उनकी रक्षा के लिए अपने को एक दल में सगठित कर लेते हैं। इस मान्यता के आधार पर यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सभवतः अमेरिकी ट्रेड-यूनियन आन्दोलन की राजनीति स्तर पर दो अवस्थायें होंगी। जैसे ही एक अनुदार डेमाक्रेट दूसरे अनुदार रिपब्लिकन के विरुद्ध राष्ट्रपति का चुनाव लड़ेगा अमेरिका का श्रमिक वर्ग तेजी से अपने स्वतन्त्र राजनैतिक आन्दोलन की दिशा में आगे बढ़ता जायगा। इस स्वतन्त्र आन्दोलन की पहली अवस्था में निस्सन्देह उनका दल सघीय स्तर पर अपेक्षाकृत बहुत छोटा होगा परन्तु उसके मस्तिष्क में इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं होगा कि रिपब्लिकन और डेमाक्रेट दोनों ही एक ऐसे अमेरिका के प्रवक्ता हैं या एक ऐसे अमेरिका का निर्माण चाहते हैं जिस व्यवस्था में समस्त श्रमिक वर्ग के हितों को पूर्णतया तिलाञ्जलि दे दी गई है अर्थात् जिसमें श्रमिक वर्ग

के हितों का कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार श्रमिक वर्ग वामपक्षीय विचारधारा की ओर आकर्षित होगा और यह वामपक्षीय आन्दोलन चाहे उसका नाम कुछ भी हो उन्हें वास्तव में एक 'सोशलिस्ट-पार्टी' या समाजवादी-दल में संगठित कर देगा और साथ ही उनके विरोधी रिपब्लिकन और डेमोक्रेटों को भी यह विदित हो जायगा कि उनके बीच वास्तव में कोई विशेष अन्तर नहीं है। अन्त में लास्की इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि "जब यह स्थिति पैदा हो जायगी तब अमेरिकी पार्टियों की स्थिति में यूरोपीय पार्टियों की स्थिति से कोई मौलिक अंतर नहीं रह जायगा।" प्रोफेसर लास्की ने कुछ वर्ष पहिले यह भविष्य वाणी की थी और तब से संयुक्त-राज्य में जो घटनाएँ घटी हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि राजनीति में भविष्यवाणी करना कितना कठिन है।

अध्याय ११ | राज्यों के संविधान

संयुक्त राज्य अमेरिका पचास अर्थ प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों का संघ है जिनमें से १३ मूल्य राज्य हैं, और शेष वह राज्य हैं जो कालान्तर में संघ में प्रविष्ट हुए। प्रत्येक भौगोलिक दृष्टि से इन राज्यों में बहुत अन्तर है। उदाहरणार्थ, क्षेत्रफल की दृष्टि से टेक्सस, जिसका क्षेत्रफल २६७,३३९ वर्गमील है, रोड टापू से जिसका क्षेत्रफल केवल १२१४ वर्गमील है, २२० गुना अधिक बड़ा है। दो-तिहाई राज्यों के क्षेत्रफल ३०,००० और ६७,००० वर्गमील के बीच है। इसी प्रकार जन संख्या की दृष्टि से भी उनमें परस्पर महान अन्तर है। १९५० की जनगणना के अनुसार न्यूयार्क, जिसकी जनसंख्या १४,८३०,१९२ है, नेवदा से जिसकी जनसंख्या केवल १६०,०८३ है ९२ गुना अधिक बड़ा है। दो तिहाई राज्यों की जनसंख्या ६५०,००० और ४,०००,००० के बीच में है और घनत्व १५५ से ६ प्रति वर्गमील तक है। आर्थिक व्यवस्था, भौतिक और खनिज साधनों, प्रतिव्यक्ति की आय, जलवायु और सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के कई अन्य पहलुओं की दृष्टि से पता चलता है कि इन राज्यों में आश्चर्यजनक विभिन्नता है।

यह राज्य मूलतः उन साहसी अंग्रेजों द्वारा बसाये गये उपनिवेश थे जिनको स्वतन्त्रता अपने शरीर से अधिक प्रिय थी और जिनके पूर्वजों ने इंगलैण्ड में राजा के अधिकारों को सीमित किया था, सरकारी अधिकारियों को कानून बद्ध किया था और एक ऐसी प्रतिनिधि सरकार स्थापित की थी जो लोक प्रभुता के सिद्धान्त पर आधारित थी। इसलिये आरम्भ से ही इन राज्यों में स्थानीयता अथवा स्वायत्तता (autonomy) एवम् व्यक्तिवाद की भावनायें कूट कूट कर भरी हुई थीं। इन दोनों ही परम्पराओं ने सारे देश की राजनैतिक संस्थाओं के विकास को बहुत अधिक प्रभावित किया है और जो व्यक्ति १७८७ के बसंत में संघीय संविधान का निर्माण करने के लिये फिलाडेलफिया के स्थान पर सम्मिलित हुये थे उनको इस बात से निरन्तर बहुत परेशानी उठानी पड़ी कि स्वतन्त्र राज्य अपनी प्रभुसत्ता के लिये अत्यन्त व्यग्र थे, वह उसको समर्पित करने को तैयार नहीं थे बल्कि यथाशक्ति उसकी रक्षा करने के लिये कटिबद्ध थे। इसलिये स्वयं फिलाडेलफिया सम्मेलन के असफल होकर भंग हो जाने की आशंका

उत्पन्न हो गयी थी परन्तु वाशिंगटन, हैमिल्टन, फ्रैंकलिन और अन्य प्रभावशाली और दूरदर्शी नेताओं की उपस्थिति के कारण और साथ ही निर्बल तथा अशक्त राज्य संघ (Confederation) व्यवस्था के कटु अनुभवों के कारण राष्ट्रीय संविधान के सम्बन्ध में समझौता सम्भव हो सका। इस प्रकार आरम्भ में संयुक्त राज्य आंशिक प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों के राज्य मण्डल के रूप में संगठित हुआ था और चार वर्ष के रक्तरंजित गृहयुद्ध के उपरान्त ही यह निश्चित किया जा सका कि 'संयुक्त राज्य अमेरिका के संघानरित राज्य एक महान संघ के प्रान्त स्वरूप हैं जिससे अलग होने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है और जिसकी राजनैतिक व्यवस्था के अनुकूल ही उनको अपनी महत्वपूर्ण राजनैतिक प्रवृत्तियों का रूपान्तर करना पड़ेगा'। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि राज्यों तथा संघीय सरकार के मध्य अधिकार क्षेत्र सम्बन्धी मतभेदों पर सर्वोच्च न्यायालय और विशेषकर उसके मुख्य न्यायाधीश जान मार्शल ने संघीय सरकार का ही पक्ष लेकर अन्त में राष्ट्र को शक्तिशाली बनने में महत्वपूर्ण सहायता की। परन्तु राष्ट्रीय सरकार की विजय का मुख्य कारण तो वह अपार सामाजिक तथा आर्थिक समस्याएँ थीं जो दिन पर दिन बढ़ती और जटिल होती जा रही थीं और जिनको हल करने के लिये राष्ट्रीय कार्यवाही करने की माँग की जाने लगी थी। इन सब का परिणाम यह हुआ कि संघ एवम् राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में एक ऐसा परिवर्तन हो गया जिसकी संविधान के निर्माताओं ने कल्पना तक नहीं की थी और जो १८वीं शताब्दी के वातावरण में एक असम्भव व्यवस्था प्रतीत होती थी।

इन सब परिवर्तनों के होते हुए भी जिनके फलस्वरूप लास्की के शब्दों में संघानरित राज्य 'बृहद्तर राज्य मण्डल' के प्रान्त बन गये, अमेरिकी संघीय प्रणाली की इकाइयों में अब भी प्रभुसत्ता के बहुत से महत्वपूर्ण चिन्ह विद्यमान हैं। प्रत्येक राज्य का अपना अपना लिखित संविधान है जिसे निर्मित और उन्मूलन करने की उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है, वह उसमें इच्छानुसार संशोधन परिवर्तन भी कर सकता है। इस सम्बन्ध में राज्यों के अधिकार पर केवल दो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं (१) संविधान के अन्तर्गत एक गणतन्त्रात्मक सरकार की व्यवस्था की गई हो, और (२) राज्य संविधान संघीय संविधान की व्यवस्थाओं या उनके अन्तर्गत निर्मित विधियों या संयुक्त राज्य द्वारा की गई संधियों के प्रतिकूल न हों।

इसमें सन्देह नहीं कि राज्य अनेकों ऐसे कार्य करते हैं जिनके बिना वर्तमान वैधानिक आधार पर निर्मित राष्ट्रीय सरकार अपना कार्य सम्पन्न नहीं कर सकती। उदाहरणार्थ अमेरिका का प्रत्येक नागरिक किसी राज्य का भी नागरिक (दोहरी नागरिकता) होता है, वह राज्य के सब डिवीजन का जिसे काउन्टी कहते हैं सदस्य होता है और काउन्टी के भी किसी छोटे भाग का जिसे

नगर, उपनगर, गाँव या बॉरो (Borough) कहते हैं निवासी होता है। इस प्रकार वह केवल संयुक्त राज्य के आधीन ही नहीं बल्कि राज्य सरकार तथा इन विभिन्न स्थानीय सरकारों के नियन्त्रण में रहता है जो सब मिल कर उसको संघीय सरकार से कहीं अधिक शक्ति और अधिकार प्रदान करती हैं और उसके जीवन को नियमित करती हैं। राज्यों की पार्टियों के आधार पर ही राष्ट्रीय राजनैतिक पार्टियाँ संगठित की जाती हैं। सभी स्तरों पर सरकारी कार्यों के प्रसार के फलस्वरूप राज्यों के कार्य भार में भी भारी वृद्धि हुई और अब यह अधिक नियम लागू कर रहे हैं, अधिक सेवायें कर रहे हैं, अधिक धन व्यय कर रहे हैं और पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक सार्वजनिक कर्मचारियों का प्रयोग कर रहे हैं। प्रत्येक राज्य की अपनी कार्यकारिणी, व्यवस्थापिका सभा और न्यायपालिका होती है, प्रत्येक का अपनी सार्वजनिक सेवा व्यवस्था है, अपने राज्य शासन-नियम हैं, अपनी शिक्षा प्रणाली है, अपनी सेना है, राज्य पुलिस है और अपनी स्थानीय स्वशासन प्रणाली है। इसीलिये ग्रिफिथ के शब्दों में संघांतरित राज्य एक प्रशासकीय प्रयोगशाला बन गये हैं।

मुख्य विशेषतायें

राज्य संविधानों में परस्पर काफी अन्तर मिलता है। कुछ तो बहुत प्राचीन हैं जैसे मैसाच्यूसैट का जो १७८० में बना था और कुछ आधुनिक ही हैं जैसे न्यू-जर्सी का जिसकी रचना १९४७ में की गई थी। उनमें अधिकारियों, कार्यों और विधियों से सम्बन्धित की गई व्यवस्था में भी बहुत अन्तर पाया जाता है परन्तु सभी एक ही व्यापक आधार पर संगठित किये गये हैं, जिससे विस्तार के सम्बन्ध में यह विविधता होते हुए भी इनमें समानता का भी एक सूत्र पाया जाता है।

सबसे पहिले यह स्मरण रखना आवश्यक है कि संयुक्त राज्य एक ऐसे राज्यों का संघ है जो कानूनी दृष्टि से एक दूसरे के बराबर हैं। दूसरी बात यह है कि प्रत्येक राज्य का एक लिखित संविधान है जिसमें राज्य सरकार के विभिन्न अंगों और स्थानीय सरकारों के लिए व्यवस्था की गई है। राज्य में यह मूल तथा सर्वोच्च कानून माना जाता है। राज्य विधान मण्डल द्वारा जितने भी आदेश या अध्यादेश जारी किये जाते हैं सब इस मूल कानून की व्यवस्थाओं के अनुकूल होने चाहिएँ। नये संविधान के निर्माण की पद्धति प्रत्येक राज्य में भिन्न भिन्न है परन्तु साधारणतया जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया जाता है जिसे 'संविधान-सम्मेलन' कहा जाता है और लागू होने से पूर्व संविधान के प्रारूप को जनमत संग्रह (Referendum) के लिये जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। सामान्यतः राज्य विधान मण्डल ही इस प्रकार के 'संविधान सम्मेलन' बुलाने का प्रस्ताव पारित कर उन का आयोजन करता है यद्यपि कुछ राज्यों में

इस प्रकार के सम्मेलनों के आयोजन के प्रस्ताव जनता की सहमति पर निर्भर करते हैं। कुछ अन्य राज्यों में गवर्नर नये संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए संविधान आयोग नियुक्त करता है।

राज्य संविधान में संशोधन की जो विधि दी गइ है उस निर्धारित विधि के अनुसार प्रत्येक राज्य अपने संविधान में संशोधन करने के लिये पूर्णतया स्वतंत्र है। संशोधन प्रक्रिया में राज्य विधान मण्डल के दोनों सदन और मतदाता दोनों भाग लेते हैं और प्राय चार मुख्य विधियाँ पाइ जाती हैं।

संशोधन

(अ) विधान मण्डल द्वारा—निर्धारित बहुमत (दो-तिहाइ या कुछ राज्यों में ६० प्रतिशत) से यदि राज्य विधान मण्डल कोइ संशोधन प्रस्ताव पारित कर देता है और उसको जनमत संग्रह (Referendum) में जनता द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह अंतिम रूप से पारित हो जाता है और राज्य संविधान का भाग बन जाता है। अधिकांश राज्यों मे जनादेश के निर्णय के लिये साधारण बहुमत पर्याप्त होता है, परन्तु कुछ राज्यों में कुल मतदाताओं के बहुमत का आवश्यकता होता है।

(ब) जनता की माग (initiative) द्वारा—इस विधि के अनुसार जनता संशोधन प्रस्ताव प्रस्तावित तथा पारित करती है। यदि निर्धारित संख्या में मतदान किसी संशोधन प्रस्ताव के लिए आवेदन पत्र भेजते हैं तो उस पर फिर जनमत संग्रह की व्यवस्था की जाती है और जनता द्वारा स्वीकार कर लिये जाने पर वह संशोधन कानून बन जाता है।

(स) संशोधन आयोग द्वारा—कुछ राज्यों के विधान मण्डल ने यह व्यवस्था की है कि राज्य के गवर्नर द्वारा नियुक्त एक संशोधन आयोग संशोधन प्रस्ताव पर विचार करेगा। तत्पश्चात वह राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित हो कर जनता की स्वीकृति के हेतु भेजा जायगा।

(द) संवैधानिक सम्मेलन द्वारा—यह सम्मेलन जनता द्वारा निर्वाचित होता है। इसका उद्देश्य किसी प्रस्तावित संशोधन पर विचार कर उसे पारित करना होता है। कुछ राज्यों में सम्मेलन के निर्णय की पुष्टि के लिए जनमत संग्रह भी आवश्यक है। और कुछ में तो नये संविधान या नये संशोधन की स्वीकृति के लिए असाधारण बहुमत की आवश्यकता होती है।

(३) तीसरी विशेषता यह है कि किसी भी राज्य ने संसदीय शासन प्रणाली को स्वीकार नहीं किया है जिसमें मन्त्रिमण्डल विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। सभी राज्यों ने राष्ट्रपति प्रणाली को ही अपनाया है जिसमें शासन-विभागों में अधिकारों का पृथक्करण किया गया है, न्यायपालिका का प्रभुत्व है, मुख्य

प्रशासनाधिकारी निर्वाचित किया जाता है, उसका कार्यकाल निश्चित होता है और राज्य विधान मण्डल के प्रति वह उत्तरदायी नहीं होता यद्यपि दोनों के बीच परस्पर "नियन्त्रण और सन्तुलन का" सम्बन्ध होता है। इस प्रकार प्रशासन विभाग गवर्नर के निषेधाधिकार का प्रयोग करके विधान मण्डल के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप कर सकता है, न्यायपालिका विधान मण्डल द्वारा बनाये गये कानूनों को अवैध घोषित कर विधान मण्डल पर अपना नियन्त्रण रखती है और इसी प्रकार विधान मण्डल भी महाभियोग द्वारा प्रशासन के या न्यायपालिका के किसी भी अधिकारी को पदच्युत करने के अधिकार द्वारा और कभी कभी न्यायालयों का उन्मूलन करके प्रशासन तथा न्यायपालिका पर अपना नियन्त्रण रखता है। इसके अतिरिक्त राज्य के द्वितीय सदन अर्थात सिनेट को गवर्नर द्वारा की गई नियुक्तियों की पुष्टि करने का अधिकार प्राप्त है और यह प्रशासन पर एक और नियन्त्रण है। प्रशासन को भी क्षमादान करने या दण्ड स्थगित करने न्यायपालिका पर नियन्त्रण करने के अधिकार हैं। इसके साथ ही विधान मण्डल के दोनों सदन परस्पर एक दूसरे से सन्तुलित हैं, प्रत्येक दूसरे के द्वारा पारित कानून को निषिद्ध कर सकता है और यह बात निब्रास्का को छोड़ जहाँ केवल एक ही सदन है शेष सभी राज्यों पर लागू होती है।

(४) अन्त में यह भी उल्लेखनीय है कि प्रत्येक राज्य के अधिकार राष्ट्रीय सरकार की भाँति प्रदत्त (delegated) न होकर प्रारम्भिक (original) तथा जन्मसिद्ध (inherent) हैं। अतः राष्ट्रीय संविधान के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रतिबन्धों के लागू होने से बहुत कुछ सीमित हो जाने पर भी राज्यों का कार्य क्षेत्र काफी बड़ा है। यद्यपि यह राष्ट्रीय सरकार के बराबर महत्वपूर्ण नहीं है फिर भी उसके कार्य क्षेत्र से कहीं अधिक व्यापक है।

राज्य सरकारें

राज्य संविधानों में राज्य सरकारों की जिस रूपरेखा की व्यवस्था की गई है वह प्राय सब राज्यों में समान है। प्रत्येक राज्य में सरकार तीन अंगों में विभाजित है —(१) कार्यकारिणी, (२) विधान मण्डल और (३) न्यायपालिका।

राज्य कार्यकारिणी

राज्य की सर्वोच्च कार्यकारिणी शक्ति एक गवर्नर में निहित की गई है परन्तु अपने शासनाधिकारों को लागू करने में गवर्नर की सहायतार्थ कुछ अन्य निर्वाचित अधिकारियों की भी व्यवस्था की गई है, जैसे लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, अभिलेख मन्त्री (Secretary of State records), आडीटर या [illegible]

कोषाध्यक्ष, एटर्नीजनरल और शिक्षा सचालक। इन पदों की व्यवस्था सविधान द्वारा की गई है और साधारणतया इनको 'राज्य प्रशासनाधिकारी' कहा जाता है।

संघीय सविधान में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति को प्रशासन के समस्त अधिकार प्रदान किये गये हैं परन्तु इसके विपरीत राज्य में गवनर को केवल सर्वोच या मुख्य प्रशासन अधिकार ही दिये गये हैं जिसका यह अर्थ होता है कि कुछ शासनाधिकार और भी हैं जो उसके प्राप्त अधिकारों के अतिरिक्त हैं। यह अन्तर बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि जहाँ पर राष्ट्रपति उन सब कानूनी और सवैधानिक अधिकारों का प्रयोग कर सकता है जो 'प्रशासन' शब्द के अन्तर्गत आते हैं वहाँ गवर्नर को केवल वही अधिकार प्राप्त हैं जिनका उल्लेख कर दिया गया है, राज्य का मुख्य प्रशासनाधिकारी होने के नाते उसे कोई अन्तर्निहित अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

राज्य के सविधानों में गवर्नर के पद के लिये कुछ आवश्यक योग्यतायें निर्धारित की गयी हैं जो विभिन्न राज्यों में विभिन्न हैं। परन्तु सामान्यत प्रत्येक राज्य में यह आवश्यक है कि गवर्नर के पद के लिये अभिलाषी व्यक्ति (१) संयुक्त राज्य का नागरिक हो, (२) वह उस राज्य में कुछ निर्धारित वर्षों (साधारणतया ५) तक निवासी रहा हो, (३) उसकी अवस्था उतनी हो (साधारणतया ३० वर्ष मानी गई है) कि वह वयस्क माना जा सके। इस पद के लिये पुरुष स्त्री में कोई भेद नहीं, दोनों ही इस पद पर आसीन हो सकते हैं।

गवर्नर की योग्यता और कार्यकाल

गवर्नर सारे राज्य की जनता के प्रत्यक्ष मतदान से निर्वाचित किया जाता है। यह बात लगभग सभी राज्यों पर लागू होती है केवल मिसीसिपी में एक विशेषता और है वह यह कि वहाँ जनता के अतिरिक्त विधानमण्डल का भी गवर्नर के निर्वाचन में हस्तक्षेप होता है। अमेरिका के प्रत्येक नागरिक को जो उस राज्य का निवासी है और जिसकी आयु २१ वर्ष की है (केवल जार्जिया में उम्र १८ वर्ष रखी गई है) गवर्नर के चुनाव में मतदान का अधिकार होता है। इसके लिये उम्मेदवारों को या तो राज्य व्यापी प्रत्यक्ष प्राइमरी में या राज्य सम्मेलनों में मनोनीत किया जाता है। साधारणतया गवर्नर के चुनाव का निर्णय अधिकांश मत से होता है परन्तु कुछ राज्यों में जैसे वेरमोंट और जार्जिया में कुल मतदाताओं के स्पष्ट बहुमत की आवश्यकता होती है। इन दो राज्यों में यह व्यवस्था की गई है कि यदि किसी भी उम्मेदवार को जनता का स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो विधानमण्डल गवर्नर का चुनाव करेगा।

अनेक राज्यों में गवर्नर का कार्यकाल २ से ४ वर्ष के बीच और उसका वार्षिक वेतन ४,५०० डालर से लेकर २५,००० डालर तक है। अधिकांश राज्यों

में गवर्नर जितनी बार चाहे चुनाव लड़ सकता है परन्तु इण्डियाना, पेनसिलवानिया और कुछ अन्य राज्यों में गवर्नर एक के पश्चात् दूसरी बार इस पद के लिये खड़ा नहीं हो सकता है। उसे केवल उसका राज्य विधानमण्डल ही महाभियोग के द्वारा पदच्युत कर सकता है, महाभियोग के लिये निचले सदन में ही आरोप लगाये जाते हैं और वह अपराधी है या नहीं इस बात का निर्णय द्वितीय सदन करता है। १२ राज्यों में जनता द्वारा राज्य के अधिकारियों को पदच्युत करने की व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था को रिकॉल (Popular recall) कहते हैं। इसके द्वारा अधिकारियों को अविलम्ब पदच्युत किया जा सकता है। किसी भी अधिकारी को "वापस बुलाने" (Recall) के लिये तत्सम्बन्धी आवेदन पत्र पर संविधान द्वारा या कानून द्वारा निर्धारित मतदाता संख्या के हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात् निर्णय के लिए चुनाव का दिन निश्चित कर दिया जाता है। उस दिन मतदाता चुनाव केन्द्रों में जाते हैं और जिस अधिकारी पर आरोप लगाये गये हैं उसको हटाने या न हटाने के पक्ष में मतदान करते हैं।

यदि गवर्नर की मृत्यु हो जाय, वह त्याग पत्र दे दे, पदच्युत कर दिया जाय या राज्य से काफी लम्बे समय से अनुपस्थित हो तो दो तिहाई राज्यों में उसके स्थान पर लेफ्टिनेन्ट गवर्नर आसीन हो जाता है परन्तु यदि गवर्नर को जनमत संग्रह द्वारा वापस बुलाया (Recall) गया है तो उसके स्थान पर उसका वह प्रतिद्वन्द्वी उम्मेदवार गवर्नर बनाया जाता है जिसको इस जनमत संग्रह (Recall election) में सर्वाधिक मत प्राप्त हुए हैं। यदि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर का पद रिक्त है या जहाँ इस प्रकार का कोई पद नहीं है तो गवर्नर के रिक्त पद पर संविधान या कानून में निर्धारित क्रम के अनुसार पूर्ति की जाती है और इसी निर्धारित क्रम में सिनेट के अध्यक्ष का नम्बर सर्व प्रथम आता है।

गवर्नर के अधिकार तथा कार्य

संविधान के अनुसार गवर्नर राज्य का सर्वोच्च प्रशासक होता है और उसका यह कर्तव्य होता है कि वह इस बात का प्रबन्ध करे कि कानून सत्यनिष्ठा से लागू किये जायें। इस रूप में वह प्रशासन का मुख्य निर्देशक तथा निरीक्षक होता है परन्तु इस सम्बन्ध में उसे जो अधिकार प्राप्त हैं वह अत्यन्त अपर्याप्त हैं। अपने आदेशों का पालन करवाने के लिये अधिकतर उसे अपने आधीन कर्मचारियों, मुख्यत अन्य प्रशासनाधिकारियों पर जैसे लेफ्टिनेन्ट गवनर, अभिलेख मन्त्री, आडीटर और कम्प्ट्रोलर जनरल, कोषाध्यक्ष, एटर्नी जनरल, शिक्षा संचालक आदि (जो सामान्यत जनता द्वारा चुने जाते हैं), स्थानीय निर्वाचित काउन्टी अधिकारी, सरकारी वकील, नगर के अधिकारियों और विभिन्न राज्य न्यायालयों के जनता द्वारा निर्वाचित न्यायाधीशों पर निर्भर करना पड़ता है। इन पर उसका प्रत्यक्ष

और प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं होता। गवर्नर के साथ ही निर्वाचित ये अन्य शासनाधिकारी समझते हैं कि वह गवर्नर की अपेक्षा जनता के प्रति उत्तरदायी हैं।

वास्तव में गवर्नर के नियुक्ति करने के अधिकार बहुत सीमित हैं, निरीक्षण और निर्देशन सम्बन्धी इसके अधिकार बिल्कुल अपर्याप्त हैं और इसका पदच्युत करने का अधिकार भी बहुत सकुचित तथा प्रतिबन्धित है। वह उन्हीं पदों पर नियुक्ति कर सकता है जिनकी सविधान में उसके द्वारा नियुक्ति की जाने की व्यवस्था की गई है या जिनकी नियुक्ति या चुनाव के सम्बन्ध में कहीं कोई व्यवस्था नहीं की गई है। इसके अतिरिक्त कुछ पदों पर विधान मण्डल से प्राप्त अधिकारों के अन्तर्गत वह नियुक्ति कर सकता है। परन्तु इसके ऊपर अनेकों प्रतिबन्ध लगे हुए हैं। किसी भी स्थिति में, जैसा पहिले कहा जा चुका है, वह उन अधिकारियों की नियुक्ति नहीं करता है जो विभागों के अध्यक्ष होते हैं, जो गवर्नर के साथ ही स्वतन्त्र रूप से एक निश्चित कार्यकाल के लिये चुने जाते हैं। यह सम्भव है कि यह अधिकारी अपने नाममात्र के प्रधान से सहयोग न करें जिससे वह कठिनाइयों में पड़ सकता है और राज्य के प्रशासन में गतिरोध और संघर्ष उत्पन्न हो सकते हैं। नियुक्ति के क्षेत्र में गवर्नर के महत्वपूर्ण अधिकार विधान मण्डल कृत (Statutory) परिषदों (Boards) और आयोगों (Commissions) की नियुक्तियों से सम्बन्धित हैं जिनकी संख्या पिछली कुछ दशाब्दियों में बहुत बढ़ी है। परन्तु इन प्रशासनाधिकारियों की नियुक्ति में भी उसको अपनी नियुक्तियों की एक शासन-परिषद (Executive Council) से या साधारणतया राज्य की सिनेट से पुष्टि करानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य सीमाएँ भी हैं जो प्रत्यक्ष गवर्नर द्वारा प्रशासनाधिकारियों पर नियन्त्रण रखने में बाधक हैं, जैसे सार्वजनिक सेवा कानून, ऐसे कानून जिनमें कुछ पदों पर नियुक्त किये जाने के लिए विशेष योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं, और विशेषकर वह कानून जिनके द्वारा अधिकारियों को एक निश्चित कार्यकाल के लिए नियुक्त किया जाता है, इससे पूर्व गवर्नर द्वारा नियुक्त अनेक अधिकारियों का कार्यकाल वर्तमान गवर्नर के कार्यकाल तक समाप्त नहीं होता है। इससे अधिकार होते हुए भी रिक्त स्थानों के अभाव में वह अपने एक ही कार्यकाल में कानून परिषद या आयोगों में अधिकांश सदस्यों की नियुक्ति नहीं कर पाता है।

निर्देशन और पदच्युति—अपने अधीन अधिकारियों या कर्मचारियों पर गवर्नर का नियन्त्रण इस कारण और भी कम हो जाता है क्योंकि उसे प्रशासन अधिकारियों को निर्देशन और उनको पदच्युत करने का अधिकार नगण्य ही है। मुख्य निर्वाचित अधिकारियों को केवल महाभियोग (Impeachment) के द्वारा ही पदच्युत किया जा सकता है जो कि अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है, और जहाँ गवर्नर

को इनको पदच्युत करने का अधिकार दिया भी गया है वहाँ यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि गवर्नर इनको केवल सिनेट की स्वीकृति पर ही पदच्युत कर सकता है अन्यथा नहीं। साधारणतया गवर्नर जिन अधिकारियों को नियुक्त करता है उनको हटा भी सकता है परन्तु जिनकी नियुक्ति वह सिनेट की स्वीकृति से करता है उनको सिनेट की स्वीकृति से ही पदच्युत किया जा सकता है।

क्षमादान और दण्ड का स्थगित करना—गवर्नर को क्षमादान और दण्ड स्थगित करने का अधिकार भी प्राप्त है परन्तु केवल कुछ राज्यों में ही एकमात्र उसी को यह अधिकार दिया गया है अन्य राज्यों में क्षमादान परिषद (Board of Pardons) की सिफारिश पर ही गवर्नर इस अधिकार का प्रयोग कर सकता है। कुछ ऐसे भी राज्य हैं जिनमें क्षमादान एक परिषद करती है और गवनर इस परिषद का एक सदस्य मात्र होता है।

विविध अधिकार—गवर्नर राज्य की देशरक्षक सेना (Militia) का प्रधान सेनापति होता है। इस सेना को वह गम्भीर अव्यवस्था या उपद्रवों को दमन करने के लिये बुला सकता है। राज्य विरुद्ध जारी किये गये कानूनी समनों को निश्चित वही स्वीकार करता है, किसी भागे हुए अपराधी को पकड़ने के लिये या वापस करने के लिये वह अन्य राज्यों के गवर्नरों को सूचना भेज सकता है और उनके द्वारा भेजी गई ऐसी सूचना को प्राप्त भी करता है। राज्य और राष्ट्रीय सरकार के बीच पत्र व्यवहार गवर्नर के द्वारा ही होते हैं और वह इसी प्रकार के अन्य कार्य करता है। वह अनेक राज्य परिषदों और आयोगों का पदेन सदस्य (Ex officio) होता है। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि गवर्नर राज्य का प्रधान होने के कारण जनता के आकर्षण का केन्द्र होता है। द्वितीय विश्व युद्ध ने राज्य के गवर्नर पर राज्य प्रतिरक्षा परिषद की नियुक्ति और उसकी देख रेख करने का एक अतिरिक्त कार्य भार सौंप दिया था।

यद्यपि राज्य के लिये विधियों का निर्माण करनेवाली मुख्य संस्था विधान मण्डल है परन्तु कुछ अर्ध विधायी परिषद तथा आयोग भी इस कार्य में भाग लेते हैं और गवर्नर स्वयं कानून निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कानून निर्माण में उसे जो अधिकार या अवसर उपलब्ध हैं वह सम्भवतः प्रशासन से भी अधिक हैं और कुछ भी हो कानून निर्माण के क्षेत्र में उसके अधिकार लगभग राष्ट्रपति के अधिकारों के समान ही हैं और कुछ राज्यों में तो गवर्नर के अधिकार निश्चय ही राष्ट्रपति से अधिक हैं।

गवर्नर के विधान अधिकार

कानून निर्माण पर गवर्नर के निश्चित प्रभाव का आरम्भ इस बात से होता है कि उसे विधान-मण्डल का विशेष अधिवेशन बुलाने का (या तो स्वयं ही

निषेधाधिकार समझा जाता है। इसे पाकेट वीटो भी कहते हैं। अनेक राज्यों ने इस प्रकार के निषेधाधिकार को रोकने की व्यवस्था की है। व्यवस्था यह है कि यदि विधान-मण्डल के स्थगित हो जाने के पश्चात एक निर्धारित अवधि के अन्दर यदि गवर्नर ने प्रस्तुत विधेयक पर अपने निषेधाधिकार का प्रयोग न किया तो वह अवधि पूरी होने पर कानून बन जायगा। ३६ राज्यों ने गवर्नर को यह अधिकार दिया है कि वह व्यय विनियोग विधेयक की प्रथक मदों (items) पर अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है और अनेक राज्यों में उसे इन मदों को घटाने का भी अधिकार दिया गया है। १९४७ से अलबामा, वर्जीनिया, मैसाच्युसेट्स और न्यूजर्सी ने अपने गवर्नरों को अधिकार दे रखा है कि वह प्रस्तुत विधेयक पर निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकते हैं, या अपने संशोधनों के साथ विधान मण्डल को वापस कर सकते हैं और विधान मण्डल साधारण बहुमत से इन संशोधन प्रस्तावों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है। संशोधन प्रस्ताव स्वीकार कर लिए जाने पर विधेयक पुन गवर्नर के पास भेजा जाता है और वह स्वाभाविक ही उस पर हस्ताक्षर कर देता है। यदि इसके विपरीत गवर्नर के संशोधनों को रद्द कर दिया गया है तो फिर मूल विधेयक स्वीकृति या अस्वीकृति के लिए पुन गवर्नर के पास भेजा जाता है।

गवर्नर के वित्तीय अधिकार

गत ३० या ४० वर्षों में अनेक राज्यों में राज्य के राजस्व और व्यय विनियोग (राज्य के बजट को तैयार करने) के सम्बन्ध में गवर्नर के अधिकारों में बहुत वृद्धि हुई है। अनेक राज्यों में उसे बजट को प्रस्तुत कराने का अधिकार प्रदान किया गया है और इसलिए उसको अथवा उसके प्रति उत्तरदायी कुछ अधिकारियों को यह कार्य सौंपा गया है कि वह विभिन्न विभागों और संस्थाओं से उनकी अगले वित्तीय वर्ष की आवश्यकताओं के अनुमान (estimates) प्राप्त करें, आंकड़ों की समीक्षा करें, राज्य की अनुमानित आय या राजस्व का अनुसंधान करें और यह बतायें कि कर लगाकर कितनी मात्रा संचय करनी पड़ेगी। तत्पश्चात इनको इन सभी सूचनाओं को एक बजट के रूप में विधानमण्डल के सम्मुख प्रस्तुत कराने का कार्य सौंपा गया है। विधान मण्डल इसी प्रारूप के आधार पर राज्य का बजट स्वीकृत करता है। हम पहिले ही बता चुके हैं कि व्यय-विनियोग विधेयक में गवर्नर को किसी भी मद पर निषेधाधिकार लागू करने का अधिकार प्राप्त है। वित्तीय मामलों में गवर्नर की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली है क्योंकि राज्य का मुख्य प्रशासनाधिकारी होने के नाते उससे अधिक किसी को भी प्रशासकीय विभागों की आवश्यकताओं का ज्ञान नहीं हो सकता। और फिर राज्य सरकार का कुशलता

से चलाने के लिए और उसकी आर्थिक स्थिति दृढ रखने के लिए गवर्नर ही उत्तरदायी होता है।

कानून निर्माण में गवर्नर का नेतृत्व

ऑग और रे का मत है कि शक्ति प्रथक्करण के सिद्धांत के होते हुये भी (जिस पर संगठित राज्य सरकारें आधारित हैं) जनता गत २० ३० वर्षों से गवर्नर को ही कानून निर्माण का नेता समझने लगी है। और वह कानून-निर्माण के एक निश्चित कार्यक्रम की योजना के लिए और उसके कार्यान्वयन के लिए उसे ठीक उसी प्रकार उत्तरदायी समझती है जैसे सारा देश यह समझने लगा है कि कांग्रेस द्वारा कानून पारित कराने के लिए राष्ट्रपति ही उत्तरदायी है। कानून निर्माण के क्षेत्र में नेतृत्व के लिए गवर्नर को अपने उन अधिकारों पर निर्भर करना पड़ता है जिनके स्रोत उसके वैधानिक अधिकार क्षेत्र से परे हैं, जैसे, उसका पार्टी नेतृत्व, विधान मण्डल के सदस्यों से उसका व्यक्तिगत सम्बन्ध, जो कुछ नियुक्ति सम्बन्धी अधिकार उसे प्राप्त हैं उनका चतुर उपयोग, जनता में अपील कर जनमत को जीतने की योग्यता और अंत में उसका स्वभाव, विद्वता, उसकी नेतृत्व शक्ति, उसके व्यक्तित्व का प्रभाव और अन्य इसी प्रकार के व्यक्तिगत गुण। जहाँ तक वैधानिक व्यवस्थाओं का सम्बन्ध है वह तो प्रशासन और विधान मण्डल के पारस्परिक सम्बन्धों में सहायक होने की अपेक्षा बाधक अधिक हैं। गवर्नर या विभागों के अध्यक्षों को विधान मण्डल में बैठने का या वहाँ विधेयक प्रस्तुत करने या वाद विवाद में भाग लेने का अधिकार नहीं है। इसलिए अमेरिकी राजनीति के अनेक विद्यार्थी यह अनुभव करते हैं कि कोई ऐसा साधन खोजा जाय जिससे शासन और विधान सभा के बीच निकटतम सम्बन्ध और सहयोग स्थापित हो सके जैसा कि १९२७ के न्यूयार्क के संविधान में व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था के अनुसार गवर्नर और विभागों के अध्यक्ष विधान मण्डल में उपस्थित हो सकते हैं और बजट सम्बन्धी किसी भी विषय पर विधान मण्डल के समक्ष अपने विचार प्रकट कर सकते हैं।

अन्य प्रशासनाधिकारी

यद्यपि गवर्नर सर्वोच्च प्रशासनाधिकारी होता है परन्तु समस्त प्रशासनाधिकार उसे प्राप्त नहीं हैं, यह अधिकार उसमें तथा अन्य शासनाधिकारियों में बँटे हुये हैं जिनमें लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, सेक्रेट्री आफ स्टेट रेकार्डस, कोषाध्यक्ष आडीटर या कम्पट्रोलर, एटर्नी जनरल और शिक्षा संचालक प्रमुख हैं जो गवर्नर की ही भाँति जनता द्वारा चुने जाते हैं यद्यपि कहीं-कहीं इनका चुनाव विधान मण्डल द्वारा किया जाता है और कहीं कहीं गवर्नर भी इनकी नियुक्ति करता है।

इन सब में सबसे अधिक आकर्षक लेफ्टिनेन्ट गवर्नर होता है। केवल ३७ राज्यों के संविधान में ही इसकी व्यवस्था की गई है। सामान्यरूप से लेफ्टिनेन्ट

गवर्नर के कार्य निम्नलिखित हैं—(१) गवर्नर की मृत्यु हो जाने पर, उसके त्याग पत्र दे देने पर, राज्य से लम्बे काल तक अनुपस्थित रहने पर, किसी अयोग्यता के कारण या महाभियोग द्वारा पदच्युत कर दिये जाने पर उसके रिक्त स्थान की पूर्ति करना, और (२) सिनेट (केवल मैसाचूसेटस को छोड़कर) की बैठकों की अध्यक्षता करना और यदि किसी प्रश्न पर पक्ष-विपक्ष बराबर हों तो ऐसी स्थिति में (केवल मिचिगन को छोड़कर) अपने निर्णायक मत का प्रयोग करना। कुछ राज्यों में उसे सिनेट के विवादों में भाग लेने और जब सारी सिनेट समिति के रूप में परिणित हो जाती है तब मतदान का भी अधिकार प्राप्त है। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के पद की बड़ी टीका की गई है। प्राय यह सोचा जाता है कि यदि यह पद व्यर्थ नहीं है तो इसका कुछ महत्व भी नहीं है, इसीलिये अनेक लोगों ने इसके उन्मूलन की माँग की है। उनका कहना है कि सिनेट अपनी बैठक का अध्यक्ष स्वय चुन सकती है और यह अधिक उत्तम होगा कि अभिलेख मन्त्री या अन्य किसी अधिकारी को जिसका राज्य के प्रशासन से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गवर्नर का उत्तराधिकारी बनाया जाय।[11]

राज्य विधान मण्डल

प्रत्येक राज्य में एक विधान मण्डल की व्यवस्था की गई है जिसमें दो सदन होते हैं जिनको क्रमश प्रतिनिधि सभा और सिनेट (केवल नेब्रास्का को छोड़कर जिसमें १९३७ से केवल एक ही सदन है) कहते हैं। प्रतिनिधि सभा को कुछ राज्यों में जनरल असेम्बली और कुछ में हाउस आफ डेलीगेटस भी कहा जाता है। दोनों सदन जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं और प्राय दोनों के अधिकार समान होते हैं। कुछ राज्यों में संविधान द्वारा सिनेटरों और प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित कर दी गई है जिसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता परन्तु अधिकतर राज्यों में सिनेटरों तथा प्रतिनिधियों की निश्चित संख्या निर्धारित करने का अधिकार कुछ व्यापक सीमाओं के अन्दर विधान मण्डल, को प्राप्त है। सिनेट की सदस्य संख्या डिलावेयर और नेवादा में १७ से लेकर मिन्नेसोटा में ६७ तक है। आधे से कम ऐसे राज्य हैं जिनके सिनेटरों की संख्या ४० तक है। प्रतिनिधि सभाओं की सदस्य संख्या सिनेट से काफी अधिक होती है, इनकी सदस्य संख्या डिलावेयर में ३५ से लेकर न्यू हेम्पशायर में ३९९ तक है परन्तु अधिकतर प्रतिनिधि सभाओं में सदस्य संख्या १०० से १५० तक है।

विधान मण्डल के दोनों सदनों में प्रतिनिधित्व का आधार क्षेत्रीय (territorial) है और नगर तथा काउंटी इस सम्बन्ध में इकाई माने जाते हैं। निचले सदन में प्रतिनिधित्व की मुख्य इकाईयाँ न्यू इंगलैंड में नगर और अनेक

राज्यों में काउन्टी मानी जाती है । अनेक राज्यों में कई काउन्टियों को एक समूह
में सम्मिश्रित कर दिया जाता है और कुछ अन्य में काउन्टियों को बराबर जन-
सख्या वाले सिनेट निर्वाचन क्षेत्रों (Senatorial districts) में विभक्त किया
जाता है और प्रत्येक क्षेत्र से बराबर सख्या में सिनेटर चुने जाते हैं । कुछ राज्यों
में विधान मण्डल के दोनों सदनों के लिए प्रतिनिधि तथा सिनेटर चुनने के लिए
एक ही निर्वाचन-क्षेत्र होते हैं, परन्तु नियमानुसार सिनेट निर्वाचन क्षेत्र प्रतिनिधि
सभा के निर्वाचन क्षेत्रों से भिन्न और बड़े होते हैं । प्रतिनिधित्व का आधार चाहे
कुछ भी हो निर्वाचन क्षेत्रों (districts) को सदैव विधान मण्डल ही निर्धारित
करते हैं । जिन राज्यों में जनसख्या ही एक मात्र आधार होती है उनमें प्रत्येक
दस वर्ष पश्चात् सघीय दशवार्षिक जनगणना के अनुसार राज्यों के निर्वाचन
क्षेत्रों को पुन निर्धारित करना या उनका पुन नये सिरे से विभाजन करना
विधान मण्डल का कर्तव्य है । बहुधा राज्य विधान मण्डल अपने कर्तव्य का
पालन करने में असफल रहे हैं या उन्होंने अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया है
जिससे राटेन बॉरोज तथा गैरमैंडरिंग (gerrymandering) और अन्य समान
बुराइयों का सृजन हुआ । प्रोफेसर वाल्टर ने गणना कर यह पता लगाया है कि
आधे से अधिक राज्यों के सविधान मण्डलीय निर्वाचन क्षेत्रों के विभाजन में
ग्राम्य क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गई है । इनमें में २० राज्यों में सिनेट की रचना
में ऐसे क्षेत्रों को प्रमुखता दी गई है जिनकी जनसख्या कम है और २७ ग्राम्य
समुदायों को अधिक प्रतिनिधित्व का लाभ दिया गया है ।

३१ राज्यों ने सिनेटरों का कार्यकाल ४ वर्ष निर्धारित किया है और अन्य
राज्यों ने केवल दो वर्ष । ४२ राज्यों में प्रतिनिधि सभा का कार्यकाल २ वर्ष है
और ४ राज्यों में ४ वर्ष । नेब्रास्का प्रति दो वर्ष पश्चात् अपने
एक सदनीय विधान मण्डल का निर्वाचन करता है । सिनेट

कार्यकाल, योग्यता, विमुक्ति इत्यादि

तथा प्रतिनिधियों को राज्य सविधान में दी गई व्यवस्था के
अन्तर्गत (क) सयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक, (ख) जिस क्षेत्र का प्रति
निधित्व करते हैं उसका निवासी, तथा (ग) निर्धारित आयु का होना चाहिये ।
सिनेट के लिये प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा कुछ अधिक आयु और निवास की
अपेक्षाकृत लम्बी अवधि आवश्यक होती है । सब सिनेटरों का कार्यकाल एक ही
समय समाप्त नहीं होता है जब कि सभी प्रतिनिधियों का कार्यकाल एक साथ
समाप्त होता है । दोनों सदनों के सदस्यों को समान वेतन मिलता है जो १५०
डालर से ५,००० डालर प्रति अधिवेशन तक होता है या अधिवेशन की अवधि
में १ डालर से १५ डालर प्रति दिन तक होता है । इसके साथ ही मार्ग-व्यय या
मील के हिसाब से भत्ता और मिलता है । राष्ट्रीय कांग्रेस की ही भांति राज्य

विधान मण्डल के सदस्यों को अपने सदनों में भाषण स्वातन्त्र्य अथवा विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। इसके अतिरिक्त विधान सभा के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये जाते समय या अधिवेशन से घर वापस आते समय उनको गिरफ्तार नहीं किया जा सकता, गिरफ्तारी केवल देशद्रोह या गम्भीर अपराध या शांति भग करने के आरोप में ही की जा सकती है।

अब प्राय सभी राज्यों ने द्वि-वार्षिक अधिवेशनों से ही सन्तोष कर लिया है। परन्तु न्यूयार्क और पांच अन्य राज्यों के विधान मण्डलों का प्रतिवर्ष अधिवेशन होता है। तीन चौथाई राज्यों में राज्य विधान मण्डल हर दूसरे वर्ष जनवरी में अपना नियमित अधिवेशन आरंभ करते हैं। लगभग आधे राज्यों के संविधान में इस अधिवेशन की अवधि निर्धारित कर दी गई है। इनमें से अधिकतर राज्यों के अधिवेशनों की अवधि ६० दिन निश्चित कर दी गई है। कैलीफ़ोर्निया और अन्य अनेक राज्यों ने 'विभाजित अधिवेशनों' का प्रयोग किया है। इसके अनुसार विधानमण्डल विधेयकों के प्रस्तुत होने और कुछ अन्य आरंभिक कार्यवाइयों का सम्पन्न करने के लिए पहले लगभग ३० दिन तक बैठक करते हैं। यह अधिवेशन का पूर्व भाग होता है और फिर ३० दिन के विश्राम के पश्चात् पुन अधिवेशन आरंभ होता है और उसमें पहिले प्रस्तुत किये गये विधेयकों पर विचार और निर्णय किया जाता है। इस अधिवेशन में कोई नया विधेयक तब तक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है जब तक तीन चौथाई सदस्य उसकी अनुमति न दे दें। बीच में विश्राम का महत्व यह है कि सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं से मिल सकें और विचाराधीन विधेयकों पर उनकी राय जान सकें। इनके अतिरिक्त प्रायः सभी राज्यों मे गवर्नर विधान मण्डलों के विशेष अधिवेशन बुला सकता है और कुछ में विधान मण्डल के सदस्य भी विशेष अधिवेशन की माग कर सकते हैं।

अधिवेशन और संगठन

सामान्य तौर पर विधान मण्डल जिस रूप में चाहे अपना संगठन करने के लिए और स्वयं बनाये हुए नियमों के अनुसार कार्य करने के लिये स्वतंत्र होता है। प्रत्यक राज्य में एक दूसरे से कुछ न कुछ भिन्नता मिलती है। परन्तु व्यापक रूप से संगठन और कार्यविधि में सबमें बहुत कुछ समानता होता है। प्रत्येक सदन के सभापति सदन की प्रक्रिया, वाद विवाद के नियम, समिति प्रणाली, विधेयकों और प्रस्तावों पर विचार, सभी बातों में संघीय व्यवस्था का प्रचुर प्रभाव दिखाई देता है।

निचले सदन की बैठकों का संचालन एक अध्यक्ष (Speaker) करता है जिस को सिद्धान्तानुसार सदन के सदस्य चुनते हैं परन्तु व्यवहार मे बहुमत प्राप्त पार्टी का अन्तरग मंडल चुनता है और स्वयं अन्तरंग मंडल पार्टी के कुछ प्रमुख

नेताओं के नियन्त्रण में होता है या पार्टी के किसी बॉस (boss) के नियन्त्रण में होता है जो विधान मण्डल का सदस्य भी न हो। विधान मण्डल से बाहर रहकर भी उसका अन्तरंग मण्डल पर पूर्ण नियन्त्रण हो सकता है। लगभग तीन चौथाई राज्यों में सिनेट के अध्यक्ष लेफ्टिनेन्ट गवर्नर होते हैं, अन्य राज्यों में सिनेट के सदस्य अपने में से ही किसी को अध्यक्ष चुन लेते हैं। एक अस्थायी अध्यक्ष भी होता है जो लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की अनुपस्थिति में सिनेट की कार्रवाई का संचालन करता है। यह अध्यक्ष-गण अपने-अपने सदनों की कार्रवाइयों से सम्बंधित प्रायः उन्हीं अधिकारों का उपभोग करते हैं जो कांग्रेस में अध्यक्ष और सिनेट के अध्यक्ष या उपराष्ट्रपति को प्राप्त हैं।

अधिकारी

प्रत्येक सदन एक क्लर्क, एक सार्जेन्ट एट आर्म्स, एक द्वार रक्षक (Door keeper), एक चेपलिन और एक पोस्ट मास्टर का चुनाव करता है। इनके अतिरिक्त अनेक सचिव, स्टेनोग्राफर, पुलिस के सिपाही, तथा सेवक चुने जाते हैं। इनको पार्टी के नेतागण या सदस्य गण अपनी सदस्यता के विशेषाधिकार के रूप में चुन भी सकते हैं और नियुक्त भी कर सकते हैं। विभिन्न राज्यों में विभिन्न व्यवस्था है।

सभी विधान मण्डलों की भाँति राज्य विधान मण्डल भी समितियों का व्यापक प्रयोग करते हैं। सदनों को बहुत अधिक कार्य करना पड़ता है अतएव यह इस अत्यधिक कार्यभार को निबटाने के लिए समितियों की सहायता लेते हैं। निचले सदन (Lower house) में समितियों की नियुक्ति पार्टी के नेताओं के परामर्श से स्पीकर द्वारा की जाती है या पार्टी के अन्तरंग मण्डल में ही इस सम्बन्ध में निर्णय कर लिया जाता है। सदन के नेता और अन्य अल्पमत प्राप्त पार्टियों के नेताओं को साधारणतया विभिन्न समितियों में अपनी पार्टी का कोटा नियुक्त करने का अधिकार होता है, सिनेट में या तो बहुमत प्राप्त पार्टी के नेता की सिफारिश पर पूरा सदन समितियों के सदस्य चुनता है या अध्यक्ष (लेफ्टिनेन्ट गवर्नर) या अस्थायी अध्यक्ष इस कार्य को सम्पन्न करता है।

समितियाँ

यह समितियाँ विविध प्रकार की होती हैं—(१) किसी विशेष कार्य के लिए नियुक्त की गई विशेष या प्रवर समितियाँ जो कार्य समाप्त होने के पश्चात् भंग हो जाती हैं। (२) अन्तरिम या अवकाश विश्रान्ति समितियाँ (Recess or Interim committees)। यह तब कार्य करती हैं जब विधान मण्डल के सदस्यों का विश्राम-काल होता है अर्थात् अधिवेशनों के बीच में होने वाले अल्पावकाश में यह आगामी अधिवेशन में विचारार्थ प्रस्तुत किये जानेवाले विधेयकों को तैयार करने में

हेतु सूचना संग्रह करती हैं, अन्वेषण कार्य करती हैं और उपलब्ध सामग्री के आधार पर विधेयक तैयार करती हैं। (३) प्राय एक या एक से अधिक अविधाई समितियाँ (Non legislative committees) भी होती हैं, जैसे नामांकित विधेयकों की समिति, इस का कार्य स्वीकृत विधेयकों की सही प्रतिलिपियाँ तैयार करना होता है। (४) स्थायी विधायी समितियाँ। यह समितियाँ अपने सदन के कार्य काल तक के लिये नियुक्त की जाती हैं और इनका कार्य उन विधेयकों पर विचार करना होता है जो इनके विचारार्थ भेजे जाते हैं। तत्पश्चात् यह अपनी रिपोर्ट सदन को प्रस्तुत करती हैं। नियमानुसार प्रत्येक सदन के पास इस प्रकार की अनेकों समितियाँ होती हैं। (५) इनके अतिरिक्त कुछ संयुक्त समितियाँ होती हैं जिनमें विधान मण्डल के दोनों सदनों से सदस्य लिये जाते हैं। (६) अन्त में सम्मेलन समितियाँ होती हैं। यह समितियाँ किसी भी विधेयक पर यदि दोनों सदनों में मतभेद हो तो उस मतभेद को दूर करने के उद्देश्य से नियुक्त की जाती हैं।

अधिकार और कार्य

प्रत्येक राज्य में विधान मण्डलों को विधान निर्माण के वह सब अधिकार प्राप्त हैं जो अन्यत्र किसी को प्रदान न किये गये हों, जिनको राष्ट्रीय संविधान में राज्यों के लिए निषिद्ध घोषित न किया गया हो और न जिनको राज्य संविधान के द्वारा स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से वर्जित किया गया हो। परन्तु राज्य विधान मण्डलों के अधिकारों की निश्चित व्याख्या नहीं की गई है और यह राज्य के सामान्य अधिकारों की तरह निहित (inherent) तथा अवशिष्ट (residual) अधिकार होते हैं; इनकी कोई निश्चित सूची नहीं है।

दोनों सदनों के अधिकार और कार्य प्रायः समान होते हैं। परन्तु अनेक राज्यों में वित्त विधेयकों (Money Bills) को सबसे पहिले निम्न सदन में प्रस्तुत करना आवश्यक है। सिनेट को भी २ विशेषाधिकार प्राप्त हैं। (१) निम्न सदन द्वारा अभियोगारोपण करने पर सिनेट निर्णय करने के लिये न्यायालय के रूप में बैठती है, और (२) उसे गवर्नर द्वारा की गई नियुक्तियों की पुष्टि करने या उनको रद्द करने का भी अधिकार है।

वास्तविक अधिकार

प्रोफेसर डब्लु० एफ० डाड के मतानुसार कुछ अधिकार शुद्ध विधानकारी अधिकार होते हैं। उन्होंने इन अधिकारों को संक्षिप्त रूप से इस प्रकार दो है। (१) सभी राजस्व और व्यय विनियोग विधेयकों की स्वीकृति का अधिकार सबसे महत्वपूर्ण है, (२) संविधान द्वारा निर्धारित व्यवस्था के अतिरिक्त सरकार की अन्य आवश्यक संस्थाएं विधानमण्डल ही स्थापित करता है, (३) विधानमण्डल ही नगरों, काउन्टी और

अन्य स्थानीय क्षेत्रों की शासन संस्थाओं के नियम एवं संगठन के लिए आवश्यक कानून बनाता है, (४) विधानमण्डल राज्य के नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों को नियमित करने के हेतु और उनके जीवन को नियमित करने के लिये भी कानून बनाता है अर्थात विधेयक पारित करता है। वास्तव में यही उसका मुख्य कार्य है।

अन्य अधिकारों में (१) मतदान के अधिकार के लिए योग्यता निर्धारित करना, (२) सरकारी पदों के लिये सभी चुनावों पर नियन्त्रण रखना (जिसमें कांग्रेस के सदस्यों और राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के निर्वाचकों का चुनाव सम्मिलित है), (३) दण्ड विधान (Criminal Law) बनाना और उसको लागू करना, (४) जेलों का प्रशासन, (५) राजनियम (Civil Law) (जिसके अन्तर्गत सम्पत्ति रखने, हस्तान्तरित करने और उत्तराधिकार सम्बन्धी सभी बातें आती हैं) बनाना, (६) ऐसे सभी औद्योगिक, व्यापारिक, यातायात और अन्य कार्पोरेशनों को अधिकार पत्र देना और उन पर नियन्त्रण रखना जो कांग्रेस के अन्तर राज्य-व्यापार को नियमित करने के अधिकार के अन्तर्गत नहीं आते, (७) श्रम, (८) शिक्षा, (९) लाइसेन्स देना, (१०) राज्य के अन्तर्गत मत्स्य पालन तथा व्यापार, और (११) आखेट सम्बन्धी नियम बनाना सम्मिलित हैं। संविधान में आय-कर लगाना राज्यों पर छोड़ दिया गया था। परन्तु १९१३ में १६ वाँ संशोधन स्वीकार किया गया जिसके अनुसार किसी भी स्रोत से प्राप्त आय पर कर लगाने तथा वसूल करने का (बिना विभिन्न राज्यों में उस कर का वितरण किए) अधिकार कांग्रेस को दे दिया गया। इस विषय पर व्यापक दृष्टि से विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि विधानमण्डल बहुत अधिक अंश में राज्य की नीति निर्धारित करते हैं और उनको लागू करने के लिये भी आवश्यक व्यवस्था तथा साधन निर्धारित करते हैं।

लगभग आधे राज्यों में विधानमण्डल को विवादग्रस्त चुनाव के मामलों में निर्णय करने का अधिकार दिया गया है। यह ऐसा अधिकार है जिसको कम से कम अर्ध न्यायिक कहा जा सकता है। विधानमण्डल के निर्णय

न्यायिक अधिकार

के विरुद्ध फिर कोई अपील नहीं की जा सकती। केवल ओरिगन (Oregon) को छोड़ अन्य राज्यों में विधानमण्डल को गवर्नर तथा अन्य सार्वजनिक अधिकारियों पर महाभियोग (Impeachment) चलाने का अधिकार प्राप्त है। अभियोगारोपण निचले सदन द्वारा किया जाता है और नेब्रास्का को छोड़कर, जहाँ अभियोगारोपण तो सदन करता है परन्तु उस पर सुनवाई और निर्णय सर्वोच्च न्यायालय करता है क्योंकि उस राज्य में द्वितीय सदन नहीं है, अन्य सभी राज्यों में सिनेट अभियोगारोपण की सुनवाई और उस

पर निर्णय करती है। इसके अतिरिक्त विधानमण्डल संविधान की व्यवस्था के अनुकूल राज्य न्यायालयों के संगठन, उनकी कार्य विधि आदि का भी निर्धारित करते हैं।

प्रशासन सम्बन्धी अधिकार

यह पहिले बताया जा चुका है कि अधिकारियों की नियुक्ति और पदच्युति से सिनेट किस प्रकार सम्बन्धित है। साधारणतया गवर्नर द्वारा की गई नियुक्तियों का सिनेट द्वारा पुष्टि होना आवश्यक होता है। बहुत से राज्यों में तो कुछ जुडिशियल अफसर और शासनाधिकारियों को भी पूरा विधान मण्डल ही चुनता है। कुछ राज्यों में गवर्नर और सिनेट की संयुक्त कार्रवाई से या विधानमण्डल के सदनों की संयुक्त कारवाई से अधिकारियों को पदच्युत किया जा सकता है। इस प्रकार राज्य विधानमण्डल अनेक प्रकार प्रशासन विभागों के संगठन एवम् कार्यों को नियमित करते हैं।

विधान मण्डलों की सीमाएँ

लगभग सभी राज्य संविधानों में, विशेषकर नये राज्यों के संविधानों में, विधान मण्डलों के अधिकारों पर काफी दृढ़ प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। इनमें से कुछ प्रतिबन्ध बड़े न्याययुक्त हैं, जैसे मताधिकार के लिए सम्पत्ति की शर्तें लगाने, न्यायाधीशों के वेतन में उनके कार्यकाल में ही कटौती करने, पब्लिक सर्विस कार्पोरेशनों और अन्य समान संस्थाओं को निरन्तर मताधिकार देने पर स्पष्ट प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, इनको निषिद्ध घोषित कर दिया गया है। कुछ अन्य प्रतिबन्ध भी हैं, जैसे राज्य तथा काउन्टी के महत्वपूर्ण अधिकारियों की संख्या, उनके चुनाव की पद्धति, उनके कर्तव्य और अधिकारों के सम्बन्ध में निश्चित व्यवस्थाएँ दी गई हैं जिसके फलस्वरूप इनमें परिवर्तन करने का विधान मण्डल को कोई अधिकार नहीं है। सामान्यतः विधान मण्डलों की सदस्य संख्या, अधिवेशनों की अवधि, विधेयक प्रस्तुत करने की विधि, उनकी स्वीकृति आदि के सम्बन्ध में संविधान में स्पष्ट व्यवस्था कर दी गई है। अतः इन विषयों में किसी प्रकार का संशोधन परिवर्द्धन विधान मण्डल नहीं कर सकते हैं। विधानमण्डल द्वारा केवल १६ सार्वजनिक उद्देश्यों (public purposes) के लिये ही धन स्वीकृत किया जा सकता है। विधान मण्डल और स्थानीय शासन संस्था एक पूर्व निर्धारित रकम तक ही रुपया ऋण ले सकती हैं या उनकी जिस सम्पत्ति पर कर लगाया जा सकता है उसके अनुमानित मूल्य के कुछ प्रतिशत के बराबर ही ऋण लिया जा सकता है यद्यपि जिस क्षेत्र के लिए ऋण लिया जा रहा है उस क्षेत्र के बहुमत मतदाताओं की स्वीकृति से इस राशि को बढ़ाया भी जा सकता है। इसी प्रकार संविधानों में राज्यों द्वारा व्यक्तियों, संघों या कार्पोरेशनों को भी ऋण देना निषिद्ध कर दिया गया है।

ऐसे विषयों की निश्चित सूची भी दी हुई है जिनके सम्बन्ध में विधान-मण्डल कोई विशिष्ट कानून नहीं बना सकते। इस सूची में तलाक, कार्पोरेशनों को अधिकार पत्र देना, अपराधों का दण्ड देना, आदि विषय सम्मिलित हैं। राज्य संविधानों में यह भी व्यवस्था की गई है कि किसी ऐसे विषय पर या ऐसी परिस्थिति से सम्बन्धित विधान मण्डल कोई विशिष्ट या स्थानीय कानून नहीं पास कर सकता जो सामान्य कानून के अन्तर्गत आ जाती हैं और सभी सामान्य या सार्वजनिक कानून सारे राज्य में समान रूप से लागू किये जाने चाहियें। इस प्रकार कानून के समक्ष सब बराबर हैं।

विधान मण्डलों पर संविधान द्वारा जो स्पष्ट प्रतिबन्ध लगाये गये हैं उन के अतिरिक्त वह अन्य प्रतिबन्ध भी महत्वपूर्ण हैं जो न्यायालयों ने 'निहित सीमाओं' (Implied or resulting limitations) के सिद्धान्त का अनुसरण करके खोज निकाले हैं। इस सिद्धान्त का मुख्य तत्व यह है कि राज्य संविधान की किसी भी निश्चित व्यवस्था को इस रूप में समझना चाहिये कि वह कानून निर्माण के अधिकार को अधिक से अधिक सीमित करता है। दूसरे शब्दों में, यदि विधान मण्डल द्वारा किये गए किसी कार्य के बारे में कोई संवैधानिक सन्देह है तो संदेह का निर्णय विधानमण्डल के विपक्ष में ही किया जाना चाहिये। इस प्रकार १६१८ में टेक्सास के न्यायालय ने घोषित किया कि चूँकि राज्य विधान मण्डल को वैकल्पिक स्थानीय कानून पास करने का निर्देश दिया गया है इसलिये विधानमण्डल द्वारा शराब के व्यापार पर किसी अन्य ढंग से नियन्त्रण नहीं किया जा सकता।

प्रत्यक्ष लोकतंत्र के साधन

संघीय प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाये गये अमेरिकी लोकतन्त्र की एक सबसे अद्भुत विशेषता वह व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत कानून निर्माण का कार्य कुछ सीमा तक विधान-मण्डल के हाथ से लेकर सीधे जनता के हाथ सौंप दिया गया है। 'प्रत्यक्ष लोकतन्त्र' की यह व्यवस्था लगभग एक तिहाई राज्यों के संविधानों में पाई जाती है और इसके लिए दो साधन अपनाये जाते हैं —(१) जनमतगणना (Referendum) मतदाता यदि यह समझते हैं कि विधान मण्डल ने जो कानून बनाया है वह आपत्तिजनक है तो वह उसे जनमत द्वारा रद्द कर सकते हैं, और (२) उपक्रम (Initiative) यदि मतदाता यह अनुभव करते हैं कि विधान मण्डल किसी विधेयक को पारित करना नहीं चाहता है या वह उसको पारित करने में असमर्थ है तो वह स्वयं निर्धारित रीति से उसका उपक्रमण कर उसको कानून बनवा सकते हैं। जनता द्वारा प्रत्यक्ष शासन

की यह प्रणाली (चाहे जनमत गणना हो हो या दोनों) कुल २१ राज्यों में पाई जाती है, इसका उद्देश्य कानून बनाना उतना नहीं है जितना विधान मण्डल को सजग रखना है। इन साधनों का प्राय तब उपयोग किया जाता है जब विधान-मण्डल जनता को सन्तुष्ट कर सकने में असफल रहता है।

जनमतगणना (Referendum)—डिलावेयर को छोड़ अन्य सभी राज्यों में संवैधानिक संशोधन के लिये जनमत गणना अनिवार्य है और कुछ राज्यों म यह आवश्यक है कि बैंक संबधी कानूनों और एक न्यूनतम सीमा से अधिक ऋण लेने पर भी जनमतगणना द्वारा जनता की स्वीकृति प्राप्त की जाये। अनेक नगरों में भी चार्टर संशोधनों, ऋण लेने तथा अन्य मामलों क लिये अनिवार्य रूप से जनमतगणना की व्यवस्था की गई है। परन्तु जनमतगणना का अर्थ प्राय राज्य विधान मण्डलों द्वारा स्वीकृत कानूनों पर वैकल्पित (optional) जनमतगणना समझा जाता है। यदि विधान मण्डल द्वारा स्वीकृत किसी कानून पर मतदाताओं की आवश्यक संख्या आपत्ति करती है (यह संख्या २० में से प्रत्येक राज्य में अलग अलग ५ प्रतिशत से १० प्रतिशत तक है) और कानून लागू होने के पश्चात कुछ निर्धारित समय के अन्दर ही (प्राय ६० दिन) इस आशय का एक आवेदन पत्र प्रस्तुत करती हैं तो उस कानून को उस समय तक के लिये स्थगित कर दिया जाता है जब तक जनमत गणना द्वारा उसको जनता के बहुमत की स्वीकृति प्राप्त न हो जाये। परन्तु विधान-मण्डल जिन कानूनों को 'संकट कालीन कानून' घोषित कर देता है उन पर जनमत गणना की व्यवस्था लागू नहीं होती।

उपक्रम (Initiative)—यदि कुछ निर्धारित मतदाता (जिन राज्यों के संविधानों में इसकी व्यवस्था है उनमें मतदाताओं की निश्चित संख्या दी गई है) संविधान में कोई संशोधन करना या कोई कानून बनवाना चाहते हैं जिसके विधायकों (legislators) द्वारा पारित होने की कोई आशा न हो, तो वह उस संशोधन या विधेयक का प्रारूप तैयार कर उसको एक आवेदन के संग जनता म प्रचारित कर सकते हैं। यदि आवेदन पत्र पर मतदाताओं की आवश्यक संख्या (साधारणतया कुल मतदाताओं की ५ या १० प्रतिशत) हस्ताक्षर कर देती है तो उसे आगामी आम चुनाव में जनमत संग्रह के लिए रख दिया जाता है और तब सारी मतदाता जनता इस विधेयक के भाग्य का निर्णय करती है। इसे प्रत्यक्ष उपक्रम (Direct initiative) कहते हैं क्योंकि प्रस्ताव या विधेयक को निर्णय करने के लिये सीधे जनता को सौंप दिया जाता है। अनेक राज्यों में प्रस्तावित कानून क लिये आवेदन पत्र पहले विधान मण्डल में प्रस्तुत किया जाता है, और यदि विधेयक विधान मण्डल द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है

तो मामला वहीं तय हो जाता है और उस प्रश्न पर जनमत संग्रह की आवश्यकता नहीं रहती है। परन्तु यदि विधान मण्डल उसे स्वीकार नहीं करता है तो कुछ राज्यों में ऐसी व्यवस्था है कि विधेयक को फिर बिना किसी अन्य कार्रवाई के जनमत संग्रह के लिये सीधे जनता के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाता है परन्तु अन्य राज्यों में जनता के सामने प्रस्तुत करने से पूर्व उस पर अतिरिक्त हस्ताक्षरों की या कुछ अन्य कार्रवाइयाँ पूरी करने की आवश्यकता होती है।

प्रत्यावर्तन (Recall)—कुछ राज्यों में गवर्नर तथा अन्य अधिकारियों को वापस बुला लेने की भी व्यवस्था है। इस प्रकार जनमत गणना, उपक्रम और कुछ सीमा तक अधिकारियों को वापस बुला लेने की व्यवस्था संयुक्त राज्य अमेरिका के अनेक राज्यों में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र व्यवस्था के साधनों के रूप में प्रयुक्त होती हैं।

राज्यों की न्याय प्रणाली

राज्यों की न्यायप्रणाली संघीय न्यायप्रणाली के आधीन नहीं बल्कि उसके समानान्तर चलती है। उसके अन्तर्गत केवल राज्य व्यापी आधार पर आरूढ़ न्यायालय (राज्यों के सर्वोच्च न्यायालय) ही नहीं बल्कि काउन्टी, नगरों और अन्य स्थानीय क्षेत्रों में काम करने वाले सभी न्यायालय आ जाते हैं। राज्य न्यायालय राज्य के कानून लागू करते हैं और इस सीमा तक उनके निर्णय अन्तिम होते हैं जैसे संघीय न्यायालय हैं ही नहीं। यदि राज्य न्यायालय में कोई ऐसा मामला उपस्थित होता है जिसमें किसी ऐसे अधिकार की माग की गई जो संघीय संविधान, संघीय कानून या सन्धि के अन्तर्गत आता है तो इस मामले में राज्य न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध संघीय न्यायालयों में अपील की जा सकती है। निर्णय से पूर्व भी वह राज्य न्यायालय से हटा कर संघीय न्यायालयों में ले जाया जा सकता है। परन्तु यदि कोई 'संघीय प्रश्न' विवादग्रस्त नहीं और मामला केवल राज्य के संविधान के अन्तर्गत प्रदत्त अधिकारों तथा राज्य की विधियों या सामान्य कानून (common law) से ही सम्बन्धित हो तो ऐसे मामले राज्य न्यायालयों में आरम्भ होकर वहीं समाप्त हो जाते हैं, राज्य न्यायालयों में ही उन पर अंतिम निर्णय हो जाता है।

राज्य के न्यायालयों के ऑग और रे ने पाँच महत्वपूर्ण कार्य बताये हैं —(१) व्यक्तियों के पारस्परिक झगड़ों को तथा व्यक्ति और राज्य या स्थानीय सरकार के मध्य झगड़ों को तय करना, (२) राज्य के दण्ड विधान (criminal law) भंग करने के आरोपों की जाँच कर यह पता लगाना कि अभियुक्त अपराधी है या निर्दोष, (३)

न्यायालयों के कार्य

अन्य अनेक न्यायालयों जैसे दावे (राज्य के विरुद्ध), बाल अपराध, घरेलू सम्बन्ध समझौता और छोटे (निजी) दावे के न्यायालयों का विशेष प्रकार का अधिकार क्षेत्र होता है जो इनके नाम से ही प्रकट हो जाता है।

उपरोक्त वर्णन से राज्य की न्यायप्रणाली का सर्वेक्षण पूरा हो जाता है। इस प्रणाली की सबसे बड़ी त्रुटि न्यायपालिका के संगठन का अभाव है। इसका कारण यह है कि राज्य न्यायालयों का आरम्भ में एक ग्राम्य समाज की अपेक्षाकृत सरल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित किया गया था। जैसे जैसे देश का विकास हुआ और औद्योगिक सभ्यता अपनी समस्त जटिलताओं के साथ अधिकाश राज्यों में स्थापित हो गई न्यायपालिका के संगठन में भी बहुत से परिवर्तन करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया परन्तु विधान मण्डलों ने प्राय अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। इसका परिणाम यह है कि राज्यों की न्याय प्रणाली में बहुत अधिक असंगति है और आज एक सुसंगठित न्यायप्रणाली की अत्यन्त आवश्यकता है।

राज्य या स्थानीय अधिकारियों द्वारा किसी नागरिक के वैधानिक अधिकारों पर हस्तक्षेप किये जाने पर उसके वैधानिक अधिकारों की रक्षा करना, (४) सरकार के विभिन्न विभागों को राज्य संविधान द्वारा निर्धारित उनके निश्चित अधिकार क्षेत्रों का उल्लंघन करने से रोकना, और (५) अन्य विविध प्रकार के मामलों को तय करना जैसे मृत व्यक्ति की सम्पत्ति का व्यवस्था करना इत्यादि।

प्रत्येक राज्य में उसके संविधान द्वारा या इस संविधान के अन्तर्गत बनाये गये कानूनों द्वारा राज्य के न्यायालयों की स्थापना की गई है। यद्यपि न्यायपालिका का ढाँचा प्रत्येक राज्य में एक दूसरे से भिन्न है परन्तु उसकी मूलभूत रूपरेखा प्राय सभी राज्यों में समान है। प्रत्येक राज्य में (१) पुनरावेदन के लिए एक सर्वोच्च न्यायालय होता है, (२) अनेक राज्यों में अपील के मध्यवर्ती न्यायालय (intermediate courts of appeal) भी हैं, (३) सभी राज्यों में प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्रवाले (o iginal jurisdiction) स्थानीय न्यायालय होते हैं, और (४) सभी राज्यों में कुछ विशिष्ट न्यायालय (Special courts) भी हैं।

न्यायालयों की प्रणाली

राज्य का उच्चतम न्यायालय साधारणतया "सर्वोच्च न्यायालय" कहलाता है परन्तु कहीं-कहीं उसे "सुप्रीम जूडिशियल कोर्ट" या "सुप्रीम कोर्ट आव एरिअर्स" या "अपील न्यायालय" भी कहते हैं। न्यायाधीशों की संख्या तीन से नौ तक होती है जो किसी मामले की सुनवाई में एक साथ बैठते हैं (इनमें मुख्य न्यायाधीश भी होता है) परन्तु एक तिहाई राज्यों में यह अलग अलग सेक्शनों में भी बैठ सकते हैं। न्यायालय के या सेक्शन-बेञ्च के कुल न्यायाधीशों के बहुमत की राय से ही निर्णय किया जा सकता है। न्यायाधीश प्राय निर्वाचित होते हैं और बहुधा राज्य व्यापी चुनाव में इनको चुना जाता है, यद्यपि कुछ राज्यों में इनका निर्वाचन जिलों के आधार पर होता है। इनके कार्यकाल के सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों में बड़ा अंतर है। मैसाकसेट (Massachusetts), न्यू हैम्पशायर और रोड आइलैंड में न्यायाधीश जीवन भर या सदाचार पर्यन्त अपने पद पर आसीन रहते हैं, पेन्सिलवानिया तथा मेरीलैंड में न्यायाधीश का कार्य काल क्रमश २१ और १५ वर्ष है, वेरमोन्ट में केवल २ वर्ष और १८ अन्य राज्यों में ६ वर्ष है और इनको ५ हजार डालर से लेकर ३० हजार डालर तक वेतन मिलता है।

सर्वोच्च न्यायालय

सर्वोच्च न्यायालय का प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र प्राय बहुत कम है। इनका मुख्य कार्य अधिकतर निम्न न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध की गई अपीलों पर विचार करना होता है यद्यपि अधिकतर राज्यों में न्यायालय कुछ समादेश जारी कर सकते हैं और कुछ विशेष प्रकार के मामलों में (जैसे उन मामलों में जिनमें

राज्य भी एक पक्ष हो) आरम्भिक सुनवाई भी सर्वोच्च न्यायालय कर सकते हैं। साधारणतया सर्वोच्च न्यायालय में केवल उन्हीं मामलों पर अपील की जा सकती है जो एक निर्धारित मात्रा से अधिक के हों। अन्य मामलों में मध्यवर्ती (intermediate) न्यायालयों को अंतिम निर्णय करने का अधिकार होता है। कुछ राज्यों में सर्वोच्च न्यायालय में मध्यवर्ती न्यायालयों के निर्णय के उपरान्त अपील की जा सकती है जब कि अन्य राज्यों में कुछ निम्नतर न्यायालयों से भी अपील की जा सकती है। ऐसे सभी मामलों में जिनमें राज्य के संविधान की व्याख्या का प्रश्न हो सर्वोच्च न्यायालय का ही अंतिम अधिकार होता है और वह संघीय संविधान, कानून या संधि के ऐसे अंशों की भी व्याख्या कर सकता है जो उसके सामने उपस्थित किए जायें। परन्तु ऐसे निर्णयों की संयुक्त राज्य अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय समीक्षा करने का अधिकारी होता है। इस प्रकार राज्यों के सर्वोच्च न्यायालय राज्य के संविधान और कानूनों की व्याख्या करते हैं। इसके अतिरिक्त दस राज्यों में संविधान या कानूनों द्वारा गवर्नर या विधायकों या दोनों को यह अधिकार दिया गया है कि वह विद्यमान कानून या प्रस्तावित कानून के रूप तथा वैधानिकता से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श ले सकते हैं।

अधिक घनी जनसंख्या वाले अनेक राज्यों में मध्यवर्ती अपील न्यायालयों (intermediate courts of appeal) की भी स्थापना की गई है जो लगभग संघीय परिभ्रमण न्यायालयों के समान होते हैं। कुछ राज्यों में इस प्रकार का केवल एक न्यायालय है और कुछ में अनेक हैं। इन्हें अनेक नामों से पुकारा जाता है जैसे 'अपील न्यायालय' (courts of appeal) या प्रादेशिक अपील न्यायालय (district courts of appeal)।

मध्यवर्ती अपील न्यायालय

कुछ राज्यों में इस प्रकार के न्यायालय काउन्टी या सुपारियर-कोर्ट कहलाते हैं और प्रत्येक काउन्टी में केवल एक न्यायाधीश होता है। बहुधा दो या तीन काउन्टियों को एक साथ मिला दिया जाता है और प्रत्येक गुट के लिये एक प्रादेशिक या सर्किट न्यायालय होता है और केवल नगरों या ऐसे क्षेत्रों को छोड़कर जहाँ कार्य इतना अधिक होता है कि दो तीन या इससे भी अधिक न्यायाधीशों की आवश्यकता होती है इन प्रादेशिक या सर्किट न्यायालयों में केवल एक ही न्यायाधीश होता है। ३७ राज्यों में सभी काउन्टी, प्रादेशिक और सर्किट न्यायाधीशों का जनता द्वारा चुना जाता है और इनका कार्यकाल सामान्यतः ४ वर्ष होता है।

इनके अधिकारक्षेत्र में दीवानी और फौजदारी, प्रारम्भिक और पुनर्विचारक (appellate) सभी प्रकार के मामले आते हैं। कभी-कभी इनके अधिकार

क्षेत्र के अन्तर्गत ऐसे अपील किये हुए मामले भी आते हैं जिनमें विवादास्पद राशि एक निर्धारित अधिकतम तथा न्यूनतम मात्रा (जैसे ४००० डालर और २०० डालर) के बीच की होती है, निर्धारित अधिकतम से अधिक मात्रा के मामले सर्वोच्च न्यायालय के पास जाते हैं और निर्धारित न्यूनतम से कम के मामलों में निम्नतर न्यायालयों द्वारा ही अन्तिम निर्णय कर दिया जाता है। कुछ मामलों पर मध्यवर्ती न्यायालयों का ही निर्णय अन्तिम होता है और कुछ के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। कुछ राज्यों में कानून की वैधानिकता, और अन्य महत्वपूर्ण महापराध मामलों की अपील निम्नतर न्यायालयों से सीधे सर्वोच्च न्यायालय में जा सकती है परन्तु अ य राज्यों में सर्वोच्च न्यायालय से पहिले मध्यवर्ती न्यायालयों म अपील करना अनिवार्य होता है।

राज्यों की न्याय प्रणाली में सबसे निम्नस्तर पर "जस्टिसेज आफ दी पीस" के न्यायालय होते हैं जिनका अधिकार क्षेत्र केवल प्रारम्भिक होता है। ये अधिकतर ग्राम्य क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनके न्यायाधीशों को टाउनशिप में या काउन्टी के अन्य उपविभागों में जनता द्वारा निर्वाचित किया जाता है और इनका कार्यकाल बहुत अल्प (केवल दो वर्ष) होता है। परन्तु कुछ राज्यों में गवर्नर इनकी नियुक्ति करता है। इनका अधिकार क्षेत्र पूरी काउन्टी (county) होती है। छोटे-छोटे दावाना के मामलों (जिनका सम्बन्ध लगभग १०० डालर तक की मात्रा से हो), शांति भंग करने और अन्य कानूनों का उल्लंघन करने के अभियोगों का यह न्यायालय निर्णय करते हैं। यह विवाह करवाते हैं, शपथ ग्रहण करवाते हैं, और अन्य इसी प्रकार के छोटे मोटे वैधानिक कार्य करते हैं। केवल दीवानी और दुराचार के बहुत क्षुद्र मामलों पर ही निर्णय अन्तिम होता है और अन्य मामलों की इनसे उच्च न्यायालयों में अपील की जा सकती है।

प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय

अनेक बड़े क्षेत्रों में वह कार्य जो अन्यत्र "जस्टिसेज आफ दी पीस" करते हैं एक या अधिक न्यायालयों को सौंपा गया है जिनको म्युनिसिपल न्यायालय या 'पुलिस न्यायालय' या 'मजिस्ट्रेट न्यायालय' कहा जाता है। इनका अधिकार क्षेत्र अपनी म्युनिसिपैलिटी तक ही सीमित होता है। इन न्यायालयों के न्यायाधीश जनता द्वारा चुने जाते हैं परन्तु कभी कभी मेयर या गवर्नर द्वारा भी इनकी नियुक्ति की जाती है।

इन न्यायालयों के कार्यों को चार भागों में बाटा जा सकता है (१) सामान्य कानून (Common law) के अन्तर्गत दीवानी के मामले, (२) न्यायता (Equity) के मामले, (३) दण्ड विधान सम्बन्धी मामले, और (४) मृत व्यक्तियों की वसीयत और सम्पत्ति से सम्बन्ध रखने वाले मामले।

अन्य अनेक न्यायालयों जैसे दावे (राज्य के विरुद्ध), बाल अपराध, घरेलू सम्बन्ध समझौता और छोटे (निजी) दावे के न्यायालयों का विशेष प्रकार का अधिकार क्षेत्र होता है जो इनके नाम से ही प्रकट हो जाता है।

उपरोक्त वर्णन से राज्य की न्यायप्रणाली का सर्वेक्षण पूरा हो जाता है। इस प्रणाली की सबसे बड़ी त्रुटि न्यायपालिका के संगठन का अभाव है। इसका कारण यह है कि राज्य न्यायालयों को आरम्भ में एक ग्राम्य समाज की अपेक्षाकृत सरल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित किया गया था। जैसे जैसे देश का विकास हुआ और औद्योगिक सभ्यता अपनी समस्त जटिलताओं के साथ अधिकांश राज्यों में स्थापित हो गई न्यायपालिका के संगठन में भी बहुत से परिवर्तन करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया परन्तु विधान मण्डलों ने प्राय अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। इसका परिणाम यह है कि राज्यों की न्याय प्रणाली में बहुत अधिक असंगति है और आज एक सुसंगठित न्यायप्रणाली की अत्यन्त आवश्यकता है।

उपसंहार

राज्य सरकारों के इस अध्ययन को समाप्त करने से पूर्व कुछ शब्द राज्य और संघीय सरकारों के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में भी कहने आवश्यक हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि १८८८ या १९३३ से पूर्व संघान्तरित राज्य आज की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली थे, विशेषकर फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने वाणिज्य नियमित करने और कर लगाने के अधिकारों का अधिकाधिक प्रयोग करके संघीय अधिकार क्षेत्र का बड़ा व्यापक प्रसार किया। जैसा कि प्रोफेसर ब्रोमज ने लिखा है "१९३० के पश्चात् संघीय प्रणाली में राज्यों की प्रतिष्ठा का ह्रास हो गया क्योंकि वह इस काल के आर्थिक संकट का सामना करने में असमर्थ सिद्ध हुये"। कुछ ऐसे भी आलोचक हैं जो यहाँ तक कहते हैं कि विभिन्न राज्यों के पृथक अस्तित्व को मिटाकर उनको ८ या ६ बड़ी क्षेत्रीय सरकारों में संगठित कर देना चाहिये। परन्तु इन सब आक्रमणकारी सुझावों और कटु आलोचनाओं के होते हुये भी अमेरिकी राज्यों का अस्तित्व बना हुआ है और वह इस बात का पूरा प्रमाण देते हैं कि वह संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत अपने परम्परागत कर्तव्य का निर्वाह करते रहेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि अमेरिकी शासन प्रणाली के लिये यह भी एक गर्व की बात है कि उसमें संघीय व्यवस्था के सभी लाभ और गुण विद्यमान हैं जैसे निरन्तर राजनैतिक प्रयोग, एकता में विभिन्नता, राजनैतिक शिक्षा, अधिकारों का विकेन्द्रीकरण आदि जिससे व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का और अपनी विविधता के विकास का अधिकाधिक अवसर मिलता है और सबसे अद्भुत बात तो यह है कि इससे राष्ट्र व्यापी कारवाई की एकरूपता पर तनिक भी आघात नहीं लगता है और न

राष्ट्रीय सरकार द्वारा पूरी राज्य शक्ति को उन सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का समाधान करने की दिशा में प्रवृत्त करने के मार्ग में ही रुकावट पैदा होती है जो २० वीं शताब्दी के औद्योगिकवाद की विशेष देन हैं और न इससे उसे अन्त राष्ट्रीय राजनीति में वह महत्वपूर्ण योगदान करने से ही रोका जा सकता है जिसका आज सयुक्त राज्य अमेरिका को सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस प्रकार अमेरिकी सघीय व्यवस्था में 'क्षेत्रीय स्वशासन के साथ ही राष्ट्रीय एकता' का लाभ प्राप्त है और इसलिए ग्रिफिथ के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि "राज्य की शक्ति प्रयोगों की जननी है और राष्ट्रीय योजनाओं की अग्रदूत"। इस दृष्टि से सघातरित राज्य संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा राजनैतिक प्रयोग किए जाने के लिए एक बड़ी प्रयोग शाला बन जाते हैं और यदि विभिन्न राज्यों द्वारा प्रयोग सघीय प्रणाली की एक बहुमूल्य विशेषता है तो निस्सन्देह स्थानीय सस्थायें और प्रशासन भी इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हुये हैं।